इकाई –1 अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा एवं क्षेत्र

इकाई की संरचना

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 अनुसंधान का अर्थ
1.4 अनुसंधान की परिभाषाऍ
1.5 अनुसंधान का क्षेत्र
1.6 योग में अनुसंधान की संभावनाऍ एवं क्षेत्र
1.7 योग में अनुसंधान की आवश्यकता।
1.8 सारांश
1.9 शब्दावली
1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ
1.11 निबंधात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अपने जीवन में हम सभी विभिन्न अखबारों, पत्रिकाओं में इंटरनेट, विभिन्न टीवी एवं रेडियो चैनलों आदि पर विज्ञान, वैज्ञानिक एवं उनसे संबंधित आविष्कार, खोज, अन्वेषण सिद्धान्त, आदि शब्दों के बारे में सुनते रहते हैं एवं हमारे मनों में सहज ही ये जिज्ञासा होती हैं कि के ये कार्य किस प्रकार संभव होते हैं एवं इनके होने की प्रक्रिया क्या है? दूसरे शब्दों में कहें तो आज हमारे सामने नित्य ही नयी नयी वस्तुयें निर्मित होकर आती रहती हैं एवं उन्हें उपयोग कर लेने के अलावा उनके बारे में हम कुछ नहीं जान पाते हैं, पर जब भी हम इनकी कार्य प्रक्रिया की ओर अपना ध्यान आकर्षित करते हैं, हम आश्चर्य चकित रह जाते हैं कि इसके निर्माण के पीछे कितना श्रम, समय, एवं धन लगाया गया होगा, तथा हम यह सोचने लगते हैं कि इस आश्चर्य जनक कृति के निर्माण में कितना बौद्धिक कौशल लगाया गया होगा, बुद्धि द्वारा कैसा ताना बाना बुना गया होगा। हमारे शिक्षक इस बौद्धिक कौशल एवं बुद्धि के ताने–बाने को विज्ञान का विषय मानते हैं। इस प्रकार के सभी कार्यों को विज्ञान की उपज माना जाता है एवं इसे क्रियान्वित करने वालों को वैज्ञानिक कहा जाता है। भौतिकी के क्षेत्र में इस प्रकार का कार्य करने वालों को भौतिक विज्ञानी, रसायनों के क्षेत्र में रसायन विज्ञानी, जीव–जन्तु से संबंधित क्षेत्र में जीवविज्ञानी एवं जन्तु विज्ञानी कहा जाता है। इसी प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में कार्य करने वाले को मनोवैज्ञानिक कहते हैं। ज्ञान के किसी भी क्षेत्र के वैज्ञानिक हों उन सभी के इस प्रकार के कार्यों के पीछे एक

व्यवस्थित प्रक्रिया काम करती है। इस प्रक्रिया को ही अनुसंधान, शोध, एवं रिसर्च की संज्ञा दी जाती है। इस प्रक्रिया को जान लेने के बाद इसका उपयोग योग के क्षेत्र में अर्थात् योग विषय से संबंधित विभिन्न प्रकार की सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक समस्याओं को सुलझाने एवं उनका हल ढूँढ़ने में कर सकते हैं। इस इकाई के अन्तर्गत आप को इसी अनुसंधान का अर्थ, परिभाषा एवं इसके क्षेत्र तथा योग में इसकी संभावना एवं प्रासंगिकता के बारे में व्यापक जानकारी दी जा रही है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. अनुसंधान के अर्थ को समझ सकेंगे।
2. अनुसंधान की परिभाषाओं के बारे में लिख सकेंगे।
3. अनुसंधान के क्षेत्र का व्यापक वर्णन कर सकेंगे।
4. योग में अनुसंधान के स्वरूप को समझ सकेंगे।
5. योग में अनुसंधान की सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक उपयोगिता का विश्लेषण कर सकेंगे।

1.3 अनुसंधान का अर्थ

मानव के विकास का इतिहास वास्तव में, अनुसंधान के विकास का इतिहास है। मनुष्य की जिज्ञासा एवं सत्य को जानने की प्रवृत्ति ने अनुसंधान के रथ पर आरूढ़ होकर पाषाण युग से लेकर आधुनिक युग तक की यात्रा सम्पन्न की है। यह यात्रा कभी न समाप्त होने वाली अनादि से अनन्त तक की महायात्रा है। अतः अनुसंधान का अर्थ, स्वरूप एवं प्रक्रिया का अध्ययन एक अनिवार्य आवश्यकता है।

अनुसन्धान जिसे अंग्रेजी भाषा में रिसर्च (Research) कहा जाता है। यह वास्तव में फ्रांसीसी भाषा के रिचर्च (Recherche) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है देखना, खोज करना, सब दिशाओं में जाना, आदि। इस दृष्टिकोण से अनुसन्धान का अर्थ हुआ नये ज्ञान की खोज करना। अनुसन्धान शब्द के कई पर्यायवाची हिन्दी भाषा में मिलते हैं जिनमें शोध, अन्वेषण एवं गवेषण प्रमुख हैं। इनमें भी शोध शब्द का व्यवहार अधिक किया जाता है। शोध शब्द का व्यवहार सबसे पहले ऐतिहासिक अनुसन्धान के प्रसंग में किया गया। अतीत की ऐतिहासिक घटनाओं की खोज करने की जिज्ञासा ने शोध–कार्य को जन्म दिया।

अनुसन्धान का अर्थ किन्हीं प्रश्नों अथवा समस्याओं को वैज्ञानिक आधार पर उत्तर खोजना है। वैज्ञानिक पद्धति के प्रयोग के आधार पर इस बात की सम्भावना बढ़ जाती है कि प्राप्त सूचना पूछे गये प्रश्नों के अनुरूप तथा पर्याप्त मात्रा में विश्वसनीय, वैध एवं पक्षपात रहित है। यद्यपि यह सत्य है कि किया जाने वाला अनुसंधान इस बात की काई गारण्टी नहीं देता है कि प्रत्येक स्थिति में यह सूचना प्रासंगिक, विश्वसनीय, वैध एवं पक्षपात रहित ही होगी, तथापि वैज्ञानिक पद्धति ही हमारे पास एक ऐसा साधन है–जिसके आधार पर उपर्युक्त लक्ष्यों की पूर्ति अधिकतम रूप से की जा सकती है। वैज्ञानिक पद्धति में निरीक्षण,

आगमन–निर्गमन तर्क, व्यक्ति निरपेक्ष विधियों से परीक्षण एवं मूल्यॉकन निहित हैं। व्यक्ति निरपेक्षता वैज्ञानिक पद्धति की आधारशिला है।

अनुसंधान की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी जा सकती। सामान्यतः अनुसन्धान का अर्थ किसी समस्या के निराकरण के लिए व्यक्ति निरपेक्ष विधियों के आधार पर समस्या का प्रासंगिक, विश्वसनीय, वैध तथा पक्षपात रहित उत्तर खोजना है।

1.4 अनुसंधान की परिभाषाऍ

भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों ने शोध की परिभाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देने का प्रयास किया है।

ड्रेवर (1955) के अनुसार किसी नये ज्ञान की खोज अथवा किसी पुराने ज्ञान के पुष्टिकरण के लिये किये गये व्यवस्थित प्रयास को शोध कहते हैं।

उनके शब्दों में 'शोध का तात्पर्य किसी क्षेत्रा में ज्ञान या पुष्टिकरण के लिए किया गया व्यवस्थित अनुसंधान है।'

पी. वी. यंग (2001) ने भी शोध शब्द की खोज अथवा पुराने ज्ञान के पुष्टिकरण के अर्थ में परिभाषित किया है। उनके अनुसार–

'शोध एक ऐसी व्यवस्थित विधि है, जिसके द्वारा नये तथ्यों की खोज तथा पुराने तथ्यों की पुष्टि की जाती है, और उनके अनुक्रमों, परस्पर संबंधों, कारणात्मक व्याख्याओं एवं प्राकृतिक नियमों, जो उन्हें संचालित करते हैं, का अध्ययन किया जाता है।'

बेस्ट एवं काहन (1992) के अनुसार–

'शोध किसी नियंत्रित प्रेक्षण का क्रमबद्ध एवं वस्तुनिष्ठ अभिलेख एवं विश्लेषण है जिसके आधार पर सामान्यीकरण, नियम या सिद्धान्त विकसित किया जाता है तथा जिससे बहुत सारी घटनाओं, जो किसी खास क्रिया के परिणाम को नियंत्रित करती हैं उनके बारे में पूर्वकथन किया जाता है।

करलिंगर (1986) के अनुसार–

'स्वाभाविक घटनाओं का क्रमबद्ध नियंत्रित, आनुभाविक एवं आलोचनात्मक अनुसंधान जो घटनाओं के बीच कल्पित संबंधों के सिद्धान्तों एवं परिकल्पनाओं द्वारा निर्देशित होता है, को वैज्ञानिक शोध कहा जाता है।'

थियोडॉर्सन एवं थियोडॉर्सन (1969) के अनुसार–

'किसी समस्या के व्यवस्थित अध्ययन करने या किसी समस्या से संबंधित ज्ञान को बढ़ाने के निष्पक्ष प्रयास को शोध कहा जा सकता है।'

करलिंगर (1964, 2002) के द्वारा शोध के संदर्भ में दी गयी परिभाषा अधिक समग्र, स्पष्ट तथ संतोषजनक है। उनके अनुसार–

'वैज्ञानिक शोध, प्राकृतिक घटनाओं के बीच अनुमानित सम्बन्धों की खोज हेतु निर्मित परिकल्पनाओं का व्यवस्थित, नियंत्रित, आनुभाविक तथा आलोचनात्मक अनुसंधान है।'

स्पष्ट है कि विभिन्न मनोवैज्ञानिकों ने अनुसंधान शब्द को विभिन्न रूपों में परिभाषित करने का प्रयास किया है। सभी परिभाषायें अपने आप में संतोषजनक तथा एक दूसरे की पूरक हैं। फिर भी, व्यवहारिक रूप से करलिंगर की परिभाषा अधिक समग्र तथा संतोषजनक है।

वैज्ञानिक शोध का स्वरूप या विशेषतायें **(Nature or characteristics of Scientific research)**

वैज्ञानिक शोध के स्वरूप अथवा इसकी विशेषताओं के संबंध में किये गए अध्ययनों से निम्नलिखित बातों का उल्लेख मिलता है।–

(1) अन्वेषण प्रक्रिया – वैज्ञानिक शोध की एक मुख्या विशेषता यह है कि यह अनुसंधान की एक पद्धति है। यह विशेषता अन्य शोधों जैसे कि मनोवैज्ञानिक अथवा यौगिक शोध में भी उपलब्ध है। यह एक ऐसी प्रक्रिया है, जिसके द्वारा अन्वेषण या अनुसंधान किया जाता है। इस अन्वेषण या अनुसंधान के दो उद्देश्य होते हैं। पहला यह कि इसके द्वारा नये ज्ञान की खोज की जाती है। जेम्स ड्रेवर , बेस्ट एवं काहन, एम मोहसिन एवं पी.वी.यंग. आदि ने स्पष्ट शब्दों में इस विचार का समर्थन किया है और कहा है कि शोध या अनुसंधान कभी–कभी नये ज्ञान की खोज के लिए किया जाता है और कभी पुराने ज्ञान की जॉच के लिए।

(2) अनुसंधान में सुव्यवस्था का गुण पाया जाता है

शोध एक व्यवस्थित एवं क्रमबद्ध अध्ययन है। व्यवस्थित या क्रमबद्ध अध्ययन का अर्थ यह है कि अनुसंधानकर्ता पहले प्राकृतिक घटनाओं के बीच सम्बंधों के बारे में परिकल्पना या परिकल्पनाओं का निर्माण करता है तथा आवश्यक उपकरणों तथा यत्रों की सहायता से उनकी जॉच करके सिद्धान्त एवं नियम की स्थापना करता है। इस विचार की पुष्टि अनेक वैज्ञानिकों ने की है।

(3) अनुसंधान आनुभाविक भी होता है

कतिपय अनुसंधानों में आनुभाविकता की विशेषता भी पाई जाती है। यह एक ऐसा अध्ययन होता है जो अनुभव पर आधारित होता है। यह अध्ययन शोधकर्ता व्यवस्थित ढंग से निरीक्षणों या प्रयोगों के आधार पर करता है। जैसे– आइजेक न्यूटन के साथ एक दिन एक सामान्य घटना घटी उन्होंने ने एक सेब के वृक्ष के नीचे विश्राम के दौरान सेब को नीचे गिरते देखा। इससे उनके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि पेड़ के फल नीचे ही क्यों गिरते हैं? यह जिज्ञासा उनके समक्ष एक समस्या थी जिसके समाधान हेतु उन्होंने जॉचनीय परिकल्पना का निर्माण किया कि 'ऊपर से छोड़ी गयी वस्तुयें सदैव नीचे ही गिरती हैं' इसकी जॉच करने पर उन्होंने पाया कि धरती के किसी भी कोने में क्यों न चले जायें ऊपर से छोड़ी गयी वस्तुयें धरती के आकर्षण के कारण नीचे ही गिरती हैं। इस व्यवस्थित एवं प्रयोगात्मक अध्ययन से उन्होंने गुरूत्वाकर्षण के सिद्धान्त को खोज निकाला।

(4) वैज्ञानिक अनुसंधान में नियंत्रण की विशेषता पायी जाती है

करलिंगर के अनुसार एक वैज्ञानिक शोध में नियंत्रण की विशेषता पाई जाती है। यहॉ जो अध्ययन किया जाता है वह नियंत्रित होता है। इस नियंत्रण से तात्पर्य शोध हेतु निर्धारित अध्ययन परिस्थिति, दशाओं , व्यक्तिगत पूर्वाग्रहों, कमियों आदि पर नियंत्रण से होता है। परन्तु अलग–अलग शोध उद्देश्यों के आधार पर इस नियंत्रण की मात्रा भी भिन्न प्रकार की होती है। यह नियंत्रण की विशेषता सभी शोधों में नहीं पायी जाती है, जैसे कि घटनोत्तर शोध, सर्वेक्षण शोध और क्रियात्मक शोध।

(5) वैज्ञानिक शोधों आलोचनात्मक प्रकार की भी होती हैं।

जब वैज्ञानिक शोध के अन्तर्गत आलोचनात्मक दृष्टिकोण से कोई अध्ययन किया जाता है तब उसमें तर्क प्रचुर मात्रा में विद्यमान होता है। यह विशेषता अन्वेषणात्मक अनुसंधान तथा पुष्टिकारक अनुसंधान दोनों में ही पाई जाती है। किन्तु पुष्टिकारक शोध में इस विशेषता की प्रधानता होती है। एक शोधकर्ता दूसरे शोधकर्ता द्वारा प्राप्त परिणाम या ज्ञान के आधार पर उस परिणाम या ज्ञान का समर्थन करता है या खंडन करता है और नया ज्ञान प्रस्तुत करता है।

(6) वैज्ञानिक शोध में उपकरणों की आवश्यकता होती है

वैज्ञानिक अनुसंधानों में कई बार चरों के मापन की आवश्यकता पड़ती है। उदाहरण के लिए यदि योग के अन्तर्गत कोई व्यक्ति 'नाड़ी शोधन प्राणायाम के अभ्यास का चिंता स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन' विषय पर अनुसंधान करना सुनिश्चित करता है तो उसे इस शोध में चिंता के मापन की आवश्कता पड़ेगी। ऐसी दशा में उसे चिंता का मापने करने वाले किसी उपकरण का उपयोग करना होगा। आधुनिक समय में चिंता का मापन कई प्रकार से किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक शोधों के अन्तर्गत मनोवैज्ञानिक चिंता के मापन के लिए मनोवैज्ञानिक परीक्षणों, प्रश्नावलियों आदि का प्रयोग करते हैं वहीं मेडिकल रिसर्च में शोधकर्ता जी.एस.आर. बायोफीडबैक अथवा अल्फा बायोफीडबैक उपकरण का प्रयोग करते हैं।

(7) वैज्ञानिक शोध में वैज्ञानिक अभिकल्प का प्रयोग किया जाता है।

वैज्ञानिक शोध में वैज्ञानिक अभिकल्प का व्यवहार किया जाता है। इसका अर्थ यह है शोधकर्ता या अनुसंधानकर्ता अपने शोध के उद्देश्य के अनुकूल एक योजना अथवा स्कीम बनाता है जिसमें अनुसंधान कैसा किया जायेगा, अनुसंधान में ऑकड़ों के संग्रहण की क्या प्रक्रिया होगी। ऑकड़ा संग्रहण हेतु किस प्रकार के उपकरणों, विधि अथवा परीक्षणों का प्रयोग किया जायेगा। आंकड़ों का विश्लेषण कैसे किया जायेगा आदि सम्मिलित होता है।

(8) वैज्ञानिक शोध में वस्तुनिष्ठता का गुण पाया जाता है

वैज्ञानिक शोध में वस्तुनिष्ठता की विशेषता पायी जाती है। यह विशेषता योग अनुसंधानों में भी पायी जाती है। वस्तुनिष्ठ अध्ययन से तात्पर्य उस अध्ययन से है जिसमें शोधकर्ता किसी

समस्या, या विषय–वस्तु का अध्ययन पक्षपात, पूर्वधारणा, पूर्वाग्रह आदि व्यक्तिगत कारकों से प्रभावित हुए बिना करता है।

(9) वैज्ञानिक शोधों की पुनरावृत्ति की जा सकती है।

वैज्ञानिक शोध इतने क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तथा नियंत्रण के साथ संचालित किया जाता है कि उसे उसी रूप में दोबारा संचालित करना हमेशा ही आसान रहता है। अर्थात् शोधकर्ता अपने शोध या अध्ययन के आधार पर जो परिणाम या ज्ञान प्राप्त करता है , उसकी सत्यता की जॉच के लिए वह अपने शोध या अध्ययन को बार–बार दुहराता है। यदि वह हर बार एक ही परिणाम प्राप्त करता है तो समझा जाता है कि उसका शोध विश्वसनीय है।

(10) वैज्ञानिक शोधों को अन्य शोध कर्ताओं द्वारा सत्यापित भी किया जा सकता है।

सत्यापन किसी भी अनुसंधान या शोध के लिए एक आवश्यक गुण है। मनोवैज्ञानिक अनुसंधान में यह गुण पाया जाता है। इसका अर्थ यह है कि एक अनुसंधानकर्ता के द्वारा जो परिणाम प्राप्त होता है, उसकी जॉच दूसरा अनुसंधानकर्ता अपने अध्ययन के आधार पर कर सकता है।

(11) वैज्ञानिक अनुसंधान में व्यावहारकिता होती है।

वैज्ञानिक शोध में व्यावहारिकता का गुण होना अपेक्षित है। व्यावहारिकता का अर्थ है कि वह शोध या अनुसंधान सैद्धान्तिक अथवा व्यावहारिक रूप से उपयोगी तथा लाभप्रद हो।

उपरोक्त विशेषताओं के अलावा शोध में मितव्ययता का गुण होना भी आवश्यक होता है जो कि अधिकतर वैज्ञानिक शोधों में व्यवस्था का गुण होने के कारण अपने आप विद्यमान हो जाता है। मितव्ययी होने का अर्थ है कि किसी प्राकृतिक घटना की व्याख्या यथा संभव सरल तरीके से की जाए। जिस शोध में अपेक्षाकृत कम समय लगता है तथा कम श्रम करना पड़ता है उसे मितव्ययी गुणों से युक्त शोध कहा जाता है।

इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि वैज्ञानिक शोध की उपर्युक्त कई विशेषताएं हैं जो बहुत अंशों में योग विषय से संबंधित शोध में भी पायी जाती हैं।

1.5 अनुसंधान का क्षेत्र

अनुसंधान का क्षेत्र अपने आप में बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत है। जिस प्रकार मन की गति की कोई सीमा नहीं होती है। मानव मन में उपजने वाली जिज्ञासाओं की कोई सीमा नहीं होती है। उसी प्रकार इन जिज्ञासाओं के उत्तर देने वाली अनुसंधान प्रक्रिया के कार्य क्षेत्र की भी कोई निश्चित सीमा नहीं होती है इसका दायरा अनन्त माना गया है। जिस समस्या का संबंध ज्ञान के जिस विषय क्षेत्र से होता है। उस विषय क्षेत्र की सीमाओं जितनी विस्तृत एवं विशाल होती हैं उसमें अनुसंधान किये जाने की संभावनायें भी उतनी ही विशाल होती हैं।

विषयों के असंख्य प्रकार होने की वजह से एवं उन विषयों में उपजने वाली समस्याओं एवं परिकल्पनाओं के भी असंख्य होने की वजह से असंख्य विषयों में अनुसंधान कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। मानव जीवन एवं सृष्टि में निरन्तर परिवर्तन शीलता की विशेषता पाई जाती है यह परिवर्तनशीलता ही अनन्त कार्य क्षेत्रों को जन्म देती है। फिर भी अनुसंधान के इन कार्य क्षेत्रों को सरलता के लिए कई विमाओं में आबद्ध करना आवश्यक है। इसी आवश्यकता के कारण अनुसंधान किये जा सकने की संभावना से संपन्न कतिपय कार्य क्षेत्र निम्न हैं–

जीवन की मूलभूत आवश्यकता के आधार पर अनुसंधान के क्षेत्र

जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं मे भोजन, वस्त्र एवं आवास के अलावा शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार, समाज एवं साधना की आवश्यकताओं को रखा जा सकता है। इस आधार पर अनुसंधान के क्षेत्र निम्न हैं।

(1) शिक्षा का क्षेत्र–

शिक्षा व्यक्ति को कुशल बनाती है, व्यक्ति अपने परिवेश में उपलब्ध संसाधनों को अपने जीवन व भविष्य को उन्नत एवं बेहतर बनाने के लिए किस प्रकार कुशलतापूर्वक उपयोग कर सकता है इसकी योग्यता शिक्षा से ही मिलती है। इस हेतु शिक्षा की विभिन्न विधियों की खोज हमेशा चलती रहती है। किसी नगर, राज्य एवं देश की उन्नति उस देश के नागरिकों के शिक्षा प्रक्रिया एवं व्यवस्था पर प्रमुख रूप से निर्भर करती है। अतएव शिक्षा का क्षेत्र बहुत ही व्यापक है इसमें नित्य अनुसंधान की संभावनायें बनी रहती हैं। विभिन्न अनुसंधानकर्ता आधुनिक समय में विज्ञान, कला, वाणिज्य आदि प्रमुख विषयों की शिक्षा विधि के अलावा नैतिक शिक्षा, धार्मिक शिक्षा आदि की आवश्यकताओं पर अनुसंधान के परिणामों के आधार पर जोर देने लगे हैं। इसके अलावा बेस्ट एवं काहन,1992 के अनुसार शिक्षा के क्षेत्र में ऐतिहासिक, विवरणात्मक एवं प्रयोगात्मक शोध प्रमुखता से किये जाते हैं।

(2) स्वास्थ्य का क्षेत्र–

अच्छा स्वास्थ्य व्यक्ति की एक मूलभूत आवश्यकता है इसके बिना जीवन में उन्नति एवं बेहतरी की कल्पना व्यर्थ है। स्वास्थ्य में अनुसंधान का क्षेत्र बहुत व्यापक है। अपने जीवन में मनुष्य कई प्रकार की स्वास्थ्यगत समस्याओं से पीड़ित रहता है जिनमें शारीरिक, मनोवैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक व्याधियॉ प्रमुख हैं। शारीरिक व्याधियों एवं मनोवैज्ञानिक समस्याओं के उपचार के लिए जहॉ नित्य प्रति भिन्न–भिन्न प्रकार की औषधियों के निर्माण का क्षेत्र अनुसंधान के लिए खुला हुआ है। वहीं इसकी सम्यक् डायग्नोसिस (निदान) हेतु उचित उपकरणों एवं विधियों की खोज की जरूरत इसे अनुसंधान का प्रमुख क्षेत्र बनाती है। विश्व स्वास्थ्य संगठन द्वारा दी गई स्वास्थ्य की परिभाषा आध्यात्मिक स्वास्थ्य के क्षेत्र को अनुसंधान के दायरे में शामिल करने की पुरजोर वकालत करती है।

(3) रोजगार का क्षेत्र

मनुष्य की निरंतर बढ़ रही जनसंख्या ने रोजगार के अवसर सीमित कर दिये हैं। इसी के साथ उद्देश्य विहीन शिक्षा का भी इसमें महत्वपूर्ण योगदान है। रोजगार के पर्याप्त एवं उचित अवसरों को किस प्रकार बढ़ाया जा सके। इस समस्या के समाधान की खोज सदैव बनी रहती है। नित्य बढ़ती जनसंख्या इसमें शोध की संभावना सदा खुली रखती है।

(4) साधना का क्षेत्र–

साधना व्यक्ति के व्यक्तित्व के समग्र विकास से संबंध रखती है। जीवन साधना ही वह महत्वपूर्ण प्रयास है जिससे व्यक्ति जीवन की वर्तमान चुनौतियों का सामना सफलता पूर्वक करते हुए भविष्य की चुनौतियों से निपटने हेतु अपने आप को तैयार एवं तत्पर रखता है। इस का संबंध जीवन जीने की कला से है। इस क्षेत्र में अनुसंधान की अनन्त संभावनायें हैं। प्राचीन काल से लेकर वर्तमान तक विभिन्न धार्मिक, आध्यात्मिक गुरू, महामानव एवं महापुरूष तथा समाजसुधार इसी कला का प्रचार एवं प्रसार करते रहे तथा लोगों को जीवन की चुनौतियों से निपटने योग्य बनाते रहे।

(5) सामाजिक क्षेत्र–

व्यक्ति एवं समाज दोनों एक दूसरे पर पर परस्पर अन्योन्याश्रित हैं। जीवन में बेहतरी एवं उन्नति हेतु व्यक्ति को समाज की एवं समाज को क्षमतावान व्यक्ति के साथ की आवश्यकता सदैव रहती है। व्यक्ति समाज की उन्नति में किस प्रकार अपना योगदान दे सकता है एवं समाज किस प्रकार व्यक्ति की उन्नति में सहायक हो सकता है? प्रत्येक समय में बदलती परिस्थितियों में इस पर तथा प्रगतिशील सामाजिक ढांचे का स्वरूप कैसा हो इस पर अनुसंधान का क्षेत्र व्यापक है।

मनोविज्ञान, कला, संस्कृति, भाषा के आधार पर अनुसंधान के क्षेत्र

(1) मनोविज्ञान

मनोविज्ञान मानव व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन है। इसका क्षेत्र भौतिक विज्ञान के क्षेत्र की तुलना में अधिक विस्तृत है। मनोविज्ञान में व्यक्तित्व, बुद्धि, अभिवृत्ति, अभिक्षमता, चिन्तन, कल्पना, प्रत्यक्षण, अधिगम, स्मृति, संवेग, अभिप्रेरण आदि क्षेत्रों में शोध कार्य किये गये हैं और आज भी तेजी से हो रहे हैं।

(2) संस्कृति का क्षेत्र–

वर्तमान समय में विभिन्न संस्कृतियों के परस्पर प्रभावों को निर्धारित करने के लिए सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक शोध व्यापक रूप में होने लगे हैं। व्यक्तित्व–शीलगुणों, संज्ञानात्मक प्रतिरूप, समायोजन पैटर्न आदि पर सांस्कृतिक विविधता के प्रभाव को निर्धारित करने हेतु शोध कार्य किये जा रहे हैं। भारत में आदिवासी संस्कृति तथा गैर–आदिवासी संस्कृति से संबंधित शोध कार्य किये जा रहे हैं इस संबंध में क्रास सेक्शनल रिसर्च भी उल्लेखनीय है।

(3) भाषा का क्षेत्र

भाषा सदैव से ही अनुसंधान का विषय रही है। पूरे विश्व में सैकड़ों भाषाएँ एवं हजारों बोलियॉ बोली जाती हैं। जिनमें, हिन्दी, चीनी, उर्दू, अंग्रेजी, रूसी, जर्मन, फ्रेंच आदि भाषाएँ प्रमुख हैं। संचार से संबंधित, शब्दों के पीछे छिपे भावों के संबंध में एवं भाषा विनिमय के क्षेत्र में नित नये अनुसंधान हो रहे हैं एवं संभावना है।

(4) कला, साहित्य का क्षेत्र

वास्तुकला, चित्रकला, आदि कलाओं एवं साहित्य का क्षेत्र जिसमें विभिन्न काव्य, लेख, ग्रंथ आदि आते हैं, ऐतिहासिक, दार्शनिक एवं शुद्ध शोध की अत्यंत संभावनाएॅ विद्यमान हैं। इस क्षेत्र में विभिन्न शोध वर्तमान में हो रहे हैं।

काल के आधार पर अनुसंधान के क्षेत्र

(1) भूत कालिक घटनाओं पर अनुसंधान– प्राचीन काल में घटी घटनाओं जैसे युद्ध, वास्तुनिर्माण, साहित्य रचना, सिद्धान्त खोज आदि के संबंध में किया गया अन्वेषण भूतकालिक अनुसंधान के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र है।

(2) आधुनिक काल की घटनाओं पर अनुसंधान– वर्तमान में व्यक्ति के सम्मुख तात्कालिक समस्याओं जिनमें शारीरिक, मानसिक, रोगों के साथ–साथ सामाजिक, राजनैतिक, आतंकवादी घटनाओं के प्रभाव आदि सम्मिलित हैं के अलावा तकनीक, विज्ञान, साहित्य, कला आदि आधुनिक काल के अनुसंधान के क्षेत्र हैं।

(3) भविष्योन्मुखी अनुसंधान– भविष्य की आवश्यकताओं एवं समस्याओं को दृष्टिगत रखते हुए किये जाने वाले अनुसंधान भविष्योनमुखी अनुसंधान के क्षेत्र के अन्तर्गत आते हैं। उदाहरण के लिए सरकारी एवं गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा भविष्य में होने वाली पानी की कमी, ईंधन की कमी, किसी विशेष रोग के प्रसार की संभावना अथवा बिजली, पानी, ईंधन, अनाज, आवास आदि की जरूरतों का अनुमान लगाना इसी भविष्योन्मुखी अनुसंधान के क्षेत्र हैं।

विज्ञान विषय में अनुसंधान के कार्य क्षेत्र

(1) भौतिक विज्ञान– शुद्ध विज्ञानों में भौतिक विज्ञान एक प्रमुख विषय है। इसके अन्तर्गत प्रकृति में पहले से ही व्याप्त सिद्धान्तों का अन्वेषण किया जाता है तथा अन्वेषित सिद्धान्तों, नियमों के माध्यम से प्राकृतिक घटनाओं की व्याख्या की जाती है। वर्तमान में कम्प्यूटर, मेट्रो रेल, हवाई जहाज आदि सब इसी अन्वेषण के चमत्कार हैं। इस क्षेत्र में निरंतर अनुसंधान जारी रहते हैं।

(2) रसायन विज्ञान– रसायन विज्ञान में अनुसंधान का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। इसका संबंध स्वास्थ्यवर्धक दवाओं की खोज एवं निर्माण से जुड़ा हुआ है। जिसके तहत मानव शरीर की रासायनिक संरचना, चयापचय क्रियाओं एवं बाहृय प्रकृति में होने वाली विभिन्न रासायनिक अभिक्रियाओं की खोज, व्याख्या एवं उपयोग सम्मिलित है।

(3) जीव एवं जन्तु विज्ञान का क्षेत्र– इसके अन्तर्गत जीव एवं जन्तु जिसमें पशु पक्षी कीट आदि आते हैं की शारीरिक संरचना, उत्पत्ति, प्रजनन, विकास, व्यवहार आदि का अध्ययन किया जाता है। इसमें जीवों की नई प्रजातियॉ खोजी जाती हैं। व लुप्त हो रही प्रजातियों के पीछे छिपे कारणों की खोज, एवं उनको बचाने की तरीके खोजे जाते हैं।

(4) गणित एवं सांख्यिकी का क्षेत्र–सभी प्रकार के शोधो मे मापन एवं गणना तथा व्यावहारिक एवं प्रामाणिक अनुमान लगाने हेतु गणित एवं सांख्यिकी का सहारा लिया जाता है। प्राकृतिक घटनाओं एवं मानव व्यवहार में होने वाले परिवर्तनों की परिमाणिक व्याख्या करने हेतु गणित एवं सांख्यिकी में नित नये परीक्षणों की खोज एवं सिद्धान्तों की रचना की

जाती है। यह क्षेत्र स्वयं में एवं अन्य बहुत प्रकार के विज्ञानों एवं विषयों में होने वाले अनुसंधानों से जुड़ा होने के कारण अत्यंत ही विशाल है। उपरोक्त श्रेणियों में वर्णित क्षेत्रों के अलावा और भी अनगिनत क्षेत्र हैं जिनमें अनुसंधान हो रहे हैं एवं अनुसंधान किये जाने की संभावना है जैसे कि अभियांत्रिकी, मेडिकल साइंस, स्पेस साइंस, ज्योतिष, खगोल विज्ञान, सूचना क्रांति, मानव व्यक्तित्व, योग विज्ञान आदि।

1.6 योग में अनुसंधान की संभावनाऍ एवं क्षेत्र–

योग अत्यंत ही प्राचीन विषय है। इसका वर्णन वेद, उपनिषद, पुराण, महाभारत, गीता के अतिरिक्त विभिन्न दर्शनों जैसे कि जैन दर्शन, बौद्ध दर्शन, मीमांसा आदि में मिलता है। महर्षि पतंजलि ने योग की परिभाषा करते हुए कहा है कि 'योगः चित्तवृत्ति निरोधः' (पां यो सू 1/2)। इस दृष्टि से योग के अध्ययन की विषय वस्तु में चित्त, चित्त की वृत्तियॉ, उनके उत्पन्न होने में कारण अविद्यादि पंच क्लेश एवं उनका निरोध करने हेतु वर्णित क्रिया–योग, अष्टांगयोग, अभ्यास–वैराग्य सब सम्मिलित हो जाते हैं। योग विषय की विशालता, गूढ़ता, गंभीरता एवं उपयोगिता की दृष्टि से इसमें अध्ययन का क्षेत्र बहुत विस्तृत है। इसमें व्याप्त अध्ययन एवं अनुसंधान की संभावनाऍ निम्न हैं–

(1) योग में ऐतिहासिक शोध की संभावना–वेद सबसे पुरातन माने गये हैं एवं इनमें योग का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। योग का प्रादुर्भाव किस काल में हुआ, इसके प्रथम वक्ता कौन हैं इस विषय पर बीसवीं शताब्दी में काफी अध्ययन किया गया है तथा अध्ययन की संभावनाऍ हैं। योग की प्राचीनता की दृष्टि से इसमें ऐतिहासिक शोध की किये जाने की बड़ी संभावनाऍ हैं।

(2) योग में दार्शनिक शोध की संभावना –दर्शन की विषयवस्तु में जीव, सृष्टि, प्रकृति एवं पुरूष तथा ईश्वर आदि आते हैं। योग में दर्शन के इन विषयों का स्थान होने की वजह से दार्शनिक शोध संपन्न किये जा सकते हैं।

(3) योग में मनोवैज्ञानिक शोध की संभावना–मनोविज्ञान व्यक्ति के व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का विज्ञान है। योग के अनुसार व्यक्ति की चित्तवृत्तियॉ, पंचक्लेश एवं संस्कार उसके व्यवहार का निर्धारण करते हैं। मानसिक प्रक्रियायें भी पंच क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश) की विभिन्न अवस्थाओं के द्वारा परिवर्तित होती रहती हैं। योग मनोविज्ञान भी समग्र मन, चित्त, उसके साधनों, मस्तिष्क, नाड़ियों, कुण्डलिनी, चक्र, आदि सहित मानव की अनुभूतियों तथा व्यवहारों का चेतन सापेक्ष गत्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने, अभ्यास तथा वैराग्य द्वारा चित्त की वृत्तियों का निरोध करने, कैवल्य प्राप्त करने के अष्टांगों–यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि का अध्ययन करने तथा चित्त को विकसित करके अद्भुत शक्तियों तथा विवेक ज्ञान प्रदान करने का क्रियात्मक विज्ञान है। अतएवं इसमें शोध की अनन्त संभावनाऍ हैं।

(4) योग में सैद्धान्तिक शोध की संभावना–परिकल्पनायें सिद्धान्त निर्माण का कार्ययंत्र होती हैं एवं सिद्धान्तों से परिकल्पनाऍ अनुमित की जा सकती हैं। इन परिकल्पनाओं के निर्माण में विभिन्न पदों एवं संप्रत्ययों जिन्हें चर भी कहा जाता है सम्मिलित होती हैं। सिद्धान्त में इन्हीं संप्रत्ययों के बीच व्याप्त अन्तर्सम्बंधों को घटना विशेष की व्याख्या हेतु आधार बनाया

जाता है। सही व्याख्या के लिए इन संप्रत्ययों का उचित रूप में परिभाषित होना आवश्यक होता है। योग विषय बहुत से गूढ़ एवं गंभीर संप्रत्ययों से समृद्ध है जैसे कि, योग, यम (सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह, ब्रह्मचर्य), नियम (शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान), वृत्तियॉ (प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा एवं स्मृति), पंच क्लेश (अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश), समाधि (सवितर्क, निर्वितर्क, सविचार, निर्विचार, आनन्दानुगत, अस्मितानुगत, धर्ममेघ, संप्रज्ञात, असंप्रज्ञात आदि), विवेकख्याति, कैवल्य आदि। इन संप्रत्यों का व्यक्तित्व से क्या संबंध है इनकी उचित एवं प्रासंगिक परिभाषाऍ क्या हैं। देश काल परिस्थिति के अनुसार इनमें बदलाव होता है या नहीं आदि दृष्टि से विचार कर इनमें अनुसंधान किये जा सकते हैं। इसक प्रकार किये गये अनुसंधान इसमें सैद्धान्तिक शोध की प्रचुर संभावना को दर्शाते हैं।

(5) योग में प्रायोगिक शोध की संभावना– हठयोग, अष्टांग योग, क्रियायोग, राजयोग में वर्णित विभिन्न योग की प्रक्रियाओं एवं विधियों के मनुष्य के शरीर एवं मन पर सकारात्मक प्रभाव होने के वर्णन विभिन्न योग ग्रंथों में सूत्र रूप में एवं परोक्ष रूप से मिलता है। इन स्वास्थ्यवर्धक, सकारात्मक प्रभावों की जॉच हेतु वर्तमान की शारीरिक मानसिक समस्याओं एवं व्याधियों से निपटने हेतु वैज्ञानिक प्रयोग एवं अनुसंधान किये जा सकते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी अनुसंधानकर्ता मोटापा जैसी शारीरिक समस्या के समाधान में योग की प्रक्रियायें जैसे कि आसन, प्राणायाम, बंध एवं मुद्रायें सैद्धान्तिक रूप से सक्षम प्रतीत होती हैं तो वह कुछ पोटापे से पीड़ित व्यक्तियों का समूह लेकर उन्हें आसन, प्राणायाम, बंध एवं मुद्राओं का अभ्यास कराकर इसकी सत्यता की जॉच कर सकता है। इसी प्रकार अन्य अनेक रोगों जैसे कि अस्थमा, कमर दर्द, जकड़न, थकान, मधुमेह, आदि शारीरिक समस्याओं तथा चिंता, विषाद, आक्रामकता, आदि मानसिक समस्याओं पर भी योग की विधियों एवं प्रक्रियाओं का प्रभाव देखा जा सकता है।

(6) योग में अन्तर्वैषयिक शोध की संभावना–

योग विषय में अन्तर्वैषयिक शोध की क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। योग साधना मनुष्य द्वारा की जाती है जिसमें शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक उत्कर्ष की यात्रा क्रमशः करनी पड़ती है। महर्षि पतंजलि के अनुसार योग साधक की यात्रा कैवल्य प्राप्त करने पर ही पूर्ण होती है। इसमें पहले शरीर को योग साधना के योग्य बनाना पड़ता है जिस हेतु अष्टांग योग में बहिरंग साधनों जैसे कि आसन, प्राणायाम, मुद्रा, बंध आदि का अभ्यास किया जाता है। वहीं मन को साधने एवं ध्यान एवं समाधि के उपयुक्त बनाने हेतु अंतरंग साधनों का प्रयोग किया जाता है जिसमें अभ्यास, वैराग्य आते हैं। इस दृष्टि से देखने पर योग की विभिन्न साधनाओं के प्रभावों को शरीर, एवं मन पर वैज्ञानिक रूप से अध्ययन किया जा सकता है। इसके अलावा योग एक दर्शन भी है इस दृष्टि से भी अन्य दर्शनों के साथ इसके तुलनात्मक अध्ययन के रूप में अन्तर्वैषयिक शोध संचालित किये जा सकते हैं। चिकित्सा प्रविधियों के रूप में भी इसकी साधना विधियों पर खोजी अनुसंधान किये जा सकते हैं।

1.7 योग में अनुसंधान की आवश्यकता–

योग विषय में अनुसंधान की आवश्यकता को निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है।

(1) योग विषय अत्यंग ही गूढ़ एवं गंभीर है। इसमें मनुष्य के समस्त दुखों को दूर करने के उपायों का वर्णन सूत्र रूप में किया गया है। ये सूत्र कूट भाषा के रूप में हैं। इन सूत्रों में उल्लिखित शब्दों में अन्तर्निहित भावों को यदि ठीक–ठीक स्पष्ट किया जा सके तो अत्यंत ही महत्वपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है।

(2) योग जीवन का उद्देश्य भी है एवं प्रक्रिया भी इस जीवन उद्देश्य को न भी प्राप्त किया जा सके तो भी इसकी प्रक्रिया को जीवन में अपनाने से व्यक्तित्व की कई क्षमतायें जाग्रत हो सकती हैं। अतएव परिणाम न सही प्रक्रिया पर अनुसंधान किये जाने से व्यक्तित्व विकास एवं परिष्कार की कई प्रविधियॉ उपलब्ध हो सकती हैं। एवं उनकी प्रभावशीलता को जॉचा जा सकता है।

(3) योग बच्चे, वयस्क, वृद्ध एवं महिलाओं सभी के द्वारा अभ्यास किये जाने योग्य है। क्योंकि इसमें सभी द्वारा अभ्यास किये जाने योग्य कुछ न कुछ है। एवं इसका उद्देश्य ही चेतना का परिष्कार एंव चित्त की वृत्तियों का निरोध है। इसमें वर्णित समस्त विधियों इसी लक्ष्य की प्राप्ति करवाती हैं। इसके कई प्रकार हैं जैसे हठयोग, राजयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग, लययोग आदि। यह सब पूर्णतः स्पष्ट नहीं है।

(4) वर्तमान में विभिन्न प्रकार के शारीरिक एवं मानसिक रोग प्रचलित हैं। जो जीवनशैली में उत्पन्न हुए व्यतिक्रम से उत्पन्न हुए हैं। योग स्वयं ही एक जीवन जीने की कला का नाम है जो व्यक्ति को एक ऐसी जीवनशैली प्रदान करता है जिससे न केवल व्यक्ति स्वयं को शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ रख सकता है अपितु विभिन्न आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त कर सकता है। अतएव इस पर शोध एवं अनुसंधान की असीम संभावनाऍ हैं।

उपरोक्त वर्णन से योग में शोध एवं अनुसंधान किये जाने की आवश्यकता एवं संभावनाऍ स्पष्ट होती हैं।

1.8 सारांश

अनुसन्धान जिसे अंग्रेजी भाषा में रिसर्च (Research) कहा जाता है। यह वास्तव में फ्रांसीसी भाषा के रिचर्च (Recherche) शब्द से बना है, जिसका अर्थ है देखना, खोज करना, सब दिशाओं में जाना, आदि। इस दृष्टिकोण से अनुसन्धान का अर्थ हुआ नये ज्ञान की खोज करना। अनुसन्धान शब्द के कई पर्यायवाची हिन्दी भाषा में मिलते हैं जिनमें शोध, अन्वेषण एवं गवेषण प्रमुख हैं। इनमें भी शोध शब्द का व्यवहार अधिक किया जाता है।

भिन्न भिन्न वैज्ञानिकों ने शोध की परिभाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से देने का प्रयास किया है। ड्रेवर (1955) के अनुसार किसी नये ज्ञान की खोज अथवा किसी पुराने ज्ञान के पुष्टिकरण के लिये किये गये व्यवस्थित प्रयास को शोध कहते हैं।

उनके शब्दों में 'शोध का तात्पर्य किसी क्षेत्रा में ज्ञान या पुष्टिकरण के लिए किया गया व्यवस्थित अनुसंधान है।'

पी. वी. यंग (2001) ने भी शोध शब्द की खोज अथवा पुराने ज्ञान के पुष्टिकरण के अर्थ में परिभाषित किया है। उनके अनुसार–

'शोध एक ऐसी व्यवस्थित विधि है, जिसके द्वारा नये तथ्यों की खोज तथा पुराने तथ्यों की पुष्टि की जाती है, और उनके अनुक्रमों, परस्पर संबंधों, कारणात्मक व्याख्याओं एवं प्राकृतिक नियमों, जो उन्हें संचालित करते हैं, का अध्ययन किया जाता है।'

करलिंगर (1964, 2002) के द्वारा शोध के संदर्भ में दी गयी परिभाषा अधिक समग्र, स्पष्ट तथ संतोषजनक है।

उनके अनुसार–'वैज्ञानिक शोध, प्राकृतिक घटनाओं के बीच अनुमानित सम्बन्धों की खोज हेतु निर्मित परिकल्पनाओं का व्यवस्थित, नियंत्रित, आनुभाविक तथा आलोचनात्मक अनुसंधान है।'

अनुसंधान का क्षेत्र अपने आप में बहुत ही व्यापक एवं विस्तृत है। जिस प्रकार मन की गति की कोई सीमा नहीं होती है। मानव मन में उपजने वाली जिज्ञासाओं की कोई सीमा नहीं होती है। उसी प्रकार इन जिज्ञासाओं के उत्तर देने वाली अनुसंधान प्रक्रिया के कार्य क्षेत्र की भी कोई निश्चित सीमा नहीं होती है इसका दायरा अनन्त माना गया है।

1.9 पारिभाषिक शब्दावली

अनुसंधान –'वैज्ञानिक शोध, प्राकृतिक घटनाओं के बीच अनुमानित सम्बन्धों की खोज हेतु निर्मित परिकल्पनाओं का व्यवस्थित, नियंत्रित, आनुभाविक तथा आलोचनात्मक अनुसंधान है।'

1.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

1.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. अनुसंधान की अर्थ एवं स्वरूप को उदाहरण द्वारा स्पष्ट करें।

प्रश्न 2. अनुसंधान से आप क्या समझते हैं? अनुसंधान की परिभाषाओं का वर्णन करें।

प्रश्न 3. अनुसंधान के उद्देश्य एवं वैज्ञानिक अनुसंधान की आवश्यक विशेषताओं का वर्णन करें।

प्रश्न 4. अनुसंधान के कार्यक्षेत्र का विस्तृत वर्णन करें।

प्रश्न 5. योग में अनुसंधान की आवश्यकता एवं महत्व को बिन्दुवार स्पष्ट करें।

इकाई–2 शोध के प्रकार– ऐतिहासिक शोध, दार्शनिक शोध, मनोवैज्ञानिक शोध, प्रयोगात्मक शोध

इकाई की संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 ऐतिहासिक शोध

2.4 दार्शनिक शोध

2.5 मनोवैज्ञानिक शोध

2.6 प्रयोगात्मक शोध

2.7 सारांश

2.8 शब्दावली

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

शोध का अर्थ, स्वरूप, परिभाषा एवं क्षेत्र के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेने के उपरान्त जिज्ञासु मन में शोध के विभिन्न प्रकारों के संदर्भ में प्रश्नों का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। शोध समस्याओं एवं परिकल्पनाओं के कई प्रकार एवं स्वरूप होने के कारण शोध विधियों भी तदनुरूप होती हैं। अतएव प्रस्तुत इकाई में अनुसंधान के प्रमुख प्रकारों पर प्रकाश डाला जा रहा है। अनुसंधान के प्रमुख प्रकारों में ऐतिहासिक शोध, दार्शनिक शोध, मनोवैज्ञानिक शोध एवं प्रयोगात्मक शोध प्रमुख हैं। योग विषय में उपरोक्त सभी प्रकार के अनुसंधानों की पूरी संभावना व्याप्त है। इस विषय के बहुत से ऐतिहासिक, दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक एवं प्रयोगात्मक पक्ष अभी अनछुये हैं। इन्हीं से संबंधित प्रश्नों के उत्तर विस्तार से आप इस इकाई में प्राप्त करेंगे।

2.2 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- शोध के विभिन्न प्रकारों के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता एवं विशेषता से परिचित हो सकेंगे।
- योग में दार्शनिक शोध के स्वरूप को समझ सकेंगे।
- मनोवैज्ञानिक शोध का दायरा कितना विस्तृत है एवं योग विषय में मनोवैज्ञानिक शोध किस प्रकार की जा सकती हैं? इसके प्रयोग एवं व्याख्या में सक्षम हो सकेंगे।
- योग में प्रयोग किस प्रकार संभव हैं एवं प्रायोगिक शोध की क्रियाविधि से परिचित हो सकेंगे।

2.3 ऐतिहासिक शोध

ऐतिहासिक शोध इतिहास से संबंधित है। इतिहास से तात्पर्य बीती घटनाओं, पुराने अनुभवों, विकास के बीत चुके सोपानों, के वर्णनात्मक एवं प्रामाणिक अभिलेखन से है।

जो सभ्यता एवं संस्कृति जितनी पुरानी होती है उसका इतिहास भी उतना ही पुराना होता है। समय बीतने के साथ साथ सभ्यता एवं संस्कृति में बदलाव स्वाभाविक रूप से आते रहते हैं। ये बदलाव कलाओं जैसे कि स्थापत्य कला, वास्तुकला, नृत्य कला, पाक कला आदि में आने के साथ साथ जीवन यापन के तरीकों आदि में भी आते रहते हैं। इन बदलाओं में कुछ छोटे होते हैं एवं कुछ इतने बड़े कि जिनसे आमूल–चूल परिवर्तन हो गया होता है। ये बदलाव ग्राम, नगर, राज्य एवं देश से संबंधित होते हैं। ग्राम, नगर, राज्य एवं देश की सीमायें समय के प्रवाह के साथ परिवर्तित हो जाती हैं सीमाओं के साथ–साथ उनके नामों में भी परिवर्तन हो जाते हैं, इनके सब के उदाहरणों से इतिहास भरा पड़ा है। पुराने रीति–रिवाज, परम्पराओं में से कुछ नये समय में अप्रासंगिक हो जाती हैं एवं कुछ अपनी उपयोगिता बनाये रखती हैं। नये सम्प्रदाय, नये धर्मों का उदय होता है। इन सभी परिवर्तनों का अभिलेखन इतिहास के रूप में कर लिया जाता है जिससे वर्तमान एवं भविष्य को संवारने हेतु नयी सीख मिल सके।

ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता

प्रत्येक वर्तमान का अपना एक इतिहास होता है जो कि अपने वर्तमान के कारण को अपने गर्भ गह्वर में छुपाये रखता है। उदाहरण के लिए भारत हमारे देश का नाम है परन्तु हमारे देश का नाम भारत क्यों पड़ा? भारत नाम रखने के पीछे क्या घटना घटी इसकी जानकारी हमारे अतीत के इतिहास से मिलती है कि दुष्यंत के पुत्र भरत के नाम पर हमारे देश का नाम भारत पड़ा। परन्तु उस काल के भारत से आज का भारत भिन्न है। उसकी भौगोलिक सीमायें बदल गयी हैं, उसका शासकीय ढांचा, एवं शासन व्यवस्था बदल गयी है, राज्यों का परिसीमन नये रूप में हो गया है। इसकी प्रामाणिक जानकारी वर्तमान को देने के लिए इतिहास की

आवश्यकता पड़ती है। ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता होती है। इस ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता के महत्वपूर्ण बिन्दु निम्न हैं–

(1) ऐतिहासिक शोध से वर्तमान के कारण का ज्ञान हो जाता है–
कारण को जान लेने से वर्तमान की विकासात्मक प्रक्रिया का ज्ञान हो जाता है। विकास के पीछे छिपे नियमों, उसकी आवश्यकता एवं महत्व का पता चल जाता है।

(2) **प्राचीन काल में घटी हर महत्वपूर्ण घटना का अभिलेखन उपलब्ध न होना।**
प्रामाणिक इतिहास लेखन आज की सभ्यता की देन है ईसा से कुछ सौ वर्ष पूर्व प्रामाणिक इतिहास लेखन की परम्परा नहीं थी, कथाओं, पुराणों, काव्य, गद्य आदि के रूप में ही इनका अभिलेखन किया जाता था जिसका उद्देश्य भी इतिहास लेखन न हो कर राजनैतिक, व्यक्तिगत अथवा शैक्षिक होता था। भारत का अधिकांश प्राचीन इतिहास पुराणों एवं महाकाव्यों आदि के रूप में मिलता है। महाकाव्यों में महाभारत, रामायण आदि प्रमुख हैं। राजनैतिक कारणों से लिखे गए इतिहास में प्रामाणिकता पर संदेह होने की वजह से ऐतिहासिक शोध की आवश्यकता पड़ती है।

(3) **घटनाओं का ठीक काल निर्धारण हेतु**
कभी–कभी महत्वपूर्ण घटनाओं के घटित होने के काल के संबंध में इतिहासकारों के मतों में भिन्नता होती है। जैसे रावण वध की घटना आज से कितने वर्ष पूर्व घटी थी, इस प्रश्न के संबंध में इतिहासकार कई मत व्यक्त करते हैं। सभ्यता एवं संस्कृति का प्रारंभिक काल क्या था? इस पर भी मत भिन्नता मिलती है। योग के प्रथम वक्ता कौन हैं? आदि प्रश्नों का उत्तर ऐतिहासिक शोध से ही प्राप्त हो सकते हैं।

(4) **एक ही घटना के संबंध में भिन्न भिन्न प्रकार की विषय वस्तु मिलना।**
उदाहरण के लिए रामायण को ही लें। इस धार्मिक आध्यात्मिक कथा का अभिलेखन कई रूपों में मिलता है। जैसे कि वाल्मीकि रामायण, तुलसीकृत रामचरितमानस, कम्ब रामायण, जैन रामायण आदि। इन सभी में रामायण की विषयवस्तु को लेकर थोड़ी–थोड़ी भिन्नता है। इस भिन्नता को दूर करने एवं सत्य को ज्ञात करने का उचित तरीका ऐतिहासिक शोध ही है।

ऐतिहासिक शोध के उद्देश्य
ऐतिहासिक शोध का उद्देश्य भूतकालिक घटनाओं का संकलन करना, उनके क्रमिक विकास का विश्लेषण करना तथा आलोचनात्मक मूल्यॉकन करना है। इसका उद्देश्य घटनाओं के स्रोतों की वैधता को निर्धारित करना है। इसी प्रकार इसका उद्देश्य अतीत की घटनाओं के प्रकाश में वर्तमान की समस्याओं का समाधान करना है। संक्षेप में इसके निम्नलिखित उद्देश्य हैं–
(1) अतीत की घटनाओं, सूचनाओं या तथ्यों का संकलन करना।

(2) घटनाओं, सूचनाओं या तथ्यों के स्रोतों की वैधता को निर्धारित करना।
(3) अतीत के क्रमिक विकासों का निश्चित करना।
(4) परिक्षित प्रमाणों की व्याख्या करना।
(5) अतीत की घटनाओं या तथ्यों के आधार पर वर्तमान की समस्याओं का समाधान करना।

ऐतिहासिक शोध के स्रोत

स्रोत का अर्थ वे साधन हैं, जिनके आधार पर अतीत की घटनाओं संबंधित सूचनायें अथवा प्रदत्त प्राप्त किये जाते हैं। ये स्रोत या संसाधन जिस सीमा तक वैध होते हैं, सूचनायें एवं प्रदत्त भी उसी सीमा तक वैध हो पाती हैं। इन स्रोतों के दो मुख्य प्रकार हैं।

(1) प्राथमिक स्रोत (primary source)– प्राथमिक स्रोत का अर्थ वह मूल साधन है, जिसके आधार पर अतीत की घटनाओं, तथ्यों या सूचनाओं को प्राप्त किया जाता है। इस प्रकार के स्रोतों या साधनों के अन्तर्गत मौलिक रेकार्ड, किसी घटना का ऑखों देखा विवरण, फोटोग्राफ, लोककथायें, दन्तकथायें, प्राचीन दस्तावेज, कलात्मक उपलब्धियॉ, अभिलेख, आदि की गणना की जाती है। करलिंगर ने प्राथमिक स्रोत की व्याख्या करते हुए कहा है कि 'प्राथमिक स्रोत का तात्पर्य ऐतिहासिक प्रदत्त तथा किसी महत्वपूर्ण अवसर से सम्बद्ध मौलिक अभिलेख, किसी घटना के ऑखों देखे विवरण, छाया–चित्र, संगठन बैठकों के विस्तृत विवरण, आदि एक मौलिक भण्डार से है।' (According to Kerlinger 'A primary source is the original repository of an historical datum, like an original record kept of an important occasion, an eye-witness description of an event, a photograph, minutes of organization meetings, and so on'.)।

(2) गौण स्रोत (Secondary source) –गौण स्रोत का व्यवहार भी प्राथमिक स्रोत के साथ–साथ ऐतिहासिक घटनाओं के संग्रह या संकलन हेतु किया जाता है। गौण स्रोत से तात्पर्य वे साधन हैं, जिनके आधार पर ऐसे प्रदत्त प्राप्त किये जाते हैं, जो मौलिक भण्डार से कुछ हटे हुए होते हैं। इसके अन्तर्गत संस्मरण, जीवनी, व्यकित्गत विवरण, पत्र पत्रिकाओं की सामग्री आदि की गणना की जाती है। करलिंगर के अनुसार 'गौण स्रोत किसी ऐतिहासिक घटना या स्थिति का वह अभिलेख या रेकार्ड है, जो मूल भण्डार से एक या अधिक चरण अलग होते हैं (A Secondary source is an account of record of an historical event or circumstance one or more steps removed from an original repository- Kerlinger)

ऐतिहासिक अनुसंधान के अन्तर्गत उपरोक्त दोनों ही प्रकार के स्रोतों का व्यवहार किया जाता है। लेकिन गौण स्रोत की तुलना में प्राथमिक स्रोत ही अधिक विश्वसनीय होता है। इसका कारण यह है कि प्राथमिक स्रोत ऐतिहासिक घटनाओं का मौलिक भण्डार होता है,

जबकि गौण स्रोत उन घटनाओं का विचलित भण्डार होता है। जैसे –किसी संस्थागत मीटिंग के विस्तृत विवरण को प्राथमिक स्रोत कहेंगे, जबकि उस मीटिंग से सम्बंधित समाचार पत्र में छपे विवरण को गौण स्रोत कहा जायेगा। इसी प्रकार किसी अनुसंधान का मूलप्रतिवेदन अभिलेख उसका प्राथमिक स्रोत है और उस अनुसंधान के सम्बंध में इसके द्वारा दिये गये विवरण को गौण स्रोत कहा जाता है। अतः यदि प्राथमिक स्रोत उपलब्ध हो तो गौण स्रोत का उपयोग नहीं करना चाहिए।

2.4 दार्शनिक शोध

दार्शनिक शोध दर्शन से संबंधित विषयों पर किया जाता है। दर्शन ज्ञान का अत्यंत ही पुराना आयाम है। दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा गया है – कि अस्तित्व आदि जीवन की जिज्ञासा को शान्त करने वाला ज्ञान ही दर्शन है। विश्व वसुधा के प्रत्येक क्षेत्र में जहॉ कहीं भी मानव जीवन पनपा, सभ्यता एवं संस्कृति का विकास हुआ वहॉ दर्शन का विकास हुआ है। सम्पूर्ण भारतीय ज्ञान व्यावहारिक तथा क्रियात्मक है। पाश्चात्य दर्शनों के समान यहॉ दर्शनों का उदय केवल उत्सुकता और आश्चर्य से नहीं हुआ है। हमारे सभी दर्शन जीवन से सम्बन्ध रखते हैं। दर्शन के अन्तर्गत जीवन के सब पहलुओं का अध्ययन आ जाता है। मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी दार्शनिक अध्ययन के अन्तर्गत ही चला आ रहा है। पाश्चात्य मनोविज्ञान भी बहुत दिनों तक दर्शन का ही एक अंग था। बहुत थोड़े दिनों से वह स्वतंत्र विज्ञान के रूप में विकसित हुआ है। मुख्य भारतीय दर्शन नौ माने गये हैं, जिनमें से न्याय, वैशेषिक, सांख्य, योग, मीमांसा और वेदान्त ये छः आस्तिक दर्शन कहे जाते हैं, तथा चार्वाक, जैन और बौद्ध ये तीन नास्तिक दर्शन हैं। इन आस्तिक और नास्तिक सभी दर्शनों का अपना–अपना मत एवं मनोविज्ञान है।

दर्शन मूलतः मनुष्य की जिज्ञासा के कारण अस्तित्व में आया। दर्शन विषय की अध्ययनवस्तु के अन्तर्गत जीव के उद्भव का कारण, उद्देश्य एवं विकास आते हैं। सृष्टि विज्ञान दर्शन का प्रमुख विषय है यहॉ पर सृष्टि विज्ञान से तात्पर्य सृष्टि की उत्पत्ति, उसके कारण, उद्देश्य एवं विकास की धारा के अध्ययन से है। ईश्वर, आत्मा एवं मन का अस्तित्व एवं अनस्तित्व विचार भी दर्शन का ही विषय है। मन के कार्य, मन के भेद, मन का परिष्कार आदि दर्शन के अन्तर्गत आने वाली विषयवस्तु है।

उपरोक्त विषय वस्तु पर किया गया शोध अनुसंधान दार्शनिक शोध कहलाता है।

योग में दार्शनिक शोध की आवश्यकता

योग अपने आप में एक स्वतन्त्र दर्शन है, जो सचमुच में देखा जाये तो एक उच्चस्तरीय मनोविज्ञान है। वह जीवन यापन का सच्चा पथ–प्रदर्शक विज्ञान है। योग दर्शन पर अनेक भाष्य हुए हैं। योग को अन्य अर्थ में जीवन जीने की कला कहा जा सकता है। अन्य दर्शनों जैसे कि न्याय, सांख्य, वैशेषिक आदि के समान ही योग में भी सृष्टि के सम्बंध में तात्विक विचार किया गया है। योग में व्यक्ति के व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों, विभिन्न स्तरों का समग्र विवेचन किया गया है। इसमें व्यक्तित्व की संरचना, उसकी गत्यात्मकता एवं उसके विकास की विभिन्न तकनीकों का तार्किक एवं प्रामाणिक वर्णन किया गया है। वस्तुतः देखा जाये तो प्रत्येक व्यक्ति के मन में उसके अस्तित्व, अस्तित्व के उद्देश्य, एवं विकास के

संबंध में जिज्ञासायें पनपती रहती हैं। दर्शन इन्हीं जिज्ञासाओं को शान्त करने हेतु ऋषियों, मनीषियों द्वारा प्राप्त किया गया अनुभवजन्य ज्ञान है। दर्शन की इन्हीं विशेषताओं को दृष्टिगत रखने पर इसमें अनुसंधान का महत्व बढ़ जाता है। दर्शन में दार्शनिक शोध की आवश्यकता को निम्न बिन्दुओं में व्यक्त किया गया है।–

(1) वेद, उपनिषद्, पुराण, मीमांसा, ब्राह्मण एवं आरणक्यों में दर्शन के अनगिनत आयामों का उल्लेख मिलता है। यह उल्लेख अत्यंत ही गूढ़ एवं गंभीर भाषा में है। इस गंभीर दर्शन को व्यावहारिक रूप से समझाने एवं वैज्ञानिक समुदाय के समक्ष उसकी भाषा में प्रस्तुत किये जाने की जरूरत है। यह कार्य दार्शनिक शोध के माध्यम से ही संभव है।

(2) विभिन्न धार्मिक ग्रंथों जैसे कि गीता, रामायण, दुर्गासप्तशती, बाइबिल, कुरान, गुरूवाणी आदि में भी दर्शन के विभिन्न आयामों का विस्तृत वर्णन है। जिसे जीवन दर्शन कहा जाता है। यह जीवन को समझने एवं उसे जीने का वैचारिक दृष्टिकोण से उचित तरीका बतलाता है। इन सभी ग्रंथों में उल्लिखित विचार, सूक्तों, सूत्रों, श्लोकों एवं मंत्रों के रूप में वर्णित हैं। जो कि आधुनिक समय के मानव को सहज ही समझ में आने वाली स्थिति नहीं है। इसे बोधगम्य स्वरूप में पुनः प्रस्तुत करने हेतु दार्शनिक शोध किये जाने की अत्यंत आवश्यकता है।

(3) महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में जीवन का उद्देश्य एक प्रकार से कैवल्य के रूप में स्पष्ट किया गया है। इस उद्देश्य को प्राप्त करने हेतु संस्कारों के उन्मूलन एवं संस्कारों के बीजों को निर्मूल करने की तकनीकों का वर्णन किया गया है जिनमें, अष्टांग योग, क्रिया योग, अभ्यास वैराग्य एवं पर वैराग्य प्रमुख हैं। इन तकनीकों को व्यवहार में किस प्रकार उतारा जाये इस हेतु दार्शनिक शोध किये जाने की अत्यंत आवश्यकता है।

(4) महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में चित्त, चित्त की वृत्तियों, पंचक्लेश, ईश्वर, ईश्वर की विशेषतायें, पुरूष एवं प्रकृति का गंभीर वर्णन सूत्र रूप में व्यक्त है। इनके अध्ययन से मानव मन के विज्ञान को भली भॉति समझा जा सकता है जो ि कइस विषय पर दार्शनिक शोध किये जाने की आवश्यकता को पुष्ट करता है।

2.5 मनोवैज्ञानिक शोध

मनोविज्ञान विषय पर किया जाने वाला अनुसंधान मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि मनोविज्ञान विषय की अध्ययन वस्तु क्या है जिसमें कि शोध किया जा सकता है। मनोविज्ञान की अध्ययन विषयवस्तु अपने आप में बहुत ही विस्तृत एवं व्यापक है। पाश्चात्य जगत में मनोविज्ञान अपने उद्भव के समय से पूर्व दर्शन का विषय था, मनोविज्ञान के पिता कहे जाने वाले विलियम वुण्ट एवं एवं उनके शिष्य ई. बी. टिकनर इसे विज्ञान के दायरे में लेकर आये। उन्होंने ने ही मनोविज्ञान विषय पर प्रायोगिक अध्ययन हेतु प्रयोगशाला की स्थापना की एवं शोध संचालित किये। मनोविज्ञान की अध्ययन विषयवस्तु प्रारंभ से ही कभी भी एक निश्चित दायरे में नहीं रही। मनोविज्ञान के विभिन्न स्कूलों एवं सम्प्रदायों के उद्भव एवं विकास के साथ ही इसकी अध्ययन विषयवस्तु का दायरा भी फैलता एवं सिकुड़ता रहा एवं विषयवस्तु का स्वरूप भी कमोबेश बदलता रहा है। विलियम वुण्ट, टिचनर एवं विलियम जेम्स ने जहॉ चेतनात्मक अनुभवों को मनोविज्ञान के

अध्ययन की विषयवस्तु माना वहीं व्यवहारवादियों ने इसमें केवल व्यवहार एवं संज्ञानात्मक विचारधारा के पक्षधर विद्वानों ने केवल विचार को ही अध्ययन की विषयवस्तु बनाया।

वर्तमान में इसीलिए मनोविज्ञान को विज्ञान की वह शाखा कहा जाता है जिसमें मानव व्यवहार एवं मानसिक प्रक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र

मनोवैज्ञानिक शोध के अन्तर्गत, व्यवहारपरक शोध, सामाजिक शोध, शैक्षणिक शोध आदि की गणना की जाती है। जहॉ तक मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र का प्रश्न है, इसका क्षेत्र भौतिक विज्ञान के क्षेत्र की तुलना में अधिक व्यापक तथा विस्तृत है। सुविधा के लिए मनोवैज्ञानिक शोध या मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के क्षेत्र को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है–

(1) मनोविज्ञान के विभिन्न सम्प्रदाय – मन क्या है? मन के स्तर कौन से हैं? व्यक्ति को होने वाले आन्तरिक अनुभूतियों का स्रोत क्या है? व्यवहार क्या है एवं व्यवहार के निर्धारक कौन से हैं? आदि प्रश्नों के उत्तर खोजने की प्रक्रिया में मनोवैज्ञानिकों ने विभिन्न स्कूलों एवं सम्प्रदायों की स्थापना कर डाली। इन सम्प्रदायों की पूर्वकल्पनाओं, एवं अवधारणाओं पर सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक अनुसंधान दशकों से होते आ रहे हैं एवं किये जाने की आवश्यकता है।

(2) मानसिक प्रक्रियाएॅ – मानव मन में बहुत प्रकार की मानसिक प्रक्रियायें घटित होती हैं जैसे, संवेदन, प्रत्यक्षण, आदि। यह संवेदन एवं प्रत्यक्षण कई प्रकार का एवं कई स्तरों पर होता है। मनोवैज्ञानिक जितना ही इसकी परतों को खोलने का प्रयास करते हैं उतना ही उन्हें विस्मयकारी परिणाम प्राप्त होते जाते हैं। वर्तमान में अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण पर वैज्ञानिकों का ध्यान केंद्रित है। इस पर निरन्तर शोध की आवश्यकता है।

(3) संज्ञानात्मक प्रक्रियाएॅ – मानव मन में कई संज्ञानात्मक प्रक्रियायें सक्रिय हैं जैसे कि धारणायें, चिंतन, समस्या–समाधान, निर्णय करना, विचार करना, अधिगम, आदि। मनोवैज्ञानिकों ने यूॅ तो चिंतन के विभिन्न प्रकारों, आयामों के साथ समस्या–समाधान के तरीकों, सीखने, याद करने एवं भूलने के तरीकों पर बहुत अनुसंधान किये हैं। फिर भी इसका क्षेत्र अत्यंत ही व्यापक है।

(4) भाव, संवेग, आदि भावात्मक प्रक्रियाओं से संबंधित क्षेत्रों में भी मनोवैज्ञानिक अनुसंधान होते रहे हैं और आज भी यह सिलसिला जारी है।

(5) प्रेरणा के क्षेत्र में भी मनोवैज्ञानिक अनुसंधान होते रहे हैं। व्यक्ति के व्यवहार पर प्रेरणा का प्रभाव किस रूप में पड़ता है, इससे संबंधित अनेक शोध पहले भी हो चुके हैं। पुरस्कार, दण्ड, चिंता, तनाव आदि प्रेरणा तथा प्रोत्साहन के विभिन्न रूप हैं, जिनसे संबंधित अनेक अनुसंधान किये जा चुके हैं और वर्तमान समय में भी हो रहे हैं।

(6) व्यक्तित्व से संबंधित समस्याओं के संबंध में भी मनोवैज्ञानिक शोध किये गये हैं। शोध का यह महत्वपूर्ण क्षेत्र है। इस क्षेत्र में किये गये शोधों के आधार पर अनेक सिद्धान्त विकसित हुए हैं और व्यक्तित्व को मापने के अनेक परीक्षणों का निर्माण किया गया है।

व्यक्तित्व–समायोजन से संबंधित अनुसंधान आज भी जारी है। इसी प्रकार असंगठित व्यक्तित्व भी मनोवैज्ञानिक अनुसंधान के लिए एक महत्वपूर्ण क्षेत्र है।

(7) आज के समय में बहुत प्रकार की संस्कृतियों के परस्पर प्रभावों को निर्धारित करने के लिए मनोवैज्ञानिक अनुसंधान व्यापक रूप में होने लगे हैं। व्यक्तित्व–शीलगुणों, संज्ञानात्मक प्रतिरूप (Cognitive pattern) , समायोजन प्रतिरूप (adjustment pattern), आदि पर सांस्कृतिक विविधिता के प्रभाव को निर्धारित करने हेतु अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। भारत में उड़ीसा, सिक्किम, मेघालय एवं अण्डमान निकोबार में आदिवासी संस्कृति तथा गैर–आदिवासी संस्कृति से संबंधित अनुसंधान कार्य किये जा रहे हैं। इस क्षेत्र में क्रास सेक्शनल रिसर्च का प्रचलन है।

(8) सामाजिक आर्थिक वंचन से संबंधित क्षेत्रों में भी मनोवैज्ञानिक अनुसंधान बड़े स्तर पर यूजीसी, एवं अन्य सरकारी, अर्धसरकारी एवं गैर–सरकारी संस्थाओं द्वारा संचालित किये जा रहे हैं। भारत में सम्पन्न बच्चों एवं गरीब बच्चों के व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों के संबंध में तुलनात्मक अध्ययन किये जाते हैं।

(9) बच्चे अपनी शिक्षा में क्यों पिछड़ जाते हैं, क्यों असफल हो जाते हैं, शैक्षिक उपलब्धि पर किन–किन कारकों का प्रभाव पड़ता है, बच्चे पढ़ाई क्यों छोड़ देते हैं, शिक्षा में बच्चों की रूचि को कैसे बढ़ाया जा सकता है, जैसे शिक्षा से संबंधित क्षेत्र में शिक्षा को सफल बनाने के उद्देश्य से संबंधित समस्याओं पर अनुसंधान का सिलसिला निरन्तर जारी है।

(10) औद्योगिक क्षेत्र में उद्योगों के लक्ष्यों को प्राप्त करने में मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों के परिणामों ने समयानुकूल एवं आवश्यकतानुरूप नीतियाँ निर्धारित करने में योजनायें बनाने में काफी लाभ पहुँचाया है। कर्मचारी चयन, कार्य संतुष्टि, मनोबल, विज्ञापन, प्रबंधन आदि क्षेत्रों में अनेक अनुसंधान किये जा रहे हैं।

(11) नैदानिक मनोविज्ञान का क्षेत्र भी अनुसंधान के लिए अत्यंत ही उपयुक्त है क्योंकि इसका उद्देश्य ही व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक समस्याओं को भली प्रकार समझना, मनोविकारों का वर्गीकरण करना एवं तदन्तर निदान के उपरान्त उपयुक्त उपचार विधि का चयन एवं उपयोग करना है। इसके अन्तर्गत मनोरोगों को प्रकारों एवं निदान की तकनीकों पर अनुसंधान किये जा सकते हैं। मनोचिकित्सा की तकनीकों एवं प्रविधियों की खोज एवं प्रतिरूप निर्माण किया जा सकता है। इस क्षेत्र में अन्तर्वैषयिक शोध भी किये जा रहे हैं एवं किये जा सकते हैं।

इसी प्रकार बाल–मनोविज्ञान, अपराध–विज्ञान, आयुर्वेदिक मनोविज्ञान, भारतीय मनोविज्ञान, आदि के क्षेत्रों में शोध कार्य व्यापक रूप से जारी हैं। इससे स्पष्ट है कि मनोवैज्ञानिक शोध का क्षेत्र सचमुच में काफी व्यापक है।

2.6 प्रयोगात्मक शोध

मनोविज्ञान तथा शैक्षिक शोधों में प्रयोगात्मक शोध का महत्व सर्वाधिक है। सत्य तो यह है कि सभी विज्ञानों का आदर्श प्रयोगात्मक अनुसंधान ही है। इसीलिए प्रयोगात्मक शोध को सर्वोच्च वैज्ञानिक शोध पद्धति माना गया है। प्रयोगात्मक शोध वह होता है जिसमें शोधकर्ता

अपनी इच्छानुसार किसी स्वतंत्र चर को परिचालित करता है और फिर उसके प्रभाव अर्थात् आश्रित चर का विधिवत अध्ययन करता है। इस प्रकार के अनुसंधान में प्रयोगकर्ता का अध्ययन–परिस्थिति पर नियंत्रण प्राप्त होता है।

करलिंगर (1986) ने प्रयोगात्मक शोध के संदर्भ में प्रयोगात्मक अभिकल्प को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'प्रयोगात्मक अभिकल्प अथवा शोध वह है जिसमें अनुसंधानकर्ता कम से कम एक स्वतंत्र चर पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखता है तथा कम से कम एक स्वतंत्र चर को परिचालित करता है ('According to Kerlinger - An experimental design or research is one in which the investigator has a direct control over at least one independent variabale and manipulates at least one independent variable')।

प्रयोगात्मक शोध की विशेषताएॅ

उपरोक्त परिभाषा के प्रकाश में प्रयोगात्मक शोध का स्वरूप एवं उसकी विशेषताएॅ निम्न प्रकार से स्पष्ट होती हैं।

(1) नियंत्रण – प्रयोगात्मक शोध में प्रयुक्त चरों पर प्रयोगकर्ता का नियंत्रण पाया जाता है। यह नियंत्रण अध्ययन परिस्थिति पर नियंत्रण के अनुसार कभी तो पूर्ण होता है और कभी आंशिक होता है। शोधकर्ता स्वतंत्र चरों पर पर्याप्त नियंत्रण रखता है। इसी नियंत्रण के कारण वह किसी स्वतंत्र चर या चरों का परिचालन कर पाता है तथा असम्बद्ध चरों के प्रभावों को रोक पाता है। अपने इस मौलिक गुण के कारण यह शोध अप्रयोगात्मक शोधों से श्रेष्ठकर तथा अधिक वैज्ञानिक हो पाता है।

(2) चरों का परिचालन – प्रयोगात्मक शोध में एक या एक से अधिक स्वतंत्र चरों को परिचालित किया जाता है। जब स्वतंत्र चर में सक्रिय चर की विशेषता होती है तो उसके दो या अधिक स्तरों को परिचालित किया जाता है। उदाहरण के लिए चिंता, एवं अभिप्रेरणा आदि सक्रिय चर हैं जिनका परिचालन निम्न स्तर तथा उच्च स्तर के रूप में किया जा सकता है। गुण चर होने पर इसके दो या दो से अधिक परिमापित मूल्यों का चयन किया जाता है। बुद्धि, उपलब्धि आदि गुण चर के प्रकार हैं, जिनके दो या दो से अधिक परिमापित मूल्यों का चयन किया जा सकता है।

(3) कार्य–कारण संबंध– प्रयोगात्मक शोध का स्वरूप इस प्रकार का होता है कि इसमें कार्य एवं उसके कारण के बीच एक निश्चित संबंध निर्धारित करना संभव होता है। इस प्रकार के शोध में दो प्रकार के चर प्रमुख रूप से सम्मिलित होते हैं। स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर। स्वतंत्र चर वह होता है जिस का परिचालन शोधकर्ता के बस में होता है वह इस चर में जोड़ तोड़ कर इसमें मात्रात्मक एवं गुणात्मक परिवर्तन कर सकता है। आश्रित चर वह होता है जिसमें होने वाले परिवर्तन स्वतंत्र चर के परिचालन का परिणाम होते हैं। प्रयोगात्मक शोध में इन्हीं स्वतंत्र एवं आश्रित चरों के बीच कार्य–कारण संबंध निर्धारित किया जाता है। उदाहरण के लिए प्रयोग के आधार पर यह प्रमाणित किया जा सकता है

कि पढ़ाई के समय एवं उपलब्धि प्राप्तांकों के बीच कैसा संबंध है। अथवा बुद्धि तथा उपलब्धि प्राप्तांकों के बीच कैसा संबंध है। यह संबंध धनात्मक, नकारात्मक अथवा शून्य हो सकता है। इसी प्रकार अनुसंधानकर्ता अपने प्रयोग के आधार पर भिन्न–भिन्न स्वतंत्र चरों तथा आश्रित चरों के बीच एक निश्चित कार्यात्मक संबंध को निर्धारित कर सकता है।

(4) पुनरावृत्ति – प्रयोगात्मक शोध में पुनरावृत्ति का गुण पाया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि प्रयोगकर्ता अपने अध्ययन को बार बार दुहराकर प्राप्त परिणाम की विश्वसनीयता की जॉच कर आसानी से कर सकता है। अध्ययन–परिस्थिति पर नियंत्रण प्राप्त होने की वजह से पुनरावृत्ति समुचित रूप से संभव होती है।

(5) पृथक्कीकरण– प्रयोगात्मक शोध में पृथक्कीकरण का गुण पाया जाता है। इसका तात्पर्य यह है कि अनुसंधानकर्ता अपनी जरूरत के अनुसार एक या अधिक चरों को अलग करके उसके अथवा उनके प्रभाव आश्रित चरों पर निर्धारित करने में सफल होता है। अध्ययन–परिस्थिति पर नियंत्रण होने के कारण यह सहज ही संभव होता है।

प्रयोगात्मक शोध के प्रकार

प्रयोगात्मक शोध के सामान्य रूप से दो प्रकार प्रचलित हैं।

(1) प्रयोगशाला प्रयोगात्मक शोध (Laboratory experimental research)

(2) क्षेत्र प्रयोगात्मक शोध (Field experiment research)

इनका वर्णन निम्नलिखित है–

(1) प्रयोगशाला प्रयोगात्मक शोध (Laboratory experimental research)

प्रयोगशाला प्रयोगात्मक शोध से तात्पर्य वैसे प्रयोगात्मक शोध से होता है जो एक प्रयोगशाला में प्रायः यादृच्छिक रूप से चुने गये व्यक्तियों पर अथवा पशुओं पर किया जाता है। फेस्टिंगर एवं काज ने प्रयोगशाला प्रयोग को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'वह अनुसंधान जिसमें शोधकर्ता वैसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें वह अध्ययन करता चाहता है एवं जिसमें वह कुछ चरों को नियंत्रित करता है, तथा कुछ अन्य चरों में परिचालन करता है, प्रयोगशाला प्रयोग शोध कहलाता है' (1) प्रयोगशाला प्रयोगात्मक शोध (According to Festinger and Katz, 1953, Laboratory experimental research is, 'one in which the investigator creates a situation with the exact conditions he wants to have and in which he controls some, and manipulate other variables)।

(2) क्षेत्र प्रयोगात्मक शोध (Field experiment research)

शिक्षा, समाज एवं मनोविज्ञान विषयों के क्षेत्र में क्षेत्र प्रयोगात्मक शोध का व्यवहार प्रमुखता से किया जाता है। यह एक ऐसा शोध है जिसमें प्रयोगकर्ता एक या एक से अधिक स्वतंत्र चरों में जोड़–तोड़ एक ऐसी क्षेत्र परिस्थिति या वास्तविक परिस्थिति में करता है जिसमें

बहिरंग चरों का अधिकतम नियंत्रण होता है। उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता यह अध्ययन करना चाहता है कि कक्षा में विद्यार्थी एक दूसरे के प्रति किस तरह से आक्रामक व्यवहार दिखलाते हैं और ऐसे व्यवहार की बारंबारता किस तरह के बच्चों के प्रति अधिक होती है, तो यह एक क्षेत्र प्रयोग शोध का उदाहरण होगा।

प्रयोगात्मक शोध के गुण या लाभ

प्रयोगात्मक शोध अन्य अनुसंधानों के तुलना में कुछ विशेषताओं के कारण अधिक वैज्ञानिक है। इसमें वैज्ञानिक अनुसंधान की सभी विशेषताएँ पायी जाती हैं जो कि निम्न हैं–

(1) प्रयोगात्मक शोध का मौलिक गुण नियंत्रण होता है। इसी नियंत्रण के कारण शोधकर्ता नियंत्रित रूप से स्वतंत्र चरों का परिचालन कर पाता है एवं असंबद्ध चरों के प्रभावों को अध्ययन परिस्थिति एवं आश्रित चर पर पड़ने से रोक पाता है।

(2) प्रयोगात्मक शोध में वस्तुनिष्ठता की विशेषता पायी जाती है। रेबर के अनुसार वस्तुनिष्ठ अनुसंधान उस प्रकार के अध्ययन को कहा जाता है जिसमें पक्षपात अथवा पूर्वाग्रह अथवा पूर्वधारणा के प्रभावी होने की कोई संभावना नहीं होती है। एक प्रकार से यह अध्ययन पक्षपात एवं पूर्वधारणा से मुक्त होकर किया जाता है।

(3) प्रयोगात्मक शोध में परिशुद्धता का गुण पाया जाता है करलिंगर के अनुसार नियंत्रण अधिक होने के कारण परिशुद्धता स्वतः ही बढ़ जाती है। इसका कारण यह है कि पर्याप्त नियंत्रण होने पर शोध में अशुद्धि विचलन कम हो जाता है।

(4) प्रयोगात्मक शोध में उच्च विश्वसनीयता पायी जाती है। उच्च विश्वसनीयता से तात्पर्य भिन्न–भिन्न समयों में प्रयोगात्मक शोध के आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं उनमें अत्यधिक स्थिरता तथा संगति का पाया जाना है। अप्रयोगात्मक शोधों में यह विशेषता अपेक्षाकृत कम मात्रा में पायी जाता है।

(5) उच्च भविष्यवाची वैधता– प्रयोगात्मक शोध में उच्च भविष्यवाची वैधता पायी जाती है। ऐसे अनुसंधानों के आधार पर प्राप्त परिणामों के आलोक में पूर्वकथन करना संभव होता है।

वहीं अप्रयोगात्मक अनुसंधानों में दशाओं पर नियंत्रण नहीं होने के कारण भविष्यवाची वैधता न्यून हो जाती है।

प्रयोगात्मक शोध की कमियाँ

प्रयोगात्मक शोध में पर्याप्त वैज्ञानिकता के पाये जाने पर भी इसमें कुछ आभासी एवं व्यावहारिक कमियाँ होती हैं जो कि निम्न हैं।

(1) कृत्रिमता– प्रयोगात्मक शोध में चूँकि प्रयोगकर्ता का अध्ययन–परिस्थिति पर काफी नियंत्रण रहता है तथा वह चरों का परिचालन भी अपने हिसाब से जोड़–तोड़कर करता है। ऐसी स्थिति में प्रायः अध्ययन–परिस्थिति में सामान्य रूप में होने वाली स्वाभाविकता कम हो जाती है एवं कृत्रिमता बढ़ जाती है।

(2) सामान्यीकरण का क्षेत्र का सिकुड़ना – सामान्यीकरण से तात्पर्य अध्ययन द्वारा प्राप्त परिणामों के लागू होने वाले क्षेत्र के दायरे से है। अनुसंधान परिस्थिति एवं चरों पर नियंत्रण

अत्यधिक बढ़ जाने से प्राप्त परिणाम भी उस असाधारण रूप से नियंत्रित परिस्थिति पर ही लागू हो पाते हैं फलतः सामान्यीकरण का क्षेत्र सिकुड़ जाता है।

(3) लचीलेपन का अभाव – करलिंगर के अनुसार प्रयोगात्मक अनुसंधान में लचीलापन का अभाव रहता है। यहॉ परिशुद्धता के अधिक होने के कारण लचीलापन स्वतः ही न्यून हो जाता है। शोधकर्ता के लिए कार्य के बीच में यह संभव नहीं होता कि वह अध्ययन विधि में कोई अन्य परिवर्तन कर सके।

(4) प्रयोगकर्ता का पक्षपात– असम्बद्ध चरों को नियंत्रित करने के असंख्य प्रयास करने के बावजूद भी शोध–परिणाम पर प्रयोगकर्ता या अनुसंधानकर्ता के पक्षपातों, पूर्वधारणाओं, पूर्वाग्रहों के प्रभावों के पड़ने की संभावना बनी रहती है।

(5) जटिल एवं व्यावहारिक सामाजिक समस्याओं के लिए अनुपयुक्त– सामाजिक समस्यायें जब जटिल होती हैं तो उनका अध्ययन नियंत्रित वातावरण में करना संभव नहीं होता है। नियंत्रण के अभाव में प्रयोग विधि का व्यवहार संभव नहीं हो पाता है। प्रयोगात्मक शोध की एक कमी यह भी है कि यह व्यावहारिक सामाजिक समस्याओं के समाधान में सहायक नहीं हो पाता है। साम्प्रदायिक दंगे, वर्गसंघर्ष, वेश्यावृत्ति आदि अनेक समस्याओं का समाधान नियंत्रित परिस्थिति में संभव नहीं है।

2.7 सारांश

शोध के कई प्रकार है जैसे ऐतिहासिक शोध, दार्शनिक शोध, मनोवैज्ञानिक शोध, प्रयोगात्मक शोध इत्यादि। ऐतिहासिक शोध इतिहास से संबंधित है। इतिहास से तात्पर्य बीती घटनाओं, पुराने अनुभवों, विकास के बीत चुके सोपानों, के वर्णनात्मक एवं प्रामाणिक अभिलेखन से है। दार्शनिक शोध दर्शन से संबंधित विषयों पर किया जाता है। दर्शन ज्ञान का अत्यंत ही पुराना आयाम है। दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा गया है – कि अस्तित्व आदि जीवन की जिज्ञासा को शान्त करने वाला ज्ञान ही दर्शन है। मनोविज्ञान विषय पर किया जाने वाला अनुसंधान मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कहा जाता है। अब प्रश्न उठता है कि मनोविज्ञान विषय की अध्ययन वस्तु क्या है जिसमें कि शोध किया जा सकता है। मनोविज्ञान की अध्ययन विषयवस्तु अपने आप में बहुत ही विस्तृत एवं व्यापक है। पाश्चात्य जगत में मनोविज्ञान अपने उद्‌भव के समय से पूर्व दर्शन का विषय था, मनोविज्ञान के पिता कहे जाने वाले विलियम वुण्ट एवं एवं उनके शिष्य ई. बी. टिकनर इसे विज्ञान के दायरे में लेकर आये। उन्होंने ने ही मनोविज्ञान विषय पर प्रायोगिक अध्ययन हेतु प्रयोगशाला की स्थापना की एवं शोध संचालित किये। मनोविज्ञान तथा शैक्षिक शोधों में प्रयोगात्मक शोध का महत्व सर्वाधिक है। सत्य तो यह है कि सभी विज्ञानों का आदर्श प्रयोगात्मक अनुसंधान ही है। इसीलिए प्रयोगात्मक शोध को सर्वोच्च वैज्ञानिक शोध पद्धति माना गया है। प्रयोगात्मक शोध वह होता है जिसमें शोधकर्ता अपनी इच्छानुसार किसी स्वतंत्र चर को परिचालित करता है और फिर उसके प्रभाव अर्थात् आश्रित चर का विधिवत अध्ययन करता है। इस प्रकार के अनुसंधान में प्रयोगकर्ता का अध्ययन–परिस्थिति पर नियंत्रण प्राप्त होता है।

2.8 शब्दावली

ऐतिहासिक शोध –ऐतिहासिक शोध इतिहास से संबंधित है। इतिहास से तात्पर्य बीती घटनाओं, पुराने अनुभवों, विकास के बीत चुके सोपानों, के वर्णनात्मक एवं प्रामाणिक अभिलेखन से है।

दार्शनिक शोध –दार्शनिक शोध दर्शन से संबंधित विषयों पर किया जाता है। दर्शन ज्ञान का अत्यंत ही पुराना आयाम है। दर्शन को परिभाषित करते हुए कहा गया है – कि अस्तित्व आदि जीवन की जिज्ञासा को शान्त करने वाला ज्ञान ही दर्शन है।

मनोवैज्ञानिक शोध– मनोविज्ञान विषय पर किया जाने वाला अनुसंधान मनोवैज्ञानिक अनुसंधान कहा जाता है।

प्रायोगिक शोध– कि 'प्रयोगात्मक अभिकल्प अथवा शोध वह है जिसमें अनुसंधानकर्ता कम से कम एक स्वतंत्र चर पर प्रत्यक्ष नियंत्रण रखता है तथा कम से कम एक स्वतंत्र चर को परिचालित करता है

2.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

2.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– शोध से आप क्या समझते हैं? शोध के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 2– दार्शनिक शोध किसे कहते हैं? योग में दार्शनिक शोध की आवश्यकता स्पष्ट करें।

प्रश्न 3– मनोवैज्ञानिक शोध को परिभाषित करते हुए इसकी आवश्सकता एवं क्षेत्र पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 4– प्रयोगात्मक शोध को समझाते हुए इसकी गुण एवं दोषों को वर्णन करें।

प्रश्न 5– योग विषय में शोध की आवश्यकता को स्पष्ट करते हुए उपयुक्त उदाहरणों द्वारा प्रयोगात्मक शोध को स्पष्ट करें।

इकाई–3 समस्या का चयन एवं परिकल्पना

इकाई की संरचना

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्‌देश्य

3.3 समस्या का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

3.4 समस्या चयन के स्रोत

3.5 समस्या के प्रकार

3.6 परिकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ

3.7 परिकल्पना के प्रकार

3.8 परिकल्पना के कार्य

3.9 सार–संक्षेप

3.10 शब्दावली

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

सत्रहवीं शताब्दी के प्रसिद्ध पश्चिमी विद्वान देकार्ते का मनुष्य के अस्तित्व की प्रामाणिकता के संदर्भ में एक कथन है – 'क्योंकि मैं सोचता हूँ इसलिए मैं हूँ।' इस सोचने का संबंध मानव मन में आने वाले विचारों एवं उत्पन्न होने वाली जिज्ञासाओं से है। इसके विचारशील मन के अलावा मानव के भीतर एक हृदय भी है जो कि अनुभवों के संसार को अपने अन्दर समेटे हुए है समस्त प्रकार के सुख, दुख, हर्ष एवं आनन्द इसी हृदय द्वारा वह अनुभव करता है। इसके अलावा यह मानव मन एवं हृदय मानव शरीर में निवास करता है जो कि अपने अनुभवों एवं विचारों के प्रभाव में व्यवहार करता है। मानव मन से संबंधित अनुभवों एवं विचारों का अध्ययन अपने आप में एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है, कयोंकि ये विचार एवं अनुभव सदा एक से नहीं रहते इनमें स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता रहता है। मानव मन के इन अनुभवों के विभिन्न प्रकार से अध्ययन करने के लिए विशेष कार्य योजना बनानी पड़ती है, क्योंकि ज्ञान की जिज्ञासा एवं शारीरिक, परस्थिति संबधी समस्यायें इन्हीं से जुड़ी हुई हैं। ये समस्यायें किस प्रकार स्पष्ट हो सकती हैं? इन्हें किस प्रकार एक वैज्ञानिक समस्या का स्वरूप प्रदान किया जा सकता है? इनके कल्पनात्मक समाधान किस प्रकार

परिकल्नाओं का स्वरूप धारण कर सकते हैं परिकल्पनाओं कैसे विनिर्मित की जाती हैं? आदि प्रश्नों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

3.2 उद्देश्य

- इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–
- समस्या के अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- समस्या के प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।
- परिकल्पना की परिभाषाओं एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- परिकल्पना के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- परिकल्पना के निर्माण की विधि का प्रयोग करना सीख सकेंगे।

3.3 शोध समस्या का अर्थ, परिभाषा एवं स्वरूप

शोध समस्या का अर्थ वह प्रश्न है, जिसका कोई तात्कालिक उत्तर उपलब्ध न हो। उदाहरण के लिए यदि कॉरपोरेट सेक्टर में कार्य करने वाले कर्मचारी अच्छी सैलरी एवं सुविधा मिलने के बावजूद जॉब असंतुष्टि की समस्या से ग्रस्त हैं एवं उनकी उत्पादन क्षमता गिरती जा रही है तथा वहॉ के अधिकारियों को सीधे–सीधे इसका कोई कारण अथवा उपाय समझ में नहीं आ रहा है तथा यही समस्या अन्य सभी कॉरपोरेट सेक्टर में कार्य करने वाले कर्मचारियों की भी है। तो ऐसी परिस्थिति में यहॉ पर एक तात्कालिक समस्या उपस्थित हो चुकी है जिसके समाधान के लिए अनुसंधान किये जाने की आवश्यकता है। टाउन्सेण्ड ने इसी अर्थ में समस्या की परिभाषा दी है। उनके अनुसार 'सामान्यतः समस्या वह प्रश्न है, जिसका कोई उपलब्ध उत्तर नहीं होता है।

समस्या की परिभाषाऍ

मैक्ग्यूगन (1998) के अनुसार 'समस्या का तात्पर्य हमारे ज्ञान की रिक्ति से है ('Problem refers to a gap in our knowledge' - Mc Guigan, 1998)।'

रेबर और रेबर (2001) ने समस्या की परिभाषा देते हुए कहा है कि 'समस्या मूलतः वह परिस्थिति है, जिसमें कुछ घटक ज्ञात होते हैं और अतिरिक्त घटकों का निर्धारण आवश्यक होता है' ('Problem is basically a situation in which some of the attendant components are known and additional components must be ascertained or determined.'- Reber & Reber, 2001)।

टाउन्सेण्ड (1953) के अनुसार 'सामान्यतः समस्या वह प्रश्न है जिसका कोई उपलब्ध उत्तर नहीं होता है' ('Generally speaking a problem exists when there is no available answer to some questions.'-Townsend. 1953)।

करलिंगर (1986) के अनुसार 'समस्या एक ऐसा प्रश्नात्मक वाक्य या कथन होता है जो प्रश्न करता है कि दो या दो से अधिक चरों के बीच कैसा सम्बन्ध है?

समस्या का स्वरूप

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से यह ज्ञात होता है कि इन परिभाषाओं में समस्या के स्वरूप को लेकर कोई मौलिक अन्तर नहीं है। इन सभी समस्याओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि समस्या एक ऐसा प्रश्न है, जिसका कोई तात्कालिक उत्तर उपलब्ध नहीं होता है। कैंसर क्यों होता है? एड्स क्यों होता है? ये ऐसे प्रश्न हैं, जिनका कोई तात्कालिक एवं तार्किक उत्तर नहीं उपलब्ध नहीं है। इन रोगों के सम्बन्ध में आधुनिक वैज्ञानिक समुदाय को संतोषजनक जानकारी नहीं है। ना तो उन्हें इसके वास्तविक कारणों के बारे में ही पता है और न ही संतोषजनक उपचार विधि ही खोजी जा सकी है। सही डायग्नोसिस (निदान) होने पर ही सही उपचार विधि खोजी जा सकती है। अतएव आधुनिक शोधकर्ताओं के सम्मुख यह एक बड़ी ही गम्भीर समस्या है।

इसी प्रकार मनोविज्ञान के क्षेत्र में कई ऐसे छुए अनछुए आयाम हैं जहॉ पर शोध समस्याओं की भरमार है इसका कारण मनोविज्ञान के दो मुख्य पहलू हैं, दृश्य आयाम एवं अदृश्य आयाम। दृश्य आयाम से तात्पर्य मनोविज्ञान के दायरे में आने वाले व्यवहार एवं व्यक्ति की भाव भंगिमाओं से है। दूसरे रूप में इस पहलू के शेष भाग को अशाब्दिक संकेतों के अध्ययन से भी संबद्ध किया जा सकता है। दूसरा पहलू है यानि की अदृश्य आयाम से तात्पर्य, मानसिक प्रक्रियाओं से है जिनमें प्रत्यक्षण, निर्णय लेने की क्षमता, चिन्तन, स्मृति, अधिगम, चेतन, अचेतन, अतिचेतन आदि आते हैं। इन दो पहलुओं का व्यक्तित्व विकास से सीधा नाता है। यदि इनका सही विकास होता है तो व्यक्ति समग्र व्यक्तित्व के विकास की दिशा में अग्रसर होता है और विधेयात्मक मनोविज्ञान के दायरे में प्रवेश कर जाता है। वहीं यदि इसके विकास की दिशा उलटी होती है तो व्यक्ति नकारात्मक मनोविज्ञान जिसे साइकोपैथोलॉजी कहते हैं से ग्रस्त हो जाता है। यह पूरा का पूरा क्षेत्र कई प्रकार की शोध समस्यायें उपलब्ध कराता है।

शोध समस्या की सार्थकता – शोध के लिए समस्या का प्रश्न होना आवश्यक है। शोधकार्य का आरंभ तभी होता है। जबकि शोधकर्ता के सम्मुख कोई समस्या होती है। इसीलिए, समस्या के चयन को शोध प्रक्रिया का प्रथम चरण माना जाता है। शोधकर्ता सबसे पहले किसी समस्या का चयन करता है और उसके बाद शोधकार्य आरम्भ करता है। शोध की सफलता समस्या की अनुकूलता एवं उपयोगिता पर निर्भर करती है। अनुकूलता का अर्थ है कि समस्या ऐसी हो जिसका समाधान सहज रूप से किया जा सके। उपयोगिता का अर्थ है कि समस्या ऐसी हो जिसका समाधान से व्यक्ति, समाज, देश तथा सम्पूर्ण मानव जीवन लाभान्वित हो सकें। उपरोक्त वर्णित समस्याओं में दोनों ही विशेषतायें उपलब्ध हैं।

3.4 समस्या चयन के स्रोत

शोध हेतु शोध समस्या का होना अति आवश्यक है अतएव शोध समस्या का निर्धारण करना पड़ता है। शोध समस्या का निर्धारण कैसे किया जाये? यह एक श्रमसाध्य कार्य है। किसी भी नये अनुसंधान कर्ता के लिए एक अच्छी एवं उपयुक्त शोध समस्या को खोज निकालना कठिन होता है। इस संबंध नये अनुसंधानकर्ताओ की सहायता हेतु वैज्ञानिकों एवं अनुभवी अनुसंधानकर्ताओं ने कई स्रोतों का वर्णन किया है जो निम्न हैं–

1. शोधकर्ता की विषय विशेषज्ञता – अनुसंधान हेतु उपयुक्त समस्या के निर्धारण का एक महत्वपूर्ण आधार शोधकर्ता की विषय विशेषज्ञता है। शोध कर्ता को जिस विषय की सर्वाधिक जानकारी है एवं जिस विषय पर वह अधिक अधिकार रखता है। उसे विषय क्षेत्र से समस्याओं को ढूंढ़ निकालना काफी सहज होता है। इससे समय एवं श्रम दोनो ही की बचत होती है।
2. प्रकृति एवं परिवेश अवलोकन – शोधकर्ता जिस वातावरण में निवास करता है जिस परिवेश में उसका प्रतिदिन बीतता है उससे वह भलीभॉति परिचित होता है वहॉ कि कठिनाइयों एवं समस्याओं में से वह आसानी से एक शोध समस्या खोज सकता है।
3. अनुसंधान कर्ता की अभिरूचि – उपयुक्त समस्या के निर्धारण का एक आधार व्यक्तिगत अभिरूचि भी है। शोधकर्ता विद्याविशेष के ऐसे क्षेत्र में समस्या को खोज सकता है जिसमें उसकी रूचि सर्वाधिक हो। जिस विषय में अभिरूचि अधिक होती है उसके संबंध में अपनी सामर्थ्य का आसानी से मूल्यॉकन अथवा अनुमान लगाया जा सकता है। अनुसंधान कर्ता न केवल ऐसी समस्या खोजने में समर्थ होता है जिसमें उसकी रूचि के अनुकूल होती है बल्कि जो उसकी सामर्थ्य के भी अनुकूल होती है।
4. पूर्व में किय गए शोधकार्य – पूर्व में किये गये शोधकार्य भी नयी समस्या के निर्धारण में एक बड़ा स्रोत साबित हो सकते हैं। शोधकर्ता प्रायः अपने शोधकार्य की रिपोर्ट में अन्य शोधकर्ताओं के लिए सुझाव एवं अपने अध्ययन की कमियों एवं सीमाओं की ओर संकेत करते हैं जिनके आलोक में समस्या का निर्धारण करना आसान होता है।
5. शोध जर्नल्स – शोध जर्नल्स वे पत्रिकाएॅ होती हैं जिनमें शोधकर्ताओं द्वारा किये गये शोधकार्यों की संक्षिप्त रिपोर्ट छापी जाती हैं। इनके आधार पर भी शोध–समस्या को निर्धारित करने में सहायता मिलती है। नये शोधकर्ता ऐसी पत्रिकाओं का अध्ययन करता है, जिनमें भिन्न–भिन्न अनुसंधानकर्ताओं के सारांश तथा निष्कर्ष प्रकाशित होते हैं। इनके अध्ययन से भी नये शोधकर्ता को समुचित समस्या को खोज निकालने में सुविधा होती है।
6. शोध–सार (Research Abstract) – शोध समस्या के चयन में यह स्रोत भी काफी उपयोगी है। शोधकर्ता जिस विषय क्षेत्र में अनुसंधान करना चाहता है वह उस क्षेत्र से सम्बद्ध विभिन्न शोध–सारों का अध्ययन करता है। इस अध्ययन से उसे कोई नयी समस्या सूझ जाती है। कभी कभी शोध सार में ही नयी शोध समस्या इंगित रहती है। इससे नये अनुसंधानकर्ताओं को समस्या आसानी से मिल जाती है।
7. पाठ्य एवं संगत पुस्तकें (Text and relevant books) – पाठ्य पुस्तकें एवं संगत पुस्तकें समस्या निर्धारण का बढ़िया स्रोत हैं। अनुसंधानकर्ता जिस विषय क्षेत्र में अध्ययन करना चाहता है उससे संबंधित पाठ्य पुस्तकों एवं संगत पुस्तकों का वह अवलोकन करता है एवं आवश्यक सूचनायें प्राप्त करता है। उन सूचनाओं के आलोक में वह समुचित समस्या को निर्धारित कर लेता है। जैसे यदि कोई शोधकर्ता अधिगम (Learning) अथवा व्यक्तित्व (Personality) के क्षेत्र में शोध करना चाहता है तो वह इन पर लिखी गयी पुस्तकों का अध्ययन करता है जिससे उसे कोई न कोई समस्या सूझ सकती है।
8. विशेषज्ञों के सुझाव – जिस विषय क्षेत्र में शोधकर्ता अध्ययन करना चाहता है उसे विषय के विशेषज्ञों से मिलकर शोधकर्ता नयी समस्याओं के सम्बन्ध में विचार विमर्श कर उनके सुझाव हासिल कर सकता है। जो कि उसके लिए नयी शोध समस्या के निर्धारण में सहायक हो सकते हैं।

9. अनछुए क्षेत्र (Untouched Areas)– अनछुए अथवा उपेक्षित क्षेत्र भी शोध समस्या के निर्धारण का एक सशक्त स्रोत बन सकते हैं। जैसे यदि कोई शोधकर्ता प्रत्यक्षण के क्षेत्र में विशेष रूचि रखता है एवं वह इस क्षेत्र में शोध हेतु कोई नयी समस्या खोज निकालना चाहता है तो अतीन्द्रिय प्रत्यक्षण का क्षेत्र उसके लिए एक अच्छा स्रोत साबित हो सकता है क्योंकि अभी तक इस क्षेत्र में अधिक शोधकार्य नहीं हुए हैं एक प्रकार से यह क्षेत्र उपेक्षित ही है।

10.इण्टरनेट, टेलीविजन, रेडियो आदि– आधुनिक समय में सूचना क्रांति के कारण विभिन्न प्रकार की जानकारी एवं सूचनायें सूचना प्रसार के माध्यमों जैसे कि इन्टरनेट, टेलीविजन, रेडियो आदि के द्वारा सहज ही उपलब्ध होती हैं। इन माध्यमों का बेहतरीन उपयोग द्वारा भी शोधकर्ता अनुसंधान हेतु उपयुक्त समस्या खोज सकता है।

11. विश्व ज्ञान कोष (Encyclopedia)– शोध–समस्या को निर्धारित करने में विश्वज्ञान कोष एक बड़ा स्रोत है। शोधकर्ता जिस विषय में शोध करना चाहता हो, उस विषय के विश्वज्ञान–कोष की सहायता से वह किसी अनुकूल समस्या को निर्धारित कर सकता है। जैसे– यदि कोई शोधकर्ता शिक्षा के क्षेत्र में शोध करना चाहता है तो वह शिक्षा के विश्व कोष की सहायता से समुचित समस्या का निर्धारण कर सकता है।

3.5 समस्या के प्रकार

समस्या समाधान के आधार पर वैज्ञानिक समस्या के दो प्रकार बतलाते हैं।

(क) समाधेय समस्या (Solvable problem) एवं

(ख) असमाधेय समस्या (Unsolvable problem)

इनका विस्तृत वर्णन निम्नलिखित है–

(क) समाधेय समस्या (Solvable problem) – समाधेय समस्याओं वे समस्यायें होती हैं जिनका सम्बन्ध ऐसे प्रश्नों या सवालों से होता है जिनका उत्तर व्यक्ति की सामान्य क्षमताओं के आधार पर दिया जाना संभव है। शोध वैज्ञानिकों ने समाधेय समस्या की एक खास विशेषताएॅं बतलायी हैं

– शोध समस्या को जॉचनीय होना चाहिए। किसी भी शोध समस्या को समाधेय कहलाने के लिए आवश्यक है कि वैज्ञानिक उस समस्या में उठाये गये प्रश्नों का आनुभाविक तरीके से हॉ या नहीं के रूप में उत्तर दे सकें। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि समाधेय समस्या वह है जिसके लिए एक उचित जॉचनीय पकिल्पना को एक अंतरिम समाधान के रूप में विकसित किया जा सके। मैक्यूगन ने इस संदर्भ में कहा है कि 'एक समस्या को समाधेय माना जा सकता है अगर इसके अंतरिम समाधान के रूप में परिकल्पना बनाया जाना संभव है' (A problem is solvable if it is possible to advance a suitable hypothesis as a tentative solution for it, McGuigan, 1990)।

उदाहरण के लिए – 'क्या दण्ड देने की अपेक्षा पुरस्कार देने से विद्यार्थी शीघ्रता से सीखते हैं?' यह एक ऐसी शोध समस्या है जिसके लिये तैयार किये गये अंतरिम समाधान

के रूप में कहा जा सकता है – 'पुरस्कार देने से सीखना की प्रक्रिया दण्ड देने की अपेक्षा अधिक तीव्रता से होती है'। एक उपयुक्त परिकल्पना को सुसंगत होना चाहिए साथ ही उस परिकल्पना को सही अथवा गलत ठहराया जाना संभव होना चाहिए। उपरोक्त परिकल्पना में ये दोनों ही गुण हैं अतएव यह शोध समस्या समाधेय है।

(ख) असमाधेय समस्या (Unsolvable problem)

मैक्यूगन ने असमाधेय समस्या के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'असमाधेय समस्या कुछ ऐसे प्रश्न होते हैं जिनका यथार्थ में उत्तर नहीं दिया जा सकता है प्रायः ऐसे प्रश्नों का संबंध अलौकिक घटनाओं या प्रश्नों से होता है जो मूल कारणों से संबंधित होते हैं' (An unsolvable problem raises a question that is essentially unanswerable. Unsolvable problems usually concern supernatural phenomena or questions about ultimate cause. McGuigan, 1990)।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता यह पाता है कि एक व्यापारी को व्यापार में घाटा हो गया है एवं उसके कारणों की खोज में वह यह जानकारी प्राप्त करता है कि लोग इसे उसके द्वारा पिछले जन्म में किए गए पापों का परिणाम मानते हैं एवं वह यह समस्या निर्धारित करता है कि ' क्या व्यापारी द्वारा प्राप्त व्यापार घाटा उसके पिछले जन्म में किये गये पापों का परिणाम है?' यह एक असमाधेय समस्या का उत्तम उदाहरण है। इसी प्रकार एक सुई की नोक पर कितनी परियॉ नृत्य कर सकती हैं? यह भी एक असमाधेय एवं असार्थक समस्या का उदाहरण है। क्योंकि इन प्रश्नों का व्यावहारिक तौर पर उत्तर दिया जाना संभव नहीं है।

3.6 परिकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएं

शोध समस्या के चयन के उपरान्त उस समस्या पर शोध कार्य को आगे बढ़ाने हेतु परिकल्पना की रचना की जाती है। वास्तविक अध्ययन आरम्भ करने से पूर्व शोधकर्ता अनुमान लगाता है कि अध्ययन के बाद किस तरह का परिणाम मिलेगा। साधारण अर्थ में इसी अनुमान को परिकल्पना कहते हैं। शोध समस्या के प्रश्न वाचक वाक्य अथवा कथन में पूछे गये प्रश्न का अंतरिम समाधान युक्त कथन को परिकल्पना कहा जाता है। दूसरे शब्दों में परिकल्पना में समस्या का अनुमानात्मक समाधान समाविष्ट होता है, छिपा हुआ होता है। परिकल्पना की जॉच के बिना शोधकार्य को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता है। एक प्रकार से परिकल्पना समस्या के समाधान को अनुमानात्मक रूप से समाहित किये हुए एक जॉचनीय कथन होता है।

उदाहरण के लिए मान लिया जाये कि कोई शोधकर्ता प्राणायाम के अभ्यास एवं स्मृति क्षमता के विकास में कार्य कारण संबंध का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिए वह एक समस्या कथन की रचना करता है कि 'प्राणायाम के अभ्यास एवं स्मृति क्षमता में किस प्रकार का संबंध है?' अब इस कथन में पूछे गये प्रश्न के समाधान के रूप में वह अनुमानात्मक कथन करेगा। जैसे कि – 'प्राणायाम के अभ्यास से स्मृति क्षमता में बढ़ोत्तरी

होती है।' यह कथन समस्या कथन में पूछे गये प्रश्न का अनुमानित उत्तर देता है। यही परिकल्पना है।

वैज्ञानिकों ने समस्या की कई परिभाषाऍ दी हैं इनका वर्णन निम्नलिखित है–

परिकल्पना की परिभाषाऍ

मैक्यूगन के अनुसार – 'परिकल्पना दो या अधिक चरों के बीच सम्भावित सम्बन्ध का परीक्षणीय कथन है ('A testable statement of a potential relationship between two or more variables is called hypothesis'- McGuigan, 1990)।'

चैपलिन के अनुसार – 'परिकल्पना एक अभिधारणा है जो अंतरिम व्याख्या का काम करती है। दूसरे दृष्टिकोण से परिकल्पना एक प्रश्न है, जिसका उत्तर प्रयोग या निरीक्षणों द्वारा दिया जाता है' ('Hypothesis is an assumption which serves as a tentative explanation. Looked af from another point of view, a hypothesis may be considered as a question put to nature to be answered by an experiment or series of observation.' - Chaplin, 1975)।

रेबर तथा रेबर के अनुसार – 'परिकल्पना वह कथन, प्रस्ताव या अभिधारणा है जो कुछ तथ्यों की अंतरिम व्याख्या का काम करती है' ('Hypothesis is any statement, proposition or assumption that serves as a tentative explanation of certain facts.' - Reber and Reber, 2001)।

करलिंगर के अनुसार – 'परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध का अनुमानात्मक कथन है' ('A hypothesis is a conjectural statement of the relation between two or more variables.'- Kerlinger, 2002)।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से परिकल्पना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है जिससे परिकल्पना के संबंध में निम्न तथ्य प्राप्त होते हैं–

1. परिकल्पना में दो या दो से अधिक चरों के बीच एक संबंध बताया जाता है। जैसे – प्राणायाम के अभ्यास से एकाग्रता की अवधि में बढ़ोत्तरी होती है। यह एक ऐसी परिकल्पना का उदाहरण है जिसमें प्राणायाम प्रथम चर तथा एकाग्रता द्वितीय चर है। दोनों ही चरों के बीच एक प्रकार के संबंध का अनुमान लगाया गया है जैसे बढ़ोत्तरी।
2. परिकल्पना चरों के बीच एक जॉचनीय कथन के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इसका आशय यह है कि इस कथन में कही गयी बात को व्यवहार में करके देखा जा सकता है तथा इसकी सत्यता की जॉच की जा सकती है। इस जॉच हेतु परिकल्पना में

प्रयुक्त चरों का मापनीय होना आवश्यक है। जैसे उपरोक्त उदाहरण में प्राणायाम एवं एकाग्रता दोनों की ही अवधि को मापा जाना संभव है।

3. परिकल्पना कथन या प्रस्ताव का आधार दैनिक जीवन का निरीक्षण या पूर्व का अध्ययन होता है।

4. परिकल्पित कथन की जॉच आनुभाविक अध्ययन के आधार पर की जाती है। परिकल्पना अंतरिम या अस्थाई कथन है जो परीक्षण के बाद स्थाई बनता है।

5. परिकल्पना परीक्षण के बाद स्वीकृत होती है या अस्वीकृत होती है। परिकल्पना कथन जब सही प्रमाणित होता है तो उसे स्वीकार कर लिया जाता है। और जब परिकल्पित कथन गलत प्रमाणित होता है तो उसे अस्वीकार कर दिया जाता है। उदाहरण के लिए मान लें कि परिकल्पना बनायी गयी कि 'पुरस्कार देने से किये गये व्यवहार की बारंबारता बढ़ जाती है'। वास्तविक परीक्षण करने के बाद यदि प्रतिभागी के व्यवहार की बारंबारता में बढ़ोत्तरी होती है तो इस परिकल्पना को स्वीकृत माना जाता है। यदि नहीं होती है तो इसे अस्वीकृत कर दिया जाता है।

उत्तम परिकल्पना की विशेषताऍं–

शोध परिकल्पना के लिए आवश्यक है कि उसका स्वरूप वैज्ञानिक हो। वैज्ञानिकों ने एक उत्तम परिकल्पना की निम्न विशेषताओं को उल्लेख किया है–

1. परिकल्पना को जॉचनीय होना चाहिए – मैक्यूगन ने परिकल्पना के जॉचनीय होने की वकालत करने हुए कहा है कि ' एक परिकल्पना जिसे एक प्रस्ताव के रूप में व्यक्त किया जाता है, के संबंध में यदि यह निर्धारित करना संभव है कि वह सही या गलत है, तो वह प्राक्कल्पना जॉचनीय मानी जाती है। अगर यह निर्धारित करना संभव नहीं है कि प्रस्ताव सही है या गलत है तो परिकल्पना को जॉचनीय नहीं माना जाता है। ऐसी परिकल्पना को उत्तम परिकल्पना नहीं माना जाता है।
2. परिकल्पना में प्रयुक्त चरों की संक्रियात्मक परिभाषायें उपलब्ध हों– एक परिकल्पना के उत्तम होने के लिए आवश्यक है कि प्रयुक्त चर स्पष्ट रूप से परिभाषित हों। जैसे 'दण्ड की अपेक्षा पुरस्कार देने से सीखने की प्रक्रिता तीव्रता से घटित होती है' इस परिकल्पना में दण्ड एवं पुरस्कार दोनों का परिभाषित होना आवश्यक है। यदि दण्ड एवं पुरस्कार को परिभाषित नहीं किया गया है तो उपरोक्त परिकल्पना उत्तम परिकल्पना नहीं मानी जायेगी।
3. परिकल्पना को समस्या से संगत होना चाहिए– एक उत्तम एवं वैज्ञानिक परिकल्पना वह कथन है जो कि शोध–समस्या से संगत होता है। अच्छी परिकल्पना वास्तव में शोध–समस्या का अंतरिम उत्तर होता है। जैसे 'मधुमेह क्यों होता है? यह एक समस्या है। 'अधिक मीठा खाने के कारण मधुमेह होता है' यह परिकल्पना है। स्पष्टतः यह परिकल्पना अपनी समस्या से सम्बद्ध एक अंतरिम उत्तर है। इसलिए इसे एक उत्तम परिकल्पना कहा जा सकता है।
4. परिकल्पना का तार्किक आधार होना चाहिए– उत्तम परिकल्पना में तार्किक आधार का गुण होना चाहिए। तार्किक आधार से तात्पर्य परिकल्पना कथन में प्रयुक्त चरों के बीच के अनुमानात्मक संबंध की तर्क आधारित व्याख्या से है। उदाहरण के लिए यदि उपरोक्त उदाहरण में मधुमेह का कारण अधिक मीठा खाने को बतलाया गया है। यदि मधुमेह एवं

मीठे की बीच कोई तार्किक संबंध नहीं है तो ऐसी परिकल्पना उत्तम परिकल्पना नहीं कही जायेगी।

3.7 परिकल्पना के प्रकार

वैज्ञानिकों ने परिकल्पना के विभिन्न प्रकारों का वर्णन किया है। इन परिकल्पनाओं को उनकी विशेषताओं के आधार पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इनका वर्णन निम्नलिखित है–

(क) परिकल्पना में प्रयुक्त चरों की संख्या के आधार पर दो प्रकार की परिकल्पनाओं का वर्णन किया गया है।

1. **साधारण परिकल्पना (Simple hypothesis) –** ऐसी परिकल्पना जिसमें चरों की संख्या अधिकतम दो होती है एवं उन चरों में अनुमानात्मक संबंध का उल्लेख किया जाता है साधारण परिकल्पना कहलाती है। जैसे– 'कुंठा के बढ़ने से आक्रामकता में बढ़ोत्तरी होती है' अथवा 'बुद्धि एवं सृजनात्मकता के बीच सकारात्मक सहसंबंध है'। इन दोनों ही परिकल्पनाओं में केवल दो चरों का प्रयोग किया गया है। प्रथम परिकल्पना में कुंठा एवं आक्रामकता नामक चरों का एवं द्वितीय परिकल्पना में बुद्धि एवं सृजनात्मकता नामक चरों का प्रयोग किया गया है।

2. **जटिल परिकल्पना (Complex hypothesis)–** वह परिकल्पना जिसमें दो से अधिक चरों का प्रयोग कर उनके बीच अनुमानात्मक संबंध का उल्लेख किया जाता है जटिल परिकल्पना कहलाती है। जैसे– किशोरावस्था में प्रज्ञायोग व्यायाम का अभ्यास करने से मानसिक प्रसन्नता अनुभूति बढ़ती है। अथवा नगर के नव धनाड्य वयस्कों में मद्यपान की प्रवृत्ति गॉवों के नव समृद्ध वयस्कों की अपेक्षा अधिक होती है। इन परिकल्पनाओं में दो से अधिक चरों का प्रयोग किये जाने से ये अधिक जटिल हो गयी हैं। प्रथम परिकल्पना में किशोरावस्था, प्रज्ञायोग व्यायाम, एवं मानसिक प्रसन्नता अनुभूति ये तीन चर हैं वहीं द्वितीय परिकल्पना में वयस्क के प्रकार, मद्यपान, शहर एवं गॉव को चर के रूप में लिया गया है। जिससे इनका स्वरूप जटिल हो गया है।

(ख) मैक्यूगन ने परिकल्पनाओं के तीन प्रकार बतलाये हैं– 1. सार्वजनीन परिकल्पना, 2. अस्तित्वपरक परिकल्पना, 3. सीमित परिकल्पना

1. **सार्वजनीन परिकल्पना (Universal hypothesis) –** सार्वजनीन परिकल्पना वह परिकल्पना है जिसमें ऐसे संबंध का उल्लेख किया जाता है जो सभी चरों के लिए, सभी स्थान तथा सभी समय पर लागू होता है (Universal hypothesis asserts that the relationship in question holds for all variables that are specified for all the time and at all places, McGuigan, 1998)। जैसे– 'प्रत्येक दो पदार्थों के बीच में गुरूत्व बल होता है' न्यूटन द्वारा खोजी गयी सार्वजनीन परिकल्पना है। यह देश काल से परे है। उसी प्रकार 'थकान से उत्पादन घटता है' यह परिकल्पना भी सभी समय एवं सभी स्थान के लिए सत्य है।

2. **अस्तित्वपरक परिकल्पना (Existential hypothesis) –** अस्तित्वपरक परिकल्पा कहती है कि वह परिकल्पना जिसमें कम से कम एक ऐसी चीज का उल्लेख

किया जाता है जिसकी एक निश्चित विशेषता होती है (Existential hypothesis says that there is at least one thing that has a certain characteristic. - McGuigan, 1998)। इस परिकल्पना में किसी एक ही इकाई का गहन अध्ययन किया जाता है। जैसे 'प्रत्येक व्यक्ति में याददाश्त होती है' अथवा 'प्रत्येक मनुष्य सोचता है' ये दोनों ही परिकल्पनायें स्मृति एवं चिंतन से संबंधित हैं इन दोनों में ही मनुष्य एक ऐसी चीज है जिसमें एक निश्चित विशेषता है जैसे स्मृति एवं चिंतन। इस प्रकार ये अस्तित्वपरक परिकल्पना का उत्तम उदाहरण है।

3. **सीमित परिकल्पना (Limited hypothesis)** – सीमित परिकल्पना वह परिकल्पना होती है जो प्रत्यक्ष कथन के रूप में होती है और सदा प्रमाणित होने योग्य होती है। यह परिकल्पना वास्तव में निगमन (Deduction) पर आधारित होती है। जैसे 'राम के व्यक्ति होने से उसकी मृत्यु निश्चित है' यह परिकल्पना इस तथ्य पर आधारित है कि प्रत्येक मनुष्य (व्यक्ति) मरणशील है। इस रूप में यह सीमित परिकल्पना का उदाहरण है। क्योंकि सीमित परिकल्पना का क्षेत्र सीमित होता है।

(ग) करलिंगर ने परिकल्पनाओं के कई प्रकार बताए हैं–

1. **सरल परिकल्पना (Simple hypothesis)–** सरल परिकल्पना वह परिकल्पना है, जिसमें दो या दो से अधिक चरों के बीच सरल संबंध का उल्लेख किया जाता है। जैसे – प्राणाकर्षण प्राणायाम के अभ्यास से एकाग्रता में वृद्धि होती है। यह एक सरल परिकल्पना का उदाहरण है।

2. **अन्तर परिकल्पना (Difference hypothesis)** – वह परिकल्पना जिसमें किसी विशेष संबंध को लेकर चरों के बीच अन्तर व्यक्त किया जाता है अन्तर परिकल्पना कहलाती है। जैसे –'आध्यात्मिक परिवेश में रहने वाले बच्चों में गैर आध्यात्मिक परिवेश में रहने वाले बच्चों की अपेक्षा अधिक समायोजन क्षमता पायी जाती है'। इस प्रकार की परिकल्पना का प्रयोग मनोविज्ञान में अधिक होता है।

3. **तात्विक परिकल्पना (Substantial hypothesis)** – करलिंगर के अनुसार यह परिकल्पना सरल परिकल्पना के सदृश्य है इसमें अनुमानात्मक कथन के रूप में दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध व्यक्त किया जाता है (A Substantial hypothesis is the usual type of hypothesis in which a conjectural statement of the relation between two or more variables is expressed. - Kerlinger, 2002)।

4. **शून्य परिकल्पना (Null hypothesis)** – दो मध्यमानों के बीच अन्तर के शून्य होने की परिकल्पना शून्य परिकल्पना कहलाती है। इसे दो दशाओं में प्राप्त ऑकड़ों में कोई अन्तर नहीं होने की परिकल्पना भी कहा जाता है। करलिंगर के अलावा सीगल ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है कि 'अन्तर नहीं होने की परिकल्पना ही शून्य परिकल्पना है। इसकी रचना इसे निरस्त करने के उद्देश्य से ही की जाती है। ('The null hypothesis is a hypothesis of no difference. It is usually formulated for the purpose of being rejected.' - Seigal, 1956)। रेबर तथा रेबर ने भी यही बात कही है 'शून्य अन्तर या शून्य संबंध की परिकल्पना को शून्य परिकल्पना कहते हैं' ('Null hypothesis is a hypothesis of no difference, no relationship.' -

Reber and Reber, 2001)। शून्य परिकल्पना होने से यह दिशारहित परिकल्पना भी कही जाती है यह या तो गलत सिद्ध हो सकती है या सही। इसकी सत्यता की जॉच हेतु द्विपुच्छ परीक्षण का प्रयोग किया जाता है। शून्य परिकल्पना का उदाहरण – 'प्राणायाम के अभ्यास से चिंता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं आता है'। इसी प्रकार 'ध्यान करने वाले एवं ध्यान का अभ्यास नहीं करने वाले प्रयोज्यों के आत्मविश्वास में कोई सार्थक अन्तर नहीं है'।

5. **सांख्यिकीय परिकल्पना (Statistical hypothesis)** – करलिंगर के अनुसार 'सांख्यिकीय परिकल्पना एक अनुमानात्मक कथन है, जो सांख्यिकी भाषा में, तात्विक परिकल्पना से प्राप्त सांख्यिकीय सम्बन्ध को इंगित करता है' ('A statistical hypothesis is a conjectural statement, in statistical terms, of statistical relations deduced from the relations of the substantive hypothesis.' - Kerlinger, 2002)। उदाहरण के लिए – $M_1-M_2= 0$, $r = 0$ ये दोनों ही सांख्यिकीय शून्य परिकल्पना का उदाहरण है।

(घ) अन्य परिकल्पनाएँ

1. **विकल्पी परिकल्पना (Alternative hypothesis)** – यह परिकल्पना शून्य परिकल्पना के बिलकुल विपरीत होती है। शून्य परिकल्पना जब निरस्त होती है तब जो विकल्प के रूप में परिकल्पनाएँ बचती हैं उन्हें ही विकल्पी परिकल्पना कहते हैं। इसे प्रायोगिक परिकल्पना भी कहते हैं। इस परिकल्पना में दो समूहों या दो मध्यमानों में अन्तर या सम्बन्ध का अनुमान लगाया जाता है। जैसे – 'प्राणायाम से पूर्व प्राप्त चिंता स्तर एवं पश्चात् प्राप्त चिंता स्तर में सार्थक अन्तर है' यह परिकल्पना 'प्राणायाम से पूर्व प्राप्त चिंता स्तर एवं पश्चात् प्राप्त चिंता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं है' इस शून्य परिकल्पना का विकल्पी परिकल्पना है।

2. **दिशापरक परिकल्पना (Directional hypothesis)** – वह परिकल्पना जिसमें परिणाम की दिशा निर्धारित होती है दिशापरक परिकल्पना कहलाती है। इसे एक पुच्छीय परिकल्पना भी कहते हैं। परिकल्पना में प्रायः दो चर होते हैं, जिनके संबंध में शोधकर्ता कोई अनुमानित कथन का उल्लेख करता है। यदि यह कथन किसी एक चर की दिशा में निर्देशित होता है तो इसे दिशापरक परिकल्पना कहा जाता है। जैसे– 'पुरूषों की अपेक्षा स्त्रियाँ अधिक संवेदनशील होती हैं'। यह दिशापरक परिकल्पना का उत्तम उदाहरण है।

3.8 परिकल्पना के कार्य

प्रायः विद्यार्थियों के मन में सहज ही जिज्ञासा उठती है कि परिकल्पना की अनुसंधान में क्या आवश्यकता है?। इस संदर्भ में विद्वानों ने बहुत से विचार दिये हैं ये बिन्दुवार निम्न हैं–

- शोध की दिशा का निर्देशन – करलिंगर के अनुसार परिकल्पना से शोधकर्ता को शोध की एक निश्चित दिशा सूझ पड़ती है। परिकल्पना से अनुसंधानकर्ता तार्किक रूप से संतुष्ट होता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं करना है, किस दिशा में प्रयास करना है और किस दिशा में प्रसास नहीं करना हैं। इससे समय एवं श्रम की बचत होती है।

- परिकल्पना शोध को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान करती है– परिकल्पना एक जॉचनीय प्रस्ताव होता है एवं इसमें प्रयुक्त चरों में मापनीयता का गुण होता है जिससे शोध में अनावश्यक रूप से आने वाली आत्मनिष्ठता समाप्त होकर शोध का वस्तुनिष्ठ स्वरूप सामने आता है इससे शोध का स्वरूप वैज्ञानिक हो जाता है।
- परिकल्पना शोध के दायरे को उपयुक्त रूप से सीमित करती है– परिकल्पना से शोध का दायरा सीमित हो जाता है। प्रारम्भ में जब शोध समस्या चयनित की जाती है तब शोध की दायरा काफी विस्तृत होता है शोधकर्ता को यह समझ नहीं आता है कि इस विस्तृत क्षेत्र में से किस प्रकार नियंत्रित सीमा में शोधकार्य की दिशा का निर्धारण करे। परिकल्पना की रचना होने पर यह स्वयमेव सीमित हो जाता है।

3.9 सारांश

समस्या निर्धारण एवं परिकल्पना किसी भी शोध का प्रारंभ करते हैं। बिना सही समस्या निर्धारण के उपयुक्त परिकल्पना नहीं की जा सकती है एवं बिना उपयुक्त परिकल्पना के अनुसंधान कार्य की दिशा ही निर्धारिकत की जा सकती है। अस्पष्ट एवं विस्तृत दायरे में व्याप्त समस्या को सीमाबद्ध एवं नियंत्रित करने के लिए समस्या कथन किया जाता है समस्या को वैज्ञानिक स्वरूप प्रदान किया जाता है। सामान्य अर्थ में समस्या प्रश्नवाचक कथन अथवा वाक्य होता है जो यह प्रश्न पूछता है कि दो या दो से अधिक चरों के बीच किस प्रकार का संबंध है?। समस्या के कई प्रकार होते हैं जिनमें समाधेय एवं असमाधेय समस्या सर्वाधिक प्रचलित हैं। शोधकर्ता को सदैव समाधेय परिकल्पना का निर्माण करना चाहिए। परिकल्पना नये संप्रत्ययों के निर्माण एवं सिद्धान्त स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। विद्वानों के अनुसार दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंध का अनुमानात्मक कथन ही परिकल्पना है। इसमें समस्या का अनुमानात्मक उत्तर छिपा रहता है। परिकल्पना के कई प्रकार हैं जिनमें शून्य परिकल्पना, विकल्पी परिकल्पना, दिशात्मक परिकल्पना आदि प्रमुख हैं।

3.10 शब्दावली

समस्या– प्रतिदर्श समष्टि का वह एक अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब रहता है।

परिकल्पना – 'परिकल्पना दो या दो से अधिक चरों के बीच सम्बन्ध का अनुमानात्मक कथन है'

शून्य परिकल्पना – 'शून्य अन्तर या शून्य संबंध की परिकल्पना को शून्य परिकल्पना कहते हैं' ('Null hypothesis is a hypothesis of no difference, no relationship.' - Reber and Reber, 2001)।

सांख्यिकीय परिकल्पना – 'सांख्यिकीय परिकल्पना एक अनुमानात्मक कथन है, जो सांख्यिकी भाषा में, तात्विक परिकल्पना से प्राप्त सांख्यिकीय सम्बन्ध को इंगित करता है'

3.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

3.12 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– समस्या से आप क्या समझते हैं? उदाहरण के साथ समस्या के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 2– एक वैज्ञानिक समस्या किसे कहेंगे? इसकी विशेषताओं का वर्णन करें।

प्रश्न 3– समस्या को परिभाषित कीजिए, एवं एक इसके विभिन्न स्रोतों पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 4– परिकल्पना को परिभाषित कीजिए, एवं परिकल्पना के विभिन्न प्रकारों का सोदाहरण वर्णन कीजिए।

प्रश्न 5– एक उत्तम वैज्ञानिक परिकल्पना की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

प्रश्न 6– शून्य परिकल्पना एवं विकल्पी परिकल्पना में सोदाहरण अन्तर स्पष्ट करें।

इकाई–4 प्रतिदर्श और प्रतिचयन की विधियॉ

इकाई की संरचना

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 प्रतिदर्श का अर्थ एवं स्वरूप

4.4 प्रतिचयन का अर्थ एवं परिभाषाएॅ

4.5 प्रतिचयन के प्रकार एवं विधियॉ

4.5.1 संभाव्यता प्रतिचयन

4.5.2 असंभाव्यता प्रतिचयन

4.5.3 संभाव्यता प्रतिचयन की विधियॉ

4.5.4 असंभाव्यता प्रतिचयन की विधियॉ

4.6 सारांश

4.7 शब्दावली

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

4.1 इकाई का परिचय

मानव मन से संबंधित अनुभवों एवं विचारों का अध्ययन अपने आप में एक बहुत ही चुनौतीपूर्ण कार्य है, कयोंकि ये विचार एवं अनुभव सदा एक से नहीं रहते इनमें स्वाभाविक रूप से परिवर्तन होता रहता है। विचारों का चिन्तन करना एवं संवेगों का अनुभव करने के साथ–साथ उन्हें सम्यक प्रकार से अभिव्यक्त करने की क्षमता रखना मानव मन के ही बूते की बात है। ये अनुभव व्यक्ति को सकारात्मक एवं नकारात्मक दो प्रकार से होते हैं। सकारात्मक अनुभवों में प्रसन्नता, उल्लास, खुशी आदि तथा नकारात्मक अनुभवों में दुखः वेदना, चिंता, विषाद, भ्रम, व्यामोह आदि आते हैं। मानव मन के इन अनुभवों के विभिन्न प्रकार से अध्ययन करने के लिए विशेष कार्य योजना बनानी पड़ती है, जिसके अन्तर्गत हेतु व्यक्तियों का उद्‌देश्य के अनुसार चयन करना पड़ता है। चयनित व्यक्तियों का समूह प्रतिदर्श कहलाता है। इस प्रतिदर्श के चयन में कई बातों का विशेष ध्यान रखना पड़ता है जिसमें प्रतिदर्श का अपनी जनसमूह का प्रतिनिधित्व करना अत्यावश्यक है। प्रयोज्यों की संख्या अध्ययन विशेष में कितनी होनी चाहिए? प्रतिनिधिक समूहों के चयन करने की कौन सी विधियाँ प्रचलन में हैं? एवं किस परिस्थिति में किस प्रकार की प्रतिचयन विधि का प्रयोग किया जाता है? आदि प्रश्नों के बारे में विस्तार से जानकारी प्राप्त करेंगे।

4.2 उद्‌देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

6. प्रतिदर्श के अर्थ एवं विशेषता से परिचित हो सकेंगे।
7. प्रतिदर्श के प्रकारों के बारे में जान सकेंगे।
8. प्रतिचयन की परिभाषाओं एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
9. प्रतिचयन के विभिन्न प्रकारों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
10. प्रतिचयन की विभिन्न विधियों का प्रयोग करना सीख सकेंगे।

4.3 प्रतिदर्श का अर्थ एवं स्वरूप

योग एवं मनोविज्ञान के दायरे में आने वाले शोधों में सैद्धान्तिक शोध एवं प्रयोगात्मक शोध प्रमुख हैं इन सभी प्रकार के शोध अध्ययनों में व्यवहारात्मक शोध की विशेष भूमिका होती है। व्यवहारात्मक शोध में योग एवं मनोविज्ञान की सर्वाधिक निरीक्षणीय पक्ष पर अनुसंधान किया जाता है। इसमें विभिन्न प्रकार के व्यवहारों को विभिन्न संदर्भों में तथा आसन प्राणायाम एवं ध्यान आदि की कियाओं का अध्ययन किया जाता है। इस हेतु विभिन्न प्रकार के अध्ययन समूहों की आवश्यकता पड़ती है। इन अध्ययन समूहों का चयन अध्ययन के उद्‌देश्य के हिसाब से निर्धारित जीवसंख्या अथवा समष्टि से किया जाता है। इन अध्ययन समूहों पर किये गये अध्ययन से प्राप्त परिणामों का विवेचन कर निष्कर्ष प्राप्त किया जाता है तथा इस निष्कर्ष के आधार पर इसका मानव जीवन के किस प्रकार सफलतम उपयोग किया जा सकता है इसका मूल्याँकन किया जाता है। ये अध्ययन समूह ही प्रतिदर्श कहलाते हैं।

ये प्रतिदर्श एक निर्धारित एवं पूर्णतया पूर्वपरिभाषित जीवसंख्या से चुने जाते हैं। इन परिभाषित जीवसंख्या के उदाहरण निम्न प्रकार से हो सकते हैं। भौतिक विज्ञानियों का

समूह, मनोरोगियों का समूह, शिक्षकों का समूह, चिकित्सकों का समूह, बालकों का समूह, वयस्कों का समूह, महिलाओं का समूह आदि।

जीव संख्या के प्रकार

ये जीवसंख्या अथवा समष्टि मुख्य रूप से दो प्रकार की होती हैं।

1– परिमित जीवसंख्या एवं 2– अपरिमित जीव संख्या

परिमित जीवसंख्या – परिमित या निश्चित जीवसंख्या वैसे जीवसंख्या को कहा जाता है जिसके सदस्यों की संख्या निश्चित होती है जिसकी गिनती की जा सकती है। प्रयास करने पर जिसके सदस्यों की सूची बनाई जा सकती है। यूजीसी द्वारा मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के प्राध्यापकों का समूह एक परिमित जीवसंख्या का उदाहरण है। इसी प्रकार थल सेना के पैदल सैनिकों का समूह, भारतीय आुर्विज्ञान संस्थान द्वारा मान्यता प्राप्त चिकित्सकों का समूह, पुलिस के कर्मचारियों का समूह आदि भी परिमित जीवसंख्या के उदाहरण हैं। योग, मनोविज्ञान परक तथा शिक्षा परक शोधों में परिमित जीवसंख्या का ही उपयोग किया जाता है।

अपरिमित जीवसंख्या – अपरिमित जीवसंख्या ऐसी जीवसंख्या को कहा जाता है जिसके सदस्यों की गिनती नहीं की जा सकती है। जैसे– गंगा नदी में मछलियों की संख्या, आकाश में तारों की संख्या, भारत में वृक्षों की संख्या।

प्रतिदर्श– परिभाषित एवं निर्धारित जीवसंख्या से चुने गये समूह को प्रतिदर्श कहा जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता मूल्यपरक शिक्षा को विश्वविद्यालयीन पाठ्यक्रम में शामिल करने के परिप्रेक्ष्य में प्राध्यापकों के मतों का विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुॅचना चाहता है, परन्तु विश्वविद्यालय के प्राध्यापकों की कुल संख्या 110000 है जिनके मतों को जानने में उसे कई वर्ष लगने की संभावना है तो ऐसी स्थिति में वह एक प्रतिनिधिक समूह चुनने का निर्णय करता है। यदि वह कुल जीवसंख्या के एक प्रतिशत यानि कि 1100 प्राध्यापकों को उनका मत जानने हेतु चुनता है तो ये 1100 प्राध्यापक एक प्रतिदर्श का उदाहरण होंगे। उपरोक्त उदाहरण में जीवसंख्या एक परिमित जीवसंख्या है तथा प्रतिदर्श कुल जीवसंख्या का एक प्रतिशत है।

प्रतिदर्श की विशेषताएॅं – प्रतिदर्श समष्टि का वह एक अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब रहता है।

''पी वी यंग के शब्दों में एक प्रतिदर्श अपने समस्त समूह का एक लघु स्वरूप होता है।''

प्रतिदर्श में प्रतिनिधि होने का गुण होता है। दूसरे शब्दों में प्रतिदर्श अपने मूल स्रोत का एक छोटा स्वरूप होता है जिसमें अपने समूह की सभी विशेषतायें उसी अनुपात एवं परिमाण में व्याप्त होती हैं जिस अनुपात एवं परिमाण में अपनी जीवसंख्या में होती हैं। एक प्रतिदर्श के अपनी जीवसंख्या का ठीक–ठीक प्रतिनिधित्व करने के लिए उसके चयन में निष्पक्षता, पूर्वाग्रह स्वतंत्रता हो एवं समष्टि भली प्रकार से परिभाषित हो।

उदाहरण– यदि कोई शोधकर्ता यह अध्ययन करना चाहता है कि उत्तराखण्ड के के प्राध्यापकों की कार्य संतुष्टि पर गैरसरकारी संस्थाओं द्वारा प्रदान किये गये स्वास्थ्य एवं शिक्षा बीमा की सुविधा का क्या प्रभाव पड़ता है? इसके लिए शोधकर्ता को सबसे पहले प्राध्यापकों की जीवसंख्या को परिभाषित करना होगा। मान लिया जाये कि शोधकर्ता प्राध्यापकों की जीवसंख्या को मात्र विश्वविद्यालय एवं कालेजों के प्राध्यापकों के रूप में परिभाषित करता है। अब वह उत्तराखण्ड के सभी विश्वविद्यालयों एवं कालेजों के प्राध्यापकों की सम्पूर्ण संख्या ज्ञात करेगा। थोड़ी देर के लिए मान लिया जाये कि यह

संख्या 8000 आती है। 43 बवह इस अध्ययन के लिए 800 प्राध्यापकों का यादृच्छिक तरीके से 8000 की जीवसंख्या से चयन कर लेता है तो यह एक प्रतिदर्श का उदाहरण होगा। यादृच्छिक तरीके से चुने जाने की वजह से यह एक प्रतिनिधिक समूह भी होगा।

4.4 प्रतिचयन का अर्थ एवं परिभाषाऍ

प्रतिदर्श का चयन करने की प्रक्रिया प्रतिचयन कहलाती है। उदाहरण के लिए मान लिया जाये कि कोई शोधकर्ता सरकार द्वारा जारी आरक्षण नीति पर विद्यार्थियों के विचारों का एकत्रीकरण कर उनका विषय वस्तु विश्लेषण कर किसी निष्कर्ष पर पहुॅचने का शोध उद्देश्य निर्धारित करता है। इस हेतु उसे सबसे पहले विद्यार्थियों की जीवसंख्या को परिभाषित करना होगा। यदि शोधकर्ता विश्वविद्यालयों को विद्यार्थियों को जीवसंख्या के रूप में परिभाषित करता है तो उसे इस जीवसंख्या से एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श का चयन करना होगा। इस प्रतिनिधिक प्रतिदर्श को चुनने हेतु यदि अध्ययनकर्ता देश के सभी विश्वविद्यालयों में से किसी एक विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों को अध्ययनहेतु यादृच्छिक आधार पर चुनने का निर्णय लेता है। तो प्रतिदर्श चुनने की उपरोक्त प्रक्रिया प्रतिचयन का उदाहरण होगी।

प्रतिचयन की परिभाषाऍ

करलिंगर के अनुसार– ''किसी जीवसंख्या या समष्टि से उस जीवसंख्या या समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में किसी भी संख्या का चयन प्रतिदर्शन कहलाता है।''

4.5 प्रतिचयन के प्रकार एवं उनकी विधियॉ

व्यापक दृष्टि से एवं सैद्धान्तिक नजर से देखने पर प्रतिचयन दो प्रकार का होता है। इन दो प्रकारों के अन्तर्गत कई विधियों का वर्णन मिलता है ये विधियॉ भिन्न प्रकार की होती हैं एवं विशेष अध्ययन परिस्थितियों में प्रयुक्त होती हैं। यदि जीवसंख्या का स्वरूप सजातीय रहता है तब प्रतिचयन की विशिष्ट विधियों के उपयोग की विशेष आवश्यकता नहीं होती है, परन्तु यदि जीवसंख्या का स्वरूप विषमजातीय रहता है, उस स्थिति में प्रतिचयन का प्रक्रम भी जटिल हो जाता है। प्रतिचयन के ये दो विस्तृत प्रकार निम्न हैं– 1. संभाव्यता प्रतिचयन एवं 2. असंभाव्यता प्रतिचयन।

4.5.1 संभाव्यता प्रतिचयन – संभाव्यता प्रतिचयन वैसे प्रतिचयन विधि को कहा जाता है जिसमें प्रतिचयन किये जाने वाले प्रतिदर्श के सभी सदस्यों के प्रतिदर्श में चुने जाने की संभाव्यता ज्ञात होती है। अनुसंधान के दौरान संभाव्यता प्रतिचयन के उपयोग किये जाने के लिए कुछ दशाओं का होनो अति आवश्यक है ये दशायें निम्न हैं–

(1) समष्टि की संख्या एवं आकार का पूर्ण एवं ठीक ज्ञान होना।

(2) प्रतिदर्श की वॉछित संख्या निर्धारित हो।

(3) जीवसंख्या के प्रत्येक सदस्य के प्रतिदर्श में चुने जाने की संभाव्यता ज्ञात हो।

संभाव्यता प्रतिचयन के लाभ

(1) पक्षपात से मुक्ति– चूॅकि प्रतिचयन के इस प्रकार में प्रतिदर्श में चुनी जाने वाली इकाइयों के चयन का आधार पूर्णतः संयोग रहता है, अतः इसमें पक्षपात होने की संभावना शून्य रहती है।

(2) जीवसंख्या की विशेषताओं का पूर्ण प्रतिनिधित्व – इस विधि के अन्तर्गत समष्टि के प्रत्येक इकाई के चुने जाने की सम्भावना समान रहती है एवं कोई पक्षपात नहीं होता अतः इससे जीवसंख्या की सभी विशेषताओं के इसमें प्रदर्शित होने की भी पूर्ण संभावना होती है। सैद्धान्तिक रूप से इस विधि द्वारा चुना गया प्रतिदर्श अपनी समष्टि का पूर्ण प्रतिनिधित्व करता है।

(3) समय, व धन की बचत – इस प्रकार चयन किये जाने वाले प्रतिदर्श समष्टि से कई गुना छोटे होने के बावजूद अपने अन्दर समष्टि की सभी विशेषताओं को समेटे रहते हैं जिससे इन पर संचालित किए गए अध्ययनों से परिणाम पूरी समष्टि पर किये गये अध्ययन की तुलना में कम समय व कम धन खर्च कर आसानी से प्राप्त किये जा सकते हैं।

(4) सामान्यीकरण की सीमा का विस्तार– चूॅकि इस प्रकार चुना गया प्रतिदर्श अपनी जीवसंख्या का पूर्ण प्रतिनिधि होता है अतएव ऐसे प्रतिदर्श पर संचालित किये गये अनुसंधानों से प्राप्त परिणाम उस जीवसंख्या के प्रत्येक सदस्य या इकाई पर लागू होने की संभावना बढ़ जाती है अतएव इससे परिणामों के सामान्यीकरण की सीमा का निश्चित ही विस्तार हो जाता है।

(5) सरलता का गुण होना – यह विधि सैद्धान्तिक दृष्टि से प्रयोग किये जाने में अति सरल है अतएव कम प्रशिक्षण प्राप्त एवं कम अनुभवी शोधकर्ता भी इसे बिना किसी विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किये आसानी से सफलतापूर्वक उपयोग में ला सकते हैं।

4.5.2 असंभाव्यता प्रतिचयन – जिस प्रतिचयन में प्रतिदर्श के अन्तर्गत उसमें सम्मिलित किये जाने वाली प्रत्येक इकाई के चुने जाने की संभावना ज्ञात नहीं होती है उसे प्रतिचयन को असंभाव्यता प्रतिचयन कहा जाता है। इस तरह के प्रतिचयन में अनुसंधानकर्ता जीवसंख्या की संख्या ज्ञात करना की चिन्ता नहीं करनी पड़ती है यह चयन प्रसंभाव्यता सिद्धान्त पर आधारित नहीं होता। इस प्रतिचयन प्रकार का उपयोग जिन दशाओं में किया जाता है वे दशायें निम्न हैं– (1) जब जीवसंख्या की समूचे ब्रहमाण्ड में एक निश्चित संख्या में होने का अनुमान हो परन्तु उसकी संख्या ज्ञात करना संभव न हो, अर्थात् जीवसंख्या की संख्या निश्चित करना वर्तमान परिस्थितियों में शोधकर्ता एवं अन्य वैज्ञानिकों के लिए बिल्कुल भी संभव न हो। जैसे कि धरती के सभी महाद्वीपों में ऐसे व्यक्तियों की संख्या ज्ञात करना हो जिनके बालों का रंग भूरा एवं दाहिने कंधे पर काला तिल हो, ऐसे व्यक्तियों की संख्या ज्ञात करना जिनके दायें पैर का वजन बायें पैर के वजन से कम हो।

(2) जब समय का अभाव हो एवं अध्ययन करना अति आवश्यक हो, उदाहरण के लिए यदि कोई नया रोग अचानक उत्पन्न होकर देश के दूरदराज के क्षेत्रों में बहुत से लोगों को अपनी चपेट में ले ले एवं कई व्यक्तियों को अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा हो। ऐसी परिस्थिति में अनुसंधान कर्ता किसी भी प्रकार जल्द से जल्द समस्या के समाधान हेतु तीव्र गति से कार्य करने की आवश्सकता होती है। इस दशा में वह संभाव्यता प्रतिचयन की दशाओं को पूरा कर पाने में असमर्थ होता है एवं समय की मांग एवं अपनी सुविधा अनुसार निर्णय प्रतिदर्श चयन का निर्णय कर लेता है।

(3) नैतिक मर्यादायें उपस्थित हो जाना – जब परिस्थिति ऐसी हो कि अध्ययन में सम्मिलित किए जाने वाले सदस्यों की निश्चित संख्या तो अनुसंधानकर्ता को ज्ञात हो परन्तु वे उस जीवसंख्या के सभी सदस्य नैतिक कारणों एवं संकोच के कारण अध्ययन में शामिल होने एवं सहयोग करने के इच्छुक न हों जैसे कि एच आई वी अथवा एड्स के रोगियों पर अनुसंधान हेतु प्रतिदर्श में शामिल करना। इस तरह के कई रोगी सामाजिक संकोच के कारण प्रतिदर्श में सम्मिलित होने से मना कर सकते हैं।

असंभाव्यता प्रतिचयन के लाभ एवं कमियॉं।

(1) समय, धन व श्रम की बचत – चूँकि असंभाव्यता प्रतिचयन में शोधकर्ता को जीवसंख्या के आकार का निर्धारण नहीं करना पड़ता है अतः उसे संभाव्यता प्रतिचयन की तरह अपने इस संबंध में लगाये जाने वाले समय, खर्च किये जाने वाले धन की चिंता नहीं करनी पड़ती एवं श्रम की भी बचत होती है।

(2) हर प्रकार की अध्ययन परिस्थिति में इसका उपयोग करना संभव होता है।

(3) शोधकर्ता अपनी सुविधा, अवसर के अनुसार प्रतिदर्श में सदस्यों का चयन कर लेता है।

(4) सामान्यीकरण की सीमा संकुचित हो जाती है – इस प्रकार के प्रतिचयन में चूँकि जीवसंख्या के सभी सदस्यों के प्रतिदर्श में सम्मिलित होने की संभावना न तो बराबार होती है न ही ज्ञात की जा सकती है एवं जीवसंख्या से प्रतिदर्श का चुनाव पक्षपात रहित न होने के कारण इस प्रतिदर्श पर प्राप्त परिणामों को उस जीवसंख्या के प्रत्येक सदस्य पर लागू होने की सीमा संकुचित हो जाती है।

4.5.3 संभाव्यता प्रतिचयन की प्रमुख विधियॉं

संभाव्यता प्रतिचयन की प्रमुख विधियॉं निम्न हैं–

(क) सरल यादृच्छिक प्रतिचयन

(ख) स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन

(ग) गुच्छ प्रतिचयन

इन विधियों का विशद वर्णन निम्नांकित है।

(क) सरल यादृच्छिक प्रतिचयन –

यह संभाव्यता प्रतिचयन का सरलतम प्रकार है इस विधि में जीवसंख्या के प्रत्येक सदस्य के प्रतिदर्श में सम्मिलित होने की संभावना समान होती है दूसरे शब्दों में प्रत्येक सदस्य के पास प्रतिदर्श में सम्मिलित होने का बराबर–बराबर का अवसर होता है। उदाहरण के लिए यदि किसी शोधकर्ता को किसी विश्वविद्यालय के 80 प्राध्यापकों में से 10 का चयन यादृच्छिक तरीके से करना है तो इन 80 प्राध्यापकों के समूह में से प्रत्येक प्राध्यापक के 10 सदस्यों वाले प्रतिदर्श में सम्मिलित होने की संभाव्यता सांख्यिकी के प्रसंभाव्यता सिद्धान्त के अनुसार 1/80 होगी।

इस तरह के प्रतिचयन में समष्टि के किसी भी एक सदस्य का चयन न तो दूसरे सदस्य के चयन से प्रभावित होता है और ना ही दूसरे सदस्य के चयन को प्रभावित करता है। दूसरे शब्दों में, सरल यादृच्छिक प्रतिचयन के किसी भी सदस्य का चुना जाना किसी दूसरे सदस्य के चयन से पूरी तरह स्वतंत्र होता है।

सरल यादृच्छिक प्रतिचयन की विधि का प्रयोग कई सृजनात्मक तरीकों से किया जा सकता है। इनमें से कुछ प्रचलित तरीकों में लॉटरी प्रविधि, यादृच्छिक संख्याओं की टेबल का उपयोग, सिक्का उछाल विधि, फिसबॉल ड्रा, घूमता हुआ ड्रम आदि प्रमुख हैं।

उदाहरण – मान लिया जाये कि किसी अनुसंधानकर्ता को प्राणायाम के स्मृति क्षमता पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करना है जिसकी शुरूआत वह आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों से करना चाहता है। इस हेतु उसने जिस कक्षा का चयन किया है उसमें 100 छात्र हैं, अतः यहॉ पर जीवसंख्या 100 हुई। इन 100 में से शोधकर्ता मान लीजिए 25 छात्रों को प्रतिदर्श में चुनना चाहता है इसके लिए उसने फिसबाल ड्रा प्रविधि प्रयुक्त करने का निर्णय किया है। इसके लिए वह सभी 100 विद्यार्थियों के नाम या क्रमांक को वह समान आकार के कागज के टुकड़ों पर लिखकर एक समान ढंग से मोड़ लेगा और उसे किसी पात्र में रखकर उसे ठीक प्रकार से हिला डुला लेगा। इसके बाद किसी एक व्यक्ति को ऑख बंद कर अथवा पट्टी बांध कर एक–एक करके बारी–बारी से 25 कागज के टुकड़ों को निकालने के लिए कहेगा। यहॉ जीवसंख्या में से प्रत्येक विद्यार्थी के चुने जाने की संभावना 1/100 है।

(ख) स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन

स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि के नाम से ही स्पष्ट है कि इस विधि में यादृच्छिकरण किया जाता है एवं इसमें जीवसंख्या को कई विशेष स्तरों में बॉटा जाता है। इस प्रतिचयन की खास विशेषता यह है कि इसे दो चरणों में पूरा किया जाता है। प्रथम चरण में इसमें प्रतिदर्श को पूरी तरह जनसंख्या का प्रतिनिधिक प्रतिदर्श बनाने के लिए जीवसंख्या में व्याप्त अध्ययन संबंधी विशेषताओं के आधार पर जीवसंख्या के कई स्तर निर्धारित कर लिये जाते हैं।

इसके द्वितीय चरण में इन पूर्वनिर्धारित स्तरों में से प्रत्येक स्तर से कितनी संख्या में सदस्यों अथवा इकाइयों को प्रतिदर्श में सम्मिलित किये जाने हेतु चुना जाना है को निर्धारित कर सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा प्रतिदर्श में अध्ययन हेतु चुन लिया जाता है। कई शोधकर्ताओं के अनुसार स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि का इस्तेमाल जीवसंख्या में उसकी विशेषताओं के वितरण के आधार पर दो प्रकार से किया जा सकता है।

(1) समानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन के रूप में एवं

(2) असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन के रूप में

समानतुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि में अनुसन्धानकर्ता जीवसंख्या की किसी खास विशेषता के विभिन्न स्तरों की जानकारी हासिल कर उन स्तरों के जीवसंख्या में प्रसार के अनुपात का पता लगा लेता है तथा उसके बाद वह अपने प्रतिदर्श में भी उन्हीं स्तरों के प्रसार के अनुरूप समानुपातिक ढंग से इकाइयों अथवा सदस्यों का चयन सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से कर लेता है।

उदाहरण के लिए यदि किसी शहर में नागरिकों की जीवसंख्या को विभिन्न धर्मानुयायियों के अनुसार चार भागों या स्तरों में बॉटा जाता है – हिन्दू, मुस्लिम, सिख एवं ईसाई। तो शोधकर्ता को इसके अन्तर्गत जीवसंख्या में व्याप्त इन सभी स्तरों की संख्या ज्ञात करनी होगी उसके बाद प्रतिदर्श के आकार के अनुसार जीवसंख्या एवं प्रतिदर्श के बीच अनुपात की गणना करनी होगी। अनुपात का निर्धारण हो जाने पर जीवसंख्या के प्रत्येक स्तर में से

उसी अनुपात अनुसार इकाइयों का चयन प्रतिदर्श में सरल यादृच्छिक विधि द्वारा कर लिया जायेगा। अब यदि उपरोक्त उदाहरण में नगर की कुल जीवसंख्या 10000 है एवं शोधकर्ता ने प्रतिदर्श का आकार 1000 नागरिक निर्धारित किया है। तथा कुल जीवसंख्या में –

हिन्दुओं की संख्या – 4000

मुस्लिमों की संख्या – 3000

सिखों की संख्या – 2000 तथा

मुस्लिमों की संख्या – 1000 है तो 1000 सदस्यों वाले प्रतिदर्श एवं जीवसंख्या के बीच अनुपात 1/10 होगा। इस अनुपात के अनुसार प्रतिदर्श में

हिन्दुओं की संख्या (1/10)x4000= 400 होगी इसी प्रकार –

मुस्लिमों की संख्या (1/10)x3000= 300 होगी

सिखों की संख्या (1/10)x2000= 200 होगी

ईसाईयों की संख्या (1/10)x1000= 100 होगी। इसके बाद शोधकर्ता प्रत्येक धर्म की स्तरित जीवसंख्या से सदस्यों को यादृच्छिक ढंग से निर्धारित संख्या में चयन करेगा।

असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि काफी हद तक समानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि के ही समान है। इसमें भी शोधकर्ता जीवसंख्या को पहले कुछ ज्ञात विशेषताओं के आधार पर कई स्तरों में बॉट लेता है और फिर यादृच्छिक ढंग से प्रत्येक स्तर से कुछ व्यक्तियों का चयन कर एक प्रतिदर्श तैयार कर लेता है। इस तरह के प्रतिदर्श में चुने गए व्यक्तियों की संख्या जीवसंख्या के स्तर के समानुपाती नहीं होती है। अब प्रश्न उठता है कि जब व्यक्तियों की संख्या जीवसंख्या के स्तर के समानुपाती नहीं होती है तो इस तरह के प्रतिचयन का व्यवहार करने की आवश्यकता ही क्यों होती है? इस सवाल के जवाब में शोधकर्ताओं का कहना है कि वैसी परिस्थितियों में जिनमें जीवसंख्या में व्याप्त गुणों के बहुत से स्तरों में से किसी स्तर की कुल संख्या काफी कम होती है तथा समानुपातिक आधार पर प्रतिदर्श में चुने गये सदस्यों की संख्या तो इतनी कम हो जाती है कि उससे उस स्तर की विशेषताओं का प्रतिदर्श में गुणवत्ता के संदर्भ में प्रतिनिधित्व कम हो जाता है। इससे अध्ययन के उद्देश्यों के साथ न्याय नहीं हो पाता है। ऐसी परिस्थिति में अध्ययनकर्ता उस विशेष स्तर में से आवश्यकतानुसार सदस्यों का चयन यादृच्छिक रूप से कर लेता है। यही असमानुपाती स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन कहलाता है।

(ग) गुच्छ प्रतिचयन

गुच्छ प्रतिचयन को क्षेत्र प्रतिचयन भी कहा जाता है। यह भी सम्भाव्यता प्रतिचयन का ही एक प्रकार है। यह प्रतिचयन उपरोक्त वर्णित संभाव्यता प्रतिचयन की विधियों से न केवल प्रयोग के तरीकों से ही भिन्न है बल्कि व्यवहारपरक विज्ञानों में इसका पदार्पण भी कृषि क्षेत्र के अनुसंधानों से हुआ है। एवं योग के क्षेत्र में भी इसको उपयोग शोध की आवश्यकतानुसार किया जा सकता है। इसका प्रयोग सर्वे शोध में अधिक किया जाता है।

गुच्छ प्रतिचयन विधि तीन चरणों में पूरी की जाती है। प्रथम चरण में इसके अन्तर्गत अध्ययन के क्षेत्र को परिभाषित किया जाता है तथा उसके सम्पूर्ण क्षेत्र को कई उपक्षेत्रों में बॉटा जाता है। इस बात का ख्याल रखा जाता है कि इन उपक्षेत्रों में सदस्यों की संख्या एक–दूसरे उपक्षेत्र की तुलना में समान हो। द्वितीय चरण में इन उपक्षेत्रों में से किसी एक उपक्षेत्र का चयन सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा कर लिया जाता है। यदि अध्ययन कर्ता को तार्किक आधार पर यह लगता है कि किसी एक क्षेत्र की इकाइयों द्वारा पूर्णतः प्रतिनिधिक प्रतिदर्श का निर्माण नहीं हो सकता तो वह कुल उपक्षेत्रों में से यादृच्छिक आधार पर चुने जाने वाले उपक्षेत्रों की संख्या भी बढ़ा लेता है। तृतीय चरण में इस चयनित उपक्षेत्र से अध्ययन की आवश्यकतानुसार इकाइयों का चयन सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा कर लिया जाता है।

उदाहरण के लिये यदि कोई शोधकर्ता किसी राज्य के लोगों की योग विषय को विद्यालयीन पाठ्यक्रम में शामिल किये जाने के संदर्भ में मनोवृत्ति का अध्ययन करना चाहता है। तो इसके लिए सर्वाधिक आदर्श स्थिति तो यह है कि अध्ययनकर्ता राज्य के सभी लोगों की राय इकठ्ठी करे अथवा सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा राज्य की कुल जनसंख्या में से आनुपातिक आधार पर कुछ इकाइयों का चयन कर प्रतिदर्श का निर्माण करे। परन्तु यदि व्यवहार रूप में यह संभव नहीं हो तो वह क्षेत्र यानि कि गुच्छ प्रतिचयन करने का निर्णय करेगा। यदि यह मान लिया जाये कि कि उस राज्य में 30 जिले हैं। अब वह 30 जिलों में से कुछ जिलों का सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से चयन कर लेगा। मान लिया जाए कि वह छः जिलों को यादृच्छिक तरीके से चुन लेगा। अब वह प्रत्येक ऐसे जिलों में लोगों की राय जानने के लिए प्रशिक्षित साक्षात्कारकर्ताओं को लोगों का साक्षात्कार लेने के लिए भेजेगा तथा संग्रहित जानकारी के आधार पर अध्ययन का निष्कर्ष प्रस्तुत करेगा।

4.5.4 असंभाव्यता प्रतिचयन की विधियॉ।

असंभाव्यता प्रतिचयन की प्रमुख विधियॉ निम्न हैं–

(क) आकस्मिक प्रतिचयन विधि (Accidental or incidental sampling)

(ख) कोटा प्रतिचयन विधि (Quota sampling)

(ग) उद्देश्यपरक प्रतिचयन विधि (Purposive sampling)

(घ) हिमगोला प्रतिचयन (Snowball sampling)

इन विधियों का विशद वर्णन निम्नांकित है।

(क) आकस्मिक प्रतिचयन विधि

आकस्मिक प्रतिचयन विधि असंभाव्यता प्रतिचयन का एक सबसे सरल प्रकार है। इस प्रतिचयन विधि को प्रयोग करने के लिए किसी पूर्वयोजना की आवश्यकता नहीं पड़ती है। प्रयोग की दृष्टि से यह सबसे अधिक सुविधाजनक विधि है। इसमें शोधकर्ता उन सभी व्यक्तियों को अपने प्रतिदर्श में सम्मिलित करने के लिए चुन लेता है जो उसे सरलतापूर्वक एवं सुविधा से उपलब्ध हो जाते हैं।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता किसी राज्य के लोगों की योग विषय को विद्यालयीन पाठ्यक्रम में शामिल किये जाने के संदर्भ में मनोवृत्ति का अध्ययन करना चाहता है। तो

इसके लिए सर्वाधिक आदर्श स्थिति तो यह है कि अध्ययनकर्ता राज्य के सभी लोगों की राय इकठ्ठी करे अथवा सरल यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा राज्य की कुल जनसंख्या में से आनुपातिक आधार पर कुछ इकाइयों का चयन कर प्रतिदर्श का निर्माण करे। परन्तु यदि उपरोक्त विधि अथवा संभाव्यता प्रतिचयन की किसी भी विधि का प्रयोग करना संभव न हो तो शोधकर्ता इस हेतु बस अड्डे, रेलवे स्टेशन, बाजार, मेले अथवा किसी सार्वजनिक स्थान से गुजरते लोगों से अध्ययन का उद्देश्य बताकर तथा जो लोग अध्ययन में सहयोग करने का इच्छुक लोगों को अपने प्रतिदर्श में सम्मिलित कर लेता है। अध्ययन हेतु आवश्यक संख्या पूरी हो जाने पर प्रतिदर्श में इकाइयों का चयन रोक दिया जाता है। यही आकस्मिक प्रतिचयन का सुन्दर उदाहरण है।

आकस्मिक प्रतिचयन के गुण एवं दोष

(1) समय, धन एवं श्रम की बचत होती है।

(2) आकस्मिक प्रतिचन हेतु किसी पूर्वयोजना निर्माण की आवश्यकता नहीं होती है।

(3) आकस्मिक प्रतिचयन हेतु शोधकर्ता को किसी विशेष प्रशिक्षण लेने एवं अनुभवी होने की भी आवश्यकता नहीं होती।

(4) आकस्मिक प्रतिचयन विधि में पूरी जीवसंख्या के सदस्यों की सूची निर्माण की अथवा उनकी जानकारी होने की कोई आवश्यकता नहीं होती है।

(5) आकस्मिक प्रतिचयन विधि योजनापूर्ण नहीं होने की वजह से इसके जीवसंख्या का पूर्णप्रतिनिधित्व नहीं हो पाता है।

(6) पूर्ण प्रतिनिधित्व का अभाव होने के कारण इस तरह के प्रतिदर्श पर प्राप्त परिणामों को सम्पूर्ण जीवसंख्या पर लागू करना संभव नहीं होता। ज्यादातर परिस्थितियों में प्राप्त परिणाम अध्ययन में सम्मिलित सदस्यों एवं उनके समतुल्य सदस्यों पर ही लागू हो पाते हैं।

(ख) कोटा प्रतिचयन विधि

कोटा प्रतिचयन विधि भी असंभाव्यता प्रतिचयन का एक प्रमुख प्रकार है इस प्रतिचयन विधि में आकस्मिक प्रतिचयन विधि एक प्रकार से सम्मिलित होती है। इसके अलावा यह प्रतिचयन विधि काफी हद तक संभाव्यता प्रतिचयन के एक प्रमुख प्रकार स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि से भी मिलती जुलती प्रतीत होती है। दोनों में यही अन्तर होता है कि स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन विधि में प्रत्येक स्तर में से प्रतिदर्श में चुने जाने वाली इकाइयों की संभाव्यता ज्ञात होती है परन्तु ऐसा कोटा प्रतिचयन में नहीं होता है। यह प्रतिचयन प्रक्रिया दो चरणों में पूर्ण की जाती है। इसके प्रथम चरण में शोध के उद्देश्य के अनुरूप जीवसंख्या को परिभाषित कर लिया जाता है तथा उसके उपरान्त जीवसंख्या में व्याप्त विशेषताओं के आधार पर उसके कुछ स्तर निर्धारित कर लिये जाते हैं। दूसरे चरण में यह सुनिश्चित करके कि निर्मित किये जाने वाले प्रतिदर्श में निर्धारित जीवसंख्या के सभी स्तरों को प्रतिनिधित्व कमोबेश हो सके इस हेतु सभी स्तरों में से कुछ इकाइयों का चयन सैद्धान्तिक रूप से संख्या निर्धारण कर प्रतिदर्श में कर लिया जाता है।

उदाहरण के लिए कोई शोधकर्ता अपने अध्ययन में दिल्ली विश्वविद्यालय से कुछ छात्रों का चयन करना चाहता है। उसे यह पता है कि दिल्ली विश्वविद्यालय की कुल छात्र संख्या

10000 है जिनमें से 8000 छात्र स्नातक कक्षा के हैं एवं 2000 छात्र परास्नातक कक्षाओं के। स्पष्ट है कि यहॉ अध्ययनरत छात्र कुल जीवसंख्या में दो स्तरों में बंटे हुए हैं। एक स्तर की जीवसंख्य 8000 है तथा दूसरे स्तर की जीवसंख्या 2000 है। मानलिया जाये कि शोधकर्ता 1000 छात्रों का प्रतिदर्श निर्माण करना चाहता है। ऐसी परिस्थिति में वह 800 छात्रों को स्नातक कक्षा से और 200 छात्रों को परास्नातक कक्षाओं से चुन लेगा। ताकि चुने गए छात्रों का प्रतिदर्श का स्तर जीवसंख्या के स्तर के समरूप हो। परन्तु जीवसंख्या के इन दो स्तरों के आधार पर प्रतिदर्श में छात्रों के चुने जाने की विधि यादृच्छिक प्रतिचयन विधि न होकर आकस्मिक प्रतिचयन विधि होगी।

कोटा प्रतिचयन विधि के गुण एवं दोष

(1) कोटा प्रतिचयन विधि आकस्मिक प्रतिचयन विधि की तुलना में जीवसंख्या का अधिक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श चुनती है।

(2) आकस्मिक प्रतिचयन की तुलना में अधिक प्रतिनिधित्व का गुण होने के कारण ऐसे प्रतिदर्श पर संचालित अध्ययन के परिणाम का समान्यीकरण अर्थातृ जीवसंख्या के अधिक लोगों पर लागू होने की संभावना बढ़ जाती है।

(3) संभाव्यता प्रतिचयन की सभी विधियों की तुलना में इसमें समय, श्रम एवं धन की बचत होती है।

(4) जीवसंख्या के प्रत्येक स्तर की सभी इकाइयों से परिचित होना अथवा उनके नामों की जानकारी होना आवश्यक नहीं है।

(5) प्रयोग करने के लिए किसी विशेष अनुभव अथवा प्रशिक्षण की भी कोई आवश्यकता नहीं होती है।

(6) उपरोक्त गुणों के अलावा इसमें कुछ दोष भी हैं जैसे कि संभाव्यता प्रतिचयन की विभिन्न विधियों की तुलना में इस विधि से चुना गया प्रतिदर्श जीवसंख्या का ठीक ठीक प्रतिनिधित्व नहीं करता है।

(7) कोटा प्रतिचयन में शोधकर्ता की अपनी मनमानी इच्छा की प्रधानता होती है। फलस्वरूप वह जीवसंख्या की विशेषताओं के बारे में अधिक नहीं जानता है और न ही जानने की कोशिश करता है। जैसी इच्छा होती है वैसे ही वह प्रतिचयन संबंधी काम को करता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह बहुत सारे चरों को नियंत्रित नहीं कर पाता है जिसका प्रतिचयन के लिए सैद्धान्तिक महत्व काफी होता है। परिणामतः कोटा प्रतिचयन दोषपूर्ण हो जाता है।

(ग) उद्‌देश्यपरक प्रतिचयन विधि

यह प्रतिचयन विधि भी असंभाव्यता प्रतिचयन का एक महत्वपूर्ण प्रकार है इस प्रतिचयन को प्रसिद्ध विद्वान गिलफर्ड ने अच्छे ढंग से परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'उद्‌देश्यपरक प्रतिचयन वह है जिसे स्वेच्छा से इस आधार पर चुना जाता है क्योंकि उसमें जीवसंख्या के प्रतिनिधिक होने का अच्छा तार्किक व यथार्थ सबूत मौजूद होता है।' इस प्रतिचयन को निर्णय आधारित प्रतिचयन भी कहा जाता है क्योंकि इसमें प्रतिदर्श हेतु चुने जाने वाले समूह को प्रतिदर्श के रूप में चुने जाने के लिए तार्किक आधार पर निर्णय लिया जाता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता पूरे भारतवर्ष के वयस्क लोगों का टेलीविजन पर योग के प्रसार के के संबंध में राय जानना चाहता है और इसके लिए वह भारत के माननीय संसद सदस्यो को इस तार्किक आधार पर अपने प्रतिदर्श के रूप में चुनता है कि चूँकि संसद के चुने हुए सदस्य भारत के प्रत्येक राज्य एवं संसदीय क्षेत्र से संबंध रखते हैं एवं सभी प्रकार के धर्मों एवं संस्कृतियों का प्रतिनिधित्व करते हैं तथा सभी वयस्क हैं अतः इस प्रकार चुना गया प्रतिदर्श सैद्धान्तिक आधार पर एक अच्छा प्रतिनिधिक प्रतिदर्श होता है। यह उद्देश्यपरक प्रतिचयन का एक उत्तम उदाहरण है।

उद्देश्यपरक प्रतिचयन के गुण एवं दोष

(1) इस प्रतिचयन विधि के इस्तेमाल से समय श्रम एवं धन की बचत होती है।

(2) जीवसंख्या के प्रत्येक सदस्य के बारे में जानकारी इकठ्ठा करना आवश्यक नहीं होता है।

(3) इस प्रतिचयन पर आधारित प्रतिदर्श के व्यवहारिक आधार पर जीवसंख्या के प्रतिनिधि होने की संभावना संदेहपूर्ण होती है क्योंकि इसमें शोधकर्ता का पूर्वज्ञान एवं निर्णय की कसौटी प्रमुख भूमिका निभाती है। यदि कसौटी सही होने पर ही चुना गया प्रतिदर्श जीवसंख्या का प्रतिनिधित्व कर पाता है।

(4) उद्देश्यपूर्ण प्रतिचयन में शोधकर्ता को जीवसंख्या के बारे में काफी विस्तृत एवं गहन जानकारी चाहिए जो हमेशा संभव नहीं हो पाती है। इस विस्तृत एवं गहन जानकारी के अभाव में शोधकर्ता द्वारा चुने गए प्रतिदर्श में अनेकों तरह की त्रुटियॉ रह जाती है जिससे अध्ययन दोषपूर्ण रह जाता है।

(घ) हिमगोला प्रतिचयन विधि

यह एक ऐसा प्रतिचयन है जिसका प्रयोग शोधकर्ता उस परिस्थिति में करता है जब वह लोगों के बीच व्याप्त अनौपचारिक सामाजिक संबंधों का अध्ययन करना चाहता है। हिमगोला प्रतिचयन को परिभाषित करते हुए यह कहा जा सकता है कि यह प्रतिचयन की एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सीमित समूह या संगठन में सभी सदस्यों को अपने–अपने दोस्तों एवं सहयोगियों की पहचान करने को कहा जाता है और इस तरह से शोधकर्ता के सामने समूह में दोस्तों एवं परिचितों का एक समूह उभर कर आता है जिससे उसे समूह के पूर्व सामाजिक पैटर्न का ज्ञान हो जाता है। इस तरह के प्रतिचयन में कुछ खास–खास व्यवहार को जैसे दोस्ताना संबंध को आधार बनाया जाता है। स्पष्ट रूप में हिमगोला प्रतिचयन एक समाजमितीय स्वरूप लिये होती है।

उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि कोई अनुसंधानकर्ता यह अध्ययन करना चाहता है कि किसी नये प्राणायाम अथवा आसन के बारे में योग विद्वानों के बीच सूचनाऍं किस तरह से फैलती हैं। इसके लिए शोधकर्ता के लिए हिमगोला प्रतिचयन एक उत्तम प्रविधि होगा। योग विद्वानों के समूहों का हिमगोला प्रतिचयन करके उसे यह पता चल जायेगा कि नये प्राणायाम अथवा आसन के बारे में क्या योग विद्वान शोध जर्नल में पढ़ते हैं, या उसके बारे में वे नेशनल सेमीनार अथवा अन्तर्राष्ट्रीय सेमीनार या वर्ल्ड कांग्रेस में सूचना प्राप्त करते हैं या उसके बारे में अपने साथियों से सुनते हैं, आदि। हिमगोला प्रतिचयन में प्रत्येक योग

विद्वान को यह बतलाना अनिवार्य होगा कि वे नये आसनों के बारे में सूचनायें कहॉ से प्राप्त करते हैं? इससे शोधकर्ता को एक परस्पर अन्तःक्रिया के पैटर्न का पता चल जाता है।

हिमगोला प्रतिचयन के गुण एवं दोष

(1) यह प्रतिचयन चूँकि एक तरह का एक समाजमितीय प्रतिचयन विधि है अतः इसका प्रयोग छोटे–छोटे सामाजिक संगठनों के लोगों के बीच अन्तःक्रियात्मक संबंध को जानने में लाभप्रद सिद्ध हुआ है।

(2) इस तरह के प्रतिचयन में लचीलापन का पर्याप्त गुण होता है।

(3) हिमगोला प्रतिचयन का सबसे प्रमुख दोष यह बतलाया गया है कि इसमें शोधकर्ता संभावित सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग नहीं कर सकता है। इसका कारण यह है कि प्रतिदर्श में सम्मिलित किये जाने वाले सदस्यों का चयन करके उनके स्वयं की इच्छाओं के अनुसार होता है न कि किसी यादृच्छिक चयन की विधि के आधार पर होता है।

(4) इसकी उपयोगिता काफी सीमित है। यदि समूह अथवा संगठन में संख्या 100 से ज्यादा होती है तो इस तरह के प्रतिचयन के प्रयोग से शोधकर्ता कोई अर्थपूर्ण निर्णय पर नहीं पहुॅच पाता है।

4.6 सारांश

योग, मनोविज्ञान एवं अन्य शिक्षापरक अनुसंधानों में अध्ययन प्रमुख रूप से व्यक्तियों पर संचालित किया जाता है जिसमें बच्चे, किशोर, वयस्क, अधेड़, बूढ़े, पुरूष एवं महिलायें आती हैं। अुनसंधान में अनुसंधान के उद्देश्य के अनुरूप व्यक्तियों जिन्हें अनुसंधान की भाषा में इकाई कहा जाता है का चयन किया जाता है। इस चयन हेतु सबसे पहले अध्यन हेतु जीवसंख्या अथवा समष्टि को परिभाषित एवं निर्धारित किया जाता है तदनुपरान्त उस जीवसंख्या से चयनित किये जाने वाले समूह की संख्या निर्धारित की जाती है यह समूह प्रतिदर्श कहलाता है। अनुसंधान में प्राप्त परिणामों के जीवसंख्या पर ठीक ठीक लागू होने के लिए प्रतिदर्श का जीवसंख्या का पूर्ण प्रतिनिधिक होने की दशा पूरी करना आवश्यक होता है। एक प्रतिनिधिक प्रतिदर्श चुनने की कई विधियॉ प्रचलित हैं जिन्हें दो विस्तृत प्रकारों में बॉटा गया है। सम्भाव्यता प्रतिचयन एवं असंभाव्यता प्रतिचयन। सम्भाव्यता प्रतिचयन असंभाव्यता प्रतिचयन की तुलना में जीवसंख्या का अधिक अच्छा प्रतिनिधिक प्रतिदर्श चुनता है। सम्भाव्यता प्रतिचयन के तीन महत्वपूर्ण प्रकार हैं – सरल यादृच्छिक प्रतिचयन, स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन एवं गुच्छ प्रतिचयन। असंभाव्यता प्रतिचयन के भी कई महत्वपूर्ण प्रकार हैं परन्तु उपरोक्त इकाई में केवल चार प्रमुख रूप से प्रचलित प्रतिचयन विधियों का ही उल्लेख किया गया है जैसे – आकस्मिक प्रतिचयन, कोटा प्रतिचयन, उद्देश्यपरक प्रतिचयन एवं हिमगोला प्रतिचयन विधि। इन सभी संभाव्यता एवं असंभाव्यता प्रतिचयन विधियों की अपने गुणों के साथ – साथ दोष भी हैं। परन्तु शोधकर्ता अपने अध्ययन की परिस्थितियों एवं सीमाओं को ध्यान में रखकर उपयुक्त प्रतिचयन विधि का चयन कर एक अच्छे प्रतिनिधिक प्रतिदर्श का चयन कर सकता है।

4.7 शब्दावली

प्रतिदर्श – प्रतिदर्श समष्टि का वह एक अंश होता है जिसमें अपनी समष्टि की समस्त विशेषताओं का स्पष्ट प्रतिबिम्ब रहता है।

प्रतिचयन – ''किसी जीवसंख्या या समष्टि से उस जीवसंख्या या समष्टि के प्रतिनिधि के रूप में किसी भी संख्या का चयन प्रतिदर्शन कहलाता है।''

संभाव्यता प्रतिचयन – संभाव्यता प्रतिचयन वैसे प्रतिचयन विधि को कहा जाता है जिसमें प्रतिचयन किये जाने वाले प्रतिदर्श के सभी सदस्यों के प्रतिदर्श में चुने जाने की संभाव्यता ज्ञात होती है।

असंभाव्यता प्रतिचयन – जिस प्रतिचयन में प्रतिदर्श के अन्तर्गत उसमें सम्मिलित किये जाने वाली प्रत्येक इकाई के चुने जाने की संभावना ज्ञात नहीं होती है उसे प्रतिचयन को असंभाव्यता प्रतिचयन कहा जाता है।

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ

अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

4.9 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– प्रतिचयन से आप क्या समझते हैं? उदाहरण के साथ प्रतिचयन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 2– स्तरित यादृच्छिक प्रतिचयन किसे कहते हैं? इसके लाभ एवं परिसीमाओं का वर्णन करें।

प्रश्न 3– क्षेत्र या गुच्छ प्रतिचयन क्या है? इसके प्रमुख लाभ एवं परिसीमाओं का वर्णन करें।

प्रश्न 4– शोध में प्रतिचयन क्यों आवश्यक है? प्रतिचयन के प्रतिनिधिक स्वरूप को बनाये रखने के लिए किन विधियों का उपयोग किया जाता है?

प्रश्न 5– असंभाव्यता प्रतिचयन से आप क्या समझते हैं? इसके विविध प्रकारों का गुण दोष सहित वर्णन करें।

इकाई–5 अनुसंधान विधियां : निरीक्षण विधि, सहसम्बन्धात्मक विधि एवं प्रयोगात्मक विधि

इकाई की संरचना

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 निरीक्षण या अवलोकन विधि
5.3.1 सहभागी अवलोकन
5.3.1.1 सहभागी अवलोकन के गुण
5.3.1.2 सहभागी अवलोकन की सीमाएं
5.3.2 असहभागी अवलोकन
5.3.2.1 असहभागी अवलोकन के गुण
5.3.2.2 असहभागी अवलोकन की सीमाएं
5.4 सहसम्बन्धात्मक शोध विधि
5.4.1 सहसम्बन्धात्मक शोध के गुण
5.4.2 सहसम्बन्धात्मक शोध की सीमाएं
5.5 प्रयोगात्मक शोध विधि
5.5.1 परिवर्त्य या चर
5.5.2 परिवर्त्यों के प्रकार
5.5.2.1 आश्रित परिवर्त्य
5.5.2.2 स्वतंत्र परिवर्त्य
5.5.2.3 संगत या बहिरंग परिवर्त्य
5.5.3 प्रयोगात्मक विधि के गुण
5.5.4 प्रयोगात्मक विधि की सीमाएं
5.6 सारांश
5.7 शब्दावली
5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.9 संदर्भ–ग्रन्थ
5.10 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना–

पूर्व की इकाइयों में आपने पढ़ा कि शोध उत्तर तलाशने की एक प्रक्रिया है। विभिन्न प्रकार के शोध प्रश्नों का उत्तर शोध की भिन्न–भिन्न विधियों को अपनाकर प्राप्त किया जाता है। इतना ही नहीं, शोध में चरों के बीच सम्बन्धों की तलाश भी की जाती है, खासकर स्वतंत्र चर और आश्रित चर के बीच के सम्बन्धों की। विभिन्न अनुसंधान विधियां इस दिशा में सही निष्कर्ष तक पहुँचने में शोधकर्ता की सहायता करती हैं। प्रस्तुत इकाई में शोध विधि के रूप में आपको निरीक्षण विधि, सहसम्बन्धात्मक विधि एवं प्रयोगात्मक विधि से परिचित होना है। ये तीनों ही विधियां शोध प्रदत्त इकट्ठा करने की अनोखी विधि है, जिन्हें आनुभविक शोध के प्रकार के रूप में भी जाना जाता है। हमें उम्मीद है कि इन तीनों ही शोध विधियों का अध्ययन कर आप आनुभविक शोध के सम्बन्ध में कुछ ज्यादा, कुछ नया एवं कुछ उपयोगी ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य–

इस इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि–

1. आनुभविक शोध की विभिन्न विधियों से परिचित हो सकेंगे।
2. निरीक्षण या अवलोकन विधि के गुण–दोषों पर प्रकाश डाल सकेंगे।
3. सहसम्बन्धात्मक शोध विधि की विशेषताओं एवं सीमाओं को रेखांकित कर सकेंगे।
4. प्रयोग के स्वरूप को समझ सकेंगे तथा प्रयोगात्मक विधि के गुण–दोषों की तुलना कर सकेंगे।

5.3 अवलोकन या निरीक्षण विधि –

अवलोकन आनुभविक शोध का एक प्रमुख प्रकार है जिसमें शोधकर्ता चरों में बिना किसी प्रकार का हस्तचालन यानी, जोड़–तोड़ किए ही अध्ययन से सम्बन्धित घटनाओं का क्रमबद्ध निरीक्षण करता है। उसके महत्वपूर्ण तथ्यों को लिखते जाता है तथा उसका एक अभिलेख तैयार कर लेता है। आनुभविक शोध वह शोध है जो तथ्य आधारित तथा प्रयोगात्मक स्वरूप का होता है। आनुभविक शोध के अन्तर्गत जो विधियां इस्तेमाल में लायी जाती हैं वे समस्या का तथ्यपूर्ण मूल्यांकन करने में सक्षम होती हैं। चूँकि अवलोकन में भी किसी समस्या का तथ्यपूर्ण मूल्यांकन किया जाता है, अतः यह एक आनुभविक शोध है। इसका प्रयोग मनोविज्ञान, शिक्षा, समाजशास्त्र, योग एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में व्यापक स्तर पर किया जाता है। शोधकर्ता किसी घटना या व्यवहार का क्रमबद्ध अभिलेखन कर उसका विश्लेषण करता है और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचता है। आइये, इसे एक उदाहरण से समझें। मान लीजिए कि कोई अवलोकनकर्ता बच्चों के खेल व्यवहार का अवलोकन करना

चाहता है। इस तरह के व्यवहार का अवलोकन करने हेतु उसे सर्वप्रथम खेल मैदान में जाना होगा। तत्पश्चात् दो स्थितियां बनती है–

(क) अवलोकनकर्ता चुपचाप किसी खेल के मैदान के किनारे बैठकर बच्चों द्वारा खेल के मैदान में प्रदर्शित किए गए विभिन्न व्यवहारों का निरीक्षण करे तथा–

(ख) अवलोकनकर्ता स्वयं बच्चों के समूह में शामिल होकर खेल के मैदान में जाये, खेले और फिर बच्चों के विभिन्न व्यवहारों का अवलोकन करें।

अवलोकनकर्ता द्वारा पहली स्थिति में किए गए अवलोकन को असहभागी अवलोकन कहेंगे जबकि दूसरी स्थिति में किए गए अवलोकन को सहभागी अवलोकन कहेंगे। इस सम्बन्ध में एक बड़ा ही रोचक प्रयोग गार्डनर नामक समाज विज्ञानी ने किया। उन्होंने खेल के मैदान में चार महीने तक 40 स्कूली बच्चों के झगड़ने के व्यवहार का अवलोकन किया और पाया कि–

(i) झगड़े की औसतन अवधि 24 सेकेन्ड से एक मिनट की थी,

(ii) लड़कियों की तुलना में लड़के ज्यादा लड़ाई करते थे,

(iii) उम्र में वृद्धि के साथ, झगड़ों में कमी देखी गई,

(iv) जब लड़के और लड़कियां अलग–अलग खेलते थे तो झगड़े अधिक होते थे, परन्तु साथ–साथ खेलने पर झगड़े कम होते थे तथा

(v) ज्यादातर झगड़े खुद बच्चों द्वारा ही सुलझा लिए जाते थे या फिर रेफरी या शिक्षक के द्वारा।

अवलोकन विधि द्वारा व्यवहार के किन–किन विमाओं का अध्ययन किया जाता है, इस सम्बन्ध में जिकमण्ड नामक विद्वान ने छः विमाओं की चर्चा की है जो निम्नवत है–

(क) शारीरिक क्रियाएं– जैसे–कार्य प्रारूप, टी.वी. देखना आदि।

(ख) मौखिक व्यवहार– जैसे– दोस्तों, सम्बन्धियों, सहकर्मियों आदि के साथ वार्ता।

(ग) अभिव्यक्ति व्यवहार– जैसे– बात करने की शैली, मुखाकृति अभिव्यक्ति आदि।

(घ) स्थानिक सम्बन्ध– जैसे– निरीक्षित किए जा रहे व्यक्तियों के बीच भौतिक दूरी।

(च) सामयिक प्रारूप– जैसे– किसी कार्य के करने में व्यतीत समय, बात करने में दिया गया समय आदि।

(छ) मौखिक रेकर्ड– जैसे– किसी स्मार–पत्र की विषय–वस्तु या नारेबाजी के शब्द आदि।

5.3.1 सहभागी अवलोकन–

सहभागी अवलोकन मे जिस समूह का अध्ययन करना होता है, निरीक्षक उस समूह में एक सदस्य की तरह रहने लगता है। वह समूह के सदस्यों के साथ इस तरह घुल–मिल जाता है कि वे उसे अपने समूह का सदस्य समझने लगते हैं। अतः निरीक्षक समूह के साथ रहकर ही सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है तथा आवश्यक बातों को लिखता जाता है। अध्ययन पूरा होने के बाद वह समूह छोड़ कर चला जाता है।

गुडे एवं हैट (1952) के शब्दों में, ''सहभागी अवलोकन का उपयोग तब किया जाता है जब अनुसंधानकर्ता अपने आपको इस प्रकार छिपा सकता हो कि उसे समूह के सदस्य के रूप में मान लिया जाये।''

इसी प्रकार पी0वी0 यंग (1966) ने कहा है– ''सहभागी निरीक्षक, अनियंत्रित निरीक्षण का व्यवहार करते हुए, उसी समूह जीवन में रहता है या भाग लेता है, जिसका वह अध्ययन करता होता है।''

इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यदि कोई शोधकर्ता आदिवासी समाज में योग के प्रति झुकाव का अध्ययन करना चाहता है तो वह वेश बदलकर आदिवासी समाज में रहने लगता है। वह आदिवासियों के साथ इस तरह घुल–मिल जाता है कि वे उसे अपने समूह का सदस्य समझने लगते हैं और उन पर किसी तरह का संदेह नहीं करते। इस प्रकार शोधकर्ता उनके साथ रहकर ही उनके जीवन के संबंध में आवश्यक बातों की जानकारी हासिल करता जाता है और लिखता जाता है। जब उसका काम पूरा हो जाता है तो वह समूह छोड़कर चला जाता है। इस तरह सहभागी निरीक्षण विधि द्वारा किसी भी समूह या समाज का अध्ययन किया जा सकता है।

5.3.1.1 सहभागी अवलोकन के गुण –

समूह के सदस्यों के साथ घुल–मिलकर फिर उनके व्यवहार का अध्ययन करने के कारण सहभागी निरीक्षण विधि के निम्नलिखित गुण बनाये गये हैं –

(क) स्वाभाविक अध्ययन–

सहभागी अवलोकन का एक गुण यह है कि इसके द्वारा जो अध्ययन किया जाता है वह काफी स्वाभाविक होता है क्योंकि इस विधि में अध्ययन परिस्थिति को नियंत्रित नहीं किया जाता है बल्कि जिस परिस्थिति में कोई व्यवहार होता है उसी स्वाभाविक परिस्थिति में उसका अध्ययन किया जाता है। दूसरी मुख्य बात यह है कि समूह के सदस्य निरीक्षक को अपने ही समूह का सदस्य समझ कर स्वाभाविक रूप से व्यवहार करते हैं। यह गुण असहभागी निरीक्षण में नहीं है।

(ख) उपयुक्त अध्ययन–

इस प्रकार के निरीक्षण में उपयुक्त अध्ययन संभव होता है। निरीक्षक समूह के बहुत निकट होता है और इसके सदस्यों के साथ निकट संपर्क स्थापित कर लेता है। इस प्रकार उसे सदस्यों के व्यवहारों का समुचित रूप से अध्ययन करने का अवसर मिलता है।

(ग) वास्तविक अध्ययन–

इस निरीक्षण विधि द्वारा जो अध्ययन किया जाता है, वह अधिक वास्तविक होता है। यहाँ निरीक्षक बहुत नजदीक से सदस्यों का अध्ययन अर्थात् सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन स्वाभाविक परिस्थिति में करता है।

(घ) निरीक्षित की सुविधा–

इस विधि में निरीक्षण करते समय किसी समूह के सदस्यों को किसी तरह की असुविधा महसूस नहीं होती है। वे निरीक्षक को अजनबी नहीं बल्कि अपने ही समूह का सदस्य समझने लगते हैं। इस कारण उसकी उपस्थिति में भी अन्तर्वैयक्तिक व्यवहार करते समय किसी तरह का संकोच नहीं होता है।

(च) गहन एवं विस्तृत अध्ययन–

इस विधि में निरीक्षक को गहन अध्ययन करने का अवसर मिलता है। वह समूह के सदस्यों के व्यवहारों तथा पारस्परिक प्रतिक्रियाओं का अध्ययन बिल्कुल नजदीक से करता है। इसलिए, अध्ययन काफी गहन होता है। फिर, वह भिन्न–भिन्न परिस्थितियों में एक लंबे समय तक अध्ययन करता है। इसलिए, अध्ययन काफी विस्तृत होता है।

5.3.1.2 सहभागी अवलोकन की सीमायें–

सहभागी अवलोकन में उपर्युक्त गुणों के होते हुए भी निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं–

(क) वस्तुनिष्ठता तथा तटस्थता का अभाव–

समूह के सदस्यों के साथ रहते–रहते निरीक्षक में समूह के प्रति मोह–माया विकसित हो जाती है। ऐसी हालत में उसका दृष्टिकोण वास्तव में तटस्थ नहीं रह पाता है। फलतः उसका अध्ययन पक्षपातपूर्ण हो जाता है। यह दोष असहभागी निरीक्षण में नहीं है।

(ख) सीमित क्षेत्र–

कुछ परिस्थितियाँ ऐसी है जहाँ व्यवहारों का अध्ययन सहभागी निरीक्षण से संभव नहीं हैं। कारण, उन परिस्थितियों में शामिल होने की अनुमति निरीक्षक को नहीं मिलती है। डाकुओं के सामाजिक जीवन, वेश्याओं के अन्तर्वैयक्तिक व्यवहारों, बलात्कारों, परपीड़कों तथा आत्मपीड़कों का अध्ययन इस विधि से संभव नहीं है जो असहभागी निरीक्षण विधि से संभव है।

(ग) चूक का खतरा–

समूह तथा समूह के सदस्यों के साथ घनिष्ठ संबंध तथा अधिक परिचय होने के कारण कभी–कभी निरीक्षक आवश्यक बातों के निरीक्षण में चूक जाता है। लेकिन यदि निरीक्षक सावधान हो तो यह खतरा दूर हो सकता है।

(घ) दलबन्दी का खतरा–

सहभागी निरीक्षण में अधिक घनिष्ठता तथा नजदीकी के कारण इस बात का खतरा बना रहता है कि निरीक्षक दलबन्दी का शिकार हो जाये। ऐसा इसलिए कि साथ रहने के कारण समूह तथा उसके सदस्यों के प्रति निरीक्षक में मोहमाया उत्पन्न हो सकती है। लेकिन, यह खतरा असहभागी निरीक्षण में नहीं है।

(च) निरीक्षक की कठिनाई–

निरीक्षक समूह के साथ रहता है और सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है और उसे लिखता जाता है। यह एक कठिन कार्य है। एक ओर उसे समूह के सदस्य के रूप में और दूसरी ओर निरीक्षक के रूप में भूमिका निभानी रहती है जो वस्तुतः कठिन है। यह कठिनाई असहभागी निरीक्षण में नहीं है।

5.3.2 असहभागी अवलोकन–

असहभागी अवलोकन में निरीक्षक समूह से अलग रहकर समूह के सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है। समूह के सदस्यों को इस बात की जानकारी रहती है कि अमुक अनुसंधानकर्ता या निरीक्षक उनके व्यवहारों का अध्ययन करने के लिए आया हैं। इसे एक उदाहरण से समझा जा सकता है। मान लीजिए कि एक मनोवैज्ञानिक आदिवासियों के व्यवहारों तथा पारस्परिक क्रियाओं के अध्ययन के लिए आदिवासियों के समाज में जाता है और उनके व्यवहारों का निरीक्षण करता है। आवश्यकता के अनुसार वह कई बार उनके पास जाकर उनके व्यवहारों का अध्ययन करता है तथा आवश्यक सूचनायें हासिल कर लेता है। यहाँ वह आदिवासी समाज का सदस्य नहीं बनता, बल्कि बाह्य व्यक्ति के रूप में उस समाज के व्यवहारों का अध्ययन करता है। अतः इस प्रकार का अध्ययन असहभागी अवलोकन कहलायेगा।

5.3.2.1 असहभागी अवलोकन के गुण–

असहभागी अवलोकन सहभागी अवलोकन से भिन्न होता है। इसमें शोधकर्ता एक सम्मानित व्यक्ति के रूप में अध्ययन–समूह का निरीक्षण करता है। इस विधि के निम्नलिखित गुण बताये गये हैं :–

(क) तटस्थ अध्ययन–

यहाँ निरीक्षक उस समूह में शामिल नहीं होता है, जिसके सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन वह करता है। सदस्यों के साथ उसका कोई गहरा संपर्क नहीं रहता है। इसलिए, उसकी मनोवृत्ति या दृष्टिकोण उस समूह के प्रति तटस्थ होता है। इसलिए, उसका अध्ययन या निरीक्षण भी तटस्थ तथा अपक्षपाती होता है।

(ख) वस्तुनिष्ठ अध्ययन–

किसी समूह व्यवहार अथवा व्यक्ति व्यवहार का अध्ययन करते समय असहभागी निरीक्षक का दृष्टिकोण वस्तुनिष्ठ होता है। समूह से अलग होने के कारण उसके प्रति कोई मोहमाया नहीं होती हैं। उसकी मनोवृत्ति तटस्थ होती है। फलतः उसका अध्ययन काफी अंशों में वस्तुगत होता है। यह गुण सहभागी निरीक्षण में नहीं है।

(ग) निरीक्षक को सुविधा–

असहभागी निरीक्षक समूह से अलग रहकर ही उसके सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है। इस बात को समूह के सदस्य भी जानते हैं। अतः निरीक्षक निःसंकोच होकर सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है। लेकिन, सहभागी निरीक्षक को इस बात का भय लगा रहता है कि कहीं समूह के सदस्य उनके असली चेहरा पहचान लें तथा उनका अभिप्राय जान न लें।

(घ) समूह का सहयोग–

जब निरीक्षक किसी समूह या समाज में व्यक्तियों के अध्ययन के लिए जाता है तो लोग उसे सम्मान देते हैं तथा उसके साथ सहयोग करते हैं। जातिगत दंगे के उपरान्त जब कोई अनुसंधानकर्ता अध्ययन हेतु वहाँ पहुँचता है तो प्रायः सभी जातियों के लोग उनके साथ सहयोग करते हैं।

(च) विस्तृत क्षेत्र–

असहभागी निरीक्षण–विधि का प्रयोग उन परिस्थितियों में भी संभव होता हे, जहाँ सहभागी निरीक्षण–विधि का व्यवहार संभव नहीं हो पाता है। डाकुओं या वेश्याओं के पारस्परिक व्यवहारों का अध्ययन असहभागी निरीक्षक आसानी से कर सकता है, परन्तु सहभागी निरीक्षक नहीं।

5.3.2.2 असहभागी अवलोकन की सीमायें–

(क) निरीक्षक के प्रति संदेह–

असहभागी निरीक्षक को समूह के सदस्य संदेह की दृष्टि से देखते हैं। हालाँकि निरीक्षक अपना उद्‌देश्य सदस्यों को बतला देता है, फिर भी उसके अभिप्राय पर संदेह करते हैं। परन्तु इस अवगुण के विरोध में भी तर्क दिये गये हैं। तर्क देते हुए वैज्ञानिकों का कहना है कि दो–तीन दिन के बाद से व्यक्तियों का व्यवहार बिल्कुल ही सामान्य एवं स्वाभाविक हो जाता है। ब्लैक तथा चैंपियन (1976) ने इस पर टिप्पणी करते हुए कहा है, ''अभी तक कोई ऐसा सबूत नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जाये कि असहभागी प्रेक्षक की उपस्थिति का कुप्रभाव अध्ययन किये जाने वाले व्यवहार पर पड़ता है।''

(ख) अस्वाभाविक अध्ययन–

समूह के सदस्य निरीक्षक को अजनबी तथा बाहरी समझते हैं। इसलिए वे जानबूझकर उसके सामने अस्वाभाविक व्यवहार करते हैं। ऐसे व्यवहारों के अध्ययन से प्राप्त परिणाम विश्वसनीय नहीं होते हैं।

(ग) अवास्तविक अध्ययन–

निरीक्षक पर संदेह करने के कारण समूह के सदस्य अपनी वास्तविकता छिपाते हैं या ऐसा प्रयास करते हैं जिसके कारण उनके व्यवहार अस्वाभाविक तथा अवास्तविक बन जाते हैं, जो अध्ययन को प्रभावित करता है, फलस्वरूप, सही सूचना प्राप्त नहीं हो पाती है।

(घ) अनुपयुक्त अध्ययन–

समूह तथा असहभागी निरीक्षक के बीच काफी दूरी होती है। इसलिए, वह समूह के सदस्यों के व्यवहारों का पूरा–पूरा अध्ययन नहीं कर पाता है। अध्ययन न तो गहन हो पाता है और न विस्तृत ही।

(च) निरीक्षित की असुविधा–

इस प्रकार के निरीक्षण में उन लोगों को बड़ी असुविधा का अनुभव होता है, जिनका अध्ययन करना निरीक्षक का उद्देश्य होता है। समूह के सदस्य उसकी उपस्थिति में पारस्परिक प्रतिक्रिया करते समय काफी असुविधा तथा कठिनाई महसूस करते हैं।

अभ्यास प्रश्न–क

1. **वह अवलोकन जिसमें निरीक्षक समूह के साथ रहकर समूह के सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है, कहलाता है..............(सहभागी अवलोकन/सहभागी अवलोकन)**

2. **जिकमण्ड के अनुसार अवलोकन विधि द्वारा व्यवहार की कितनी विभाओं का अध्ययन किया जाता है?**

5.4 सहसम्बन्धात्मक शोध विधि–

सह सम्बन्धात्मक शोध भी आनुभविक शोध का एक प्रकार है। इस शोध का स्वरूप भी प्रयोगात्मक होता है तथा इसमें भी समस्या का तथ्यपूर्ण मूल्यांकन किया जाता है। परन्तु सामान्य अवलोकन की तुलना में सह–सम्बन्धात्मक शोध में शोधकर्ता द्वारा स्वतंत्र चर में अपेक्षित हस्तचालन करके फिर उसके प्रभाव का आश्रित चर पर अवलोकन किया जाता है। हस्तचालन या जोड़–तोड़ का कार्य शोधकर्ता सीधे न करके चयन प्रक्रिया द्वारा करता है

तथा फिर एक स्वाभाविक परिस्थिति में इनके विभिन्न स्तरों के प्रभाव का अध्ययन करता है कि कहाँ तक स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों का प्रभाव आश्रित चर पर पड़ रहा है या किस सीमा तक आश्रित चर की निर्भरता स्वतंत्र चर पर है। दूसरे शब्दों में, सह सम्बन्धात्मक शोध में शोधकर्ता यह देखना चाहता है कि स्वतंत्र चर में चयन प्रक्रिया द्वारा किया गया जोड़–तोड़ आश्रित चर से किस प्रकार सम्बन्धित है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई शोधकर्ता समस्या समाधान योग्यता और बुद्धि के बीच सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहता है। इसके लिए एक ही आयु–समूह के विभिन्न बुद्धि–स्तर वाले बच्चों का वह चयन करेगा और फिर प्रत्येक बुद्धि–स्तर वाले बच्चों की समस्या समाधान क्षमता का मापन करेगा। शोधकर्ता द्वारा यहाँ बुद्धि के विभिन्न स्तरों का निर्धारण सीधे न करके चयन द्वारा किया जायेगा क्योंकि बुद्धि की उपज नहीं हो सकती, उसे जब चाहें बढ़ा दें और जब चाहें घटा दें– ऐसा नहीं हो सकता। अतः यहाँ बुद्धि एक ऐसा चर है जो यदि स्वतंत्र चर के रूप में कार्यरत है तो शोधकर्ता उसका हस्तचालन यानी, उसमें जोड़–तोड़ चयन प्रक्रिया के द्वारा ही कर सकता है। जैसे यहाँ शोधकर्ता यदि बुद्धि स्तर के आधार पर बच्चों का तीन समूह बनाता है तो वह एक समूह में 90 से 110 बुद्धि–लब्धि वाले बच्चे को रख सकता है, दूसरे समूह में 70 से 90 के मध्य बुद्धि–लब्धि वाले बच्चे को रख सकता है तथा तीसरे समूह में 110 से ऊपर के बुद्धि–लब्धि वाले बच्चे को रख सकता है। इन तीनों ही समूह में जो भी प्रयोज्य (बच्चे) रखे जायेंगे उनमें बुद्धि–लब्धि की मात्रा पहले से उपलब्ध है। शोधकर्ता का काम तो उनकी बुद्धि को मापना, बुद्धि–लब्धि को निर्धारित करना और फिर बुद्धि–लब्धि के आधार पर सम्बन्धित समूह में डाल देना है। यह कार्य शोधकर्ता चयन प्रक्रिया के द्वारा करता है। फिर इन तीनों ही समूह के बच्चों को किसी समस्या का समाधान करने को देता है और यह निरीक्षण करता है कि कौन–सा समूह समस्या समाधान की योग्यता में बेहतर है तथा कौन–सा मध्य स्तर या निम्न स्तर का है। शोधकर्ता तीनों ही समूह की औसत समस्या–समाधान क्षमता का निर्धारण कर इस निष्कर्ष पर पहुँच सकता है कि जिन बच्चों में अधिक बुद्धि होती है उनमें समस्याओं के समाधान की योग्यता भी अधिक होती है।

स्पष्ट है कि प्रस्तुत उदाहरण में बुद्धि एक ऐसा स्वतंत्र चर है जिसमें चयन द्वारा जोड़–तोड़ ही संभव है। ऐसा नहीं हो सकता कि शोधकर्ता जब चाहे किसी बच्चे की बुद्धि में वृद्धि कर दे और जब चाहे कमी कर दें। इस तरह के स्वतंत्र चर को जिसमें हस्तचालन चयन द्वारा ही संभव है, 'टाइप–एस' स्वतंत्र चर कहते हैं। व्यक्ति की आयु, उसका यौन, उसकी संवेगात्मकता आदि ऐसे चर हैं जिनका हस्तचालन चयन द्वारा ही संभव है। इन्हें सीधे हस्तचालित नहीं किया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते है कि सह–सम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर का आश्रित चर पर प्रभाव तो देखा जाता है, परन्तु स्वतंत्र चर का हस्तचालन सीधे न करके चयन द्वारा किया जाता है। चूँकि शिक्षा, मनोविज्ञान, योग आदि के क्षेत्र में स्वतंत्र चर प्रायः इस प्रकार के होते हैं कि उनका हस्तचालन चयन द्वारा ही संभव होता है, अतः इन क्षेत्रों में सह–सम्बन्धात्मक शोध का प्रचलन काफी अधिक है। मनोविज्ञान एवं योग में सह–सम्बन्धात्मक शोध का प्रयोग ज्यादातर मनोवैज्ञानिक परीक्षण के निर्माण तथा उपयोग में किया जाता है। इसके अतिरिक्त, विकासात्मक मनोविज्ञान, पशु, मनोविज्ञान आदि क्षेत्रों में भी सह–सम्बन्धात्मक शोध किए जाते हैं।

5.4.1 सह सम्बन्धात्मक शोध के गुण–

सह–सम्बन्धात्मक शोध का अपना खास महत्व है। इस शोध विधि की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इसके द्वारा अध्ययन किए जाने वाले चर प्राकृतिक परिवेश में विराजमान होते हैं और उन्हें उसी रूप में उपयुक्त मापनी द्वारा माप लिया जाता है। प्रयोगात्मक शोध में स्वतंत्र चर में सीधे हस्तचालन के कारण यह गुण नहीं पाया जाता।

सह–सम्बन्धात्मक शोध की दूसरी विशेषता होती है–चरों के बीच कार्यात्मक सम्बन्ध का सममित होना। सह–सम्बन्धात्मक शोध एक ऐसा शोध है जिसमें यदि दो चरों (क और ख) के बीच उच्च सह–सम्बन्ध पाया जाता है तो हम जिस दावे के साथ कह सकते हैं कि चर 'क' ने चर 'ख' को प्रभावित किया, ठीक उतने ही दावे के साथ यह भी कह सकते हैं कि चर 'क' ने चर 'क' को प्रभावित किया। यानी, सह–सम्बन्धात्मक शोध में जिस प्रकार स्वतंत्र चर के आधार पर आश्रित चर का पूर्वकथन कर सकते हैं, उसी प्रकार आश्रित चर के आधार पर स्वतंत्र चर का पूर्व कथन भी कर सकते हैं। इसे निम्नवत् दर्शाया जा सकता है–

क ⇄ ख

यानी, 'क' जितना प्रभावित 'ख' को कर रहा है, 'ख' भी उतना ही प्रभावित 'क' को भी कर रहा है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए, एक शोधकर्ता निर्भरता उन्मुखता का किशोरों की उपलब्धि–अभिप्रेरणा पर प्रभाव देखना चाहता है। समान उम्र और सेक्स के 10 प्रयोज्यों पर वह निर्भरता उन्मुखता और उपलब्धि–अभिप्रेरणा मापनी का प्रयोग कर प्रदत्त संग्रहित करता है। फिर प्रयोज्यों की निर्भरता–उन्मुखता एवं उपलब्धि–अभिप्रेरणा के बीच सह–सम्बन्ध निकालता है जो उच्च ऋणात्मक प्राप्त होता है। यानी, जिन प्रयोज्यों में निर्भरता उन्मुखता ज्यादा पायी जाती है उनमें उपलब्धि अभिप्रेरणा कम पाई जाती है। यहाँ प्राप्त परिणाम न सिर्फ यह बतलाता है कि निर्भरता–उन्मुखता उपलब्धि–अभिप्रेरणा का निर्धारक है बल्कि ठीक विपरीत यह भी कहा जा सकता है कि उपलब्धि अभिप्रेरणा निर्भरता–उन्मुखता का निर्धारक है क्योंकि हो सकता है कि जिन किशोरों में उपलब्धि–अभिप्रेरणा निम्न स्तर की हो उनमें निर्भरता–उन्मुखता अधिक पाई जाती हो। इस प्रकार, सह–सम्बन्धात्मक शोध द्वारा प्राप्त परिणाम स्वतंत्र चर और आश्रित चर में सममित कार्यात्मक सम्बन्ध के सूचक होते हैं न कि असममित– जैसा कि प्रयोगात्मक शोध में होता है।

5.4.2 सह सम्बन्धात्मक शोध की सीमाएं–

सह–सम्बन्धात्मक शोध की सीमाओं में एक है चरों का ढीला नियंत्रण। चूँकि सह–सम्बन्धात्मक शोध में कुछ ऐसे चर होते हैं जिनका सही–सही नियंत्रण करना शोधकर्ता के लिए कठिन होता है, अतः इसका कुप्रभाव आश्रित चर पर पड़ने से रोका नहीं जा सकता। जैसे– ऊपर दिए गए उदाहरण में शोधकर्ता यदि समस्या समाधान योग्यता और बुद्धि के बीच के सम्बन्ध का अध्ययन करना चाहता है तो शोध में शामिल किए गये

सभी प्रयोज्यों की आयु का एक समान होना आवश्यक है अन्यथा, आयु के साथ मिलकर समस्या समाधान योग्यता को प्रभावित कर सकता है। परन्तु, चूँकि आयु का नियंत्रण चयन प्रक्रिया द्वारा किया जाता है, अतः यह नियंत्रण प्रयोगात्मक शोध की तरह सख्त न होकर ढीले किस्म का होता है।

सह–सम्बन्धात्मक शोध की दूसरी सीमा है स्वतंत्र चर और आश्रित चर के बीच कार्य–कारण सम्बन्ध या कारण एवं परिणाम सम्बन्ध का निश्चित न होना। इस शोध के आधार पर जो परिणाम प्राप्त होते हैं उससे यह पता नहीं चलता कि प्राप्त परिणाम का कारण क्या है? उदाहरण स्वरूप, यदि अधिक बुद्धि वाले बच्चे में समस्या समाधान की योग्यता अधिक हो तो इससे यह पता नहीं चलता कि समस्या समाधान योग्यता का अधिक होना अधिक बुद्धि का परिणाम है। यानी, बुद्धि कारण है और समस्या समाधान फल है। समस्या समाधान योग्यता का बेहतर होना आयु अधिक होने, अनुभव अधिक होने के कारण भी होता है। इस प्रकार, सह–सम्बन्धात्मक शोध चरों के बीच कारण एवं परिणाम सम्बन्ध के निश्चितता की मात्रा कम कर देता हैं।

अभ्यास प्रश्न–ख

1. **सहसम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर का स्वरूप होता है–**

   (क) टाइप 'ई' (ख) टाइप 'एस'।

2. **सहसम्बन्धात्मक शोध में स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के बीच 'कारण एवं परिणाम' सम्बन्ध होता है?**

   (क) निश्चित (ख) अनिश्चित

5.5 प्रयोगात्मक शोध विधि–

प्रयोगात्मक विधि भी निरीक्षण की ही एक विधि है। इस विधि द्वारा नियंत्रित वातावरण या परिस्थिति में अध्ययन किया जाता है। प्रयोग किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन की सर्वश्रेष्ठ विधि होती है, क्योंकि प्रयोग द्वारा प्राप्त तथ्य एवं परिणाम सर्वाधिक प्रामाणिक, विश्वसनीय एवं वैध होते हैं। योग एवं मनोविज्ञान में सर्वाधिक महत्वपूर्ण योगदान प्रयोगात्मक विधि का ही रहा है। इस विधि में प्राणी के व्यवहारों का क्रमबद्ध अध्ययन प्रयोग के आधार पर किया जाता है। प्रयोग नियंत्रित अवस्था में किए जाने वाले क्रमबद्ध निरीक्षण को कहते हैं। यह निरीक्षण पूर्वनियोजित योजना के अनुसार किया जाता है। इसलिए कुछ मनोवैज्ञानिक इसे नियोजित निरीक्षण के नाम से भी पुकारते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि प्रयोगकर्ता पहले से ही प्रयोग का विषय, प्रयोगात्मक समस्या एवं प्रयोग की संपूर्ण प्रक्रिया तय कर लेता है और तब निरीक्षण करता है। किसी भी प्रयोग में दो व्यक्तियों का होना जरूरी है– (क) प्रयोगकर्ता एवं (ख) प्रयोज्य। जो प्रयोग करता है उसे प्रयोगकर्ता कहते हैं और जिस पर प्रयोग किया जाता है उसे प्रयोज्य कहते हैं। प्रयोगकर्ता प्रयोगशाला में पूर्वनिश्चित एवं

पूर्वनिर्धारित अवस्था में किसी स्वतंत्र चर में जोड़–तोड़ करता है और उसका प्रयोज्य की अनुभूतियों एवं व्यवहारों पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण वस्तुनिष्ठ एवं निष्पक्ष ढंग से करता है। निरीक्षण हेतु प्रयोगकर्ता आवश्यकतानुसार विशिष्ट प्रकार के यंत्रों एवं सामग्रियों का भी उपयोग करता है और इस तरह से प्राप्त तथ्यों का सांख्यिकीय विश्लेषण कर ठोस एवं प्रामाणिक परिणाम प्राप्त करता है जिसके आधार पर वह प्राणी के व्यवहारों से संबंधित नियमों एवं सिद्धांतों की स्थापना एवं व्याख्या करता है। प्रयोग कैसे किया जाता है, यह जानने के पहले यह जान लेना आवश्यक है कि परिवर्त्य या चर क्या है?

5.5.1 परिवर्त्य या चर–

परिवर्त्य या चर उन परिस्थितियों या घटनाओं को कहते हैं, जो सदा एक जैसी स्थिति में नहीं रहते। अर्थात, वे प्रतिक्षण बदलते रहते हैं अतः हम कह सकते हैं कि परिवर्त्य वे हैं, जो बदलते रहते हैं। यह बदलाव या परिवर्तन घटनाओं के प्रकार या उसके परिमाण अथवा सत्ताकाल में होता हैं, जैसे– प्रकाश, ताप, समय, मौसम, शोर–गुल, श्वास लेने की क्रिया इत्यादि में परिवर्तन का होना। उदाहरण के लिए शोरगुल को लें। शोर–गुल की अवस्था में उत्पन्न आवाज निरंतर रूक–रूककर, थोड़े समय के लिए या अधिक समय के लिए हो सकती है। इसी तरह श्वास की क्रिया भी एक परिवर्त्य है, क्योंकि यह नियमित या अनियमित, धीमी या जल्दी–जल्दी गति की हो सकती है। अस्तु परिवर्त्य से हमारा तात्पर्य प्राणी या उसके वातावरण की उन परिस्थितियों व घटनाओं से है, जिनके प्रकार एवं परिमाण सदा एक जैसे नहीं रहते, वे बदलते रहते हैं अथवा वे विभिन्न रूपों या प्रकारों के होते हैं। प्रयोग में प्रयोगकर्ता किन्हीं दो या दो से अधिक परिवर्त्यो के बीच के आपसी संबंधों की खोज करता है अथवा किन्हीं दो परिवर्त्यो के बीच के खोजे हुए संबंधों को पुनः जाँच कर संपुष्ट करता है। इस प्रकार प्रयोग दो प्रकार के होते हैं–अन्वेषणात्मक एवं संपुष्टात्मक। जैसे, प्रयोगकर्ता यदि यह जानने की कोशिश करता है कि प्रकाश की तीव्रता और रंगों के प्रत्यक्षीकरण में क्या संबंध है, तापक्रम में वृद्धि होने पर गर्मी की संवेदना में क्या अंतर पड़ता है; सफलता या विफलता की अनुभूति अथवा प्रेरणा का किसी कार्य–संपादन की कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है आदि; तो इस प्रकार के प्रयोगों को 'अन्वेषणात्मक' प्रयोग कहते हैं। लेकिन, जब प्रयोगकर्ता इस तथ्य की जाँच करता है कि अभ्यास के फलस्वरूप कार्य–संपादन की कुशलता में वृद्धि होती है या लगातार प्रयास करने के फलस्वरूप थकान होती है तब इस प्रकार के प्रयोग को संपुष्टात्मक प्रयोग कहते हैं। संपुष्टात्मक प्रयोग में पहले से स्थापित तथ्य की पुनः जाँच की जाती है।

5.5.2 परिवर्त्यो के प्रकार–

विभिन्न परिवर्त्यो के बीच परस्पर निर्भरता का संबंध रहता है। अर्थात एक परिवर्त्य दूसरे परिवर्त्य पर आश्रित रहता है। अतः, किसी एक परिवर्त्य की स्थिति में किसी प्रकार का हेर–फेर या बदलाव होता है तो इसका प्रभाव 'आश्रित या निर्भर करने वाले परिवर्त्य' पर भी पड़ता है। जैसे– शिक्षण–विषय की लंबाई या अभ्यास की मात्रा में वृद्धि या कमी होने का असर सीखने की क्रिया पर पड़ता है। अतएव, सीखने की क्रिया विषय की लंबाई या शिक्षण–प्रयास की मात्रा पर निर्भर करता है और इस प्रकार इन दोनों प्रकार के

परिवर्त्यो के बीच परस्पर निर्भरता का संबंध पाया जाता है। इस दृष्टिकोण से परिवर्त्यो को दो वर्गो में बाँटा जाता हैं–

(क) आश्रित परिवर्त्य

(ख) स्वतंत्र परिवर्त्य

(ग) संगत या बहिरंग परिवर्त्य–

(क) आश्रित परिवर्त्य –

जो परिवर्त्य किसी दूसरे परिवर्त्य पर आश्रित होते हैं, उन्हें आश्रित परिवर्त्य कहते हैं। ऐसे परिवर्त्य दूसरे परिवर्त्यो (खासकर स्वतंत्र परिवर्त्यो) में परिवर्तन या बदलाव लाये जाने पर अपनी आश्रितता के कारण स्वतः परिवर्तित हो जाते हैं। यानी, ऐसे चरों के प्रकार या परिमाण में किसी प्रकार का बदलाव या परिवर्तन इससे संबद्ध दूसरे परिवर्त्य (स्वतंत्र. परिवर्त्य) में परिवर्तन होने पर निर्भर करेगा। इसी निर्भरता के गुण के कारण इसे आश्रित परिवर्त्य कहते हैं। उदाहरण के लिए, औद्योगिक निष्पादन एक आश्रित परिवर्त्य है, क्योंकि यह औद्योगिक वातावरण, कर्मचारी की योग्यता, अभिप्रेरणा आदि परिवर्त्यो पर निर्भर करता है।

प्रयोगों में प्रायः आश्रित परिवर्त्यो के संबंध में प्रयोगकर्ता पूर्व कथन करने की कोशिश करता है। जैसे– यदि कोई प्रयोगकर्ता प्रयोग द्वारा निष्पादन पर तापमान के प्रभाव का अध्ययन करता है तो वह निष्पादन पर तापमान के पड़ने वाले प्रभाव की भविष्यवाणी करता है तथा इसी भविष्यवाणी की सत्यता को वह प्रयोग करके सिद्ध करता है। इसी प्रकार, कपालभाती प्रणयाम का व्यक्ति की चिन्ता पर प्रभाव यदि कोई योगशास्त्री देखना चाहता है तो यहाँ कपालभाती स्वतंत्र चर के रूप में कार्य करेगा तथा चिन्ता आश्रित चर के रूप में।?

(ख) स्वतंत्र परिवर्त्य–

जो परिवर्त्य किसी दूसरे परिवर्त्य (आश्रित परिवर्त्य) पर स्वतंत्र रूप से अपना प्रभाव डालते हैं, उन्हें स्वतंत्र परिवर्त्य कहते हैं। इन्हें स्वतंत्र परिवर्त्य इसलिए कहा जाता है क्योंकि ये स्वतंत्र रूप से किसी आश्रित परिवर्त्य पर अपना प्रभाव डालते हैं। प्रयोग की अवधि में इनकी स्थिति में परिवर्तन लाने या हेर–फेर अथवा जोड़–तोड़ करने हेतु प्रयोगकर्ता स्वतंत्र रहता है और जोड़–'तोड़ करके आश्रित परिवर्त्य पर पड़ने वाले प्रभावों का निरीक्षण या अध्ययन करता है। इस प्रकार, प्रयोग हेतु चुने गए स्वतंत्र परिवर्त्य को नियंत्रित नहीं किया जाता, परन्तु किसी आश्रित परिवर्त्य को प्रभावित करने वाले अन्य स्वतंत्र परिवर्त्यो को नियंत्रित रखा जाता है। उदाहरण के लिए, निष्पादन पर तापमान के प्रभाव को लें। चूँकि यहाँ तापमान का प्रभाव निष्पादन पर पड़ता है तथा प्रयोगकर्ता इसकी स्थिति में परिवर्तन लाकर या हेर–फेर करके (जैसे, एक अवस्था में कम तापमान रखकर और दूसरी अवस्था में अधिक तापमान रखकर) इसके प्रभाव का अध्ययन करता है, इसलिए यहाँ तापमान एक स्वतंत्र परिवर्त्य है।

किसी प्रयोग में स्वतंत्र परिवर्त्य को जिस स्थिति में रखा जाता है उसके अनुसार इसके दो रूप होते हैं– 1. प्रयोगात्मक परिवर्त्य एवं 2. नियंत्रित परिवर्त्य। प्रयोगात्मक परिवर्त्य से तात्पर्य वैसे स्वतंत्र परिवर्त्यो से है जिनके प्रभाव का अध्ययन किया जाता है तथा जिनमें प्रयोगकर्ता जोड़–तोड़ या हेर–फेर करता है। अर्थात, जिस परिवर्त्य के प्रभाव का अध्ययन प्रयोगकर्ता किसी आश्रित परिवर्त्य पर करता है, उसे प्रयोगात्मक परिवर्त्य कहते हैं। किसी एक प्रयोग में आश्रित परिवर्त्य पर प्रायः एक या दो परिवर्त्यो के प्रभावों का ही अध्ययन किया जाता है जबकि उक्त आश्रित परिवर्त्य पर कई स्वतंत्र परिवर्त्यो का प्रभाव पड़ सकता है। प्रयोग की अवधि में ऐसे स्वतंत्र परिवर्त्यो को (जिनके प्रभाव का अध्ययन नहीं करना है) नियंत्रित या स्थिर रखा जाता है। इसलिए इन्हें नियंत्रित परिवर्त्य कहते हैं। ऐसे परिवर्त्यो को 'संगत या बहिरंग' परिवर्त्य की संज्ञा भी दी जाती है, क्योंकि आश्रित परिवर्त्य पर इनके प्रभाव संगत होते है। परंतु, चूँकि प्रयोगकर्ता का उद्‌देश्य इन संगत परिवर्त्यो के प्रभावों का अध्ययन करना नहीं होता, इसलिए ऐसे संगत परिवर्त्यो को बहिरंग परिवर्त्य के नाम से पुकारा जाता है। प्रयोग की अवधि में ऐसे परिवर्त्यो को नियंत्रित रखा जाता है, ताकि आश्रित परिवर्त्य पर इनका कोई असर न पड़े।

(ग) संगत या बहिरंग परिवर्त्य–

बहिरंग परिवर्त्य वैसे परिवर्त्य हैं जिन्हें यदि प्रयोगकर्ता द्वारा नियंत्रित नहीं किया जाय तो वह प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर के साथ मिलाकर आश्रित चर को प्रभावित कर सकते है।

जैसै – निष्पादन पर तापमान के प्रभाव का अध्ययन करने के क्रम में तापमान प्रयोगात्मक परिवर्त्य के रूप में प्रयुक्त किया जाएगा, और प्रयोगकर्ता एक अवस्था में कम तापमान पर निष्पादन का अवलोकन करेगा जबकि दूसरी अवस्था में अधिक तापमान पर। परंतु, निष्पादन पर कुछ अन्य स्वतंत्र परिवर्त्यो के भी प्रभाव पडेंगे; जैसे– शोरगुल, आद्रता, पुरस्कार, आयु इत्यादि। आश्रित परिवर्त्य पर इन स्वतंत्र परिवर्त्यो के प्रभावों को पड़ने से प्रयोगकर्ता रोकेगा अथवा उन्हें नियंत्रित करेगा। इस प्रकार, ये नियंत्रित परिवर्त्य ही संगत या बहिरंग परिवर्त्य कहे जाएँगे।

बहिरंग परिवर्त्य भी तीन तरह के होते हैं–

क. प्राणी या प्रयोज्य से संबंधित

ख. वातावरण या परिस्थिति से संबंधित

ग. प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं के क्रम से संबंधित।

इस प्रकार, प्रयोग नियंत्रित अवस्था में पूर्वनिश्चित एवं पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार किया जाता है। अर्थात, प्रयोग प्रारंभ से पूर्व प्रयोगकर्ता प्रयोग–संबंधी पूर्ण विवरण पहले से ही तैयार कर लेता है। प्रयोग की योजना बनाते समय प्रयोगकर्ता निम्नलिखित दो बातों पर विशेष ध्यान देता है– (क) प्रयोग की समस्या का चुनाव एवं (ख) प्रयोग की योजना का चुनाव।

प्रयोगात्मक समस्या सुनिश्चित कर लेने के बाद प्रयोगकर्ता प्रयोग की एक पूरी योजना बना लेता है। इस योजना में वह प्रयोग की संपूर्ण प्रतिक्रियाओं का विवरण तैयार करता है, जैसे— स्वतंत्र परिवर्त्य की स्थिति में परिवर्तन लाने या हेर—फेर करने की क्रमबद्ध योजना, आश्रित परिवर्त्य को प्रभावित करने वाले अन्य स्वतंत्र परिवर्त्यो को किस प्रकार नियंत्रित किया जाएगा, आश्रित परिवर्त्य को किस प्रकार मापा जाएगा आदि। इसे उदाहरण द्वारा समझें—

मान लें, कोई मनोवैज्ञानिक, अभ्यास का प्रभाव मनुष्य के सीखने की क्रिया पर क्या पड़ता है, जानना चाहता है। यह 'प्रयोग' इस प्रकार किया जाएगा। सबसे पहले प्रयोगकर्ता को यह विचार कर लेना होगा कि सीखने की क्रिया पर 'अभ्यास' के अतिरिक्त किन—किन बातों का प्रभाव पड़ता है। ध्यान देने पर मालूम होगा कि अभ्यास के अतिरिक्त थकान, स्वास्थ्य, शिक्षण—विधि, शिक्षण—विषय, किए हुए कार्य के परिणाम का ज्ञान, पुरस्कार अथवा दंड, इत्यादि का भी प्रभाव सीखने की क्रिया पर पड़ता है। इस प्रयोग में प्रयोगकर्ता को केवल अभ्यास का प्रभाव मालूम करना है। अतः अभ्यास के अतिरिक्त अन्य सभी प्रभावक तत्वों को वह नियंत्रित रखेगा। यह नियंत्रण इन परिवर्त्यो को समानावस्था में स्थिर रखकर किया जाएगा। इसीलिए इन्हें नियंत्रित परिवर्त्य अथवा स्थिर परिवर्त्य कहते हैं। इसके बाद प्रयोज्य को एक शिक्षण—कार्य दिया जाएगा, जो नवीनतम होगा। अभ्यास हेतु प्रयोज्य को उसी काम को बार—बार करने को दिया जाएगा—मान लें 20 बार। सभी प्रयासों में प्रयोज्य से उसी काम को एक ही तरह से कराया जाएगा। इस प्रकार, प्रयोग की पूरी अवधि में शिक्षण—कार्य और सीखने की विधि समानरखते हुए नियंत्रित किया जाएगा। थकान के प्रभाव को दूर करने के लिए ठीक आधे प्रयास के बाद (अर्थात 10 प्रयासों के बाद) थोड़ी देर केलिए विराम दिया जाएगा। प्रत्येक प्रयास में प्रयोज्य द्वारा उक्त कार्य को करने में लगे समय और कार्य—संपादन में होने वाली त्रुटियों या अशुद्धियों एवं प्रयोज्य के व्यवहारों को प्रयोगकर्ता वस्तुनिष्ठ निरीक्षण करके, नोट करता जाएगा। निश्चित प्रयास के बाद प्रयोज्य का अंतर्निरीक्षण प्रतिवेदन भी लिया जाएगा।

इस प्रकार, प्रयोगकर्ता को दो प्रकार के 'प्रदत्त' प्राप्त होंगे— (क) वस्तुनिष्ठ प्रदत्त एवं (ख) आत्मनिष्ठ प्रदत्त। वस्तुनिष्ठ प्रदत्त बाह्य रूप से निरीक्षण के फलस्वरूप प्राप्त सामग्री होती है, जैसे विभिन्न प्रयासों में लगा समय, अशुद्धियाँ एवं प्रयोज्य का व्यवहार। आत्मनिष्ठ प्रदत्त प्रयोज्य के आत्मनिरीक्षण अर्थात 'अंतर्निरीक्षण प्रतिवेदन' पर आधारित होता है। इस तरह के प्रदत्त से प्रयोज्य की मानसिक अवस्था का पता चलता है।

इस प्रकार, प्राप्त सामग्री की सहायता से सीखने की क्रिया पर पड़ने वाले प्रभाव को जानने हेतु आवश्यक है कि प्राप्त सामग्री का निरूपण अथवा विश्लेषण किया जाए। यह निरूपण दो प्रकार से होगा— सांख्यिकीय या परिमाण—संबंधी निरूपण एवं गुण—संबंधी निरूपण। गुण—संबंधी निरूपण अंतर्निरीक्षण प्रतिवेदन पर आधारित होगा, जबकि परिमाण संबंधी निरूपण के लिए सांख्यिकीय विधि का उपयोग किया जाएगा। इन दोनों प्रकार के निरूपणों के बाद ही सीखने की क्रिया पर अभ्यास का क्या प्रभाव पड़ता है, इस संबंध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है। साथ ही, सही तथा विश्वसनीय निष्कर्ष के लिए केवल एक व्यक्ति पर किया प्रयोग पर्याप्त नहीं होगा। इसके लिए आवश्यक है कि इसी प्रयोग को अनेक व्यक्तियों पर (जो हर दृष्टि से समान हों) किया जाए और यदि सभी

में करीब–करीब एक ही तरह का परिणाम प्राप्त हो तो इस प्रयोग से जो निष्कर्ष निकलेगा, उसकी सत्यता एवं विश्वसनीयता पर भरोसा किया जा सकता है। चिन्ता पर कपालभाती प्रणयाम का प्रभाव देखने हेतु या अवसाद पर सूर्यनमस्कार का प्रभाव देखने हेतु इस तरह का प्रायोगिक अध्ययन किया जा सकता है।

5.5.3 प्रयोगात्मक विधि के गुण–

प्रयोग एवं उसकी प्रक्रियाओं के वर्णन से स्पष्ट है कि प्रयोगात्मक विधि एक अत्यन्त ही उपयोगी एवं श्रेष्ठ विधि है। इसकी निम्नलिखित विशेषताएं है–

1. प्रयोगात्मक विधि में वस्तुनिष्ठ निरीक्षण द्वारा व्यक्ति के व्यवहार एवं अंतर्निरीक्षण द्वारा उसकी मानसिक अनुभूतियों–दोनों का अध्ययन किया जाता है। इस प्रकार, इस विधि में बाह्य निरीक्षण एवं अंतर्निरीक्षण दोनों विधियों का समन्वय है। फलस्वरूप, मनुष्य के अनुभव एवं व्यवहार–दोनों का अध्ययन संभव है। अतः, हम कह सकते हैं कि मनोविज्ञान की विषय–वस्तु का सही अध्ययन इसी विधि द्वारा संभव है।

2. चूँकि प्रयोग नियंत्रित अवस्था में किया जाता है, इसलिए इस विधि से प्राप्त परिणाम एवं निष्कर्ष अत्यधिक सही, वैध एवं विश्वसनीय होते हैं, क्योंकि प्राणी के व्यवहार को प्रभावित करने वाले तत्वों को नियंत्रित या स्थिर रखकर उन्हें प्रभावहीन बना दिया जाता है।

3. इस विधि की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें अध्ययन की परिस्थिति को जब और जितनी बार चाहें हू–ब–हू दुहराकर प्राप्त परिणाम की सत्यता को बार–बार जाँच सकते हैं। अतः, इस विधि से प्राप्त परिणामों को सत्यापित करने की पूरी गुंजाइश है, जो वैज्ञानिक अध्ययन का एक प्रधान गुण माना जाता है।

4. प्रयोगात्मक विधि से प्राप्त प्रदत्त गुणात्मक एवं परिमाणात्मक दोनों प्रकार के होते हैं, अतः इनके आधार पर मानव व्यवहार से संबद्ध ठोस निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं तथा उनके संबंध में सामान्य नियम भी बनाए जा सकते हैं।

5. इस विधि द्वारा प्राप्त परिणाम को अधिक विश्वसनीय एवं सार्थक बनाने हेतु समान अवस्था में एक से अधिक व्यक्तियों पर प्रयोग किए जाते हैं और जब सभी से करीब–करीब समान प्रदत्त प्राप्त होते हैं तब प्राप्त परिणाम को विश्वसनीय एवं प्रामाणिक माना जाता है।

6. इस विधि का उपयोग सामान्य, असामान्य, बच्चे, पौढ़ एवं बूढ़े सभी प्रकार के व्यक्तियों एवं पशुओं पर उनकी मानसिक एवं शारीरिक क्रियाओं के अध्ययन हेतु किया जा सकता है। अतः इसमें व्यापकता का गुण है।

7. यह एक सर्वाधिक वैज्ञानिक विधि है क्योंकि इसमें एक वैज्ञानिक विधि के सारे गुण पाये जाते हैं।

8. इस विधि की महत्ता इससे भी प्रमाणित हो जाती है कि किसी भी विचार या सिद्धांत के पक्ष में चाहे जितने भी प्रमाण हों, यह सिद्धांत या विचार तब तक प्रामाणिक रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता जब तक कि प्रयोगात्मक निरीक्षण द्वारा प्राप्त तथ्य उसके पक्ष में न मिलें।

5.5.4 प्रयोगात्मक विधि की सीमाएँ– प्रयोगात्मक विधि के उपर्युक्त गुणों के बावजूद इस विधि की निम्नलिखित सीमाएँ हैं–

1. प्रयोग प्रयोगशाला में प्रयोगकर्ता द्वारा कृत्रिम रूप से उत्पन्न की गई परिस्थितियों में किया जाता है जो अस्वाभाविक रहती है। अतः प्रयोज्य द्वारा किया गया व्यवहार भी बनावटी होता है। फलतः ऐसे व्यवहारों का वास्तविक जीवन से यथेष्ट संबंध नहीं रहता।

2. प्रयोगात्मक विधि में एक कठिनाई यह बताई जाती है कि सभी प्रकार के प्रयोग मनुष्यों पर नहीं किए जा सकते, क्योंकि न तो आवश्यकता के अनुसार वे प्रयोग हेतु आसानी से उपलब्ध होते हैं और न पूरी सफलता के साथ उन्हें नियंत्रित ही किया जा सकता है। अतः, इसकी उपयोगिता सीमित है।

3. कुछ मनोवैज्ञानिकों का तो यह भी कहना है कि मनुष्य की सभी प्रकार की मानसिक क्रियाओं का प्रयोगात्मक अध्ययन संभव नहीं है, जैसे – स्वप्न, अचेतन मानसिक प्रक्रियाओं आदि का अध्ययन प्रयोगशाला में संभव नहीं है।

4. इस विधि के बारे में एक आपत्ति यह भी है कि हर प्रकार की परिस्थितियों को प्रयोगशाला में सृजित नहीं किया जा सकता। जैसे भीड़, औद्योगिक अशांति, जनमत, प्रचार आदि की परिस्थितियों को प्रयोगशाला के सीमित दायरे में सृजित करना और इन परिस्थितियों में मनुष्यों के व्यवहारों का अध्ययन करना कठिन है।

अभ्यास प्रश्न–ग

1. जिस चर को प्रयोगकर्ता द्वारा हस्तचालित किया जाता है उसे ...... चर कहते हैं।

2. प्रयोग में जिस चर को नियंत्रित किया जाता है उसे कहते है–

(क) स्वतंत्र चर (ख) बहिरंग चर

5.6 सारांश

अवलोकन या निरीक्षण आनुभविक शोध का एक प्रमुख प्रकार है जिसमें चरों में बिना किसी प्रकार का हस्तचालन किए ही अध्ययन से सम्बन्धित घटनाओं का क्रमबद्ध निरीक्षण किया जाता है। अवलोकन दो प्रकार के होते हैं– सहभागी एवं असहभागी।

सहसम्बन्धात्मक शोध भी आनुभविक शोध का एक प्रकार है। इसमें शोधकर्ता आश्रित चर पर स्वतंत्र चर के प्रभाव का अध्ययन करता है। वह स्वतंत्र चर का हस्तचालन सीधे न

करके चयन प्रक्रिया द्वारा करता है। सहसम्बन्धात्मक शोध में कार्यरत स्वतंत्र चर 'टाइप–एस' प्रकार का होता है।

प्रयोगात्मक शोध में अध्ययन नियंत्रित परिस्थिति में किया जाता है। यह किसी भी वैज्ञानिक अध्ययन की सर्वश्रेष्ठ विधि है। योग एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में किए जाने वाले प्रयोग में दो व्यक्तियों का होना प्रायः आवश्यक होता है– एक प्रयोगकर्ता और दूसरा प्रयोज्य। प्रयोगात्मक शोध में नियंत्रित परिस्थिति में किसी स्वतंत्र चर में हस्तचालन कर उसके प्रभाव का निरीक्षण आश्रित चर पर किया जाता है।

5.7 शब्दावली

सहभागी अवलोकन : ऐसा निरीक्षण जिसमें निरीक्षक निरीक्षण किए जाने वाले समूह का सदस्य बनकर उस समूह के सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है, सहभागी अवलोकन कहलाता है।

असहभागी अवलोकन : ऐसा निरीक्षण जिसमें निरीक्षक निरीक्षण किए जाने वाले समूह से अलग रहकर एक जाने–माने शोधकर्ता के रूप में उस समूह के सदस्यों के व्यवहारों का अध्ययन करता है, असहभागी अवलोकन कहलाता है।

'टाइप–एस' स्वतंत्र चर : जिस स्वतंत्र चर में हस्तचालन सीधे न करके चयन प्रक्रिया के द्वारा किया जाता है उसे 'टाइप–एस' स्वतंत्र चर कहते हैं।

'टाइप–ई' स्वतंत्र चर : जिस स्वतंत्र चर में हस्तचालन सीधे यानी, संक्रियात्मक रूप से किया जाता है, उसे 'टाइप–ई' स्वतंत्र चर कहते हैं।

5.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न–क 1.	सहभागी अवलोकन 2.6		
अभ्यास प्रश्न–ख 1.	टाइप–एस	2.	अनिश्चित
अभ्यास प्रश्न–ग 1.	स्वतंत्र चर	2.	बहिरंग चर

5.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल–बनारसीदास, दिल्ली।
2. एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

3. एफ.एन. करलिंगर (1964) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

4. सुलैमानएवं खान (1990) आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान, शुक्ला बुक डिपो, पटना–4

5.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. अवलोकन से आप क्या समझते हैं? योग सम्बन्धी शोधों में अवलोकन के महत्व पर प्रकाश डालें।

2. सहभागी एवं असहभागी अवलोकन में अन्तर स्पष्ट करें।

3. सहसम्बन्धात्मक शोध के गुण–दोषों का वर्णन करें।

4. प्रयोग किसे कहते हैं? प्रयोगात्मक शोध विधि अन्य विधियों से किस प्रकार श्रेष्ठ हैं?

5. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें–

(i) सहभागी अवलोकन के दोष (ii) 'टाइप–एस' स्वतंत्र चर

(iii) परिवर्त्य (iv) प्रयोगात्मक विधि की सीमाएं

इकाई–6 विविध चर : स्वतंत्र, बाह्‍य, आश्रित

इकाई की संरचना–

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्‌देश्य

6.3 चर का अर्थ

6.4 स्वतंत्र चर

6.4.1 टाइप–ई स्वतंत्र चर

6.4.2 टाइप–एस स्वतंत्र चर

6.5 आश्रित चर

6.6 संगत चर या बाह्‍य चर

6.6.1 प्रयोज्य संगत चर

6.6.2 परिस्थितिगत संगत चर

6.6.3 अनुक्रम संगत चर

6.6.4 बाह्‍य चरों का नियंत्रण

6.6.4.1 विलोपन

6.6.4.2 संतुलन

6.6.4.3 प्रति संतुलन

6.7 सारांश

6.8 शब्दावली

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना–

किसी भी वैज्ञानिक शोध में चर, जिसे परिवर्त्य के नाम से भी जानते हैं, अपना केन्द्रीय महत्व रखता है। इसके बिना कोई भी प्रायोगिक अध्ययन संभव ही नहीं है। इस पर हम लोग इकाई–5 में प्रयोगात्मक शोध विधि के प्रसंग में चर्चा कर चुके हैं।

प्रस्तुत इकाई में आप चर का अर्थ एवं प्रकार, किसी शोध में चर की आवश्यकता, आश्रित चर एवं स्वतंत्र चर में अन्तर, बाह्य चरों के प्रकार एवं उनके नियंत्रण के तरीके आदि पर विशेष जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

चरों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने से आपको यह लाभ होगा कि आप विभिन्न चरों का वर्गीकरण कर किसी शोध में उपयुक्त चरों का चयन करने, एवं आवश्यक चर का हस्तचालन तथा अनावश्यक चरों का नियंत्रण करने में सक्षम हो सकेंगे।

6.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप–

1. चरों का अर्थ एवं महत्व बतला सकें।
2. स्वतंत्र एवं आश्रित चरों में भेद कर सकें।
3. स्वतंत्र चरों के विभिन्न प्रकारों को स्पष्ट कर सकें।
4. बहिरंग चरों को भिन्न–भिन्न भागों में बाँट सकें।
5. बहिरंग चरों को नियंत्रित कर एक सख्त प्रयोगात्मक परिस्थिति उत्पन्न करने में सक्षम हो सकें।

6.3 चर का अर्थ–

किसी भी वैज्ञानिक शोध में वैसे तथ्यों का संकलन आनुभविक रूप से किया जाता है जिसकी जाँच की जा सके, जिसे सत्यापित किया जा सके। यही तथ्य हमारे ज्ञान–भण्डार में वृद्धि करता है और सिद्धान्त के निर्माण में सहायक होता है। तथ्य तक पहुँचने के लिए वैज्ञानिक प्रक्रियाओं का सहारा लिया जाता है। वैज्ञानिक प्रक्रिया वह प्रक्रिया है जिसमें नियंत्रित परिस्थिति में घटनाओं का क्रमबद्ध निरीक्षण करते हैं। क्रमबद्ध निरीक्षण से तात्पर्य है कि घटना जिस रूप में घटित हो उस रूप में उसका अध्ययन हो। यानी, घटना का अध्ययन जैसे–तैसे न करके यह देखा जाय कि उस पर किन–किन कारकों का प्रभाव पड़ रहा है और किन–किन कारकों को नियंत्रित रखने की आवश्यकता है। एक शोधकर्ता जब वैज्ञानिक शोध करता है तो वह एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न करता है जिसमें वैसे सभी कारक, जिनके अध्ययन की जरूरत नहीं है, नियंत्रित कर लिए जाते हैं और सिर्फ उन्हीं

कारकों में बदलाव किया जाता है या बदलाव का निरीक्षण किया जाता है जिनका प्रभाव शोधकर्ता देखना चाहता है। ये सभी कारक व्यावहारिक विज्ञान में चर की कोटि में आते हैं क्योंकि चर का मतलब ही होता है– जिसमें बदलाव हो, जो स्थिर न रहे या जिसका स्वभाव परिवर्तित होने वाला हो। यही कारण है कि चर को परिवर्त्य भी कहते हैं। चर के सम्बन्ध में एक और आवश्यक बात याद रखना चाहिए कि चर सिर्फ बदलते रहने वाला ही नहीं होता, बल्कि यह मापने योग्य भी होता है। इसीलिए कहा जाता है कि चर किसी वस्तु, व्यक्ति या चीजों का वह गुण है जिसे मापा जा सके। यानी, जो मापने योग्य नहीं है, वह चर नहीं कहला सकता। योग, योग की विभिन्न प्रविधियां, व्यक्तित्व, व्यक्तित्व के विभिन्न आयाम या गुण, विभिन्न शारीरिक या मानसिक बिमारियां व्यक्तियों के अन्तर्सम्बन्ध, यौन, शिक्षा, सामाजिक–आर्थिक स्तर आदि चर के कुछ उदाहरण हैं। एक शोधकर्ता सूर्य नमस्कार का रक्तचाप पर प्रभाव देखना चाहता है तो वह सूर्य नमस्कार के विभिन्न स्तर निर्धारित कर उसे समय की इकाई में माप सकता है तथा इसके विभिन्न स्तरों का क्या प्रभाव व्यक्ति के रक्तचाप पर पड़ता है इसे भी रक्तचाप माप कर बता सकता है। अतः सूर्य नमस्कार और रक्तचाप दोनों ही चर कहलायेंगे, परन्तु दोनों ही चरों का प्रकार अलग–अलग होगा जिसकी चर्चा हम आगे करेंगे।

चरों का मापन दो तरह से हो सकता है–परिमाणात्मक रूप में और गुणात्मक रूप में। यह चरों के स्वरूप पर निर्भर करता है। कुछ चर ऐसे होते हैं जिनका मापन सिर्फ परिमाणात्मक रूप से ही संभव है, जैसे– आयु, प्रयास, रक्तचाप, नाड़ी–गति, बुद्धि–लब्धि, लम्बाई, भार, तापमान आदि। दूसरी तरफ, कुछ चर ऐसे होते हैं जिन्हें गुणात्मक रूप से मापा जाता है, जैसे– सेक्स, धर्म, जाति, भाषा आदि। योग, मनोविज्ञान, चिकित्सा आदि के क्षेत्र में प्रयुक्त होने वाले चर ज्यादातर परिमाणात्मक श्रेणी के होते हैं।

योग, मनोविज्ञान, शिक्षा आदि के क्षेत्र में जो शोध होते हैं उनमें कई तरह के चरों का प्रयोग होता है। कुछ चर तो ऐसे होते हैं जिनके प्रभाव का अध्ययन करना शोधकर्ता का उद्देश्य होता है। दूसरे चर ऐसे होते हैं जिनका अध्ययन शोधकर्ता विस्तृत रूप में करना चाहता है और इन पर अन्य चरों के प्रभाव का अवलोकन करना उसका उद्देश्य होता है। प्रभाव डालने वाले और प्रभावित होने वाले चरों के अतिरिक्त भी कुछ ऐसे चर होते हैं जिनके प्रभाव को रोकने के लिए शोधकर्ता उन्हें नियंत्रित कर लेता है। चरों की इन्हीं विशेषताओं के परिप्रेक्ष्य में उन्हें निम्नलिखित तीन वर्गो में विभक्त किया गया है–

1. स्वतंत्र चर
2. आश्रित चर
3. संगत चर या नियंत्रित चर

6.4 स्वतंत्र चर–

वैसा चर जिसके प्रभाव का अध्ययन शोधकर्ता करना चाहता है और अध्ययन करने हेतु उसमें अपनी इच्छानुसार जोड़–तोड़ या हस्तचालन करना है, स्वतंत्र चर कहलाता है। दूसरे शब्दों में, शोधकर्ता किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में जिस चर के मूल्यों में/मात्राओं में परिवर्तन करके उस परिवर्तन का दूसरे चर पर असर देखना चाहता है, उसे स्वतंत्र चर कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई शोधकर्ता सूर्यनमस्कार का प्रभाव व्यक्ति के कार्य तनाव पर देखना चाहता है। इस अध्ययन में शोधकर्ता पहले व्यक्ति का कार्य तनाव उपयुक्त मनोवैज्ञानिक परीक्षण द्वारा माप लेगा, फिर उस व्यक्ति को कुछ दिनों तक सूर्य नमस्कार का अभ्यास करने को कहेगा (लगभग 15 दिनों तक) तथा पुनः 15 दिनों बाद उसके कार्य तनाव का मापन करेगा। यहाँ सूर्य नमस्कार एक स्वतंत्रचर के रूप में कार्यरत है क्योंकि शोधकर्ता उसका हस्तचालन कर रहा है। वह चाहे तो कार्य तनाव से ग्रस्त व्यक्ति को एक सप्ताह का अभ्यास करवा सकता है। सूर्य नमस्कार का अभ्यास कितने दिनों तक करवाया जाय, यह पूर्णतः शोधकर्ता पर निर्भर करता है। सूर्य नमस्कार के अभ्यास के क्रम में शोधकर्ता कुछ–कुछ दिनों पर कार्य तनाव का मापन कर यह देख सकता है कि सूर्य नमस्कार के बढ़ते अभ्यास से किस प्रकार कार्य तनाव प्रभावित हो रहा है। जिस स्वतंत्र चर में प्रयोगकर्ता जोड़–तोड़ करता है उसे प्रयोगात्मक चर भी कहते हैं। प्रयोगात्मक चर दो प्रकार के होते हैं–

(अ) **टाइप–ई स्वतंत्र चर तथा**

(ब) **टाइप–एस स्वतंत्र चर**

6.4.1 टाइप–ई स्वतंत्र चर–

जब प्रयोगकर्ता किसी प्रयोगात्मक परिस्थिति में किसी स्वतेंत्र चर में जोड़–तोड़ सीधे या प्रयोगात्मक ढंग से करता है तो इसे 'टाइप–ई' स्वतंत्र चर कहते हैं। उपर्युक्त उदाहरण में सूर्य नमस्कार की अवधि का हस्तचालन (जोड़–तोड़) प्रयोगकर्ता सीधे करता है, जैसे–एक सप्ताह का सूर्य नमस्कार। दो सप्ताह का सूर्य नमस्कार, तीन सप्ताह का सूर्य नमस्कार आदि। इसी प्रकार, सीखने की प्रक्रिया पर विषय या पाठ की लम्बाई का प्रभाव देखना, जैसे– पाँच शब्दों की सूची, दस शब्दों की सूची, बीस शब्दों की सूची आदि। इस तरह का जोड़–तोड़ प्रयोगात्मक ढंग से सीधे प्रयोगकर्ता अपनी योजनानुसार कर लेता है, अतः यह 'टाइप–ई' स्वतंत्र चर कहलाता हैं।

6.4.2 टाइप–एस स्वतंत्र चर–

'टाइप–एस' स्वतंत्र चर वैसे चर को कहा जाता है जिसमें प्रयोगकर्ता जोड़–तोड़ सीधे न करके चयन द्वारा करता है। यदि प्रयोगकर्ता किसी आश्रित चर पर व्यक्ति की बुद्धि, अभिक्षमता, जाति, धर्म, आयु, यौन आदि का प्रभाव देखना चाहे तो इनमें से किसी भी चर का स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग एवं इनका हस्तचालन प्रयोगात्मक ढंग से या सीधे नहीं किया जा सकता क्योंकि एक ही व्यक्ति या समूह की जाति, धर्म, आयु, सेक्स आदि में प्रयोगकर्ता अपनी इच्छानुसार परिवर्तन नहीं ला सकता। ऐसी परिस्थिति में वह प्रयोज्यों का

दो समूह बनायेगा–एक समूह में एक तरह की जाति, धर्म या आयु आदि वाले प्रयोज्य होंगे जबकि दूसरे समूह में इससे भिन्न जाति, धर्म या आयु आदि वाले प्रयोज्य होंगे। स्पष्ट है कि यहाँ प्रयोगकर्ता द्वारा दोनों ही समूह का निर्माण चयन पर आधारित होगा न कि उसमें सीधे या प्रयोगात्मक रूप से परिवर्तन करके, जैसे कि ऊपर 'टाइप–ई' के केस में किया गया।

6.5 आश्रित चर–

आश्रित चर वह चर होता है जिसके बारे में प्रयोगकर्ता कुछ पूर्वकथन करना चाहता है, जिस पर वह स्वतंत्र चर का प्रभाव देखना चाहता है। वह स्वतंत्र चर के मूल्य में परिवर्तन लाकर यह देखना चाहता है कि इस परिवर्तन का क्या प्रभाव आश्रित चर पर पड़ रहा है। वास्तव में, आश्रित वह चर होता है जिसे प्रयोगकर्ता सावधानीपूर्वक निरीक्षण करता है और उसे रेकार्ड करता है। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि एक प्रयोगकर्ता कपालभांति प्रणायाम का प्रभाव व्यक्ति के चिन्ता–स्तर पर देखना चाहता है तो यहाँ कपालभांति प्रणयाम स्वतंत्र चर होगा जिसका हस्तचालन प्रयोगकर्ता स्वयं करेगा, परन्तु चिन्ता स्तर आश्रित चर होगा क्योंकि यह कपालभांति प्रणयाम की मात्रा और अवधि से प्रभावित होगा। प्रयोगकर्ता व्यक्ति की चिन्ता का मापन करके उसका स्तर नोट कर लेगा तथा फिर उसे प्रतिदिन पाँच चक्र कपालभांति करने को कहेगा और प्रति सप्ताह चिन्ता–स्तर का मापन करके यह देखेगा कि किस प्रकार कपालभांति प्रणयाम से चिन्ता–स्तर में कमी या वृद्धि होती है। यहाँ प्रयोगकर्ता का काम चिन्ता–स्तर का निरीक्षण करना एवं उसे रिकार्ड करते चलना है। इसीलिए करलिंगर (1986) ने स्वतंत्र चर को एक पूर्व–कल्पित कारण तथा आश्रित चर को एक पूर्वकल्पित प्रभाव माना है।

कैण्टोविज तथा रोडिगर (1984) का मानना है कि एक अच्छे आश्रित चर में विश्वसनीयता तथा संगतता अधिक पाई जाती है। यदि पूर्व में किये गए प्रयोग को हु–ब–हु दोहराया जाय, यानी, दूसरी बार में भी वही प्रयोज्य हो, वही स्वतंत्र चर हो तथा वही डिजाइन हो तो आश्रित चर पर ठीक वही प्राप्तांक आयेगा जो पहले आया है। यही आश्रित चर की विश्वसनीयता एवं संगतता होती है और ऐसे आश्रित चर को एक अच्छा चर माना जाता है।

6.6 संगत चर या बाह्य चर–

प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर की तरह के ही कुछ और चर होते हैं जिन्हें यदि प्रयोगकर्ता नियन्त्रित न करे तो वे आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। इस तरह के चर को संगत चर कहते हैं। प्रयोगकर्ता नियन्त्रण के विभिन्न उपायों के द्वारा संगत चर के प्रभाव को आश्रित चर पर पड़ने से रोकता है। संगत चर को बाह्य चर, बहिरंग चर या नियंत्रित चर भी कहते हैं। दरअसल, किसी भी आश्रित चर को प्रभावित करने वाले कई कारक हो सकते हैं जो प्रयोगात्मक परिस्थिति में चर के रूप में कार्यरत होते हैं। इनमें से प्रयोगकर्ता जिनके प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है उन्हें वह हस्तचालित करता है–

अतः वैसा चर स्वतंत्र चर के रूप में कार्य करने लगता हैं। शेष चरों को प्रयोगकर्ता उस प्रयोगात्मक परिस्थिति में नियंत्रित कर लेता है ताकि उनका अनचाहा व अनावश्यक प्रभाव आश्रित चर पर न पड़े। यही नियंत्रित चर संगत चर या बाह्य चर कहलाते हैं। चूँकि ये सभी बाहर से आश्रित चर को प्रभावित करते हैं (यदि इन्हें नियंत्रित नहीं किया जाय तो) इसीलिए इन्हें बहिरंग चर भी कहते हैं। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। एक प्रयोगकर्ता अधिगम की प्रक्रिया का अध्ययन करना चाहता है। वह अधिगम पर पाठ्य–सामग्री के स्वरूप का प्रभाव देखना चाहता है। यहाँ पर अधिगम एक आश्रित चर होगा तथा पाठ्य–सामग्री का स्वरूप एक स्वतंत्र चर होगा। पाठ्य–सामग्री के अतिरिक्त अधिगम को प्रभावित करने वाले कारक, जैसे– प्रयोज्य की उम्र, यौन, स्वास्थ्य, बुद्धि, कमरे का तापमान, शोरगुल, समय, सीखने की विधि, पाठ्य–सामग्री की लम्बाई आदि सभी बहिरंग या संगत चर हैं जिन्हें यदि नियंत्रित न किया जाय तो वे आश्रित चर, यानी, अधिगम प्रक्रिया को प्रभावित कर सकते हैं, फलतः; प्रयोग की वैधता घट सकती है।

संगत चर का स्वरूप कई तरह का होता है। कुछ संगत चर प्रयोज्य से सम्बद्ध होते हैं, कुछ परिस्थिति से तथा कुछ प्रायोगिक अवस्थाओं से। इसी परिप्रेक्ष्य में संगत चरों को निम्नलिखित तीन प्रकारों में विभक्त किया गया हैं–

1. प्रयोज्य संगत चर
2. परिस्थितिगत संगत चर
3. अनुक्रम संगत चर

6.6.1 प्रयोज्य संगत चर–

वैसे संगत चर जो प्रयोज्य के व्यक्तिगत गुणों, जेसे– उम्र, यौन, बुद्धि, अभिप्रेरणा आदि, से सम्बन्धित होते हैं, प्रयोज्य संगत चर कहलाते हैं। इनमें से कुछ चर टाईप–एस श्रेणी के तथा कुछ टाईप–ई श्रेणी के होते हैं। यदि इन चरों को किसी प्रयोग या शोध में प्रयोगात्मक चर या स्वतंत्र चर के रूप में प्रयोग में नहीं लाया जाना हो तो इन्हें नियन्त्रित करना अत्यावश्यक होता है, वरना ये आश्रित चर पर अवांछित प्रभाव डाल सकते हैं।

6.6.2 परिस्थितिगत संगत चर–

वैसे संगत चर जो उन परिस्थितियों या पर्यावरण से सम्बन्धित होते हैं जिनमें प्रयोग या शोध किया जा रहा हो, परिस्थितिगत संगत चर कहलाते हैं। प्रयोग के समय वातावरण का तापमान, शोरगुल, प्रकाश, आर्द्रता आदि परिस्थितिगत संगत चर के रूप में प्रयोग या शोध को प्रभावित कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त, प्रयोग के उपकरण, कार्य की प्रकृति आदि भी परिस्थितिगत चर या पर्यावरणीय चर के रूप में आश्रित चर को प्रभावित

कर सकते हैं। अतः प्रायोगिक परिस्थिति में प्रयोगकर्ता इन परिस्थितिगत या पर्यावरणीय संगत चरों को नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

6.6.3 अनुक्रम संगत चर–

वैसे संगत चर जो प्रयोग की विभिन्न अवस्थाओं में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य के एक ही समूह की जाँच करने से उत्पन्न होते हैं, अनुक्रम संगत चर कहलाते हैं। किसी भी प्रयोग में एक अवस्था के बाद दूसरी अवस्था, दूसरी के बाद तीसरी अवस्था आदि क्रम से आती रहती हैं और यदि इन अवस्थाओं में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य–समूह को कार्यरत रखा जाय तो प्राप्त परिणाम अभ्यास, थकान आदि जैसे कारकों से प्रभावित हो सकते हैं। ऐसा विभिन्न अवस्थाओं के अनुक्रम के कारण होता है। उदाहरणस्वरूप, प्रथम अवस्था में प्रयोज्य जहाँ तरोताजा रहता है, अन्तिम अवस्था में वहीं थका–थका महसूस कर सकता है; इसी प्रकार, प्रथम अवस्था में प्रयोज्य प्रायोगिक परिस्थिति में नया रहता है जबकि अन्तिम अवस्था तक वह परिस्थिति से रू–ब–रू हो चुका होता है। स्पष्ट है कि विभिन्न प्रायोगिक अवस्थाएं परिस्थितिगत संगत चर के रूप में कार्य करते हैं और प्रयोगकर्ता इनके कुप्रभाव को रोकने के लिए उचित नियंत्रण का प्रयास करता है।

6.6.4 बाह्य चरों का नियंत्रण–

प्रयोगकर्ता या शोधकर्ता का मुख्य उद्देश्य आश्रित चर पर स्वतंत्र चर के प्रभाव का अध्ययन करना होता है। स्वतंत्र चर के अतिरिक्त अन्य चरों को, जो आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं, प्रयोगकर्ता नियंत्रित करने का प्रयास करता है ताकि उनसे उत्पन्न प्रसरण की मात्रा पर रोक लगाई जा सके। बहिरंग चरों के नियंत्रण से सभी अवांछित प्रसरण नियंत्रित हो जाते हैं जो वैसे चरों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिनके अध्ययन में शोधकर्ता की कोई रूचि नहीं होती। सामाजिक शोधों में बहिरंग चरों के नियंत्रण की निम्नलिखित विधियां/तकनीक महत्वपूर्ण हैं–

1.विलोपन–

विलोपन का अर्थ होता है हटा देना या निष्कासित कर देना। यह चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें प्रयोगकर्ता बहिरंग चरों को प्रयोगात्मक परिस्थिति से निष्कासित कर देता है ताकि आश्रित चर पर उसका प्रभाव अपने आप ही विलुप्त हो जाय। उदाहरण स्वरूप, चिन्ता पर सूर्यनमस्कार का प्रभाव या अनुलोम–विलोम का प्रभाव देखने के क्रम में यदि शोधकर्ता को लगे कि शोरगुल या तापमान आश्रित चर (चिन्ता) को प्रभावित कर सकता है तो वह ध्वनिनिरोधी (साउण्ड प्रूफ) तथा एयरकंडीशंड कमरा बनवाकर इन बहिरंग चरों को विलोपित कर सकता है। ऐसी स्थिति में शोरगुल या तापमान से उत्पन्न होने वाला प्रसरण अपने आप ही नियंत्रित हो जायेगा। इसी प्रकार, अधिगम प्रयोग में यदि प्रयोगकर्ता अधिगम की गति पर पाठ की लम्बाई का प्रभाव देखना चाहता है तो यहाँ पाठ की अर्थपूर्णता एक बहिरंग चर के रूप में अधिगम की गति को प्रभावित कर सकता है। परन्तु यदि प्रयोगकर्ता अधिगम सामग्री के रूप में निरर्थक पदों का प्रयोग करता

है तो चह पाठ की अर्थपूर्णता जैसे बहिरंग चर को प्रायोगिक परिस्थिति से स्वतः ही विलोपित करके बहिरंग चर को नियंत्रित कर सकता है। इस प्रकार, विलोपन बहिरंग चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें बहिरंग चर को प्रायोगिक परिस्थिति से निष्कासित करके उसके कुप्रभाव से बचा जाता है।

2.संतुलन–

संतुलन से तात्पर्य विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में बहिरंग चरों का प्रभाव समान रूप से पड़ने देने से है। यानी, स्वतंत्र चर के अतिरिक्त जो भी चर प्रयोगात्मक परिस्थिति में आश्रित चर को प्रभावित कर सकता है उसे प्रयोग की सभी अवस्थाओं में समान रूप से प्रभावित करने हेतु छोड़ दिया जाता है तथा स्वतंत्र चर को जिस अवस्था में प्रस्तुत करना होता है प्रस्तुत कर दिया जाता है। चूँकि, बहिरंग चर हर अवस्था में प्रस्तुत था, अतः यदि इसका कोई प्रभाव आश्रित चर पर पड़ा तो हरेक अवस्था में पड़ा न कि किसी खास अवस्था में। ऐसी स्थिति में बहिरंग चरों का प्रभाव अपने आप संतुलित होकर समाप्त हो जाता है और स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। इसे निम्नलिखित चित्र से समझा जा सकता है–

<table>
<tr><td rowspan="3">अवस्था–1
(प्रायोगिक अवस्था)</td><td>बहिरंग चर–अ</td><td rowspan="3">आश्रित चर</td></tr>
<tr><td>बहिरंग चर–ब</td></tr>
<tr><td>स्वतंत्र चर की धनात्मक मात्रा</td></tr>
<tr><td rowspan="3">अवस्था–2
(नियंत्रित अवस्था)</td><td>बहिरंग चर–अ</td><td rowspan="3">आश्रित चर</td></tr>
<tr><td>बहिरंग चर–ब</td></tr>
<tr><td>स्वतंत्र चर की शून्य मात्रा</td></tr>
</table>

उपर्युक्त चित्र में अवस्था–1 तथा अवस्था – 2 दोनों ही में दो बहिरंग चर (अ और ब) उपस्थित हैं जबकि स्वतंत्र चर को सिर्फ अवस्था–1 में प्रस्तुत किया गया है, अवस्था–2 में इसकी मात्रा शून्य है, यानी इसकी प्रस्तुति नहीं है। अब यदि अवस्था–1 और अवस्था–2 में आश्रित चर की मात्रा का स्तर में कोई परिवर्तन दिखाई पड़ता है तो निश्चित रूप से यह स्वतंत्र चर की प्रस्तुति के प्रभाव के कारण होगा जो कि अवस्था 1 में प्रस्तुत किया गया था। बहिरंग चरों के नियंत्रण की यही विधि संतुलन विधि कहलाती है। इसे एक उदाहरण द्वारा भी समझा जा सकता है। मान लीजिए, एक प्रयोगकर्ता संवेगात्मक परिपक्वता पर उम्र के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। परन्तु उसे पता है कि इस अध्ययन में यौन एक महत्वपूर्ण बहिरंग चर है जो व्यक्ति की संवेगात्मक परिपक्वता को प्रभावित करता है। अतः प्रयोगकर्ता इसे संतुलन विधि के द्वारा नियंत्रित कर सकता है। वह यदि उम्र का हस्तचालन प्रयोज्यों के तीन उम्र वर्ग का चयन करके करना चाहता है (जैसे –10–15 वर्ष, 15–20 वर्ष, 20–25 वर्ष) तो इन तीनों ही उम्र वर्ग के प्रयोज्य एक ही यौन का रखकर अध्ययन करने पर बहिरंग चर ''यौन'' स्वतः ही संतुलन द्वारा नियंत्रित हो जायेगा। परन्तु, यदि अध्ययन ऐसा है जिसमें दोनों ही यौन के प्रयोज्यों को सम्मिलित किया जाना आवश्यक है

तो शोधकर्ता सभी समूह में दोनों ही यौनके सदस्यों की बराबर–बराबर संख्या का चयन करके यौन के प्रभाव को संतुलित कर सकता है। इस प्रकार, संतुलन चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसमें नियंत्रित किए जाने वाले सभी चरों को प्रयोग की प्रत्येक अवस्था में कार्यरत करके उनके प्रभाव को नियंत्रित कर लिया जाता है और तब शोधकर्ता को स्वतंत्र चर का प्रभाव स्पष्ट रूप से दिखाई पड़ने लगता है। संतुलन द्वारा चरों के नियंत्रण में शोधकर्ता को प्रयोगात्मक समूह के साथ–साथ नियंत्रित समूह का निर्माण करना भी आवश्यक हो जाता है तथा प्रत्येक समूह के सभी प्रयोज्य को प्रारंभिक तौर पर तुल्य रखना होता है।

3.प्रति संतुलन–

प्रतिसंतुलन बहिरंग चरों के नियंत्रण की एक ऐसी विधि है जिसके द्वारा एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाओं से उत्पन्न अनुक्रम संगत चरों को नियंत्रित किया जाता है। यदि किसी प्रयोग में एक से अधिक प्रयोगात्मक अवस्थाएं हैं और प्रत्येक अवस्था में एक ही प्रयोज्य या प्रयोज्य का एक ही समूह कार्यरत है तो इसमें दो तरह के क्रम प्रभाव उत्पन्न होने की संभावना है– अभ्यास प्रभाव तथा थकान प्रभाव। ऐसा संभव है कि जब प्रयोज्य प्रयोगात्मक अवस्था 'ए' से प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में कार्य करना प्रारंभ करें, तो अभ्यास प्रभाव के कारण प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में उसका निष्पादन अर्थात् आश्रित चर पर इसका प्राप्तांक पहले से अधिक हो जाय या यह भी संभव है कि थकान प्रभाव के कारण उसका निष्पादन प्रयोगात्मक अवस्था 'बी' में पहले की तुलना में कम हो जाय। अतः थकान और अभ्यास के प्रभाव को कम करने के लिए प्रति संतुलन विधि का सहारा लिया जाता है और 'ए' तथा 'बी' दोनों ही अवस्थाओं के प्रयासों को आधा–आधा कर ''ए–बी–बी–ए'' क्रम में प्रस्तुत करके बहिरंग या संगत चरों को नियंत्रित कर लिया जाता है।

अभ्यास प्रश्न

1. **व्यक्ति की जाति या धर्म किस प्रकार का चर है?**

   (क) गुणात्मक (ख) परिमाणात्मक

2. **एक शोधकर्ता व्यक्ति के अवसाद पर अनुलोम–विलोम प्रणयाम के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है तो यहाँ–**

   1. **अनुलोम–विलोम एक...............................चर के रूप में कार्य करेगा।**
   2. **अवसाद एक.......................... चर के रूप में कार्य करेगा।**

   (स्वतंत्र चर एवं आश्रित चर के परिप्रेक्ष्य में उत्तर दें)

6.7 सारांश

- चर वह है जो स्थिर न रहे, जिसमें बदलाव हो, जिसका स्वभाव परिवर्तित होने वाला हो और सबसे बढ़कर, जो मापने योग्य हो।
- चरों का मापन परिमाणात्मक रूप में भी हो सकता है, गुणात्मक रूप में भी।
- चरों को तीन वर्गो में विभक्त किया जा सकता है– स्वतंत्र चर, आश्रित चर तथा बहिरंग या संगत चर।
- जिस स्वतंत्र चर में प्रयोगकर्ता जोड़–तोड़ या हस्तचालन करता है उसे प्रयोगात्मक चर भी कहते हैं। यह दो प्रकार का होता है– टाइप–ई स्वतंत्र चर तथा 'टाइप–एस' स्वतंत्र चर।
- बहिरंग चर के तीन प्रकार होते हैं– प्रयोज्य चर, परिस्थितिगत चर तथा अनुक्रम चर। इन चरों को संगत चर भी कहते हैं और यदि इन्हें नियंत्रित न किया जाय तो स्वतंत्र चर के साथ मिलकर प्रयोगात्मक परिस्थिति में आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं।
- बहिरंग चर को विलोपन, संतुलन, प्रति–संतुलन आदि विधियों द्वारा नियंत्रित किया जाता है।
-

6.8 शब्दावली

स्वतंत्र चर : वह चर जिसके प्रभाव का अध्ययन प्रयोगकर्ता करना चाहता है और जिसमें जोड़–तोड़ करके उसके विभिन्न स्तर का मूल्य का निर्धारण प्रयोगकर्ता द्वारा किया जाता है, स्वतंत्र चर कहलाता है।

आश्रित चर : वह चर जो स्वतंत्र चर से प्रभावित होता है और जिसे प्रयोगकर्ता प्रायोगिक परिस्थिति में मापता है, उसमें स्वतंत्र चर के विभिन्न स्तरों/मूल्यों के प्रभाव से आये बदलाव को रेकार्ड करता है, आश्रित चर कहलाता है।

बहिरंग चर : वह चर जिन्हें प्रयोगात्मक परिस्थिति में स्वतंत्र चर के साथ मिलकर आश्रित चर को प्रभावित करने से प्रयोगकर्ता नियंत्रण विधियों का प्रयोग कर रोकता है, बहिरंग चर कहलाता है।

6.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. गुणात्मक
2. (i) स्वतंत्र चर

   (ii) आश्रित चर

6.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल–बनारसीदास, दिल्ली।
2. एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।
3. एफ.एन. करलिंगर (1964) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

6.11 निबंधात्मक प्रश्न

1. चर को परिभाषित करें। वैज्ञानिक शोध में चर के महत्व पर प्रकाश डालें।
2. स्वतंत्र चर किसे कहते है? 'टाइप–ई' और 'टाइप–एस' स्वतंत्र चर में अन्तर स्पष्ट करें। उदाहरण दें।
3. चर कितने प्रकार के होते है? बाह्रय चरों का नियंत्रण क्यों आवश्यक है?
4. बहिरंग चरों के विभिन्न प्रकारों को उदाहरण के साथ समझायें। इन्हें नियंत्रित करने की विधियों का उल्लेख करें।

इकाई–7 शोध अभिकल्प : दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प, कारकीय अभिकल्प

इकाई की संरचना

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 शोध अभिकल्प का अर्थ

7.3.1 शोध अभिकल्प के उद्देश्य

7.3.2 शोध अभिकल्प के प्रकार

7.4 दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प

7.4.1 केवल यादृच्छीकृत पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प

7.4.2 केवल यादृच्छीकृत सुमेलित पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प

7.4.3 पूर्व–परीक्षण पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प

7.4.4 दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प के गुण

7.4.5 दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प की सीमाएं

7.5 कारकीय अभिकल्प

7.5.1 कारकीय अभिकल्प के गुण

7.5.2 कारकीय अभिकल्प की सीमाएं

7.6 सारांश

7.7 शब्दावली

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

7.9 संदर्भ–ग्रन्थ सूची

7.10 निबन्धात्मक प्रश्न

7.1 प्रस्तावना–

किसी भी शोध को सही ढंग से पूरा करने के लिए उसे योजनाबद्ध तरीके से संचालित करना आवश्यक होता है। इसके बिना शोधकर्ता अंधेरे में टटोलने की स्थिति में रहता है। इसीलिए शोध का सर्वाधिक महत्वपूर्ण चरण शोध डिजाइन है जिसे शोध की रूपरेखा या ''ब्लू प्रिंट'' के रूप में जाना जाता है।

इकाई – 6 में आपने चर, उसके प्रकार एवं उसके नियंत्रण के बारे में जानकारी हासिल की। यह भी जाना कि स्वतंत्र चर को किस प्रकार हस्तचालित किया जाता है एवं आश्रित चर को कैसे मापने का प्रयास किया जाता है। बहिरंग चरों के नियंत्रण की विधि पर भी चर्चा की गई।

प्रस्तुत इकाई में आप इन चरों के वास्तविक हस्तचालन, नियंत्रण एवं मापन की क्रियाओं का अध्ययन करेंगे और देखेंगे कि विभिन्न डिजाइनों में किस प्रकार चरों का नियंत्रण, हस्तचालन एवं मापन करके शोध को सही दिशा में ले चलने की कोशिश की जाती है।

7.2 उद्देश्य –

प्रस्तुत इकाई को पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो सकेंगे कि आप –

(i) शोध डिजाइन को परिभाषित कर सकें।

(ii) इसके विभिन्न प्रकारों से अवगत हो सकें।

(iii) प्रयोगात्मक एवं अप्रयोगात्मक डिजाइन में अन्तर स्पष्ट कर सकें।

(iv) दो यादृच्छिक समूह डिजाइन के विभिन्न प्रकारों को रेखांकित कर सकें।

(v) कारकीय अभिकल्प को शोध में इस्तेमाल करने की योजना बना सकें।

7.3 शोध अभिकल्प का अर्थ –

शोध अभिकल्प या शोध डिजाइन से तात्पर्य उस सामान्य योजना से है जिसे शोधकर्ता एक या एक से अधिक उपकल्पना की जाँच के लिए बनाता है। योजना बना लेने के बाद उसी कार्यक्रम के अनुसार शोध कार्य शुरू किया जाता है। इसीलिए शोध डिजाइन को किसी शोध कार्य का ''ब्लू प्रिंट'' भी कहा जाता है। शोध की डिजाइन तैयार कर लेने पर यह पता चल जाता है कि शोध में कौन–कौन से स्वतंत्र चर प्रयुक्त हैं, उनके कितने स्तर हैं, बहिरंग चरों को नियंत्रित करने के लिए किन–किन प्रविधियों का उपयोग किया गया है तथा आश्रित चरों का मापन किस रूप में हुआ है। अतः, हम कह सकते हैं कि शोध नियंत्रित वैज्ञानिक जाँच–पड़ताल की एक प्रक्रिया है। इसे स्पष्ट करते हुए करलिंगर

(1986) ने कहा है, ''शोध डिजाइन शोध करने के लिए बनी हुई एक ऐसी परियोजना तथा संरचना है जिसके द्वारा शोध समस्याओं का उत्तर प्राप्त किया जाता है।''

स्पष्ट है कि शोध अभिकल्प शोध समस्याओं के बारे में उत्तर प्राप्त करने की एक वैज्ञानिक परियोजना या रूप–रेखा है। इसे शोधकर्ता इस ढंग से तैयार करता है कि इसमें उपकल्पना लेखन से लेकर आंकड़ों के अन्तिम विश्लेषण तक की रूप–रेखा निहित होती है। इसकी संरचना ऐसी होती है जिसमें शोध में सम्मिलित किए गये चरों के सम्बन्धों के अध्ययन हेतु एक विशेष 'मॉडल' होता है। यह 'मॉडल' शोध में प्रयुक्त चरों की संख्या, उनके स्तर, उनके उपयोग हेतु की जाने वाली सभी संक्रियाओं का प्रतिमान प्रस्तुत करता है। यही कारण है कि एक अच्छे शोध डिजाइन को अपनाकर किया गया शोध सही निष्कर्षो तक पहुँचने में सक्षम होता है। इससे प्राप्त तथ्यों में सत्यापन का गुण पाया जाता है। प्रक्रिया को दुहराकर उसी तरह के परिणाम प्राप्त करने की संभावना अधिकतम होती है। उसकी विश्वसनीयता एवं वैधता पर ऊँगली उठाना आसान नहीं होता।

इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए एक शोधकर्ता कपालभाती प्रणयाम का प्रभाव व्यक्ति के अवसाद पर देखना चाहता है। इसके लिए वह कपालभाती, जो कि यहाँ एक स्वतंत्र चर है, को हस्तचालित करेगा तथा इसके विभिन्न स्तर के प्रभाव की जाँच अवसाद, जो कि एक आश्रित चर है, पर करेगा। इसके लिए सबसे अच्छा डिजाइन प्री–टेस्ट, पश्चात्–टेस्ट डिजाइन है। यानी शोधकर्ता सर्वप्रथम अवसाद से ग्रसित रोगी का अवसाद स्तर उपयुक्त अवसाद मापनी द्वारा ज्ञात कर लेगा। पुनः उसे प्रतिदिन आधे घंटे के कपाल–भाती प्रणायाम का अभ्यास करायेगा तथा प्रत्येक पखवारे (पन्द्रह दिनों की अवधि पर) अवसाद के स्तर की जाँच करेगा। कुल दो माह के अभ्यास के पश्चात् अब वह कपाल–भाती प्रणायाम के प्रारंभ से पूर्व तथा बाद के अवसाद स्तर की तुलना करेगा और देखेगा कि कपाल–भाती से अवसाद के स्तरमें कितनी कमी आयी है। इसी तरह का अध्ययन अवसाद के कई रोगियों पर करके यदि शोधकर्ता इसी तरह का परिणाम निरीक्षित करता है तो वह दावे के साथ कह सकता है कि कपाल–भाती प्राणायाम अवसाद के नियंत्रण में सार्थक भूमिका निभाता है। यदि शोधकर्ता अवसाद रोगियों का एक समूह आयु, सेक्स, शिक्षास्तर आदि को ध्यान में रखकर बना ले और एक नियंत्रित समूह इसी आयु, सेक्स, शिक्षा–स्तर का बना ले। दोनों ही अवसाद ग्रसित समूहों में से एक समूह पर कपाल–भाती प्रणायाम दो माह तक प्रयुक्त करे (प्रयोगात्मक समूह) तथा दूसरे समूह को इस तरह का कोई प्रणायाम न करावें। यदि दो माह के योग–प्रशिक्षण के उपरान्त प्रयोगात्मक समूह तथा नियंत्रित समूह के अवसाद–स्तर में सार्थक अन्तर दिखाई देता है तो शोधकर्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचेगा कि कपाल–भाती अवसाद के नियंत्रण की एक सार्थक यौगिक विधि है।

उपर्युक्त उदाहरण का यदि हम विश्लेषण करें तो पायेंगे कि इसमें एक ऐसी परियोजना प्रस्तुत है जो पूरे शोध का ब्लू–प्रिन्ट है। समस्या है (जैसे– कपाल–भाती प्रणायाम का अवसाद पर प्रभाव) उपकल्पना है (जैसे–कपाल–भाती से अवसाद कम होता है) स्वतंत्र चर है (कपाल–भाती), उसका हस्तचालन है (नित्य आधे धण्टे का प्रणायाम), आश्रित चर है (अवसाद) आश्रित चर का प्रति पखवारा मापन है, प्रयोगात्मक समूह है, नियंत्रित समूह है, चरों का नियंत्रण है, सांख्यिकी द्वारा सार्थकता का निर्धारण है,

आदि–आदि। एक अच्छा शोध डिजाइन इन्हीं विशेषताओं से परिपूर्ण होता है जिस कारण उसके आधार पर सही एवं निर्भर रहने योग्य निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं।

7.3.1 शोध अभिकल्प के उद्देश्यः

शोध अभिकल्प के मुख्यतः दो उद्देश्य होते हैं–

(क) शोध प्रश्नों के सही उत्तर ढूँढना तथा

(ख) प्रसरण को नियंत्रित करना।

कोई भी शोधकर्ता एक अच्छा शोध अभिकल्प इसलिए बनाना चाहता है ताकि इसके आधार पर वह शोध समस्याओं का एक वैध तथा वस्तुनिष्ठ उत्तर ढूँढ सके। इसके लिए वह शोध समस्याओं के समाधान से सम्बन्धित कुछ अनुभवसिद्ध सबूतों को जुटाता है और शोध डिजाइन की मदद से एक अन्तिम निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास करता है। यहाँ, शोध डिजाइन शोधकर्ता को यह बतलाता है कि उसे किस तरह का अवलोकन करना चाहिए, कैसे करना चाहिए, अवलोकन से प्राप्त परिमाणात्मक तथ्यों का विश्लेषण कैसे करना चाहिए, आदि–आदि। एक वैज्ञानिक शोध डिजाइन यह भी बतलाता है कि अवलोकन की संख्या कितनी होनी चाहिए, चरों में कौन सक्रिय है, कौन गुण चर हैं, चरों में जोड़–तोड़ कैसे करना है आदि। इस प्रकार, शोध डिजाइन शोधकर्ता के अवलोकन तथा विश्लेषण की प्रक्रियाओं का मार्गदर्शन करता है और उन्हें शोध–प्रश्नों का अन्तिम, सही एवं वैध उत्तर ढूँढ़ने में मदद करता है।

शोध डिजाइन का दूसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य प्रसरण का नियंत्रण है। यह शोध डिजाइन का तकनीकी उद्देश्य है। इस उद्देश्य को अत्यधिक महत्वपूर्ण बतलाया गया है क्योंकि इस उद्देश्य को प्राप्त करने में यदि कोई शोध डिजाइन असमर्थ है, तो वह अपने पहले उद्देश्य की प्राप्ति भी सही अर्थो में नहीं कर पायेगा। दरअसल, शोध डिजाइन एक नियंत्रण प्रक्रिया के रूप में कार्य करता है और इस प्रक्रिया को अपनाकर वह निम्नांकित तीन तरह के प्रसरणों के क्रमबद्धीकरण पर बल डालता है–

(i) प्रयोगात्मक प्रसरण की उच्चतम सीमा प्राप्त करना,

(ii) बहिरंग प्रसरण को नियंत्रित करना तथा

(iii) त्रुटि प्रसरण को न्यूनतम करना।

शोध अभिकल्प का एक महत्वपूर्ण तकनीकी उद्देश्य शोध में प्रयोगात्मक प्रसरण को उच्चतम सीमा तक बढ़ाना होता है। प्रयोगात्मक प्रसरण से तात्पर्य आश्रित चर में उत्पन्न किए गए वैसे प्रसरण से है जिसे शोधकर्ता स्वतंत्र चर में हस्तचालन करके उत्पन्न करता है। प्रायः शोधकर्ता यह कोशिश करता है कि वह अपने शोध में प्रयोगात्मक प्रसरण को उच्चतम सीमा तक बढ़ा दे ताकि उस शोध से अधिक–से–अधिक वस्तुनिष्ठ एवं वैध प्रदत्त प्राप्त किया जा सके। प्रयोगात्मक प्रसरण को उच्चतम सीमा तक बढ़ाने के लिए

शोधकर्ता इस ढंग का शोध डिजाइन तैयार करता है जिसमें विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाएं एक–दूसरे से अधिक–से–अधिक मात्रा में भिन्न रह सके।

दरअसल, प्रयोगात्मक प्रसरण को बढ़ाना शोध अभिकल्प के उद्देश्य के पीछे छिपा एक सांख्यिकीय सिद्धान्त है। प्रयोगात्मक प्रसरण को उसकी उच्चतम सीमा तक बढ़ाने के इस सांख्यिकीय सिद्धान्त को ध्यान में रखते हुए एक शोध ज्ञान की अभिव्यक्ति इस प्रकार की जा सकती है– शोध को संचालित करने का डिजाइन इस तरह का हो कि उसकी प्रयोगात्मक अवस्थाएं यथासंभव एक–दूसरे से भिन्न हों। इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए कि कोई शोधकर्ता व्यक्ति की कार्यक्षमता पर तापमान के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। इस अध्ययन में तापमान एक स्वतंत्र चर है तथा कार्यक्षमता एक आश्रित चर है। पुनः मान लीजिए कि शोधकर्ता स्वतंत्र चर को हस्तचालित कर उसका तीन स्तर निर्धारित करता है– उच्च तापमान की अवस्था, मध्यम तापमान की अवस्था तथा न्यून तापमान की अवस्था। ये तीनों प्रयोगात्मक अवस्थाएं सार्थक रूप से जितनी ही एक–दूसरे से भिन्न होंगी, आश्रित चर, यानी कार्यक्षमता में उतना ही अन्तर परिलक्षित होगा और फलस्वरूप आश्रित चर में प्रयोगात्मक प्रसरण उतना ही अधिक होगा। यदि शोधकर्ता इसी शोध में स्वतंत्र चर का दस स्तर बनाकर इसका प्रभाव कार्यक्षमता पर देखना चाहे तो ऐसी परिस्थिति में यह स्वाभाविक है कि इन दस स्तरों में तापमान की मात्रा में अन्तर थोड़ा–थोड़ा होगा और तब आश्रित चर में जो प्रयोगात्मक प्रसरण उत्पन्न होगा वह पहले वाले शोध डिजाइन से उत्पन्न प्रयोगात्मक प्रसरण से काफी कम होगा। यह शोध डिजाइन की श्रेष्ठता को घटाने वाला कहा जायेगा।

शोध डिजाइन का दूसरा प्रमुख तकनीकी उद्देश्य बहिरंग चरों का नियंत्रण है ताकि उससे उत्पन्न प्रसरण की मात्रा पर रोक लगाई जा सके। बहिरंग प्रसरण के नियंत्रण से सभी अवांछित प्रसरण नियंत्रित हो जाते हैं जो वैसे चरों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिनके अध्ययन में शोधकर्ता की कोई रूचि नहीं होती है। बहिरंग चरों के नियंत्रण हेतु सामाजिक विज्ञानों में विलोपन, स्थिरन, संतुलन, प्रति संतुलन, रूपान्तरण (बहिरंग चरों को स्वतंत्र चर में बदलना) तथा या दृच्छीकरण का प्रयोग किया जाता है। इनकी चर्चा चरों के नियंत्रण के अन्तर्गत की जा चुकी है।

शोध डिजाइन का तीसरा तकनीकी कार्य प्रयोग या शोध में त्रुटि प्रसरण को न्यूनतम करना है। त्रुटि प्रसरण से तात्पर्य वैसे प्रसरण से है जो प्रयोग या शोध में वैसे कारकों से उत्पन्न होते हैं जो सामान्यतः शोधकर्ता के नियंत्रण से बाहर होते है। इनमें से कुछ कारक ऐसे होते हैं जो प्रयोज्यों की वैयक्तिक भिन्नता, जैसे– बुद्धि, अभिक्षमता, ध्यान, आवश्यकता आदि से सम्बन्धित होते हैं तथा कुछ कारक ऐसे होते है जिन्हें सामान्यतः 'मापन की त्रुटियों' के रूप में जाना जाता है। ऐसे कारकों में अनुक्रम–सम्बन्धी कारक आते हैं, जैसे– लगातार प्रयास से उत्पन्न थकान, अभ्यास का प्रभाव, मानसिक ऊब, ध्यान भंगता, एक प्रयास से दूसरे प्रयास में होने वाली अनुक्रियाओं में विभिन्नता आदि।

चाहे जिस कारण से भी त्रुटि प्रसरण उत्पन्न हो, इसमें निम्नांकित दो विशेषताएं पाई जाती हैं–

(i) त्रुटि प्रसरण का स्वरूप आत्म–अनुपूरक होता है क्योंकि इस तरह का प्रसरण कभी धनात्मक तो कभी ऋणात्मक होता है। कई प्रयासों तक मापन करने पर त्रुटियों का माध्य प्रायः शून्य या नगण्य प्राप्त होता है।

(ii) त्रुटि प्रसरण का पूर्वकथन नहीं किया जा सकता, यह अपूर्वकथनीय होता है। यादृच्छित त्रुटियों पर आधारित होने के कारण प्रयोगकर्ता को पहले से यह पता नहीं होता कि किस प्रयास में त्रुटि धनात्मक दिशा की होंगी और किस प्रयास में ऋणात्मक दिशा की।

अतः प्रसरण की त्रुटि को न्यूनतम करने का सबसे अच्छा तरीका तो यह है कि शोध काफी नियंत्रित परिस्थिति में किया जाय ताकि प्रयोगात्मक परिस्थिति में प्रसरण उत्पन्न करने वाले कारक स्वतः ही काफी दबे रहें। इसके अतिरिक्त, चरों को मापने वाले परीक्षणों की विश्वसनीयता भी त्रुटि प्रसरण को न्यूनतम करने में सहायक होती है क्योंकि यदि परीक्षण विश्वसनीय है तो उनसे मिले प्राप्तांक में यादृच्छिक उतार–चढ़ाव कम होता है, फलतः त्रुटि प्रसरण भी कम होगा।

7.3.2 शोध अभिकल्प के प्रकार –

समाज विज्ञान, योग आदि के क्षेत्रों में जो शोध किए जाते हैं, उन्हें मूलतः दो प्रकारों में बाँटा जा सकता है–

(क) प्रयोगात्मक शोध

(ख) अप्रयोगात्मक शोध

प्रयोगात्मक शोध में जिन शोध डिजाइनों/अभिकल्पों का प्रयोग होता है उसे प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं तथा अप्रयोगात्मक शोध में जिन शोध डिजाइनों का प्रयोग होता है उन्हें अप्रयोगात्मक शोध अभिकल्प कहते हैं।

प्रयोगात्मक शोध को योग एवं मनोविज्ञान में काफी महत्व दिया जाता है तथा इन शोधों में प्रयोगात्मक अभिकल्प का प्रयोग बड़े पैमाने पर किया जाता है। प्रयोगात्मक अभिकल्प के प्रचलन के कारण ही आज योग एवं मनोविज्ञान प्रायोगिक विज्ञान के रूप में स्थापित हो सका है।

प्रयोगात्मक अभिकल्प का प्रयोग दो अर्थों में किया जाता है– सामान्य अर्थ में एवं विशेष अर्थ में। सामान्य अर्थ में प्रयोगात्मक अभिकल्प से तात्पर्य प्रयोगात्मक शोध में निहित उन सभी चरणों या कदमों से होता है जो उपकल्पना की अभिव्यक्ति से लेकर निष्कर्ष निकालने तक में सन्निहित होते हैं। विशेष अर्थ में प्रयोगात्मक अभिकल्प से तात्पर्य उन प्रविधियों से है जिनके सहारे शोधकर्ता स्वतंत्र चर में जोड़–तोड़ करता है, प्रयोज्यों को विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में यादृच्छिक रूप से आबंटित करता है तथा एक उपयुक्त सांख्यिकीय पद्धति का चयन कर प्राप्त प्रदत्तों का विश्लेषण करता है।

प्रयोगात्मक अभिकल्प के अलग–अलग प्रकार हैं, परन्तु सभी प्रयोगात्मक अभिकल्प का मुख्य उद्देश्य त्रुटि प्रसरण को कम करना, बहिरंग चरों को नियंत्रित करना एवं प्रयोगात्मक प्रसरण को अधिकतम स्तर पर लाना होता है। कुछ महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक अभिकल्प हैं– एकल–समूह अभिकल्प, द्वि–समूह समतुल्य अभिकल्प, दो से अधिक समूह अभिकल्प, सोलोमन चार समूह अभिकल्प, प्रकार्यात्मक अभिकल्प, क्रमगुणित अभिकल्प आदि। आगे हम लोग दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प एवं कारक गुणित अभिकल्प पर विशेष चर्चा करेंगे। आइये, पहले अप्रयोगात्मक शोध अभिकल्प के बारे में भी कुछ जानकारी प्राप्त करें।

अप्रयोगात्मक शोध अभिकल्प की सामान्य विशेषता यह होती है कि इस तरह के डिजाइन में न तो प्रयोज्यों का यादृच्छिक चयन हो पाता है और न ही उनका विभिन्न प्रयोगात्मक अवस्थाओं में यादृच्छिक आबंटन ही हो पाता है। कुछ महत्वपूर्ण अप्रयोगिक शोध डिजाइन हैं– मिथ्या प्रयोगिक डिजाइन, अर्द्ध–प्रायोगिक डिजाइन, सह–सम्बन्धात्मक डिजाइन, वैषम्य डिजाइन, केस अध्ययन डिजाइन, सर्वे डिजाइन आदि।

शोध डिजाइन चाहे प्रयोगात्मक हो या अप्रयोगात्मक, उसकी व्याख्या करने में शोध वैज्ञानिकों ने कुछ निश्चित संकेतों का वर्णन किया है जिनकी जानकारी शोध छात्रों के लिए आवश्यक होती है। ऐसे संकेत मूलतः तीन हैं–

R : यह संकेत बताता है कि प्रयोज्यों का या दृच्छिक चयन या प्रयोगात्मक अवस्थाओं में उनका या दृच्छिक आबंटन किया गया है।

X : यह संकेत प्रयोगात्मक चर में किये गये जोड़–तोड़ का सूचक है जिसे विवेचन भी कहतें हैं। जब कई विवेचनों की तुलना की जाती है तो उसे X_1, X_2, X_3 - - , X_n से दिखलाया जाता है।

O : यह संकेत निरीक्षण या मापन का सूचक है। जब शोध में कई परीक्षण प्रयोग में लाया जाता है, यानी कई आश्रित चरों का मापन होता है तो उसे O_1, O_2, O_3, ------ , O_n द्वारा सूचित करते हैं।

जब किसी डिजाइन के एक ही कतार में X तथा O दोनों ही लिखे गए हों, तो इससे यह समझा जाता है कि ये दोनों ही एक ही व्यक्ति पर क्रियान्वित किए गए है। यदि X तथा O एक दूसरे की बायीं या दायीं दिशा में लिखे गए हों, तो इससे कालिक क्रम का पता चलता है और जब X तथा O एक–दूसरे के ऊपर–नीचे लिखे गए हों, तो इससे यह पता चलता है कि ये दोनों समकालिक हैं। संकेतों के समानान्तर कतार जब टूटी–टूटी रेखा से अलग किए गए हों, तो इसका मतलब होता है कि प्रयोगात्मक समूहों को या दृच्छीकरण द्वारा समीकृत नहीं किया गया है, परन्तु, यदि वे टूटी–टूटी रेखा से अलग नहीं किए गए हों, तो इससे यह पता चलता है कि प्रयोगात्मक समूहों को या दृच्छीकरण द्वारा समीकृत किया गया है।

अभ्यास प्रश्न – क

1. **शोध अभिकल्प का उद्देश्य होता है –**

   (i)शोध प्रश्नों के सही उत्तर ढूंढना **(ii) प्रसरण को नियंत्रित करना**

   (iii) उपर्युक्त दोनों ही **(iv) इन दोनों में से कोई नहीं**

2. **प्रयोज्यों का यादृच्छिक चयन होता है –**

   (i)प्रयोगात्मक अभिकल्प में **(ii) अप्रयोगात्मक अभिकल्प में**

   (iii)दोनों ही में **(iv) इन दोनों में से किसी में नहीं**

7.4 दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प –

दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प एक महत्वपूर्ण प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प है जिसका प्रयोग योग एवं मनोविज्ञान के क्षेत्र में काफी किया जाता है। इस अभिकल्प में प्रयोज्यों के दो समूह यादृच्छिक चयन के द्वारा बनाये जाते हैं। फिर किसी एक समूह को प्रयोगात्मक तथा दूसरे को नियंत्रित समूह के रूप में इस्तेमाल किया जाता है। यादृच्छीकरण द्वारा समूह बनाये जाने, समूह की तुल्यता, पूर्व–टेस्ट एवं पश्चात्–टेस्ट आदि के परिप्रेक्ष्य में दो यादृच्छिक समूह डिजाइन के कई रूप प्रयोग में लाये जाते हैं जिनमें कुछ महत्वपूर्ण डिजाइन निम्नवत् हैं–

7.4.1 केवल यादृच्छीकृत पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प –

इसे केवल पश्च–परीक्षण समतुल्य डिजाइन के नाम से भी जाना जाता है। इस डिजाइन में प्रयोज्यों के दो समूह होते हैं जो यादृच्छिक रूप से आबंटित होते हैं। एक समूह में विवेचन दिया जाता है, दूसरे समूह में विवेचन नहीं दिया जाता है। जिसमें विवेचन नहीं दिया जाता है उसे नियंत्रित समूह कहते हैं। इस डिजाइन को संकेतों के माध्यम से निम्नवत् दिखाया जा सकता है–

$R\ X\ O_1$

$R\quad O_2$

इस डिजाइन में उपर्युक्त दोनों ही समूह का निर्माण यादृच्छिक आबंटन की प्रक्रिया द्वारा होता है, इसीलिए वे तुल्य होते हैं। जिस समूह में विवेचन दिया गया है वह $R\ X\ O_1$ द्वारा सूचित है। यह प्रयोगात्मक समूह का सूचक हुआ। जिसमें विवेचन, यानी X नहीं दिया गया है वह $R\ O_2$ द्वारा सूचित है। यह नियंत्रित समूह है। O_1 तथा O_2 आश्रित चर का मूल्य दर्शाते हैं। इन दोनों ही समूहों के प्राप्तांकों के माध्यों के अन्तर की सार्थकता की

जाँच उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षण (एनोवा, टी–टेस्ट, मान–किटनी यू–टेस्ट आदि) द्वारा करके फिर किसी निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है।

7.4.2 केवल यादृच्छीकृत सुमेलित पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प–

इस डिजाइन में भी प्रयोज्यों के दो समूह होते हैं जो यादृच्छिक रूप से आबंटित होते है, परन्तु इसमें बहिरंग चरों को नियंत्रित करने के लिए यादृच्छीकरण एवं स्थिरता दोनों ही प्रविधियों का उपयोग किया जाता है। इसका संकेतन निम्नवत् किया जाता है–

RM X O_1

RM O_2

यानी, इस डिजाइन में दोनों ही समूहों में प्रयोज्यों का प्रारंभिक चयन जनसंख्या से सर्वप्रथम यादृच्छिक ढंग से किया जाता है। फिर इन प्रयोज्यों को उस बहिरंग चर पर सुमेलित कर दिया जाता है जो आश्रित चर को प्रभावित कर सकते हैं। तत्पश्चात् प्रयोज्यों को दो समूहों में यादृच्छिक आबंटन कर दिया जाता है। फिर एक समूह में विवेचन (X) दिया जाता है जबकि दूसरे समूह को वंचित रखा जाता है। पुनः दोनों ही समूहों के आश्रित चर पर प्राप्त प्राप्तांकों का माध्य ज्ञात करके उनके अन्तर की सार्थकता की जाँच उपयुक्त सांख्यिकीय परीक्षण (जैसे– एनोवा, टी–टेस्ट आदि) द्वारा की जाती है।

इस डिजाइन को एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लीजिए एक शोधकर्ता समस्या समाधान व्यवहार पर आयु के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। अतः वह दो अलग–अलग आयु–समूह (जैसे 10–12 वर्ष एवं 16–17 वर्ष) के एक ही सेक्स के प्रयोज्यों का चयन यादृच्छिक रूप से करेगा। अब उसे लगता है कि व्यक्ति की बुद्धि भी समस्या समाधान व्यवहार को प्रभावित करने वाला एक महत्वपूर्ण बहिरंग चर है, अतः वह इन्हें सुमेलन प्रविधि के आधार पर नियंत्रित करेगा। इसके लिए वह दोनों ही आयु समूह के प्रयोज्यों की बुद्धि–लब्धि का निर्धारण किसी बुद्धि परीक्षण के सहारे कर लेगा फिर दोनों ही समूह में समान बुद्धि–लब्धि वाले प्रयोज्यों का चयन यादृच्छिक रूप से करेगा। ऐसी स्थिति में दोनों ही समूह बुद्धि के मामले में बिल्कुल सुमेलित होंगे। फिर वह समस्या समाधान व्यवहार की जाँच उपयुक्त परीक्षण द्वारा करेगा।

7.4.3 पूर्व–परीक्षण पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प–

प्रयोगात्मक डिजाइन के प्रकारों में यह एक अत्यन्त ही महत्वपूर्ण व लोकप्रिय द्वि–समूह यादृच्छिक डिजाइन है। इस डिजाइन में भी दो समूह होते हैं जिनकी आश्रित चर पर जाँच विवेचन (X) देने से पहले कर ली जाती है और फिर उसमें से एक समूह को स्वतंत्र चर प्रस्तुत किया जाता है, यानी विवेचन (X) दिया जाता है और दूसरे समूह को इससे वंचित रखा जाता है। अन्त में, दोनों समूहों की माप आश्रित चर पर कर ली जाती है और एक निश्चित निष्कर्ष पर पहुँचा जाता है। इसका संकेतन निम्नवत किया जा सकता है–

R O_1 X O_2

R O3 O_4

संकेतन से स्पष्ट है कि सभी प्रयोज्यों का चयन शोधकर्ता सर्वप्रथम यादृच्छिक ढंग से कर लेता है तथा फिर उसका दो समूहों में यादृच्छिक आबंटन करता है। किस समूह को प्रयोगात्मक समूह बनाया जायेगा और किसे नियंत्रित–इसका निर्णय भी यादृच्छिक ढंग से (प्रायः सिक्का उछाल कर) किया जाता है। पहले प्रायोगिक एवं नियंत्रित समूह दोनों ही की जाँच आश्रित चर पर करके पूर्व–परीक्षण प्राप्तांक प्राप्त कर लिया जाता है। अब प्रायोगिक समूह को विवेचन (X) दिया जाता है जबकि नियंत्रित समूह को नहीं दिया जाना है। विवेचन देने के पश्चात् दोनों ही समूह का पश्च–परीक्षण प्राप्तांक प्राप्त कर लिया जाता है। पूर्व एवं पश्च परीक्षण प्राप्तांकों के माध्यों का अन्तर ज्ञातकर सार्थकता की जाँच कर ली जाती है।

7.4.4 दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प के गुण–

दो यादृच्दिक समूह डिजाइन चूँकि एक प्रयोगात्मक डिजाइन है जो कड़े नियंत्रण और प्रयोज्यों के यादृच्छिक चयन को प्रश्रय देता है, अतः इसकी निम्नलिखित विशेषताएं दृष्टिगत होती हैं–

(i) प्रयोज्यों के यादृच्छिक चयन के कारण प्रयोग की वैधता को आघात पहुँचाने वाले कारक, जैसे– चयन अभिनति, प्रयोगात्मक नश्वरता आदि अपने–आप नियंत्रित हो जाते हैं।

(ii) डिजाइन में नियंत्रित समूह का उपयोग होने के कारण प्रयोग की आन्तरिक वैधता को आघात पहुँचाने वाले कारक, जैसे–प्रयोज्यों की परिपक्वता, समकालीन इतिहास, सांख्यिकीय प्रतिगमन आदि का स्वतः नियंत्रण हो जाता है।

(iii) इस डिजाइन के द्वारा प्रायोगिक चर के प्रभाव का अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय एवं वैध अध्ययन संभव होता है जिसके सत्यापन का सार्थकता स्तर काफी उच्च होता है।

7.4.5 दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प की सीमाएं–

उपर्युक्त विशेषताओं के रहते हुए भी दो यादृच्छिक समूह डिजाइन में कुछ कमियां हैं जिस ओर समाज विज्ञानिकों ने ध्यान आकृष्ट किया है। ये हैं–

(i) इस डिजाइन में अपेक्षाकृत अधिक प्रयोज्यों की आवश्यकता पड़ती है, अतः श्रम, समय एवं धन का खर्च बढ़ जाता है।

(ii) इस डिजाइन में परीक्षण प्रभाव जैसे कारक जिनका कि प्रयोग की आन्तरिक वैधता पर बुरा असर पड़ता है, नियंत्रित नहीं हो पाता है। यह कमी मूलतः प्री–टेस्ट पोस्ट–टेस्ट डिजाइन में देखी जाती है।

(iii) प्रयोज्यों को दो समूहों में यादृच्छिीकृत रूप से चयनित कर उसे आबंटित कर दिया जाता है और तब किसी कारण से कोई प्रयोज्य प्रायोगिक अध्ययन से अलग हो जाता है तो प्रयोग के वैज्ञानिक संचालन में सैद्धान्तिक कठिनाई उत्पन्न हो जाती है।

(iv) इस डिजाइन के प्री–टेस्ट पोस्ट–टेस्ट प्रकार में एक दोष यह पाया गया है कि पोस्ट–टेस्ट प्राप्तांक में प्री–टेस्ट के अनुभव से उत्पन्न विशेष लाभ स्वतः शामिल हो जाते हैं। ऐसे प्रभावों को सांख्यिकीय रूप से अलग करने का इस डिजाइन में कोई प्रावधान नहीं हैं।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. **संकेतन R X O_1 के माध्यम से व्यक्त किया जाता है ?**
   R O_2
   (i) केवल यादृच्छीकृत पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प को
   (ii) केवल यादृच्छीकृत सुमेलित पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प को
   (iii) पूर्व–परीक्षण पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प को
   (iv) इनमें से किसी को नहीं
2. **किस अभिकल्प में प्रयोज्यों का यादृच्छिक चयन करके एक प्रयोगात्मक समूह एवं एक नियंत्रित समूह का निर्माण किया जाता है।**

7.5 कारकीय अभिकल्प –

कारकीय अभिकल्प जिसे कारक गुणित डिजाइन भी कहते हैं एक जटिल प्रयोगात्मक डिजाइन है जिसका प्रयोग उस परिस्थिति में किया जाता है जहाँ शोधकर्ता एक ही साथ दो या दो से अधिक स्वतंत्र चरों के प्रभावों का अध्ययन करना चाहता है, साथ–ही–साथ वह इन चरों के अन्तः क्रियात्मक प्रभावों का निरीक्षण भी करना चाहता है। इस डिजाइन में बहिरंग या संगत चरों का नियंत्रण उन चरों को स्वतंत्र चर में परिणत करके किया जाता है। यदि किसी शोध में शोधकर्ता किसी आश्रित चर पर एक ही साथ दो स्वतंत्र चरों (A एवं B) का प्रभाव देखना चाहता है तो इसे AxB कारकीय डिजाइन कहेंगे। इसी तरह, यदि वह A, B एवं C तीन स्वतंत्र चरों का प्रभाव देखना चाहता है तो उसे A x B x C कारकीय डिजाइन की संज्ञा देंगे। जैसे–जैसे स्वतंत्र चरों की संख्या में वृद्धि होती जायगी, कारकीय डिजाइन जटिल होता जायेगा क्योंकि स्वतंत्र चरों के मुख्य प्रभाव एवं उनके अन्तःक्रियात्मक प्रभावों की संख्या बढ़ती जायेगी। उदाहरण स्वरूप, AxB कारकीय डिजाइन में शोधकर्ता का उद्देश्य (i) A का मुख्य प्रभाव आश्रित चर पर देखना, (ii) B का मुख्य प्रभाव आश्रित चर पर देखना तथा (iii) C की अन्तःक्रिया का प्रभाव (यानी, A x B प्रभाव) आश्रित चर पर देखना होता है। परन्तु, यदि शोधकर्ता अपने शोध में तीन स्वतंत्र चर A, B एवं C के प्रभाव का अध्ययन कारकीय डिजाइन के सहारे करना चाहता है तो उसका उद्देश्य (i) A का मुख्य प्रभाव आश्रित चर पर देखना, (ii) B का मुख्य प्रभाव

आश्रित चर पर देखना, (iii) C का मुख्य प्रभाव आश्रित चर पर देखना, (iv) A एवं B की अन्तःक्रिया का प्रभाव (यानी, A x C अन्तःक्रिया प्रभाव) आश्रित चर पर देखना, (v) AxC अन्तःक्रिया प्रभाव देखना, (vi) B x C अन्तःक्रिया प्रभाव देखना तथा (vii) A x B x C अन्तःक्रिया प्रभाव आश्रित चर पर देखना होता है। यानी, दो स्वतंत्र चर रहने पर जहां तीन उद्देश्य होंगे वहीं तीन स्वतंत्र चर रहने पर सात उद्देश्य हो जायेंगे। स्पष्ट है कि कारकीय अभिकल्प में स्वतंत्र चरों की संख्या में वृद्धि होने पर सांख्यिकीय एवं प्रेक्षण सम्बन्धी जटिलता बढ़ती जाती है।

कारकीय डिजाइन दो विभाओं के आधार पर परिवर्तित होता पाया गया है— (i) स्वतंत्र चरों की संख्या तथा (ii) प्रत्येक स्वतंत्र चर के स्तरों की संख्या। यदि किसी शोध में दो स्वतंत्र चर हैं और दोनों के दो–दो स्तर हैं तो उसे 2x2 कारकीय डिजाइन कहा जायेगा। इसी प्रकार, यदि किसी शोध में तीन स्वतंत्र चर हैं और प्रत्येक चर के दो–दो स्तर हैं तो उसे 2x2 कारकीय डिजाइन कहा जायेगा। स्वतंत्र चरों की संख्या दो ही हो परन्तु प्रत्येक का तीन–तीन स्तर हो तो उसे 2x2x2 कारकीय डिजाइन कहा जायेगा। यदि एक स्वतंत्र चर का स्तर तीन हो तथा दूसरे का दो हो तो उसे 3x2 कारकीय अभिकल्प कहा जायेगा।

कारकीय अभिकल्प की सबसे छोटी इकाई 2x2 डिजाइन है जिसमें प्रयोगकर्ता कम–से–कम दो स्वतंत्र चरों का एक साथ अध्ययन करता है तथा प्रत्येक चर के कम–से–कम दो–दो स्तर होते हैं। इसमें प्रयोगकर्ता प्रयोज्यों का प्रारंभिक चयन जनसंख्या से यादृच्छिक रूप में कर लेता है, फिर प्रयोज्यों को विभिन्न प्रयोगात्मक समूहों में बाँटकर प्रत्येक समूह में विवेचन,यानी X देता है और उसका मापन आश्रित चर पर कर लेता है। 2 x 2 कारकीय डिजाइन को निम्नवत् संकेतित किया जा सकता है–

	स्वतंत्र चर (A)	
	A_1	A_2
स्वतंत्र चर (B)	$A_1 B_1$	$A_2 B_1$
	$A_1 B_2$	$A_2 B_2$

उपर्युक्त कारकीय डिजाइन 2x2 का है जिसमें स्वतंत्र चर के दो स्तर हैं– A_1 एवं A_2 एवं स्वतंत्र चर B के दो स्तर हैं– B_1 तथा B_2 । ऊपर के चित्र में जो चार बॉक्स या शेल दिखाई पड़ते हैं वे प्रयोगात्मक अवस्थाओं के सूचक हैं। यहाँ इन्हें $A_1 B_1$, $A_2 B_1$, $A_1 B_2$ तथा

$A_2 B_2$ से दर्शाया गया है। जैसे–जैसे स्वतंत्र चरों की संख्या में वृद्धि होती जायेगी तथा प्रत्येक स्वतंत्र चर के स्तर बढ़ते जायेंगे, वैसे–वैसे इनके गुणक रूप में प्रयोगात्मक अवस्थाओं की संख्या भी बढ़ती जायेगी।

उदाहरण स्वरूप,

2 x 2 डिजाइन में प्रयोगात्मक अवस्थाओं की संख्या 4 होगी।

3 x 2 डिजाइन में प्रयोगात्मक अवस्थाओं की संख्या 6 होगी।

4 x 3 डिजाइन में प्रयोगात्मक अवस्थाओं की संख्या 12 होगी।

2 x 2x 2 डिजाइन में प्रयोगात्मक अवस्थाओं की संख्या 8 होगी।

4 x 3 x 2 डिजाइन में प्रयोगात्मक अवस्थाओं की संख्या 24 होगी।

7.5.1 कारकीय अभिकल्प के गुण–

(i) कारकीय अभिकल्प की रचना ऐसी होती है कि इसके द्वारा दो या अधिक स्वतंत्र चरों के लगभग समस्त संयोजनों का अध्ययन एक ही साथ किया जा सकता है।

(ii) स्वतंत्र चरों के मुख्य प्रभाव के साथ–साथ अन्तःक्रियात्मक प्रभावों के अध्ययन की यह एक अनूठी रचना है।

(iii) कारकीय अभिकल्प के द्वारा प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण में उच्च स्तर की सांख्यिकीय प्रविधियों को अनुप्रयुक्त किया जाता है, फलतः इस विधि द्वारा संवेदनशील, सूक्ष्म एवं उच्च वैज्ञानिक स्तर के निष्कर्ष प्राप्त होते हैं।

(iv) इस अभिकल्प के माध्यम से विभिन्न प्रायोगिक अवस्थाओं का एक साथ अत्यधिक परिशुद्ध अध्ययन सफलतापूर्वक सम्पन्न किया जा सकता हे।

7.5.2 कारकीय अभिकल्प की सीमाएं–

(i) इस डिजाइन में स्वतंत्र चरों की संख्या में जैसे–जैसे वृद्धि होती जाती है, अध्ययन की जटिलता बढ़ती जाती है और शोधकर्ता के सामने व्यावहारिक कठिनाई उत्पन्न होने लगती है।

(ii) स्वतंत्र चरों की संख्या एवं उसके स्तर की संख्या बढ़ने से प्रायोगिक अवस्थाओं में ज्यामितीय वृद्धि होती जाती है जिसके लिए प्रयोज्य की संख्या एवं उसका यादृच्छीकरण श्रमसाध्य, समयसाध्य एवं अर्थसाध्य हो जाता है।

(iii) इसके द्वारा प्राप्त निष्कर्षों का स्वरूप सम्बन्धित चरों के पारस्परिक अन्तःक्रियाओं के अन्तसम्बन्धों के कारण प्रायः सरल न रहकर विषम ही रहता है।

अभ्यास प्रश्न – ग

1. **जिस शोध डिजाइन में बहिरंग चरों का नियंत्रण उन चरों को स्वतंत्र चर में परिणत करके किया जाता है, कहलाता है –**

   (i) सर्वे डिजाइन (ii) एस–पोस्ट फैक्टो डिजाइन

   (iii) कारकीय डिजाइन (iv) वैषम्य डिजाइन

2. **यदि किसी शोध में दो स्वतंत्र चर कार्यरत हैं तथा एक स्वतंत्र चर के तीन स्तर एवं दूसरे स्वतंत्र चर के दो स्तर हैं तो कारकीय डिजाइन का स्वरूप होगा –**

   (i) 2×3 (ii) 3×2(iii) 2×2(iv) 3×3

7.6 सारांश

- शोध डिजाइन शोध करने के लिए बनी हुई एक ऐसी परियोजना तथा संरचना है जिसके द्वारा शोध समस्याओं का उत्तर प्राप्त किया जाता है।
- शोध अभिकल्प के मुख्यतः दो उद्देश्य होते हैं – (क) उत्तर ढूंढना तथा (ख) प्रसरण को नियंत्रित करना।
- शोध अभिकल्प तीन तरह के प्रसरणों के क्रमबद्धीकरण पर बल डालता है – प्रयोगात्मक प्रसरण की उच्चतम सीमा प्राप्त करना, बहिरंग प्रसरण को नियंत्रित करना तथा त्रुटि प्रसरण को न्यूनतम करना।
- शोध अभिकल्प को मूलतः दो प्रकारों में बांटा गया है – प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प तथा अप्रयोगात्मक शोध अभिकल्प।
- दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प एक प्रयोगात्मक शोध अभिकल्प है जिसमें प्रयोज्यों का चयन यादृच्छिक रूप से करके फिर उनमें से एक प्रयोगात्मक समूह तथा एक नियंत्रित समूह बनाया जाता है।
- कारकीय अभिकल्प एक जटिल प्रयोगात्मक अभिकल्प है जिसमें शोधकर्ता द्वारा दो या अधिक स्वतंत्र चरों के मुख्य प्रभाव एवं अन्तः क्रियात्मक प्रभावों का अध्ययन एक ही साथ कर लिया जाता है।

7.7 शब्दावली

प्रयोगात्मक प्रसरण : प्रयोगात्मक प्रसरण से तात्पर्य आश्रित चर में उत्पन्न किए गए वैसे प्रसरण से है जिसे शोधकर्ता स्वतंत्र चर में हस्तचालन करके उत्पन्न करता है।

बहिरंग प्रसरण : बहिरंग प्रसरण वैसे चरों के प्रभाव से उत्पन्न होते हैं जिनके अध्ययन में शोधकर्ता की कोई रूचि नहीं होती है और वह उन्हें नियंत्रित करने का प्रयास करता है।

त्रुटि प्रसरण : त्रुटि प्रसरण से तात्पर्य वैसे प्रसरण से है जो प्रयोग या शोध में वैसे कारकों से उत्पन्न होते हैं जो सामान्यतः शोधकर्ता के नियंत्रण से बाहर होते हैं।

7.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न – क

1. (iii) 2. (i)

अभ्यास प्रश्न – ख

1. (i) 2.दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प में

अभ्यास प्रश्न – ग

1 .(iii) 2. (ii)

7.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1.अरूण कुमार सिंह (1998) मनोविज्ञान,समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ, मोतीलाल–बनारसीदास, दिल्ली।

2.एच.के. कपिल (2001) अनुसंधान विधियां (व्यवहारपरक विज्ञानों में), एच.पी. भार्गव बुक हाउस, आगरा।

3.एफ.एन. करलिंगर (1964) फाउण्डेशन्स ऑफ विहैवियरल रिसर्च, हॉल्ट, रिनेहार्ट एवं विंसटन, इंक, न्यूयार्क।

7.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. शोध अभिकल्प से आप क्या समझते हैं? प्रयोगात्मक एवं अप्रयोगात्मक शोध अभिकल्प में अन्तर स्पष्ट करें।
2. दो यादृच्छिक समूह अभिकल्प के गुण एवं दोषों का वर्णन करें।
3. कारकीय अभिकल्प से आप क्या समझते हैं? इस अभिकल्प के प्रमुख गुण एवं परिसीमाओं का उल्लेख करें।
4. संक्षिप्त टिप्पणी लिखें –
   (i) शोध अभिकल्प के उद्देश्य
   (ii) पूर्व–परीक्षण पश्च–परीक्षण नियंत्रित समूह अभिकल्प

इकाई–8 सांख्यिकी का अर्थ एवं महत्व

इकाई की संरचना

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्‌देश्य

8.3 सांख्यिकी का अर्थ

8.4 सांख्यिकी की परिभाषाऐं

8.5 सांख्यिकी के कार्य

8.6 सांख्यिकी के विभिन्न क्षेत्र तथा उनमें उसका महत्व

8.7 सांख्यिकी की प्रकृति

8.9 सांख्यिकी की सीमाएँ

8.9 सांख्यिकी का महत्व

8.10 सारांश

8.11 शब्दावली

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

8.13 संदर्भ–ग्रन्थ

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

8.1 प्रस्तावना–

पूर्व की सांख्यिकी का अध्ययन वर्तमान परिवेश में अपना महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है। यह कला (Art) और विज्ञान (Science) दोनों है। सांख्यिकी के बिना किसी भी कला अथवा विज्ञान की कल्पना नहीं की जा सकती, इसकी सीमाएँ अनन्त है। आज ज्ञान और विज्ञान का कोई पहलू इससे अछूता नहीं है। सांख्यिकी का प्रयोग अब सामाजिक प्रगति, औद्योगिक विकास, खेलकूद उन्नयन, रोजगार कार्यक्रम, सैन्य व्यवस्था, राजनीति, यातायात प्रबन्धन आदि को संख्यात्मक रूप से समझने व व्याख्या करने में किया जाता है। सांख्यिकी के सिद्धान्त, रीतियाँ व प्रक्रियायें ऐसे महत्वपूर्ण व शक्तिशाली यन्त्र है जो संकलित आँकड़ों को सारणी बद्ध कर उनकी विवेचना तथा विश्लेषण करके निर्णयन (Decision Making) में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। अनुसन्धान के क्षेत्र में प्रकल्पनाओं के परीक्षण (Hypothesis testing) के लिए विश्वनियता, (Reliability) वैधता (Validity) और परीक्षण (Test) उपलब्ध कराने का प्रमुख स्रोत होने के कारण यह अनुसंधान के क्षेत्र में अत्यधिक लोकप्रिय है। आँकड़े सांख्यिकी की आत्मा हैं। आँकड़ों का स्वरूप प्रायः विस्तृत एवं जटिल होता है। एक सामान्य व्यक्ति के लिए उनको समझ कर व्याख्या करना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। जिस कारण उसे वह आँकड़ें बेजान व भार स्वरूप लगने लगते है। परन्तु सांख्यिकी का ज्ञान होने पर उन्हीं आँकड़ों को सांख्यिकी की विभिन्न विधियों द्वारा सुव्यवस्थित करके उन्हें विभिन्न चित्रों जैसे दण्ड चित्र (Bar diagram), वर्ग चित्र (Square diagram), आयत चित्र (Rectangular diagram) तथा वृत्त चित्र (Circular or Pie diagram) के रूप में इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि एक सामान्य व्यक्ति भी एक ही दृष्टि में संख्यात्मक जटिल तथ्यों का सम्पूर्ण अर्थ सरलतापूर्वक समझ सकता है। अतः आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति के लिए थोड़ा बहुत सांख्यिकी का अध्ययन आवश्यक है जिसमें वह इन आँकड़ों को भली भांति समझ सकें।

8.2 उद्देश्य–

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. सांख्यिकी का अर्थ तथा इसकी विभिन्न परिभाषाएं जान सकेंगे।
2. सांख्यिकी के कार्य जान सकेंगे।
3. सांख्यिकी के क्षेत्र व उनमें उसका महत्व जान सकेंगे।
4. सांख्यिकी की प्रकृति के विषय में जान सकेंगे।
5. सांख्यिकी की सीमाएँ जान सकेंगे
6. सांख्यिकी का महत्व जान सकेंगे।

8.3 सांख्यिकी का अर्थ–

सांख्यिकी का शाब्दिक अर्थ– **''संख्या का शास्त्र'' है,** अर्थात् संख्या (आँकड़ों) के अध्ययन का शास्त्र। सांख्यिकी को अंग्रेजी भाषा में स्टैटिसटिक्स (Statistics) कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि स्टैटिसटिक्स शब्द का निर्माण लेटिन भाषा के 'स्टेटस' (Status) इटली के स्टैटिस्टा (Statista), फैन्च भाषा के स्टैटिस्टिक (Statistique) तथा जर्मन भाषा के स्टैटिस्टिक (Statistik) द्वारा हुआ है। इन सभी शब्दों का मूल अर्थ ''राजनैतिक राज्य'' (Political States) है। अठराहवीं शताब्दी के मध्य तक राजा अपने राज्य की जनसंख्या, कम्रचारी, सेना आदि के विभिन्न आँकड़ों को एकत्रित कर सांख्यिकी को राज्य गठन विज्ञान के रूप में प्रयोग करते थे। परन्तु बाद में इसका प्रयोग राजकीय कार्यालयों के आँकड़ों को सुव्यवस्थित ढंग से एकत्र करने में किया जाने लगा तथा सांख्यिकी का अर्थ संख्यात्मक तथ्यों में प्रयोग की जा सकने वाली रीतियों से लगाया जाने लगा।

जन सामान्य के लिए सांख्यिकी एक ऐसा विषय है जिसमें विभिन्न तथ्यों (Facts) व मापों (Measurments) से सम्बन्धित आँकड़ों (Data) का संकलन कर उनका विश्लेषण (Analysis) किया जाता है, तथा घटना से सम्बन्धित अनुमान व निष्कर्ष ज्ञात किये जाते हैं। सांख्यिकी विज्ञान की विभिन्न विधियों व सिद्धान्तों से परिचित व्यक्तियों के लिए सांख्यिकी का अर्थ माध्य (Mean) , बहुलक (Mode), माध्यिका (Medean) जैसी विवरणात्मक मापों से है जिनकी गणना प्रतिदर्श–आंकड़ों (समंको) (Sample data) द्वारा की जाती है।

सांख्यिकी शब्द को अलग–अलग वचनों में अलग–अलग परिभाषित किया गया है। जब इसे एक वचन के रूप में प्रयोग किया जाता है तब इसका आशय विज्ञान अथवा विज्ञान पद्धति से होता है, तथा यदि इसका प्रयोग बहुवचन के रूप में किया जाता है तो इसका अर्थ उन आँकड़ों से होता है, जिनका संकलन, वर्गीकरण विश्लेषण व प्रस्तुतीकरण किया जाना होता है।

8.4 सांख्यिकी की परिभाषाएँ–

विभिन्न विद्वानों एवं सांख्यिकीविज्ञों ने सांख्यिकी की परिभाषा अपने व्यक्तिगत मतानुसार दी है। डा. ए0एल0 बाउले के अनुसार, ''विभिन्न विद्वानों द्वारा सांख्यिकी शब्द की अनेक परिभाषाएं प्रस्तुत की गयी है तथा प्रत्येक के द्वारा इसकी नई सीमाऐं निर्धारित की गयी हैं।''

(very many definations have been given of the word 'statistics' and each author who has written on the subject has assigned new limites to the field.)

विभिन्न विद्वानों द्‌वारा दी गयी कुछ प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित हैं।

डा. ए.एल. बाऊले (Dr. A.L. Bowley) के अनुसार –

सांख्यिकी किसी अनुसंधान के किसी विभाग में संख्यात्मक तथ्यों का समूह है, जो एक दूसरे के साथ सम्बन्ध प्रकट करता है।

(Statistics are numerical statement of facts in any department of enquiry placed in relation to each other).

इस परिभाषा में बाउले ने आंकड़ों की विशेषता दर्शाते हुए उन्हें परस्पर तुलनात्मक बताया है। उनके अनुसार आंकड़ों का सम्बन्ध अनुसंधान से है तथा वे संख्यात्मक रूप में एकत्र किये जाते हैं।

बाउले ने विज्ञान के रूप में सांख्यिकी को निम्न तीन प्रकार से परिभाषित किया है।

(i) सांख्यिकी गणनाओं का विज्ञान है।

(Statistics is the science of counting)

यह परिभाषा अपूर्ण मानी गयी है चूंकि यहां सांख्यिकी को मात्र गणना तक ही सीमित कहा गया है। किन्तु मात्र गणना से सांख्यिकी का कार्य समाप्त नहीं होता। इसमें तथ्यों का विश्लेषण (Analysis) प्रस्तुतिकरण (Presentation) व निर्वचन आदि करना होता है।

(ii) सांख्यिकी को उचित रूपों से माध्यों का विज्ञान कहा जा सकता है।

(Statistics may rightly be called the science of averages)

सांख्यिकी में माध्य का एक महत्वपूर्ण स्थान है किन्तु ऐसा नहीं है कि यह केवल माध्य का ही विज्ञान है इसके अतिरिक्त विषमता (Skewness), सह सम्बन्ध (Correlation), अपकिरण (byspersion) आदि विधियों का भी प्रयोग किया जाता है। अतः यह परिभाषा भी अपने में पूर्ण नहीं है।

(iii) 'सांख्यिकी' सामाजिक व्यवस्था को पूर्ण मानकर उसके सभी रूपों को मापने का विज्ञान है।''

(Statistics is the science of measurement of the social organism, regarded as a whole, in all its manifestations).

यह एक संकुचित परिभाषा है, इसके अनुसार सांख्यिकी का क्षेत्र केवल सामाजिक व्यवस्था तक ही सीमित है किन्तु आधुनिक दृष्टिकोण से सांख्यिकी की भूमिका व्यापक है। इसका प्रयोग आज विभिन्न विषयों जैसे भौतिक विज्ञान, अन्तरिक्ष विज्ञान, जीव विज्ञान, अर्थशास्त्र आदि में बहुतायत होता है।

वैबस्टर (Webster) के अनुसार, *''यह किसी राज्य की प्रजा की दशा को दर्शाने वाले वर्गीकृत तथ्य है। विशेषकर यह वह तथ्य है जिन्हें संख्याओं, संख्याओं की सारणियों में या अन्य किसी सारणी अथवा वर्गीकृत क्रम में रखा जा सकता है।''*

(Statistics are classified facts, representing the condition of the people in a state, specially those facts which can be stated in numbers or in tables of numbers or in any tabular or classified arrangement)

आधुनिक दृष्टिकोण से यह पूर्ण परिभाषा नहीं है यहाँ सांख्यिकी को केवल क्षेत्र विशेष (सरकार के आँकड़ों का संकलन) तक सीमित रखा गया है।

प्रो. ए.एल. बॉडिगटन (Prof. A.L. Boddington) के अनुसार, *''सांख्यिकी अनुमान तथा सम्भावनाओं का विज्ञान है''*

(Statistics is the science of estimates and probabilities)

यह भी एक संकुचित परिभाषा है चूँकि इसमें सांख्यिकी की अनेक महत्वपूर्ण विधियों को छोड़कर केवल अनुमान और सम्भावना पर ही केन्द्रित किया गया है। सांख्यिकी में आँकड़ा संकलन (Collection of data) में इन दोनों की महत्वपूर्ण भूमिका है किन्तु केवल यही सांख्यिकी नहीं है।

इनके अतिरिक्त यहाँ कुछ आधुनिक परिभाषाएँ प्रस्तुत है जिनके अनुसार सांख्यिकी के विज्ञान को निर्णय लिये जा सकने वाली विधियों के समूह के रूप में परिभाषित किया गया है।

1. हैडले (Hadley) के अनुसार, *''सांख्यिकी का आधुनिक अर्थ है कि इसके द्वारा अनिश्चितता वाली किसी स्थिति के बारे में संकलित आँकड़ों के प्रयोग से उस स्थिति के लिए ठोस निष्कर्ष निकाला जा सकता है''*

(The modern meaning of statistics is that of using data gathered about some situation involving uncertainty to draw some relevant conclusions about the situation)

2. प्रो0 लाविट (Prof. Lavit) के अनुसार, *''सांख्यिकी वह विज्ञान है जो संख्यात्मक तथ्यों की व्याख्या व वर्णन तथा तुलना करने के लिए समकों (आंकड़ों) का संकलन, वर्गीकरण व सारणीकरण करता है।''*

(Statistics is the science which deals with the collection, classification and tabulation of numerical facts as the basis for explanations description and comparision of phenomena).

3. क्राक्सटन एवं काउडेम (Croxton and Cowden) के अनुसार, *''सांख्यिकी को संख्या सम्बन्धि आँकड़ों के संकलन, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण तथा निर्वचन के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।''*

(Statistics may be defined as the collection, presentation, analysis and interpretation of numerical data).

4. सैलिगमैन (Saligman) के अनुसार, *''सांख्यिकी किसी भी जानकारी के क्षेत्र में प्रकाश डालने हेतु संख्यात्मक तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण, प्रस्तुतीकरण, तुलना व निर्वचन की विधियों का विज्ञान है।''*

(Statistics is the science which deals with the methods of collecting, classifying, presenting, comparing and interpreting numberical data collected to throw some light on any sphere of inquiry.

5. प्रो0 एम0जी0 केण्डाल (Prof. M.G. Kendall) के शब्दों में, *''सांख्यिकी वैज्ञानिक पद्धतियों की वह शाखा है जो प्राकृतिक रूप से प्राप्त जनसंख्या के गुणों की गणना माप के आँकड़ों के आधार पर करती है''।*

(Statistics is the branch of scientific method which deals with data obtained by counting or measuring properties of populations of natural phenomena)

उनके अनुसार यहाँ प्रयुक्त 'प्राकृतिक रूप से प्राप्त' का अर्थ संसार में होने वाली सभी घटनाओं से है चाहे उनका सम्बन्ध मानव जाति से हो या न हो।

6. डब्ल्यू0 आई0 किंग (W.I. King) के अनुसार, *''सांख्यिकी का विज्ञान वह रीति है, जिसके द्वारा किसी एक गणना या अनुमानों के संकलन से प्राप्त परिणामों के द्वारा सामूहिक, प्राकृतिक या सामाजिक घटनाओं का विवेचन किया जाता है।''*

(Science of statistics is the method of judging collective, natural or social phenomena from the result obtained by the analysis of an enumeration or collection of estimates.)

7. वालिस और रॉबर्ट्स (Wallis and Roberts) के अनुसार, *''सांख्यिकी अनिश्चितता की स्थिति में बुद्धिपूर्वक निर्णय लेने का समुच्चय है।''*

(Statistics is a body of methods for making wise decisions in the face of uncertainty).

8. केने तथा कीपिंग (Kenney and Keeping) के शब्दों में, *''सामान्यतः सांख्यिकी का अर्थ उस विज्ञान तथा कला से सम्बन्धित है जिसमें उन संख्यात्मक, तथ्यों*

का संकलन, प्रस्तुतीकरण तथा विश्लेषण किया जाता है जिसके आधार पर बुद्धिमत्तापूर्वक निर्णय लिया जा सके।''

(Statistics has usually meant the science and art concerned with the collection, presentation and analysis of quantitative data so that intelligent judgement may be formed upon tham.

9. नेटर तथा वासरमेन (Netter and Wasserman) के शब्दों में, ''सांख्यिकी उन तकनीक तथा वैज्ञानिक पद्धतियों का समूह है जिसको संख्यात्मक आँकड़ों के संकलन, प्रस्तुतीकरण व विश्लेषण करने तथा उनका प्रयोग निर्णय लेने हेतु करने के लिए विकसित किया गया है।

(Statistics refers to the body of technique or methodology which has been developed for the collection, presentation and analysis of quanititative data and for the use of such data in decision making).

उपरोक्त सभी परिभाषाओं के आधार पर सांख्यिकी को निम्न प्रकार परिभाषित किया जा सकता है।

''सांख्यिकी का कला तथा विज्ञान दोनों में समावेश है। यह प्रत्येक अनुसंधान क्षेत्र से सम्बन्धित आँकड़ों या संख्यात्मक तथ्यों (जो अनेक कारणों से प्रभावित होते है) का संकलन, प्रस्तुतीकरण, वर्गीकरण, विश्लेषण, पूर्वानुमान तथा निर्वचन से सम्बन्धित है जिससे अनिश्चितता की स्थिति में ठोस एवं बुद्धिमत्तापूर्ण निर्णय लिये जा सकें।''

8.5 सांख्यिकी के कार्य–

प्राचीन काल से ही सांख्यिकी का प्रयोग राजाओं द्वारा अपने शासकीय प्रबन्धन हेतु किया जाता रहा है। वे आँकड़ों का संग्रह करके राज्य की आय, कृषि एवं उत्पादन, सैन्य शक्ति आदि का अनुमान लगाते थे। इस कारण इसे 'राज्य विज्ञान' (Science of King) की संज्ञा दी गई थी।

चाणक्य द्वारा ''अर्थशास्त्र' में अर्थ (Finance) सम्बन्धी आँकड़ों का प्रयोग किया गया है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़े एकत्र किये थे।

वर्तमान समय में सांख्यिकी का प्रयोग शिक्षा, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, व्यापार, प्रबन्धन आदि की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने हेतु किया जाता है। वर्तमान में शायद ही कोई क्षेत्र इससे अछूता हो। सांख्यिकी द्वारा किये जाने वाले कुछ महत्वपूर्ण कार्य यहां प्रस्तुत है–

1. सर्वप्रथम इसका कार्य आवश्यक प्रदत्त सामग्री अर्थात् तथ्यपूर्ण तथा सम्बन्धित आँकड़ों का संग्रह करना है। यह संग्रहण स्वयं तैयार किया जा सकता है या किसी सरकारी, अर्द्ध सरकारी या गैर सरकारी संस्थाओं द्वारा विशेषज्ञों की मद्द से करवाया

जाता है। यह अति महत्वपूर्ण कार्य है। दरअसल यह किसी भी सांख्यिकी समस्या के लिए नींव है। चूँकि आँकड़ों की सत्यता पर ही प्रमाणिकता आधारित है। आँकड़ों के संग्रहण में सर्तकता बहुत आवश्यक होती है। आँकड़ों का संग्रह किसी प्रशिक्षित विशेषज्ञ की सहायता से होना चाहिए तथा प्रयोग से पहले आँकड़ों की सत्यता की जाँच भी आवश्यक है।

2. आँकड़ों के संग्रहण के पश्चात् इनको समुचित रूप से व्यवस्थित करना, दूसरा कार्य है जिसके विश्लेषण व विवेचना करने में सुविधा होती है। बहुत अधिक आँकड़े होने की स्थिति में उन्हें वर्गीकृत तथा सारणीबद्ध किया जाता है।

3. वर्गीकृत सारणी अर्थात् आवर्ती वितरण (Frequency distribution) से विश्लेषण (Analysis) करना अगला महत्वपूर्ण कार्य होता है। इसे करने के लिए सांख्यिकी में विभिन्न विधियाँ उपलब्ध है जैसे– केन्द्रीय प्रवृत्ति मापें (Measures of central tendency), सहसम्बन्ध (Co-relation) आदि। विभिन्न सांख्यिकी मापों को ज्ञात करने हेतु सांख्यिकी की विभिन्न पद्धतियों एवं महत्वपूर्ण सूत्रों का प्रयोग कर प्राप्त आँकड़ों से आलेख बनाये जाते है जिनसे उनकी विवेचना एवं विश्लेषण सरलता से किया जा सकता है।

4. व्यापीकरण कर चर राशियों के मानों का अनुमान लगाया जाता है। सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात कर, दो चरों में से एक का मान ज्ञात होने पर दूसरे के विषय में अनुमान लगाया जा सकता है।

5. कभी कुछ समस्याओं में तथ्य इस प्रकार होते है जो व्यक्ति के गुणों पर आधारित होते है जैसे– बुद्धिमत्ता, सौन्दर्य, ईमानदारी आदि। इन गुणात्मक तथ्यों को संख्यात्मक रूप प्रदान कर उनकी विवेचना तथा विश्लेषण किया जाता है।

इसके अतिरिक्त संकलित आँकड़े अनुसंधान हेतु प्रयोग किये जाते है, सांख्यिकी का एक महत्वपूर्ण कार्य भूतकाल में हुयी घटनाओं से संकलित आँकड़ों के सहयोग से भविष्य की योजनाओं हेतु पृष्ठ भूमि तैयार करना है।

8.6 सांख्यिकी के विभिन्न क्षेत्र तथा उनमें उसका महत्व–

सांख्यिकी का क्षेत्र तथा महत्व वर्तमान युग में दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। प्राचीन काल से ही सांख्यिकी को राज्य के अंकगणित की संज्ञा दी जाती रही है। जैसे–जैसे मानव समाज का विकास हुआ, उनमें आर्थिक क्रियाओं, भविष्य सम्बन्धि योजनाओं, विभिन्न प्रबन्धन आदि के साथ–साथ सांख्यिकी का क्षेत्र भी बढ़ता चला गया। आज विज्ञान की कोई शाखा ऐसी नहीं है जिसमें सांख्यिकी का प्रयोग न होता हो। सामाजिक विज्ञान, मनोविज्ञान, शिक्षा, प्रबन्धन आदि में सांख्यिकी अपना महत्वपूर्ण योगदान देकर मानव समाज को निरन्तर प्रगति की ओर ले जाने में सहायता कर रही है। विभिन्न योजनाएँ बनाते समय सांख्यिकी की रीतियों का प्रयोग किया जाता है इसके प्रयोग के बिना हम किसी योजना का सफलतापूर्वक निर्माण नहीं कर सकते और न ही उनको सफलतापूर्वक क्रियान्वित कर सकते है। यही कारण है कि आज विभिन्न संस्थाओं, दफ्तरों, अध्यवसायों (Industries) आदि में सांख्यिकी के ज्ञाता विद्वानों की विशेष माँग है।

सांख्यिकी का प्रयोग जिन क्षेत्रों में किया जाता है उनमें से कुछ क्षेत्र व उनमें सांख्यिकी का महत्व निम्नलिखित है–

(I) जीव विज्ञान में–

सांख्यिकी का प्रयोग जीव विज्ञान के शिक्षक व छात्र व शोधार्थियों द्वारा बहुतायत किया जाता है। जीव विज्ञान से सम्बन्धित आँकड़ों का अध्ययन जब सांख्यिकी विधियों द्वारा किया जाता है तब उसे जैव सांख्यिकी (Biostatistics) कहा जाता है। जीव विज्ञान के अनेक नियमों के प्रतिपादन तथा विकास का आधार आँकड़े है। कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) द्वारा सहसम्बन्ध तथा प्रतीयगमन गुणांक (Coefficient of Correlation and Regression) का निर्माण, पिता व पुत्र की लम्बाईयों में एकत्रित आँकड़ों की तुलनात्मक अध्ययन के फलस्वरूप हुआ। पेड़ पौधों में खाद देने के बाद उनमें आने वाले बदलाव के आँकड़े एकत्र करके उनका विश्लेषण व व्याख्या सांख्यिकी की रीतियों द्वारा ही की जाती है। हम 'टी' परीक्षण का प्रयोग कर निर्णय ले सकते है कि कौन सी खाद किन पेड़ पौधों के लिए अधिक उपर्युक्त है। चिकित्सा क्षेत्र में एक ही समय पर एक से अधिक चिकित्सा पद्धतियों के प्रभाव का अध्ययन करने हेतु काई वर्ग परीक्षण (χ^2-chi-square test) का प्रयोग किया जाता है। जीव विज्ञान की विभिन्न शाखाओं जैसे– जैव प्रौद्योगिकी, वानिकी आदि के विकास में सांख्यिकी का महत्वपूर्ण योगदान है। ऊँचाई तथा भार के बीच सहसम्बन्ध ज्ञात करने हेतु सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है। जैव सांख्यिकी का प्रयोग विभिन्न दवाओं का असर बीमारियों पर देखने हेतु किया जाता है। इसी प्रकार किसी बीमारी तथा उसके होने के कारणों जैसे कैन्सर व धूम्रपान के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण करने में भी उसका प्रयोग महत्वपूर्ण जानकारियां प्रदान करता है जिससे अनुसंधानों में बहुत सहायता मिलती है।

(II) अर्थशास्त्र में– प्राचीन काल से ही सांख्यकी का प्रयोग अर्थशास्त्र सम्बन्धित समस्याओं हेतु होता रहा है।

टिप्पेट के अनुसार, "एक दिन ऐसा भी हो सकता है कि विश्वविद्यालयों के अर्थशास्त्र विभाग सिद्धान्तवादियों के अधीन न रहकर सांख्यिकीय प्रयोगशालाओं के अधीन हो जाए।" वास्तव में सांख्यिकी के प्रयोग के बिना अर्थशास्त्र की बहुत सी समस्यायें जटिल हो जायेगी। उपभोग, उत्पादन, राजस्व, विनिमय वितरण में विभिन्न समस्याओं के समाधान हेतु सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त आयकर नियमों, प्रति व्यक्ति आय ज्ञात करने, विकास योजनाओं के निर्माण, औद्योगिक प्रबन्धन तथा आर्थिक अनुसंन्धानों में सांख्यिकी का महत्वपूर्ण स्थान है।

अर्थशास्त्र की प्रत्येक शाखा में कार्य करने हेतु सांख्यिकी का ज्ञान होना आवश्यक है। सांख्यिकी विधियों द्वारा विभिन्न आर्थिक समस्याओं को समझना तथा भविष्य के लिए आर्थिक नीति तैयार करना सरल हो जाता है। देश का बजट तैयार करने में सांख्यिकी आँकड़ों का महत्वपूर्ण योगदान रहता है।

अर्थशास्त्री बाजार की माँग व पूर्ति के तुलनात्मक आँकड़ों द्वारा मूल्य निर्धारण तथा लागत मूल्य का अध्ययन करते है। इसी प्रकार वितरण हेतु एकत्र किये गये आँकड़ों का अध्ययन करके ही राष्ट्रीय आय की गणना की जाती है। राष्ट्रीय आय का वितरण किस प्रकार किया जाय कि उसका उपयोग सभी वर्ग के देशवासियों के लिए समान हो सके, इसके लिए भी सांख्यिकीय आँकड़ों का प्रयोग होता है।

उत्पादन एवम् उपभोग मानव जीवन की महत्वपूर्ण क्रियाएँ है। किसी भी देश की प्रगति एवं विकास में वहाँ के उत्पादन के आँकड़े महत्वपूर्ण योगदान देते है इन्हीं आँकड़ों की सहायता से उत्पादन के अलग–अलग घटकों की गणना एवं तुलना की जा सकती है। प्रत्येक प्रगतिशील देशों द्वारा ''उत्पादन की गणना (Census of Production) की जाती है। इसी प्रकार उपभोग के आँकड़े हमें विभिन्न आय वर्गो द्वारा व्यय की गयी आय का विवरण प्रदान करते है जिससे देश के व्यक्तियों के रहन–सहन के स्तर का ज्ञान होता है तथा अर्थशास्त्रियों को देश की आर्थिक नीतियाँ बनाने में सहायता मिलती है।

अर्थशास्त्री वर्तमान में विभिन्न अर्थ सांख्यिकीय विधियों जेसे सामाजिक लेखांकन (Social accounting), साधन उत्पादन विश्लेषण (Intput analysis), लागत लाभ विश्लेषण (cost benefit analysis) आदि का प्रयोग करते है।

बाउले के अनुसार, ''राजनैतिक अर्थशास्त्र का कोई भी विद्यार्थी पूर्णता का दावा नहीं कर सकता, जब तक कि वह सांख्यिकीय विधियों में दक्षता हासिल नहीं कर लेता तथा उसकी कठिनाइयों का ज्ञान प्राप्त नहीं कर लेता''

“No student of political economy can pretend to complete equipment unless he is a master of the method of statistics (and) knows its difficulties.”

(III) वाणिज्य शास्त्र में– आधुनिक युग में वाणिज्य एक विस्तृत क्षेत्र है इसमें सांख्यिकी का प्रयोग व्यापार सम्बन्धी आँकड़ों का लेखा रखने में होता है। आँकड़ों की सहायता से आयात–निर्यात व क्रय–विक्रय की सही जानकारी प्राप्त होती है जिससे व्यापार को सही मार्ग दर्शन प्राप्त होता है। बैंकिंग के क्षेत्र में सांख्यिकी का महत्वपूर्ण योगदान है ब्याज दर निर्धारण में पूँजी की माँग व पूर्ति के आँकड़ों का विशेष योगदान रहता है। बीमा क्षेत्र आज समाज में महत्वपूर्ण स्थान बना चुका है इसके विकास में सांख्यिकी ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(IV) मनोविज्ञान में– मनोवैज्ञानिक अनुसन्धानों तथा अध्ययनों में सांख्यिकी का बहुधा प्रयोग किया जाता है। मनौवैज्ञानिक अपने प्रयोगों से प्राप्त परिणामों की व्याख्या करने हेतु सांख्यिकी का सहारा लेते है तथा इसकी रीतियों के प्रयोग से ही आसानी से निष्कर्ष भी निकालते है। मनौवैज्ञानिक अनुसंधान से पूर्व काई वर्ग परीक्षण (χ^2-chi square test) का प्रयोग करके अध्ययन सम्बन्धी पूर्वानुमान लगाकर अग्रगामी अध्ययन को सुगम बनाते है। इसी प्रकार सांख्यिकी के विविध परिणामों की मनोवैज्ञानिक परीक्षण (Testing) के क्षेत्र में पद विश्लेषण (Item analysis), वैधता (Validity), विश्वसनियता (Reliability), मापन

(Measurment) आदि में आवश्यकता पड़ती है। मनोविज्ञान की समस्याओं को हल करने हेतु सहसम्बन्ध की महत्वपूर्ण भूमिका रहती है। इसकी सहायता से स्वतन्त्र चर (Independent Variable) तथा परतन्त्र चर (Dependent Variable) का परस्पर कार्य तथा कारण (Cause and effect) के प्रभाव का अध्ययन किया जाता है। सांख्यिकी रीतियों का प्रयोग करके ही मनौवैज्ञानिक बुद्धिगुणक (I.Q.) की गणना करते है। शिक्षा मनोवैज्ञानिक बच्चों को पढ़ाने के नये तरीकों को ढूँढने हेतु आँकड़ों का संकलन करते है इसी प्रकार अस्पतालों में रोगी व परिचारिकाओं के परस्पर व्यवहार सम्बन्धी आँकड़े इकट्ठा कर सामाजिक मनोवैज्ञानिक उनका एक दूसरे के प्रति दृष्टिकोण जानते है।

(V) सामाजिक विज्ञान में– प्राचीन काल से राजा अपने राज्य की सामाजिक दिशा व दशा को स्वस्थ रखने के लिए सांख्यिकी का प्रयोग करते थे। वर्तमान युग में सामाजिक अनुसंधानों व योजनाओं का निर्माण करने में सांख्यिकी का विशेष योगदान रहता है। सामाजिक घटनाओं व प्रक्रियायें प्रायः अमूर्त होती है। जिस कारण उनका संख्यात्मक विश्लेषण करने में कठिनाई होती है। चुनावी विश्लेषण में सांख्यिकी का बहुत बड़ा योगदान रहता है। विभिन्न सांख्यिकी रीतियों का प्रयोग करके चुनावी परिणामों का पूर्वानुमान लगाया जाता है। राजनीतिक पार्टियां अपनी स्थिति को मजबूत करने के लिए सांख्यिकी का सहारा लेती है। इतिहास, भूगोल, राजनीति विज्ञान आदि शास्त्रों में सांख्यिकी का बहुत प्रयोग किया जाता है।

8.7 सांख्यिकी की प्रकृति–

सांख्यिकी की प्रकृति जानने का अर्थ यह निष्कर्ष निकालना है कि सांख्यिकी विज्ञान है अथवा कला या दोनों।

सांख्यिकी के विज्ञान होने सम्बन्धी कारण–

सर्वप्रथम यह जानना आवश्यक है कि विज्ञान से हमारा क्या अभिप्राय है। ज्ञान की वह शाखा जिसमें कारण और परिणाम का अध्ययन करके किसी घटना का क्रमबद्ध व सामूहिक रूप से विश्लेषण किया जाता है, विज्ञान कहलाता है अर्थात विज्ञान किसी ज्ञान का व्यवस्थित अध्ययन होता है। विज्ञान के नियम सार्वभौमिक तथा प्रगतिशीलता निरूपित करने वाले होते है।

विज्ञान की उपरोक्त विशेषताएँ सांख्यिकी में भी स्पष्ट दिखाई देतीं हैं–

1. सांख्यिकी में भी कारण और परिणाम दोनों का विश्लेषण कर सम्बन्ध ज्ञात किये जाते है।
2. सांख्यिकी के अनेक सिद्धान्त नियम भी सार्वभौमिकता निरूपित करने वाले एवं सवर्वव्यावी है। यह सभी स्थानों पर प्राप्त किये जा सकते हैं।

जैसे–सांख्यिकी नियमितता का नियम (Law of statistical regularity) तथा सम्भावना सिद्धान्त (Theory of Probability)

3. सांख्यिकी में भी घटनाओं का क्रमबद्ध एवं सुव्यवस्थित विश्लेषण किया जाता है।

4. सांख्यिकी द्वारा भविष्य सम्बन्धी पूर्वानुमान लगाये जा सकते है।

कार्ल पियर्सन (Karl Pearson) के अनुसार, वह ज्ञान जो–

अ. नागरिकों को मानसिक शिक्षा दे,

ब. समाज की महत्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डाले,

स. व्यावहारिक जीवन में आनन्द प्रदान करे तथा

द. हमारी कलात्मक भावनाओं को सन्तुष्ट करे,

विज्ञान कहलाता है। सांख्यिकी में भी उपरोक्त समस्त गुण है अतः सांख्यिकी को विज्ञान कहा जा सकता है।

यह सभी स्थानों पर प्रयोग किये जा सकते हैं। परन्तु इस कथन के विरोधाभास भी है। कई महान विचारकों ने इसे विज्ञान न मानकर एक वैज्ञानिक विधि माना हैं। विचारकों का मानना है कि सांख्यिकी की तुलना रसायन विज्ञान, भौतिक विज्ञान, अर्थशास्त्र विज्ञान से नहीं की जा सकती क्योंकि सांख्यिकी के द्वारा अध्ययन में चर परिवर्तित होते रहते है जिससे उन पर पूर्ण नियन्त्रण नहीं रह पाता तथा प्राप्त निष्कर्षो में प्रायः उच्चतम् वैज्ञानिक कठोरता, वैधता व विश्वसनीयता में कुछ कमी पायी जाती है। प्रो0 वॉलिस और राबर्ट्स (Walis and Roberts) के अनुसार, ''सांख्यिकी स्वतन्त्र व मौलिक ज्ञान का समूह नहीं है लेकिन वह ज्ञान प्राप्त करने की विधियों का समूह है।''

"Statistics is not a body of substansive knowledge, but a body of methods for obtaining knowledge.

अतः सांख्यिकी स्वयं ज्ञान नहीं है बल्कि ज्ञान प्राप्त करने का साधन है।

क्राक्सटन और काउडेन (Croxton and Cowden) के अनुसार, *''सांख्यिकी एक विज्ञान नहीं है, वह एक वैज्ञानिक विधि है।''*

(Statistics is not a science, it is a scientific method).

सांख्यिकी के कला होने सम्बन्धी कारण–

विज्ञान द्वारा प्राप्त ज्ञान का क्रियान्वन का क्षेत्र कला है, अतः कला एक प्रयोगात्मक ज्ञान है। कला किसी समस्या का समाधान करने वाली क्रियाओं का समुच्च है। इन

क्रियाओं द्वारा समस्याओं का हल कुशलता, संयम व अनुभव द्वारा किया जाता है। कला लक्ष्य प्राप्ति के उपायों को दर्शाती है तथा उत्तम आदर्शो की ओर ले जाती है। सांख्यिकी के सन्दर्भ में व्याख्या करने पर उसमें भी उपरोक्त गुणों का समावेश पाया जाता है। सांख्यिकी वैज्ञानिक तरीकों को व्यावहारिक जीवन में प्रयोग करना बताती है जिस प्रकार कला तथ्यों का केवल वर्णन ही नहीं करती, उसमें सही–गलत का बोध भी कराती है उसी प्रकार सांख्यिकी में हम विभिन्न समस्याओं का विश्लेषण करने की विधियाँ ही नहीं सीखते, बल्कि उन विधियों को विभिन्न स्थितियों में कैसे प्रयोग किया जाए इसका भी अध्ययन करते है। कला की भाँति सांख्यिकी में भी तथ्यों का निर्माण किया जाता है, इसमें हम विभिन्न समुच्यों व योग्यताओं का सूचकांक (Index) बनाना सीखते हैं। सांख्यिकी में बड़े–बड़े आँकड़ों का आवृति वितरण कर उन्हें आलेख–चित्रों द्वारा दर्शाना व स्पष्ट किया जाना उसके कलात्मक रूप को उजागर करता है।

अतः उपरोक्त कथन सांख्यिकी के एक कला होने का पर्याप्त संकेत देते है इसलिए कहा जा सकता है कि सांख्यिकी एक कला है।

उपरोक्त कथनों के अनुसार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि सांख्यिकी एक 'विज्ञान' तथा 'कला' दोनों है। टिपेट के अनुसार, ''सांख्यिकी विज्ञान व कला दोनों है। यह विज्ञान है क्योंकि इसकी विधियाँ मूलतः व्यवस्थित हैं और उनका सामान्य प्रयोग भी है तथा यह एक कला है क्योंकि इसके सफल प्रयोग पर्याप्त सीमा तक सांख्यिक विद्वानों की योग्यता, विशेष अनुभव तथा उसके प्रयोग क्षेत्र जैसे अर्थशास्त्र के ज्ञान पर निर्भर करते हैं।

(It is both a science and an art. It is science in that its methods are basically systematic and have general application and an art in that their successful application depends to a considerable degree on the skill and special experience of the statistician and on his knowledge of the field of application, e.g. economics).

8.8 सांख्यिकी की सीमाएँ–

वर्तमान युग में सांख्यिकी एक महत्वपूर्ण विज्ञान के रूप में अपनी विशिष्ट पहचान बना चुकी है। इसकी कुछ निश्चित सीमाएँ है जिन्हें जानना आवश्यक है। टिप्पेट के अनुसार, ''किसी भी क्षेत्र में सांख्यिकीय रीतियों का प्रयोग कुछ मान्यताओं पर आधारित है तथा कुछ सीमाओं से प्रभावित होता है इसलिए प्रायः अनिश्चित निष्कर्ष प्राप्त होते है।''

(The application of statistical methods to investigation in the technological and indeed in any other field is bassed on assumptions, is subject to limitations and often leads to uncertain results).

हॉलाकि सांख्यिकी एक अकेला ऐसा विज्ञान नहीं है जो सीमाओं में बंधा है लगभग प्रत्येक विज्ञान की अपनी कुछ सीमाएँ व अपवाद है। भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान जैसे ठोस प्रकृति वाले विज्ञानों की भी कुछ सीमाएँ है। सांख्यिकी की सीमाओं को समाप्त करना तो कठिन है किन्तु कुछ सावधानियाँ रखकर हम उनसे होने वाली समस्याओं को न्यूनतम

अवश्य कर सकते है। न्यूज होम के अनुसार, ''इसको (सांख्यिकी को) हमें अनुंसन्धान हेतू एक मूल्यवान उपकरण मानना चाहिए लेकिन इसकी अनेक सीमाएँ है जिनका निराकरण सम्भव नहीं है और उन पर हमें सावधानी पूर्वक विचार करना चाहिए''।

(It (statistics) must be regarded as an instrument of research of great value, but having serveral limitations which are not possible to overcome and as such they need careful attention).

सांख्यिकी की सीमाएँ निम्न प्रकार हैं–

(I) सांख्यिकी में केवल सामूहिक स्थिति तथा प्रवृति का अध्ययन होता है –

सांख्यिकी में किसी व्यक्ति विशेष या इकाई का अध्ययन नहीं किया जा सकता। इसमें केवल वर्गो में ही अध्ययन करना सम्भव है। सांख्यिकी विधियों द्वारा प्राप्त परिणामों से हम किसी वर्ग के सामूहिक व्यवहार का अनुमान लगाते है इनसे उस वर्ग की एक विशेष इकाई के व्यवहार का अनुमान नहीं लगाया जा सकता। यदि किसी कक्षा के 50 विद्यार्थियों के किसी विषय विशेष में प्राप्त अंकों का औसत 45 है तो यह निष्कर्ष निकालना कि प्रत्येक व्यक्ति के अंक 45 या 45 के आसपास ही है, गलत होगा क्योंकि ऐसे भी छात्र हो सकते है जिनके अंक 90 के आसपास हो और ऐसे भी छात्र हो सकते है जिनके अंक शून्य के निकट होगें। अतः इसके द्वारा किसी व्यक्ति विशेष या इकाई का अध्ययन सम्भव नहीं है।

(II) सांख्यिकी मात्र एक उपकरण की तरह है–

सांख्यिकी का प्रयोग किसी समस्या को हल करने के लिए एक उपकरण की तरह किया जाता है। इसकी विधियों का प्रयोग करके हम तथ्यों की सत्यता जान सकते है किन्तु उससे कुछ निष्कर्ष नहीं निकाल सकते। वास्तव में देखा जाये तो यह किसी समस्या को पहचानने में तो सहायक है परन्तु उसका समाधान बताने में असहाय है।

(III) साख्यिकी का प्रयोग प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकता है–

सांख्यिकी एक ऐसा उपकरण है जिसे प्रयोग करने वाला व्यक्ति पूर्ण प्रशिक्षित तथा दक्ष होना चाहिए। अधूरी जानकारी होने पर आँकड़ों का प्रयोग करने से गलत विश्लेषण प्राप्त हो सकता है जिससे भ्रम की स्थिति पैदा होगी तथा उसके आधार पर गलत निर्णय लिये जा सकते है। यह इस प्रकार होगा जैसे किसी व्यक्ति को कार चलानी न आती हो और उसे कार चलाने दे दी जाए तो परिणाम दुर्घटना ही होगा। डा0ए0एल0 बाउले के अनुसार, ''आँकड़े एक आवश्यक किन्तु अपूर्ण औजार है यह ऐसे हाथों में हानिकारक है जो उनको प्रयोग का तरीका या उनकी कमियों को नहीं जानते है।''

(IV) सांख्यिकी द्वारा गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन नहीं किया जाता है–

सांख्यिकी में हम उन्हीं समस्याओं का अध्ययन कर सकते है जिन्हें आँकड़ों के रूप में व्यक्त किया जा सकता है जैसे– प्राप्तांक, लम्बाई, ऊँचाई, आयु, आदि। परन्तु ऐसी

इकाइयों का अध्ययन करने में सांख्यिकी असमर्थ है जिनको आँकड़ों में व्यक्त नहीं किया जा सकता, जैसे– ईमानदारी, बौधिक स्तर, सुन्दरता, चरित्र आदि।

प्रो0 होरेस सीक्रीस्त (Prof. Hurace Secrist) के कथनोनुसार, ''कुछ तथ्यों की संख्यात्मक माप सम्भव नहीं है जिसकी ईमानदारी, सत्यनिष्ठा, सद्भाव, सभी का उद्योगों एवम् सामान्य जीवन में महत्व है, इनकी माप सांख्यिकी में परोक्ष रूप से सम्भव नहीं है।

(Some Phenomena cannot be quantitifivaly measured honesty of resourcefulness, integrity, goodwill, all important in industry as well as in life generally, are not susceptible of direct statistical measurement).

(V) सांख्यिकीय आँकड़े सजातीय होने चाहिए–

सांख्यिकी द्वारा जिन आँकड़ों को एकत्र कर निष्कर्ष निकाला जाता है वह आँकड़े सजातीय होने आवश्यक है। यदि आँकड़ों में एकरूपता नहीं है तो इस प्रकार के आँकड़ों से किया गया विश्लेषण भ्रमित करने वाला होगा। जैसे– किसी कक्षा में कुर्सियों की संख्या तथा स्कूल के पुस्तकालय में किताबों की संख्या के आँकड़ों से कोई निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता।

(VI) सांख्यिकीय माप व निष्कर्ष औसत रूप से ही सत्य होते है–

सांख्यिकी के नियम अन्य विज्ञानों–भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान की तरह दृढ़ नहीं है।

सांख्यिकी के नियम प्रत्येक स्थिति में प्रयोग नहीं किये जा सकते स्थिति बदलने पर परिणाम भी बदल जाते है। यदि 10 व्यक्तियों की आयु 40 वर्ष है तो इसका अर्थ यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति की आयु 40 वर्ष है। इसी प्रकार सम्भावना के सिद्धान्त (Theory of Probability) के अनुसार यदि एक सिक्के को उछाला जाए तो शीर्ष (Head) या पुच्छ (Tail) आने की प्रायिकता ½ है यदि सिक्का 10 बार उछाला जाये तो यह आवश्यक नहीं है कि पुच्छ 5 बार आयेगा वह कम या अधिक बार भी आ सकता है। अतः सांख्यिकी के परिणाम सामान्यतः अनुमान होते है, उन्हें हम पूर्ण सत्य नहीं मान सकते। जहाँ हमें पूर्ण सत्यता की आवश्यकता होती है वहाँ सांख्यिकी असफल है।

8.9 सांख्यिकी का महत्व–

आज के दौर में निःसन्देह यह कहा जा सकता है कि जहां सांख्यिकी का प्रयोग करके कार्य नहीं किये जाते वहाँ की उन्नति की गति उनसे बहुत धीमी होगी जहाँ सांख्यिकी की विधियों का प्रयोग होता है।

सांख्यिकी का विभिन्न क्षेत्रों में महत्व हम पहले ही पढ़ चुके है। माध्य, आलेख, अपकिरण सहसम्बन्ध, निदर्शन आदि के जीव विज्ञान, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान व सामाजिक विज्ञान आदि में महत्वपूर्ण योगदान है। एक सामान्य व्यक्ति भी जाने अन्जाने

सांख्यिकी का प्रयोग करता है। यदि किसी व्यक्ति को अपने घर के लिए कोई सामान लेना हो तो वह बाजार में जाकर उससे सम्बन्धित आँकड़े एकत्र करता है उदाहरणार्थ– यदि किसी व्यक्ति को कार खरीदनी हो तो वह सबसे पहले अपने बजट का निर्धारण करेगा तत्पश्चात उस बजट में आने वाली विभिन्न कम्पनियों की कारों के सम्बन्ध में विभिन्न आँकड़े एकत्र कर विश्लेषण करेगा जो उसे निर्णय लेने में मद्द करते है कि कौन सी कार उसके लिए उपर्युक्त है।

सांख्यिकी का खेलों में बहुत महत्व है। सांख्यिकी विरोधी पक्ष के सम्बन्ध में संकलित किये गये आँकड़ों से उसकी कमजोरियों को आँकने में मदद करते है। एक धावक अपनी हर दौड़ के समय के आँकड़े एकत्र करता है जिससे वह जान सके कि किन परिस्थितियों में उसकी दौड़ सर्वश्रेष्ठ रही।

वर्तमान समय में सांख्यिकी जन सामान्य तक समा चुकी है तथा हम हर कदम पर अपनी सुविधाओं हेतु, अपनी उन्नती हेतु सांख्यिकी का सहारा लेने लगे है। आजकल माता–पिता अपने नवजात शिशुओं के विकास हेतु इतने चिन्तित रहते है कि उनकी लम्बाई तथा वजन के आँकड़े प्रतिमास एकत्र कर उनके सहसम्बन्ध से पता लगाते है कि वह सामान्य रूप से बढ़ रहा है या नहीं। आज समाज में आपराधिक घटनाएं तेजी से बढ़ रही है आतंकवाद एक विश्व व्यापी समस्या का रूप ले चुका है। सेना, तथा पुलिस द्वारा भी आपराधिक व आतंकवादी घटनाओं सम्बन्धी आँकड़ों का विश्लेषण करने तथा इन घटनाओं को रोकने आदि हेतु ,योजनाएं बनाने हेतु सांख्यिकी विद्वानों की सहायता ली जाती है।

प्रचार–प्रसार हेतु भी सांख्यिकी आँकड़ों का प्रयोग किया जाता है। विभिन्न कम्पनियां अपने उत्पाद को बेहतर दिखाने के लिए अपने उत्पाद की विशेषताओं के आँकड़ों का दूसरी कम्पनियों के उत्पादों के उन्हीं विशेषताओं के आँकड़ों का तुल्नात्मक चार्ट बनाकर प्रस्तुत करते है।

उपर्युक्त सभी उदाहरण दैनिक जीवन में सांख्यिकी के महत्व को दर्शाते है। इनके अतिरिक्त सांख्यिकी का महत्व अनुसंधान के क्षेत्र में भी अत्यधिक है। अनुसंधान योजनाओं के निर्माण, प्रदत्त सामग्री के विश्लेषण व विवेचन का ज्ञान, प्रदत्त सामग्री के लिए प्रतिनिध्यात्मक प्रतिदर्श का चयन आदि में सांख्यिकी का ज्ञान अनुसंधानकर्ता की सहायता करता है। एम.जे.मोरोने (M.J. Moroney) के अनुसार, ''आप जो भी है, यदि आपका कार्य आँकड़ों से सम्बन्धित है और आप उसे बिना सांख्यिकी की सहायता से करते है तो उसे अधिक अच्छे प्रकार से नहीं कर पाओगे''

(Whosoever you are if your work calls for interpretation of data, you may be able to do without statistics, but you won't do so well.)

किसी भी देश की आर्थिक प्रगति हेतु यह अनिवार्य है कि उसकी आर्थिक योजनाओं का स्वरूप सांख्यिकीय आँकड़ों का अध्ययन करके किया गया हो। योजनाएं बनाते समय ध्यान रखा जाता है कि देश की उत्पादन क्षमता क्या है? उपभोग की क्या स्थिति है? हम क्या साधन प्रयोग कर रहे है, आदि इसी प्रकार के प्रश्नों के उत्तर हमें

आँकड़ों के रूप में प्राप्त होते है जिनका प्रयोग कर हम देश को एक अच्छी आर्थिक नीति दे सकते है।

सांख्यिकी का योग शिक्षा में महत्व–

योग शिक्षा शरीर विज्ञान का विषय है। इसमें हम विभिन्न योग क्रियाओं (योगासन व प्राणायाम) द्वारा अपने शरीर को स्वस्थ रखने के तरीके सीखते हैं। योग द्वारा विभिन्न रोगों के उपचार भी किये जाते हैं। अतः यह अति आवश्यक हो जाता है कि हमें यह ज्ञान हो कि कौन सा योगासन किस व्याधि में बहुउपयोगी है तथा कौन सी बीमारी में किस योगासन या प्राणायाम से हानि हो सकती है। यह सभी जानकारी हमें योगासन व बीमारी के बीच सह सम्बन्ध से होगा। यदि किसी व्यक्ति को उच्च रक्तचाप रहता है तो अनुसंधानों द्वारा जांचा जा सकता है किन प्राणायामों से व्यक्तियों को लाभ पहुंचायेगें तथा किन से हानि।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. किसने कहा है

(a) सांख्यिकी गणना का विज्ञान है।

Statistics is the science of countings.

(b) सांख्यिकी अनुमान तथा सम्भावनाओं का विज्ञान है।

Statistics is the science of estimates and probabilities.

(c) सांख्यिकी स्वतंत्र व मौलिक ज्ञान का समूह नहीं है लेकिन वह ज्ञान प्राप्त करने की विधियों का समूह है।

Statistics is not a body of substansive knowledge, but a body of methods for obtaining knowledge.

(d) सांख्यिकी एक विज्ञान नहीं है, वह एक वैज्ञानिक विधि है।

Statistics is not a science, it is a scientific method.

(e) सांख्यिकी सामाजिक व्यवस्था को पूर्ण मानकर उसके सभी रूपों को मापने का विज्ञान है।

Statistics is the science of measurement of the social organism, regarded as a whole, in all its manifestations.

2

(a) सांख्यिकी .... एव सम्भावनाओं का विज्ञान है।

(b) सांख्यिकी एक विज्ञान और ....दोनो है।

(c) सांख्यिकी .... का विज्ञान है।

(d) सांख्यिकीय आंकड़े किसी विशेष का अध्ययन .... करते हैं।

3. सांख्यिकी का शाब्दिक अर्थ बताइये।

4. प्राचीन काल में सांख्यिकी को क्या संज्ञा दी गयी थी।

5. सही उत्तर चुनिये –

(a)''सांख्यिकी अनुमान तथा सम्भावनाओं का विज्ञान है। यह किसका कथन है।

"Statistics is the science of estimates and probabilities" who's statement is this

(i) डा. ए.एल. बाउले (Dr. A.C. Bowley)

(ii) प्रो. ए.एल. बॉडिगटन (Dr. A.L. Boddington)

(iii) बैबस्टर (Webster)

(iv) प्रो. लाविट (Prof. Lavit)

(b) 'सांख्यिकी अनिश्चितता की स्थिति में बुद्धिपूर्वक निर्णय लेने समुच्चय है'' यह किसका कथन है।

Statistics is a body of methods for making wise decisions in the face of uncertainly" who's statement is this

(i) प्रो. लाविट (Prof. Lavit)

(ii) सैलिगमैन (Saligman)

(iii) वालिस और रॉबर्टस (Wallis and Roberts)

(iv) प्रो. एम.जी. केण्डाल (Prof. M.G. Kendall)

8.10 सारांश

सांख्यिकी विज्ञान व कला दोनो है। वर्तमान समय में यह व्यहवारिक दृष्टि से किसी भी देश, समाज, व्यवसाय आदि की प्रगति की कुंजी है। सांख्यिकी का प्रयोग सभी विषयों में किया जाता है कोई भी क्षेत्र इससे अछूता नहीं है। अनुसंधानकर्ताओं के लिए सांख्यिकी

अति महत्वपूर्ण विषय है। सांख्यिकी द्वारा किये जाने वाले महत्वपूर्ण कार्य आंकड़ों का संकलन, सारणीयन, वर्गीकरण, विश्लेषण तथा विवेचन है। माध्य, बहुलक, माध्यिका, अपकिरण, सह सम्बन्ध, निर्वचन आदि इसकी विशेष विधियां हैं। सांख्यिकी की इन विधियों का शिक्षा, अर्थशासत्र, मनोविज्ञान, राज्य प्रशासन, व्यापार, योजना निर्माण आदि की समस्याओं के समाधान हेतु किया जाता है। सांख्यिकी के विषय का ज्ञान सभी व्यक्तियों के लिए लाभकारी है।

8.11 शब्दावली

दण्ड चित्र	–	Bar diagram
वर्ग चित्र	–	Square diagram
आयत चित्र	–	Rectangular diagram
वृत्त चित्र	–	Circular or Pie diagram
मापन	–	Measurements
आंकड़े	–	Data
माध्य	–	Mean
बहुलक	–	Mode
माध्यिका	–	Medean
प्रतिदर्श–आंकड़े	–	Sample data
विश्लेषण	–	Analysis
प्रस्तुतिकरण	–	Presentation
विषमता	–	Skewness
सहसम्बन्ध	–	Correlation
अपकिरण	–	Dispersion
आवर्ती वितरण	–	Frequency Distribution

8.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (a) डा. ए.एल. बाउले (Dr. A.C. Bowley)

   (b) प्रो. ए.एल. वाडिगंटन (Prof. A.L. Boddington)

   (c) वालिस और रॉबर्टस (Wallis and Roberts)

   (d) क्राक्स्टन और काउडेन (Croxton and Cowden)

   (e) वालिस और रॉबर्टस (Wallis and Roberts)

2. (a) अनुमान (b) कला(c) माध्यो (d) नहीं

3. संख्या का शास्त्र

4. राज्य विज्ञान

5. (a) (II) (b) (III) (c) (I)

8.13 सन्दर्भ ग्रन्थ

(i) ''सांख्यिकी सिद्धान्त एवं व्यवहार'' एस.पी. सिंह एस. चन्द (2009)

(ii) ''सांख्यिकी'' डा. बी.एन. गुप्ता, साहित्य भवन (2008)

(iii) ''सांख्यिकी के सिद्धान्त'' डा. एस.एम. शुक्ल, डा. एस.पी. सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन (2007)

(iv) ''प्रारम्भिक सांख्यिकी'' डा. के.एल. गुप्ता, नवयुग साहित्य सदन (2005)

(v) ''व्यावसायिक गणित एवं सांख्यिकी'' डा. नवीन भगत, भूमिका भगत रीडर्स चायस (2012)

(vi) ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' डा. एच.के. कपिल, विनोद पुस्तक मन्दिर।

8.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. सांख्यिकी की मुख्य परिभाषाओं का वर्णन कीजिए।
2. सांख्यिकी के अध्ययन क्षेत्र व उनमें उसका महत्व लिखिए।
3. सांख्यिकी की प्रकृति का वर्णन कीजिए।
4. सांख्यिकी का अन्य विज्ञानों से सम्बन्ध बताइये तथा उनमें सांख्यिकी की उपयोगिता समझाइये।
5. सांख्यिकी की सीमाएं क्या हैं? लिखिए।
6. सांख्यिकी में कला तथा विज्ञान दोनों होने सम्बन्धित प्रमाण दीजिए।
7. सांख्यिकी गणना का विज्ञान है। इस कथन की व्याख्या कीजिए।
8. सांख्यिकी के कार्य तथा उसकी सीमाओं को विस्तारपूर्वक समझाइये।
9. सांख्यिकी के महत्व को स्पष्ट कीजिए।
10. अनुसंधान में सांख्यिकी किस प्रकार उपयोगी है?

इकाई 9 अनुसंधान आँकड़ों का प्रस्तुतीकरण एवं वितरण आवृत्ति वितरण, लेखा चित्रीय अंकन

इकाई की संरचना

9.1 प्रस्तावना
9.2 उद्देश्य
9.3 वर्गीकरण
9.4 वर्गीकरण के उद्देश्य
9.5 वर्गीकरण के विशेष गुण
9.6 वर्गीकरण की विधियाँ
9.7 चर
9.8 आवृत्ति वितरण या बारम्बारता बंटन
9.9 संचयी बारम्बारता
9.10 सारणीयन
9.11 सारणीयन के मुख्य उददेश्य
9.12 सारणीयन के उपयोग
9.13 सारणीयन की सीमाएँ
9.14 सारणीयन के महत्वपूर्ण बिन्दु
9.15 सारणीयन के प्रकार
9.16 लेखा चित्रीय अंकन
9.17 चित्रीय अंकन की उपयोगिता
9.18 लेखा चित्रीय द्वारा प्रदर्षन की सीमाएँ
9.19 चित्र बनाने के सामान्य नियम
9.20 चित्रों के प्रकार
9.21 बारम्बारता बंटन के आलेखन
9.22 सारांश
9.23 पारिभाषिक शब्दावली
9.24 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
9.25 संदर्भ–ग्रन्थ
9.26 निबंधात्मक प्रश्न

9.1 प्रस्तावना–

यदि अनेक शब्दों को एक साथ लिख दिया जाए तो वह शब्दों का एक समूह होगा किन्तु उनसे कोई अर्थ नहीं निकलेगा। उन्हीं शब्दों को व्याकरण के अनुसार सही क्रम में व्यवस्थित किया जाए तो वही शब्द अर्थ पूर्ण हो जाऐगें जिसको समझने में किसी को भी कठिनाई नहीं होगी। इसी प्रकार मात्र आँकड़ों के संकलन कर लेने से वे इस योग्य नहीं हो जाते की हम उनसे विश्लेषण कर कोई निर्णय निकाल सकें। अतः आँकड़ों को एकत्र करने के पश्चात उनको वर्गीकृत कर सारणी बद्ध करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

जे0आर0 हिक्स (J.R. Hicks) के अनुसार, '' वर्गीकृत व क्रमबद्ध तथ्य स्वयं बोलते हैं, अव्यवस्थित स्थिति में वे मृत व मॉंस के समान होते हैं''

(Classified and arranged facts speak themselves, unarranged they are as dead as mutton).

9.2 उददेश्य

इस इकाई के पश्चात आप

1. आँकड़ों को वर्गीकृत करने की विभिन्न विधियाँ जान सकेंगे
2. चर राशियों व उनके प्रकार जान सकेंगे
3. आवृत्ति या बारम्बारता ज्ञात कर सकेंगे
4. संचयी बारम्बारता सारणी बना सकेंगे
5. संकलित आँकड़ों को सारणीबद्ध करने के उद्देश्य, सीमाएं व प्रकार जान सकेंगे

7. विभिन्न लेखा चित्रों का अंकन सीख सकेंगे
8.

9.3 वर्गीकरण–

एकत्रित आँकड़ों को उनके गुण धर्म के आधार पर अलग–अलग वर्गो तथा उपवर्गो में बाँटा जाता है यह क्रिया वर्गीकरण (Classification) कहलाती है। प्रो0 होरेस सीक्रीस्ट (Prof. Horese Secrist) के अनुसार, ''वर्गीकरण आँकड़ों को उनकी सामान्य विशेषताओं के आधार पर उन्हें श्रेणी व समुच्चयों में क्रमबद्ध तथा विभिन्न सम्बद्ध भागों में अलग–अलग करने की प्रक्रिया है''

(Classification is the process of arranging data into sequences and groups to their common characteristics, or separating them into different but related parts).

कौनर (Conner) के अनुसार, ''वर्गीकरण तथ्यों को (वास्तविक या काल्पनिक रूप में) उनकी एकरूपता के आधार पर समूहों तथा वर्गो में क्रमबद्ध करने की प्रक्रिया है और इससे व्यक्तिगत इकाईयों की विविधता में पाये जाने वाले गुणों की एकता प्रकट होती है।

(Classification is the process of arranging things (either actually or notionally) in groups or classes according to their resemblances and affinities and gives expression to the unity of attributes that may subsist amongst a diversity of individuals)

ऑंकड़ों को वर्गीकृत करने हेतु वर्गीकरण के लक्षणों को समझना आवश्यक है। मुख्य लक्षण निम्न प्रकार है–

1. एकरूपता वाले तथ्यों के ऑंकड़ों को एक ही वर्ग में रखा जाता है।
2. ऑंकड़ों को उनके तथ्यों की विशेषता के आधार वर्गीकृत किया जाता है।
3. ऑंकड़ों को वर्गीकरण इस प्रकार किया जाता है कि ऑंकड़ों की भिन्नता में भी एकता की झलक दिखाई पड़े।
4. तथ्यों का वास्तविक या काल्पनिक रूप में विभाजन किया जाता है।

9.4 वर्गीकरण के उद्देश्य–

वर्गीकरण के मुख्य उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. तथ्यों को सरलतम रूप प्रदान करना–

तथ्यों का वर्गीकरण करने से वह सरल रूप में हो जाते है इससे पूर्व ऑंकड़े इस प्रकार अव्यवस्थित रहते है कि उनसे कोई निष्कर्ष निकालना अत्यन्त कठिन कार्य होता है। वर्गीकृत ऑंकड़ों को आसानी से समझा जा सकता है। जैसे– यदि जनसंख्या से सम्बन्धित ऑंकडों पर यदि प्रकाश डाला जाए तो बिना वर्गीकरण के उन्हें समझा ही नहीं जा सकता। उन्हीं ऑंकडों को यदि राज्य लिंग, आयु व साक्षरता आदि के अनुसार विभिन्न वर्गो में वितरित कर दिया जाए तो वही जनसंख्या के विशाल ऑंकडें एक व्यवस्थित प्रकृति में नजर आयेंगे तथा उनसे निष्कर्ष निकालना आसान होगा।

2. तुलनात्मक अध्ययन–

वर्गीकरण ऑंकडों की तुलना करने में सहायक होता है जिससे विभिन्न तथ्यों के विषय में जानकारी आसानी से प्राप्त की जा सकती हैं। जैसे– किसी भी देश, राज्य या शहर के लड़के व लड़कियों के शिक्षा से सम्बन्धित ऑंकडें एकत्र करके उन्हें विभिन्न वर्गो (संकाय–विज्ञान, कला व वाणिज्य) में वर्गीकृत करके उनकी तुलना कर सकते है। जबकि वर्गीकरण किये बगैर तुलना नहीं की जा सकेगी।

3. तर्कपूर्ण व्यवस्था प्रदान करना–

वर्गीकरण करके संकलित आँकडों को तर्क पूर्ण बनाया जाता है। किसी अस्पताल के रोगियों को उनकी बीमारी के आधार पर वर्गीकृत करना तर्क पूर्ण है।

4. समानता व असमानता स्पष्ट करना–

वर्गीकरण करने से तथ्यों की समानता तथा असमानता स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगती है। जैसे– विवाहितों तथा अविवाहितों की संख्यां।

5. सारणियन व विश्लेषण हेतु आधार बनाना–

सारणियीन तथा विश्लेषण करने हेतु वर्गीकरण अत्यन्त महत्वपूर्ण क्रिया है। इसके बगैर सारणियन करना असम्भव है तथा सारणीयन के बगैर विश्लेंषण करना भी असम्भव है।

6. सम्बन्ध अध्ययन–

वर्गीकरण करने में हम आँकडों को उनके विभिन्न गुणों व मापदण्डों के वर्गो में वर्गीकृत करते है जिनमें परस्पर सम्बन्ध ज्ञात करना सम्भव हो पाता है। इसके अतिरिक्त किसी घटना के होने व उसके होने के कारण के बीच भी सम्बन्ध का अध्ययन भी सरलता से हो जाता है।

9.5 वर्गीकरण के विशेष गुण–

वर्गीकरण एक महत्वपूर्ण क्रिया है। आँकडों का सही विश्लेषण वर्गीकरण पर निर्भर करता है अतः हमें वर्गीकरण के गुणों का ज्ञान होना आवश्यक है जिससे हम वर्गीकरण सही तरीके से कर पायें। अतः वर्गीकरण करते समय उसके निम्नलिखित गुणों को ध्यान रखना चाहिए।

1. स्थिरता (Stability) –

वर्गीकरण स्थिर होना चाहिए अर्थात एक ही अनुसंधान करते समय प्रत्येक जाँच में वर्गीकरण एक ही प्रकार से किया जाना चाहिए। अलग–अलग जाँच में वर्गीकरण परिवर्तन कर देने से प्राप्त परिणामों की तुलना अर्थपूर्ण नहीं रह जाती।

2. अनुकूलता (Suitability)–

वर्गीकरण करते समय इस बात का विशेष ध्यान रखा जाना चाहिए कि वर्गीकरण अनुसंधान के उद्देश्य के अनुरूप हो। जैसे– यदि किसी शिक्षण संस्थान में किन्हीं विशेष विषयों के छात्रों द्वारा लिये जाने से सम्बन्धित अध्ययन करना हो तो छात्रों की आयु के आधार पर वर्गीकरण करना व्यर्थ है।

3. व्यापकता (Comprehensiveness) या विशालता (Exhaustive)–

वर्गीकरण का व्यापक या विशाल होना आवश्यक है। हमें यह विशेष ध्यान रखना चाहिए कि हमारे द्वारा किये गये वर्गीकरण से आँकडों की प्रत्येक इकाई का किसी न किसी वर्ग में समावेश हो जाए, कोई इकाई छूटनी नहीं चाहिए। यदि वर्गो की संख्या अधिक हो तो विशेष स्थिति में एक विविध (Miscellaneous) वर्ग भी बनाया जा सकता है। जैसे– यदि परीक्षार्थियों के परीक्षाफल से सम्बन्धित अध्ययन करना हो तब केवल 'उत्तीर्ण' तथा 'अनुत्तीर्ण' केवल दो वर्ग बनाये जाए तो वर्गीकरण अपूर्ण होगा, क्योंकि जिन परीक्षार्थियों का परीक्षाफल रोका गया हो या जो अनुचित साधनों का प्रयोग करते हुए पकड़े गये हो इन वर्गो में कहीं स्थान नहीं होगा। अतः वर्गीकरण पर्याप्त विशाल होना आवश्यक है।

4. **लचनशीलता (Flexibility) –**

एक आदर्श वर्गीकरण लचनशील होता है जिससे आवश्यकता पड़ने पर या नयी स्थितियाँ उत्पन्न होने पर उसमें सुधार किया जा सके।

5. **परस्पर अपवर्जी (Mutually disjoint) –**

वर्गीकृत समूह परस्पर अपवर्जी (या पृथक) होने चाहिए अर्थात आँकडों की प्रत्येक इकाई के लिए केवल एक ही वर्ग होना चाहिए अतः वर्गीकरण स्पष्ट होना चाहिए।

6. **सजातीयता (Homogeneity) –**

प्रत्येक वर्ग की इकाइयों को सजातीय होना चाहिए। अर्थात वर्गीकरण के प्रत्येक वर्ग में उस गुण का समावेश अवश्य होना चाहिए जिसके आधार पर वर्गीकरण हुआ है। समान विशेषता वाली इकाइयाँ एक ही वर्ग में होनी चाहिए।

7. **गणितीय शुद्धता (Arithmetical Accuracy) –**

वर्गीकरण में कोई इकाई छुटनी नहीं चाहिए अर्थात वर्गीकरण इस प्रकार किया जाना चाहिए जिससे आँकडों की प्रत्येक इकाई किसी न किसी वर्ग में अवश्य आ जाए अतः प्रत्येक वर्ग की कुल इकाईयों का योग कुल आँकडों के बराबर होना चाहिए।

9.6 वर्गीकरण की विधियाँ–

सांख्यिकीय तथ्यों का वर्गीकरण दो प्रकार से किया जा सकता है।

1. **गुणात्मक वर्गीकरण (Classification According to Attributes) –**

इस प्रकार के वर्गीकरण के अन्तर्गत वह तथ्य आते है जिनकी माप सम्भव नहीं है। गुणात्मक वर्गीक्रण का आधार तथ्य के गुण या विशेषता होती है अर्थात किसी विशेष गुण का होना या न होना वर्गीकरण का आधार होता है। गुणात्मक वर्गीकरण को दो वर्गो में विभाजित किया जा सकता है।

(i).साधारण या द्वन्द्व भाजन वर्गीकरण (Simple or Dichotomy Classification) –

जब किसी विशेष गुण की उपस्थिति या अनुपस्थिति तथ्यों के वर्गीकरण का आधार हो तो इस प्रकार का वर्गीकरण साधारण या द्वन्द्व–भाजन वर्गीकरण कहलाता है। जैसे– यदि किसी विद्यालय में पढ़ने वाले विद्यार्थियों का लिंग के आधार पर वर्गीकरण करना हो तो केवल दो वर्ग छात्र व छात्रा बनेंगे। गुण उपस्थित होने पर अंग्रेजी भाषा के अक्षरों (A,B,C आदि) द्वारा दर्शाया जाता है तथा यदि गुण उपस्थित नहीं है तो उसे अक्षरों (a,b,c आदि) या ग्रीक वर्णाक्षर α, β, r (एल्फा, बीटा, गामा आदि) द्वारा व्यक्त किया जाता है। जैसे–

कुल विद्यार्थी = 5000 (N)

छात्र = 2800 (A)   छात्रा = 2200 (a)

(ii). बहुगुण वर्गीकरण (Monifold Classification)–

जब दो या दो से अधिक गुणों के आधार पर तथ्यों का वर्गीकरण किया जाए तो वर्गीकरण बहुगुण वर्गीकरण कहलाता है। स्पष्टतः यहाँ वर्गो की संख्या दो से अधिक होगी। पहले एक गुण के आधार पर आँकडों का दो वर्गो में विभाजन होगा फिर आवश्यकतानुसार प्रत्येक वर्ग के दो–दो उपवर्ग बनाये जाएगें। जैसे–किसी महाविद्यालय में परीक्षार्थियों को पहले गुण लिंग के आधार पर दो वर्गो (छात्र या छात्रा) में बाँटा जायेगा उसके पश्चात दोनों वर्गो के दो उपवर्ग बनेंगे जिनका आधार दूसरा गुण (माना वैवाहिक स्थिति) होगा।

यह दो उपवर्ग विवाहित या अविवाहित होगें। इसी प्रकार यदि तीसरा गुण उपस्थित हो (माना संस्थागत या व्यक्तिगत) हो तो प्रत्येक वर्ग के दो–दो उपवर्ग तैयार होगे। यही क्रम गुणों की संख्या के आधार पर चलता रहेगा।

2. संख्यात्मक वर्गीकरण (Quantitative Classification)–

जिन सांख्यिकीय तथ्यों को संख्यात्मक रूप में लिखा जा सकता है उनका वर्गीकरण समान लम्बाई के वर्ग अन्तराल के रूप में लिखकर किया जाता है। जैसे– एक कक्षा के 100 छात्रों के प्राप्तांक (25 व 65 के बीच) का वर्गीकरण 10–10 के वर्गो में निम्न प्रकार से किया जा सकता है।

वर्ग अन्तराल (प्राप्तांक)	20-30	30-40	40-50	50-60
बारम्बारता	9	21	29	13

वर्ग अन्तराल से सम्बन्धित कुछ तथ्य–

1. **वर्ग सीमायें (Class Limits)–**

उपरोक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि वर्ग अन्तराल का प्रत्येक वर्ग दो संख्याओं से बनता है। इन संख्याओं को वर्ग सीमायें कहा जाता है। इनमें पहली संख्या को निम्न सीमा तथा दूसरी संख्या को उच्च सीमा कहा जाता है। उदाहरण में प्रथम वर्ग की निम्न सीमा (Lower limit) 20, तथा उच्च सीमा (Upper Limit) 30 है।

2. **वर्ग विस्तार (Length of Class Interval) –**

किसी वर्ग अन्तराल की उच्च सीमा तथा निम्न सीमा के अन्तर को उस वर्ग का विस्तार कहते है। उपरोक्त उदाहरण में प्रत्येक वर्ग का वर्ग विस्तार 10 है।

3. **मध्यमान या मध्य बिन्दु (Mid value or Mid Point) –**

किसी वर्ग अन्तराल की उच्च सीमा तथा निम्न सीमा के समान्तर माध्य को उस वर्ग का मध्यमान या मध्य बिन्दु कहा जाता है।

मध्यमान = (निम्न सीमा +उच्च सीमा) ÷2

उपरोक्त उदाहरण में द्वितीय वर्ग का मध्य बिन्दु 35 है।

4. **वर्ग की आवृत्ति या बारम्बारता (Frequency of class interval)–**

सांख्यिकीय आँकड़ों को वर्ग अन्तराल में समायोजित करने पर जिस वर्ग अन्तराल में जितनी इकाईयाँ आती है वह उस वर्ग की आवृत्ति या बारम्बारता (Frequencey) कहलाती है इसे ‘f’ द्वारा निरूपित किया जाता है उपरोक्त उदाहरण में तीसरे वर्ग की बारम्बारता 29 है।

9.7 चर (Variables) –

जो राशियाँ परिवर्तनशील हो उन्हें चर राशियाँ कहा जाता है जैसे– प्राप्तांक, मूल्य, आय–व्यय लम्बाई, वजन आदि।चर राशियाँ दो प्रकार की होती हैं–

1. **सतत चर (Continuous Variables) –**ऐसी राशियाँ जिनका मान एक निश्चित सीमा के अन्तर्गत कुछ भी हो सकता है, सतत् चर राशियाँ कहलाती है। जैसे– लम्बाई, वजन, आदि
2. **असतत् चर (Discontinuous Variable) –**

ऐसी राशियाँ जिनके मान निश्चित तथा खण्डित होते है, असतत् चर कहलाती है। जैसे– कक्षा में छात्रों की संख्या, फुटबाल के मैच में एक टीम द्वारा दागे गये गोलों की संख्या।

9.8 आवृत्ति वितरण या बारम्बारता बंटन –

जब आँकड़ों को वर्गीकृत करके उन्हें समुचित रूप से क्रमबद्ध करके एक तालिका के रूप में लिखा जाता है, तो वह आवृत्ति वितरण या बारम्बारता बंटन कहलाता है। किसी वर्ग अन्तराल में आने वाली इकाइयों की संख्या उस वर्ग अन्तराल की आवृत्ति कहलाती है। आवृत्ति वितरण से आँकड़ों का विश्लेषण करने में सुविधा होती है।

आवृत्ति वितरण निम्न प्रकार किया जा सकता है।

1. **व्यक्तिगत श्रेणी (Individual Series)–**

   इस प्रकार की श्रेणी में आँकड़ों की प्रत्येक इकाई स्वतन्त्र होती है।

   उदाहरण के लिए 6 व्यक्तियों के वजन का वर्गीकरण–

व्यक्ति	A	B	C	D	E	F
वजन(KG)	52	59	50	62	57	65

2. **खण्डित श्रेणी (Discrete Series)–**

   इस प्रकार की श्रेणी की इकाई के मान तथा बारम्बारता खण्डित होती है। जैसे– किसी विषय में 30 छात्रों के प्राप्तांकों का वितरण इस प्रकार हैं–

   8, 15, 12, 28, 8, 12, 28, 30, 30, 30, 12, 8, 30, 30

   28, 12, 30, 15, 8, 28, 30, 28, 12, 15, 28, 15, 28, 30, 8, 8

   अतः प्राप्तांकों की आवृत्ति तालिका–

प्राप्तांक	**टेली चिन्ह**	**छात्र**
8	𝍸 𝍷	6
12	𝍸	5
15	𝍷𝍷𝍷𝍷	4
28	𝍸 𝍷𝍷	7
30	𝍸 𝍷𝍷𝍷	8
योग		30

3.सतत् श्रेणी (Continuous Series)–

इस प्रकार की श्रेणी में हमें आवृत्ति एक व्यक्तिगत न होकर एक अन्तराल के बीच की प्राप्त होती हैं। अतः इसमें इकाईयाँ सतत् होती है।

इस प्रकार की श्रेणी में आवृत्ति वितरण निम्न प्रकार होता है

क. सांख्यिकीय आँकड़ों के न्यूनतम तथा अधिकतम मानो के अन्तर को उचित समान वर्ग अन्तराल में बाँटा जाता है।

ख. तालिका के प्रथम स्तम्भ में वर्ग अन्तराल लिखे जाते हैं तथा एकत्र आँकड़ों को एक–एक करके, वह जिस वर्ग अन्तराल के अन्तर्गत आते हो उसके सामने द्वितीय स्तम्भ में एक सीधी रेखा खींच कर टेली चिन्ह लगाते है। टेली चिन्ह लगाते समय यह विशेष ध्यान रखेंगे कि चार सीधी रेखा के बाद यदि पाँचवा टेली चिन्ह लगाना है तो वह एक टेढी रेखा द्वारा प्रदर्शित होगा। इससे कुल टेली चिन्हों को गिनने में आसानी होती है।

ग. अब कुल टेली चिन्हों को गिनकर तीसरे स्तम्भ में लिखेंगे जो कि सम्बन्धित वर्ग अन्तराल की आवृत्ति होगी।

उदाहरण 1 किसी कक्षा के 25 छात्रों के सांख्यिकी की परीक्षा के प्राप्तांक 50 में से निम्न प्रकार है।

25, 12, 15, 22, 22, 31, 36, 22, 10,12, 26, 28, 41, 8, 19, 22, 28, 10

11, 15, 21, 43 26, 29, 38

अब चूँकि प्राप्तांक 0 से 50 तक हो सकते है अतः इन प्राप्तांकों को 10–10 के 5 वर्ग अन्तरालों में बदला जा सकता हैं अतः 25 छात्रों के प्राप्तांकों की आवृत्ति तालिका:

प्राप्तांक	टेली चिन्ह	छात्र
0-10	|	1
10-20	~~||||~~ |||	8
20-30	~~||||~~ ~~||||~~ |	11
30-40	|||	3
40-50	||	2

वर्ग अन्तराल बनाते समय हमें निम्न बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए–

(I) सभी वर्ग अन्तराल यथा सम्भव समान लम्बाई के होने चाहिए।

(II) वर्गो की संख्या 10 और 20 के बीच रहनी चाहिए। यदि वर्गो की संख्या 10 से कम है तो परिणाम बहुत अच्छे प्राप्त नहीं होंगे और 20 से अधिक वर्ग होने पर गणना करना एक नीरस तथा कठिन कार्य होगा।

(III) वर्ग अन्तराल की परिभाषा स्पष्ट होनी चाहिए तथा वे परस्पर अपवर्जी होने चाहिए।

(IV) वर्ग को इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि सभी संकलित आँकड़े उनमें आ जाए।

(V) यदि कोई आँकड़ा वर्ग की उच्च सीमा के अंक के बराबर है तो उसे अगले वर्ग में शामिल किया जाना चाहिए।

(VI) किसी वर्ग में टेली चिन्हों की संख्या ही उस वर्ग की बारम्बारता होती है।

(VII) सभी वर्गो की आवृत्तियों का योगफल कुल संकलित आँकड़ों की संख्या के बराबर होता है।

9.9 संचयी बारम्बारता (Cumulative Frequency) –

बारम्बारता ज्ञात होने पर संचयी बारम्बारता निकाली जा सकती है इसके लिए किसी वर्ग अन्तराल की बारम्बारता को उसके पहले के वर्ग अन्तरालों की सभी बारम्बारताओं में जोड़ा जाता है, प्राप्त योगफल को उस वर्ग अन्तराल तक की संचयी बारम्बारता कहते है। यदि किसी वर्ग अन्तराल 'a-b' की संचयी बारम्बारता x है तो इसका अर्थ है b से कम आँकड़ों की संख्या x है।

उदाहरण–2 किसी कक्षा में 10 छात्रों के 50 अंकों में से प्राप्तांक निम्नवत् है

5, 22, 36, 38, 40, 35, 42, 17, 22, 20, 30, 23, 46, 3, 12, 28, 18, 41, 39, 2

1. इन आँकड़ों को 0–10 से आरम्भ कर 10 के वर्ग अन्तराल में विभाजित कर बारम्बारता ज्ञात कीजिए।
2. संचयी बारम्बारता ज्ञात कीजिए।
3. बताइये कितने विद्यार्थियों को 30 या उससे कम अंक मिले।

हलः

<table>
<tr><th>वर्ग अन्तराल</th><th>टैली चिन्ह</th><th>बारम्बारता</th><th>संचयी बारम्बारता</th></tr>
<tr><td>0-10</td><td>|||</td><td>03</td><td>3</td></tr>
<tr><td>10-20</td><td>||||</td><td>04</td><td>3 + 4 = 7</td></tr>
<tr><td>20-30</td><td>卌</td><td>05</td><td>7 + 5 = 12</td></tr>
<tr><td>30-40</td><td>卌</td><td>05</td><td>5 + 12 = 17</td></tr>
<tr><td>40-50</td><td>|||</td><td>03</td><td>3 + 17 = 20</td></tr>
</table>

योग		20	

हल (1) व (2) उपरोक्त सारणी में दर्शाये गये है। (3) 20–30 वर्ग अन्तराल की संचयी बारम्बारता 12 है अतः ऐसे विद्यार्थियों की संख्या जिनके अंक 30 से कम है = 12

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. वर्ग अन्तराल 30–40 में उच्च सीमा क्या है?
2. वर्ग अन्तराल 25–35 का मध्यमान लिखिए।
3. वर्ग अन्तराल 15–35 का वर्ग विस्तार क्या है?
4. श्रेणी 5, 8, 6, 2, 5, 4, 8, 6, 2, 5, 5, 8, 6, 2, 4, में 5 की आवृत्ति लिखिए।
5. निम्न तालिका की संचयी बारम्बारता लिखिए।

पद	10	20	30	40	50
बारम्बारता	8	7	4	6	5

9.10 सारणीयन (Tabulation) –

सारणीयन आँकडों के प्रस्तुतिकरण का एक महत्वपूर्ण भाग है। संकलित आँकडों का वर्गीकरण करके उन्हें स्तम्भ (Columns) तथा पंक्तियों (Rows) के रूप में क्रमबद्ध व सुव्यवस्थित करके सारणी के रूप में लिखना सारणीयन कहलाता है।

सी0टी0 क्लार्क व एल0एल0 शकाडे (C.T. Clark and L.L. Schkade) के अनुसार, ''सांख्यिकीय सारणी आँकडों का तार्किक क्रमबद्ध प्रस्तुतीकरण है जो व्याख्या करता है कि वे क्या है।'' (A statistical table is a presentation of numbers in a logical arrangement with some brief explanation to show what they are)

प्रो0 ब्लेयर के अनुसार, ''सारणीयन विस्तृत अर्थ में, आँकडों का स्तम्भ तथा पंक्तियों में क्रमबद्ध व्यवस्था है।'' (Tabulation is its broadest sense is any orderly arrangement of data in columns and rows)

9.11 सारणीयन के मुख्य उददेश्य

सारणीयन के मुख्य उद्देश्य निम्न लिखित हैं।

1.तथ्यों की विशेषताओं को स्पष्ट करना–

सारणीयन का एक उद्देश्य आँकडों को एक सरलतम रूप में प्रस्तुत करना है जो तथ्यों की विशेषताओं को संक्षिप्त रूप में दर्शाता है।

2.तुलनात्मक विश्लेषण करने में सहजता–

आँकडों को सारणी के रूप में व्यवस्थित करने से उनका तुलनात्मक विश्लेषण करना सरल हो जाता है।

3.अनुसंधान में उद्देश्य–

सारणीयन से अनुसंधान हेतु संकलित आँकडों से समस्या हल करने में सुविधा होती है। अनेक प्रश्न सारणी को देखकर ही हल हो जाते हैं।

4.तथ्यों की न्यूनतम स्थान में प्रस्तुति–

सारणी में बहुत बड़े तथ्यों को न्यूनतम स्थान देकर स्पष्ट किया जाता है।

9.12 सारणीयन के उपयोग–

सारणीयन के उपयोग निम्नलिखित है–

1.तथ्यों की सरलता–

सारणीयन का यह महत्वपूर्ण उपयोग है। सामान्य रूप से जो आँकड़े अत्यन्त जटिल जान पड़ते है, सारणी के रूप में लिखे जाने पर वही आँकड़े सरलता से परिणाम देने लगते हैं।

2.तुलनात्मक अध्ययन में सहायक–

सारणीयन से तुलनात्मक अध्ययन में सुविधा होती है। सारणी बनाते समय तुलना किये जाने वाले आँकड़ों को परस्पर निकट के स्तम्भों में रखकर तुलनात्मक अध्ययन आसानी से किया जा सकता है।

3.चित्र बनाने में सरलता–

आँकड़ों को चित्रों के रूप में प्रदर्शित करने के में सारणी का महत्वपूर्ण योगदान है। सारणीकृत आँकड़ों को सरलतापूर्वक चित्रों में परिवर्तित किया जा सकता है।

4. मित्व्ययिता–

आँकड़ों का सारणीयन करने से उनको समझने में कम समय लगता है साथ ही कागज भी कम प्रयोग होता है। बहुत बड़े तथ्य सारणीबद्ध होने पर संकुचित हो जाते है तथा बहुत कम स्थान घेरते है तथा शीघ्र परिणाम देने लगते हैं।

5. याद रखने में सुविधा–

सांख्यिकीय आँकड़ों को उनकी यथास्थिति में याद रखना अत्यन्त कठिन कार्य है। जबकि सारणी के रूप में लिखने पर उनको स्मरण रखना सरल होता है।

9.13 सारणीयन की सीमाएँ–

सारणीयन की सीमाएं निम्नलिखित हैं–

1. सरणी को कोई सामान्य व्यक्ति नहीं समय सकता। उसको समझने के लिए विशिष्ट ज्ञान होना आवश्यक है। अतः यह कुछ लोगों तक ही सीमित है।
2. सारणी में विवरण नहीं दिया जाता उसमें केवल आँकड़े व्यवस्थित किये जाते हैं।
3. गद्य के रूप में लिखे होने पर तथ्यों के विशेष महत्व वाले भाग को अधिक महत्व नहीं दिया जाता।

उपरोक्त बिन्दुओं से ऐसा तो स्पष्ट है कि केवल सारणीयन से हम पूर्ण विश्लेषण नहीं कर सकते लेकिन इससे सारणीयन की उपयोगिता कम नहीं हो जाती।

9.14 सारणीयन के महत्वपूर्ण बिन्दु–

1. सारणी का शीर्षक–

सारणी का शीर्षक इस प्रकार होना चाहिए कि उससे उसको उद्देश्य स्पष्ट हो सके आवश्यकता होने पर स्तम्भों तथा पंक्तियों के उपशीर्षक भी दिये जाने चाहिए।

2. सारणी का आकार–

किसी सारणी में स्तम्भों व पंक्तियों की संख्या का निर्धारण करना सारणीयन का एक महत्वपूर्ण अंग है। सारणी में इनकी संख्या न अधिक होनी चाहिए और न ही कम।

खानों की संख्या अधिक होने पर तथ्य जटिल व अस्पष्ट हो सकते है। प्रत्येक स्तम्भ का उपशीर्षक देने पर तथ्य स्पष्ट होते है।

3. तुलनात्मक आँकड़े पास–पास हो–

इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि तुलनात्मक आँकड़े परस्पर निकट रहे जिससे साथ–साथ ही उन आँकड़ों की तुलना की जा सके।

4. आँकड़ों के मात्रक–

आँकड़ों के मात्रकों जैसे– किलोग्राम, किलोमीटर, आदि की उपशीर्षक में लिखकर स्पष्ट करना चाहिए।

5. आकर्षक रूप–

सारणी देखने में आकर्षक व सुन्दर होनी चाहिए। इसके लिए पट्टी आदि का प्रयोग करके महत्वपूर्ण भागों को गहरी या दोहरी रेखाओं का प्रयोग किया जाना चाहिए।

9.15 सारणीयन के प्रकार–

सांख्यिकीय सारणीयों को उद्देश्य मौलिकता तथा रचना के आधार पर विभिन्न वर्गो में बाँटा जा सकता है जो निम्न प्रकार है।

1. सरल सारणी–

इस प्रकार की सारणीयों में आँकड़ों की एक ही विशेषता को प्रदर्शित किया जा सकता है। इस प्रकार की सारणीयों को प्रथम क्रम की सारणी भी कहा जाता है।जैसे– जनसंख्या का आयु के आधार पर वर्गीकरण

आयु वर्ग	कुल जनसंख्या
0-16	a
16-32	b
32-48	c
48-64	d
64-80	e

2. द्विगुण सारणी–

इस प्रकार की सारणीयों में आँकड़ों की दो विशेषताओं का प्रदर्शन किया जाता है।

जैसे– जनसंख्या का आयु व लिंग के आधार पर वर्गीकरण

आयु वर्ग	कुल जनसंख्या		
	पुरूष	महिला	योग
0-16			
16-32			
32-48			
48-64			
64-80			

3. त्रिगुण सारणी–

इस प्रकार की सारणी में आँकड़ों के तीन गुण स्पष्ट किये जाते है। जैसे जनसंख्या का जाति आयु व साक्षरता के आधार पर वर्गीकरण किये जाने पर सारणी निम्न प्रकार होगी।

आयु वर्ग	कुल व्यक्ति								
	पुरूष			महिला			योग		
	साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग
0-16									
16-32									
32-48									
48-64									
64-80									

4. बहुगुण सारणी–

इस प्रकार की सारणीयों में आँकड़ों की तीन से अधिक विशेषताओं को प्रदर्शित किया जाता है।

जैसे– जनसंख्या का आयु, लिंग, साक्षरता तथा राज्य के आधार पर वर्गीकरण

राज्य	आयु वर्ग	जनसंख्या								
		पुरूष			महिला			योग		
		साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग	साक्षर	निरक्षर	योग
01 उत्तराखण्ड	0-16 16-32 32-48 48-64 64-80									
02 उत्तर प्रदेश	0-16 16-32 32-48 48-64 64-80									

अभ्यास हेतु प्रश्न

6. जब किसी सारणी द्वारा दो तरह की सूचना प्राप्त होती है तो वह कहलाती है–

क. सरल सारणी ख. द्विगुण सारणी

ग. त्रिगुण सारणी घ. बहुगुण सारणी

7. सारणीयन की सहायता से समकों का प्रमाण मस्तिष्क पर होता है–

क. स्थायी ख. अस्थायी

ग. काल्पनिक घ. वास्तविक

9.16 लेखा चित्रीय अंकन–

सांख्यिकी में जटिल दिखने वाले आँकड़ों को सरल, रोचक व आकर्षक बनाकर प्रस्तुत करना एक महत्वपूर्ण कार्य है। आँकड़ों को विभिन्न विधियों द्वारा इस प्रकार प्रस्तुत किया जाता है जिससे एक सामान्य व्यक्ति भी उनको देखकर कुछ निर्णय निकाल सके। लेखा चित्रीय अंकन एक ऐसी ही विधि है जिसमें सांख्यिकीय आँकड़ों को चित्रों द्वारा इस प्रकार रोचक ढंग से प्रस्तुत किया जाता है कि कोई भी उनको देखकर समझ सकता है। अतः लेखा चित्रीय अंकन का अर्थ सांख्यिकीय आँकड़ों को आकर्षक, सरल व रोचक ढंग से विभिन्न ज्यामितीय आकृतियों जैसे – रेखाचित्र, दण्डचित्र (Bar diagram) वृत्त चित्र (circle diagram) तथा आलेख (Graph) के रूप में प्रदर्शित करना है।

9.17 चित्रीय अंकन की उपयोगिता–

चित्रीय अंकन का सांख्यिकी में अत्यधिक महत्व है। इसके मुख्य लाभ इस प्रकार है–

1. तथ्य सरलता से समझे जा सकते है–

सांख्यिकीय आँकड़े अत्यन्त जटिल होते है जिन्हें चित्रों के माध्यम से इतना सरल बनाया जाता कि उन्हें समझना किसी भी व्यक्ति के लिए कठिन नही होता।

2. तथ्यों को आकर्षक व प्रभावयुक्त बनाया जाता है–

चित्र अपने आप में इतने आकर्षक तथा प्रभावी होते है कि उनसे बिना किसी गणना से हम तुरन्त वह निष्कर्ष निकाल सकते है जो हम बहुत देर तक गणना करके निकालते हैं। इन चित्रों को विभिन्न रंगों द्वारा रंग कर विभिन्न तथ्यों को अलग–अलग भी

किया जाता है जिससे उनसे विश्लेषण करने में तो आसानी होती ही है तथा उनके सौन्दर्य में वृद्धि भी होती है।

3. आँकड़ों की तुलना करने में सहायता मिलती है—

चित्रों के माध्यम से विभिन्न तथ्यों के सांख्यिकीय आँकड़ों की तुलना अत्यन्त सरल तरीके से की जा सकती है। संख्यात्मक रूप से तुलना करने में समय भी अधिक लगता है और यह चित्रों द्वारा तुलना करने से बहुत अधिक जटिल भी है।

4. समय व श्रम की बचत होती है—

चित्रों द्वारा प्रदर्शित सांख्यिकीय आँकड़ों को समझने में अधिक समय नहीं लगता तथा उन्हें आसानीसे समझा जा सकता है। सामान्य रूप से लिखे आँकड़ों को समझने के लिए अत्यधिक गणना करनी होती है जो एक सामान्य व्यक्ति के लिए अत्यधिक कठिन व नीरस कार्य होता है।

5. उपयोग का क्षेत्र व्यापक है—

चित्रीय अंकन की उपयोगिता सर्वव्यापी है। सामाजिक, आर्थिक, शासकीय आदि महत्वपूर्ण क्षेत्रों में सांख्यिकीय चित्रों को बहुत प्रयोग में लाया जाता है।

6. चित्र अधिक समय तक स्मरण रहते है—

चित्रों के माध्यम से प्रदर्शित आँकड़े, सारणी के रूप से लिखे आँकड़ों से अधिक स्मरणीय होते है। चित्र मस्तिष्क पटल पर अपनी विशिष्ट छाप छोड़ते है जिस कारण वह अधिक समय तक याद रहते हैं।

9.18 लेखा चित्रीय द्वारा प्रदर्शन की सीमाएँ—

सांख्यिकीय आँकड़ों को चित्र रूप में प्रस्तुत करने से उनका अध्ययन कुछ सरल तो होता है, किन्तु इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं, जो निम्न प्रकार हैं।

1. सामान्य व्यक्ति के लिए ही उपयोगी—

सामान्य व्यक्ति के लिए सांख्यिकीय आँकड़े बहुत जटिल होते है, किन्तु उनको चित्र के रूप में प्रदर्शित करने पर वे उनके लिए सरल हो जाते हैं। जिन व्यक्तियों को सांख्यिकी का अच्छा ज्ञान होता है उनके लिए यह चित्र बहुत उपयोगी नहीं होते।

2. अन्तर सूक्ष्म होने पर विश्लेषण करना कठिन—

यदि आँकड़े इस प्रकार हो कि उनका अन्तर बहुत कम है तो उनको चित्र में वह सूक्ष्म अन्तर प्रदर्शित करने में कठिनाई होती है। जैसे— एक दुकानदार की अक्टूबर 2010

में कमाई रू0 1,15,425 हुयी तथा नवम्बर 2010 में रू0 1,15,430 कमाई हुयी। दोनों माह में हुयी इस कमाई के अन्तर को चित्र द्वारा प्रदर्शित करना कठिन कार्य है।

3. आँकड़ों को शुद्धता से प्रदर्शित करने में कठिनाई–

आँकड़ों को चित्र रूप में प्रदर्शित करने में उनको पूर्ण रूप से शुद्ध दर्शाना सम्भव नहीं होता इसलिए जहां पूर्ण शुद्धता की आवश्यकता हो वहाँ लेखा चित्र अंकन उपयोगी नहीं होता। सांख्यिकीय अनुसंधान हेतु यह अधिक उपयोगी नहीं है।

4. केवल तुल्नात्मक अध्ययन में ही उपयोगी–

लेखा चित्र केवल तुलनात्मक अध्ययन में ही उपयोगी होते हैं। इनसे संख्यात्मक प्रदर्शन सम्भव नहीं है। आँकड़ों को चित्र रूप देने के लिए दो या दो से अधिक आँकड़ों की आवश्यकता होती है एक ही आँकड़ा होने की स्थिति में उसे चित्र रूप दिये जाने की कोई उपयोगिता नहीं होती है।

5. निमार्णकर्ता कलात्मक निपुण होना चाहिए–

चित्र का निर्माण एक ऐसे व्यक्ति द्वारा होना चाहिए जो आँकड़ों को भलिभाँति समझे तथा वहां कला में भी निपुण हो। ऐसा न होने की स्थिति में चित्र निर्माण में त्रुटियां हो सकती है जिससे विश्लेषण करने पर भ्रम की स्थिति उत्पन्न हो सकती है।

9.19 चित्र बनाने के सामान्य नियम –

सांख्यिकीय चित्रों को बनाने में निम्न बातों का ध्यान रखने पर उन्हें अधिक प्रभावशाली व आकर्षण बनाया जा सकता है–

1. शुद्धता–

चित्रों को बनाने में शुद्धता का सर्वथा ध्यान रखा जाना चाहिए। चित्र चाहे जितना भी आकर्षक हो यदि उसमें शुद्धता नहीं है तो वह व्यर्थ है। अतः चित्र बनाने में पटरी, प्रकार आदि का प्रयोग करके उसे शुद्ध बनाया जाना चाहिए।

2. आकार–

चित्र का आकार उपलब्ध स्थान के अनुसार होना चाहिए चित्र उपलब्ध स्थान से बहुत छोटा नहीं होना चाहिए और न ही इतना बड़ा होना चाहिए उस स्थान से बाहर होने लगे।

3. पैमाना–

चित्र बनाने से पहले पैमाना मान लेना चाहिए। पैमाना मानते समय अंकित किये जाने वाले आँकड़ों व उपलब्ध स्थान का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। पैमाना इस प्रकार मानना चाहिए चित्र उपलब्ध स्थान में सही अनुपात में आये न अधिक बड़ा ही और न छोटा।

4. रेखा चित्र का प्रयोग–

चित्र बनाने के लिए रेखा पत्र का प्रयोग अच्छा रहता है। इससे चित्र आकर्षक एवम् शुद्ध बनता है।

5. चिन्हों या रंगों का प्रयोग–

चित्रों को आवश्यकतानुसार विभिन्न रंगों से विभिन्न आँकड़ों को प्रदर्शित करने के लिए प्रयोग करना चाहिए। उनके विषय संकेत चित्र के नीचे बायें कोने पर देना चाहिये।

9.20 चित्रों के प्रकार–

सांख्यिकीय चित्रों को मुख्यतः पाँच भागों में बाँटा जा सकता है–

1. एक विमा चित्र (One dimensional Diagram)
2. द्वि विमा चित्र (Two dimensional Diagram)
3. त्रि विमा चित्र (Three dimensional Diagram)
4. चित्र लेख (Pictogram)
5. मानचित्र (Cartograms)

1. एक विमा चित्र– वे चित्र जिनमें एक ही माप प्रदर्शित की जाय, एक विमा चित्र कहलाते है। यह चित्र रेखाचित्र या दण्ड चित्रों के रूप में प्रदर्शित होते है। इस प्रकार के चित्रों में दिये गये आँकड़ों को ऊँचाई (y-अक्ष) के रूप में प्रदर्शित करते है जिन्हें दण्ड (bar) कहा जाता है। दण्डों की चौड़ाई यहां महत्वपूर्ण नहीं हैं उसे सभी दण्डों में समान रखा जाता है। एक विमा चित्र निम्न प्रकार के होते हैं।

क. रेखा चित्र (Line Diagram)

ख. सरल दण्ड चित्र (Simple Bar Diagram)

ग. बहुगुणी दण्ड चित्र (Multiple Bar Diagram)

घ. अन्तविभिक्त दण्ड चित्र (Sub divided Bar Diagram)

च. प्रतिशत दण्ड चित्र (Percentage Bar Diagram)

क. रेखाचित्र–

इस प्रकार के चित्र में दिये आँकड़ों को सीधी उर्ध्वाधर रेखाओं द्वारा व्यक्त किया जाता है। रेखाओं के बीच की दूरी समान रखी जाती है। इस चित्र में रेखाओं की चौड़ाई प्रदान नहीं की जाती जिसके कारण यह अधिक आकर्षक नहीं होते।

उदाहरण–3 किसी कक्षा के 10 विद्यार्थियों के गणित विषय के प्राप्तांक 50 में से निम्न प्रकार है

अनुक्रमांक	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्राप्तांक	30	35	20	8	15	40	22	32	45	16

उपरोक्त आँकड़ों को रेखाचित्र में प्रदर्शित कीजिए।

हलः यहाँ x अक्ष पर विद्यार्थियों के अनुक्रमांक अंकित किये गये है तथा y अक्ष की दिशा में उनके प्राप्तांक दर्शाये गये है।

रेखाचित्र– विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का प्रदर्शन

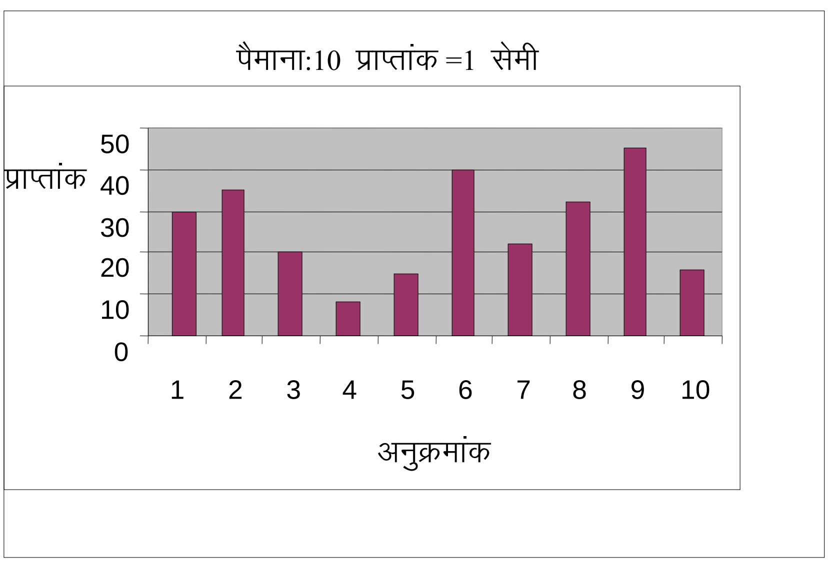

चित्र 9.1

ख. सरल दण्ड चित्र– सरल दण्ड चित्रों को बनाने में एकत्र सांख्यिकीय आँकड़ों को ऊँचाई (y अक्ष) के रूप में प्रदर्शित किया जाता है तथा साथ ही उनको चौड़ाई भी प्रदान की जाती है। प्रत्येक दण्ड की चौड़ाई समान रहती है तथा दो दण्डों के बीच समान दूरी रखी जाती है। दण्डों की चौड़ाई में विभिन्न रंग भरकर उनको आकर्षक बनाया जा सकता है।

उदाहरण 4– उपरोक्त उदाहरण में विद्यार्थियों के प्राप्तांकों को सरल दण्ड चित्र के रूप में प्रदर्शित कीजिए।

हलः विद्यार्थियों के प्राप्तांकों का सरल दण्ड चित्र प्रदर्शन

पैमाना:10 प्राप्तांक =1 सेमी

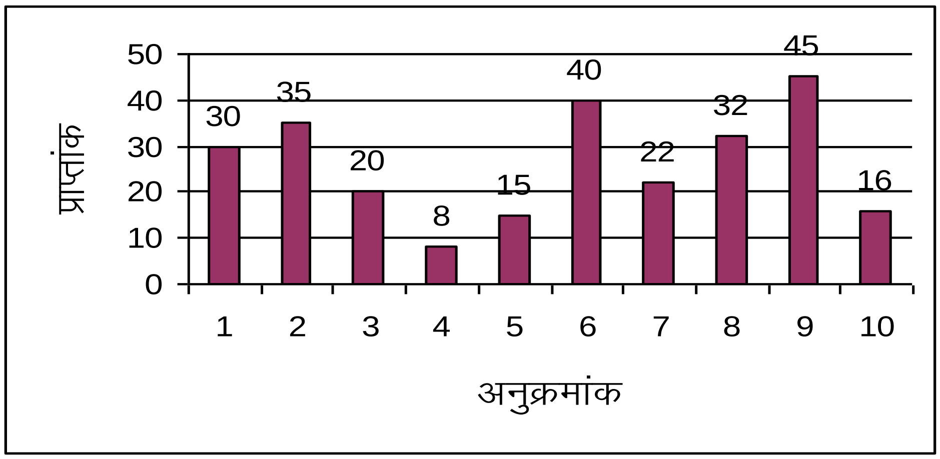

चित्र 9.2

ग.बहुगुणी दण्ड चित्र–

इस प्रकार के दण्ड चित्र में एक ही इकाई की एक से अधिक अवस्थाओं या गुणों का चित्रण किया जाता है। इनमें एक इकाई की विभिन्न अवस्थाओं को दर्शाने हेतु अलग–अलग दण्ड परस्पर सटा कर बनाये जाते है, अलग–अलग अवस्थाओं को दर्शाने के लिए अलग–अलग रंगों या डिजाइनों का प्रयोग किया जाता है। इन रंगों या डिजाइनों को सूचक चित्र (Index Diagram) द्वारा दर्शाया जाता है।

इन चित्रों को मिश्रित दण्ड चित्र भी कहते हैं।

उदाहरण 5– एक कक्षा में A, B व C के गणित, भौतिक विज्ञान तथा रसायन विज्ञान विषयों में प्राप्तांक निम्न प्रकार है। उनको बहुगुणी दण्ड चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

विषय नाम	A	B	C
गणित	40	12	35
भौतिक विज्ञान	38	15	30
रसायन विज्ञान	32	10	38

हलः **बहुगुणी दण्ड चित्र**

पैमानाः10 प्राप्तांक =1 सेमी

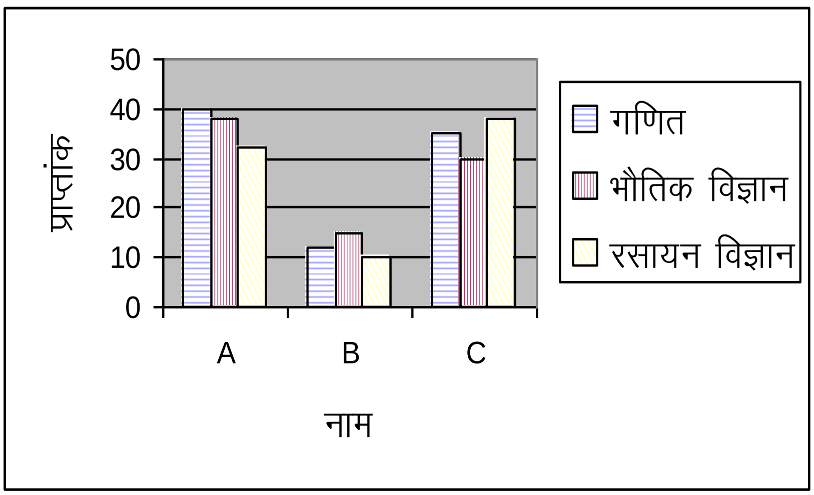

k

चित्र 9.3

घ. अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र–

इस प्रकार के चित्र का प्रयोग एक इकाई के समस्त आँकड़ों के योग व उसके उपभागों को प्रदर्शित करने हेतु किया जाता है। सभी इकाईयों के लिए अलग–अलग दण्ड बनाये जाते है तथा प्रत्येक दण्ड को उपभागों में विभाजित किया जाता है इन उपभागों को अलग–अलग रंगों या चिन्हों से प्रदर्शित किया जाता है, उपभागों का सम्पूर्ण इकाई में अनुपात इनके परिमाण को दर्शाता है। इन चित्रों को संघटक दण्ड चित्र (Component Bar Diagram) भी कहते हैं।

उदाहरण–6 किसी विद्यालय में विभिन्न संकाय विज्ञान, कला व वाणिज्य में विद्यार्थियों की संख्या वर्ष 2009, 2010 तथा 2011 में इस प्रकार है।

संकाय	विद्यार्थियों की संख्या		
	2009	2010	2011
विज्ञान	460	610	840
कला	740	880	1180
वाणिज्य	390	430	560
योग	1590	1920	2580

उपरोक्त आँकड़ों को अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

हल: अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र

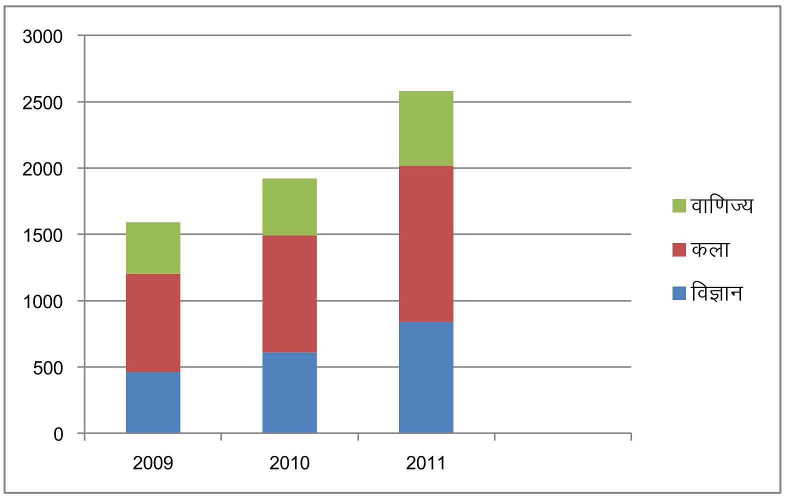

चित्र 9.4

च.प्रतिशत दण्ड चित्र– किसी इकाई के आँकड़ों की सापेक्षिक तुलना करने हेतु इस प्रकार के दण्ड चित्र का प्रयोग किया जाता है। इस दण्ड चित्र को बनाने के लिए सम्पूर्ण इकाई का मूल्य 100 मानकर उसके आँकड़ों को प्रतिशत के रूप में बदल दिया जाता है। तत्पश्चात उनका संचयी प्रतिशत ज्ञात किया जाता है। इसके बाद मापदण्ड के आधार पर अंशो को विभक्त करके उन्हें विभिन्न रंगों या चिन्हों में प्रदर्शित किया जाता है।

उदाहरण–7 उदाहरण 6 की सारणी के आँकड़ों को प्रतिशत दण्ड चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

हल: दिये गये आँकड़ों की प्रतिशत निकालने पर

संकाय	विद्यार्थियों की संख्या					
	2009		2010		2011	
	वास्तविक सं.	प्रतिशत	वास्तविक सं.	प्रतिशत	वास्तविक सं.	प्रतिशत
विज्ञान	460	28.93	610	31.77	840	32.56
कला	740	46.54	880	45.54	1180	45.74
वाणिज्य	390	24.53	430	22.40	560	21.70
योग	1590	100	1920	100	2580	100

प्रतिशत दण्ड चित्र

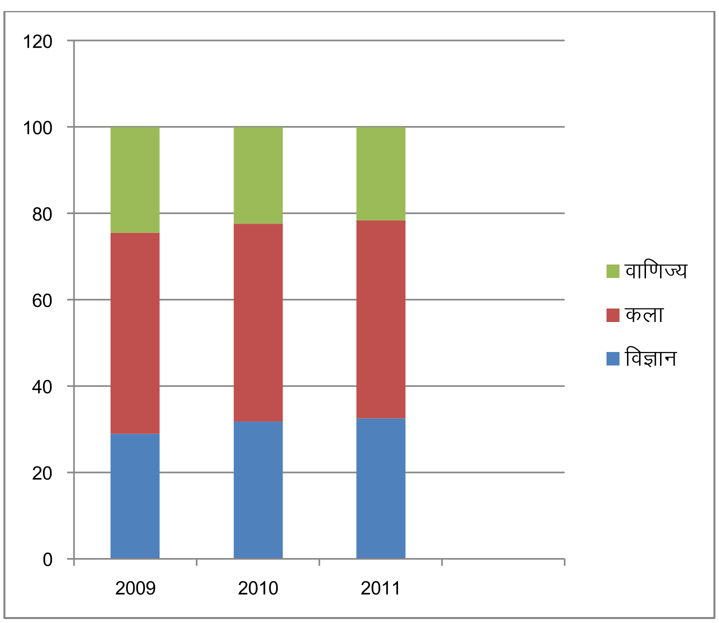

चित्र 9.5

2. द्विविमा चित्र–

जब हमें दो मापों को चित्रित करना हो तब उन्हें द्विविमा के रूप में व्यक्त किया जाता है। इस प्रकार के चित्रों में लम्बाई तथा चौड़ाई के रूप में मापों को व्यक्त किया जाता है इन चित्रों को क्षेत्रफल चित्र (Area Diagram) भी कहते है। यह चित्र मुख्यतः निम्न प्रकार के होते हैं।

(i) आयत चित्र (Rectangular Diagram)–

जब दो राशियों का गुणनफल तीसरी राशि के बराबर हो तब इन राशियों को चित्र रूप में व्यक्त करने के लिए आयत चित्र बनाया जाता है। इसमें एक राशि आयत की लम्बाई तथा दूसरी राशि आयत की चौड़ाई के समानुपाती रखी जाती है जिससे उनका क्षेत्रफल तीसरी राशि के समानुपाती होता है। इन चित्रों के दो प्रकार होते हैं।

क. अन्तर्विभक्त आयत चित्र तथा

ख. प्रतिशत अन्तर्विभक्त आयत चित्र

उदाहरण–8 निम्नलिखित आँकड़ों को द्विविमा चित्र

1. अन्तर्विभक्त आयत चित्र तथा
2. प्रतिशत अन्तर्विर्भक्त आयत चित्र के रूप में प्रदर्शित कीजिए।

व्यय का विवरण	परिवार 'अ' की आय (20,000)	परिवार 'ब' की आय (15,000)
1. भोजन	7500	5000
2. मकान किराया	5000	4000
3. कपड़े	2000	1500
4. बच्चों की स्कूल फीस	3000	2500
5. अन्य (बचत सहित)	2500	2000
योग	20,000	15,000

हल (i) अन्तर्विभक्त आयत चित्र

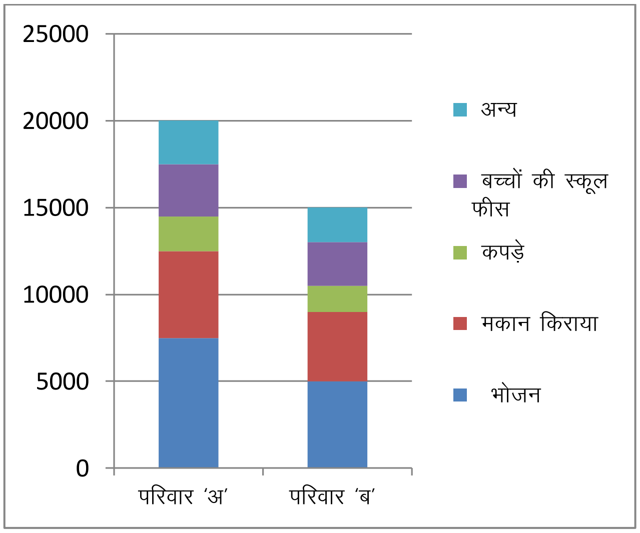

चित्र 9.6

हल **(ii)** प्रतिशत अन्तर्विभक्त आयत चित्र दिये गये आंकड़ों को प्रतिशत के रूप में लिखने पर सारणी

व्यय का विवरण	परिवार 'अ'		परिवार 'ब'	
	वास्तविक व्यय	प्रतिशत	वास्तविक व्यय	प्रतिशत
भोजन	7500	37.50	5000	33.33
मकान किराया	5000	25.00	4000	26.67
कपड़े	2000	10.00	1500	10.00
बच्चों की स्कूल फीस	3000	15.00	2500	16.67
अन्य (बचत सहित)	2500	12.50	2000	13.33
योग	20,000	100	15,000	100

प्रतिशत अन्तर्विभक्त आयत चित्र

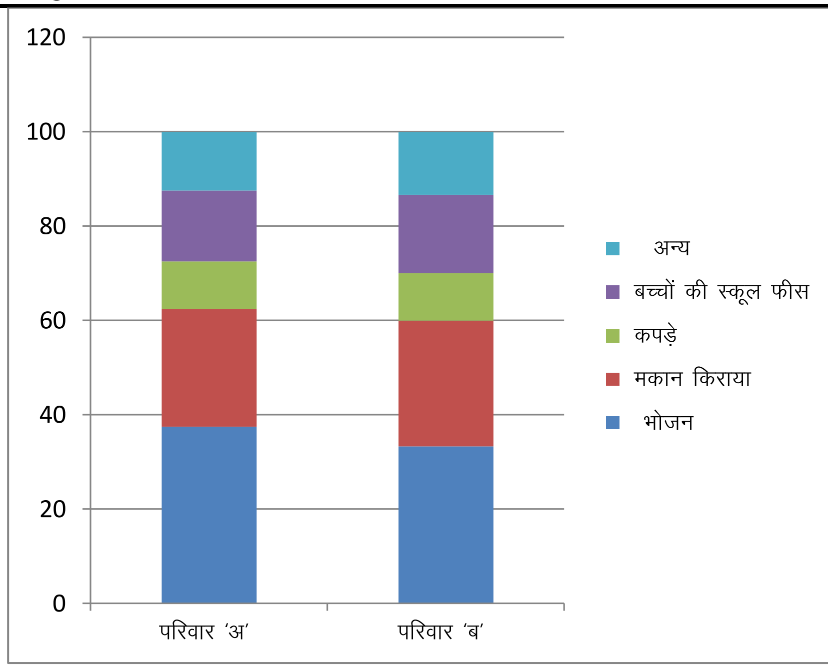

चित्र 9.7

(ii) **वर्ग चित्र (Square Diagram)–** जब विभिन्न इकाईयों के महत्तम मान तथा न्यूतनतम मान का अन्तर बहुत अधिक हो तब आयत चित्र अधिक प्रभावशाली नहीं होता इस प्रकार की स्थिति में वर्ग चित्र बनाया जाता है। जैसे दो व्यक्तियों A व B में A की मासिक आय रू0 5000 तथा B की मासिक आय रू0 1,00,000 है तो इन आँकड़ों को यदि आयत चित्र के रूप में बनाने पर चित्र में A के आयत व B के आयत में 20 गुने का अन्तर होगा। इस स्थिति में वर्ग चित्र अधिक प्रभावशाली होगा। वर्गचित्र बनाने हेतु संकलित आँकड़ों का वर्गमूल ज्ञात करते है तत्पश्चात उचित संख्या से भाग करके उनका स्वरूप छोटा कर लिया जाता है। उचित पैमाना मानकर इकाईयों के वर्गमूल के बराबर भुजा के वर्ग बनाकर सभी इकाईयों को वर्गचित्र के रूप में प्रदर्शित करते है। चित्र बनाते समय आँकड़ों को अवरोही क्रम में रखा जाता है।

उदाहरण–9 किसी कार्यालय में कार्यरत् प्रथम, द्वितीय, तृतीय व चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों की मासिक आय का विवरण निम्न प्रकार है।

प्रथम श्रेणी– रू0 72900

द्वितीय श्रेणी– रू0 48400

तृतीय श्रेणी– रू0 14400

चतुर्थ श्रेणी– रू0 8100

इन आँकड़ों को उपयुक्त चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

हलः यहां आँकड़ों के न्यूनतम व अधिकतम मानो में अन्तर बहुत अधिक है अतः यहाँ वर्ग चित्र बनाना उपयुक्त होगा।

कर्मचारी की श्रेणी	मासिक आय	वर्ग मूल	वर्ग की रेखा (50 से भाग देकर सेमी. में)
प्रथम	72900	270	5.4
द्वितीय	48400	220	4.4
तृतीय	14400	120	2.4
चतुर्थ	8100	90	1.8

यहाँ 1.8 सेमी का वर्ग 8100 प्रदर्शित करेगा।

अतः 1.8×1.8 वर्ग सेमी = रू0 8100

या 3.24 वर्ग सेमी = रू0 8100 या 1 वर्ग सेमी. = रू0 2,500

पैमानाः 1 वर्ग सेमी. = रू0 2,500

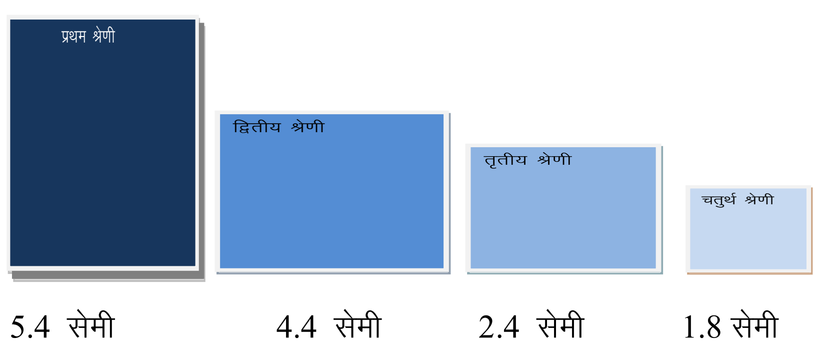

चित्र 9.8

(iii) वृत्त चित्र (Circle Diagram or Pie Diagram)–

क. वृत्त (Circle) वृत्त चित्र बनाने हेतु वर्ग चित्र की भांति ही आँकड़ों को अवरोही क्रम में व्यवस्थित कर वर्गमूल ज्ञात किया जाता है तथा उन वर्गमूलों को उचित संख्या से भाग देकर उन्हें छोटा स्वरूप दिया जाता है। इस संख्या के निकटतम मान की त्रिज्या लेकर वृत्त बनाये जाते है। सभी वृत्तों के केन्द्र एक क्षैतिज रेखा में होने चाहिए तथा उनके बीच समान अन्तर होना चाहिए।

उदाहरण–10 उदाहरण 9 में दिये गये आँकड़ों को वृत्त चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

वृत्त का क्षेत्रफल = πr^2

यदि $\pi = 1.8$ तब

वृत्त का क्षेत्रफल = $\frac{22}{7} \times 1.8 \times 1.8 = 10.2$(लगभग)

अतः यदि 1.8 सेमी. त्रिज्या का वृत्त बनाया जायेगा तो उसका क्षेत्रफल 10.2 वर्ग सेमी. होगा जो रू. 8100 को प्रदर्शित करेगा।

अतः 10.2 वर्ग सेमी. =रू0 8100

या 1 वर्ग सेमी. = रू0 794.1 (लगभग)

वृत्त चित्र

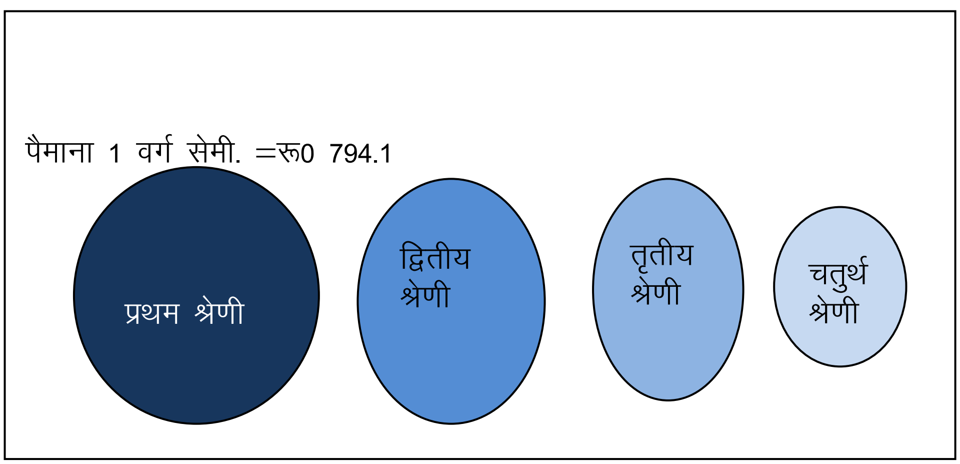

चित्र 9.9

ख. कोणिय या वृत्त खण्ड चित्र (Angular or Sector Diagram)– इस प्रकार के चित्र में तथ्यों को वृत्त के विभिन्न भागों के रूप में व्यक्त करते हैं। हम जानते है वृत्त के केन्द्र का कोण 360 डिग्री होता है। इसलिए कुल योग को 360 डिग्री के बराबर लेकर विभिन्न खण्डों या भागों को कोण के अंशों में विभक्त कर लेते है तथा उन्हें वृत्त में बनाकर वृत्त खण्ड चित्र बनाते हैं। अलग–अलग भाग में अलग–अलग रंग या डिजाइन बनाते हैं।

उदाहरण– 11 निम्नलिखित आँकड़ों को पाई चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

भू उपयोग	क्षेत्रफल (वर्ग किमी)
आवासीय	36
व्यवसायिक	18
औद्योगिक	18
हरित क्षेत्र	09
अन्य क्षेत्र	27

हलः कुल क्षेत्रफल 108 वर्ग किमी

अतः 108 वर्ग किमी. $= 360^0$

या 1 वर्ग किमी. $=\frac{360}{108}=3.34^0$

भू उपयोग	क्षेत्रफल	कोण (डिग्री में) (निकटतम माप में)
आवासीय	36	120^0
व्यवसायिक	18	60^0
औद्योगिक	18	60^0
ळरित क्षेत्र	09	30^0
अन्य क्षेत्र	27	90^0
योग	108	360^0

पाई चित्र

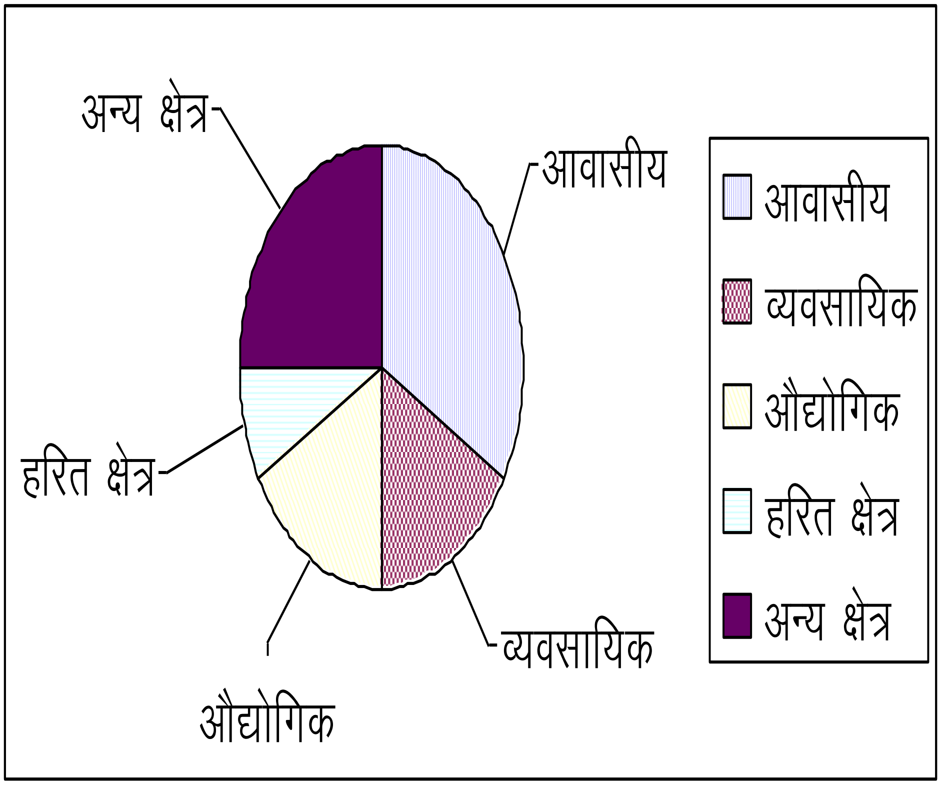

चित्र 9.10

3. त्रिविमा चित्र–

इस प्रकार के चित्रों को बहुत अधिक अन्तर वाले आँकड़ों की तुलना करने हेतु प्रयोग किया जाता है। त्रिविमा चित्रों को बनाते समय लम्बाई, चौड़ाई तथा ऊँचाई तीनों मापो को ध्यान में रखा जाता है। अतः यह चित्र धन (Cube) के रूप में होते है धन को बनाने के लिए दिये आँकड़ों का धनमूल ज्ञात किया जाता है तथा इस घनमूल को आधार मानकर घन की रचना की जाती है। त्रिविमा चित्रों को बेलनाकार, (Cylindrical) गोलाकार, (Spherical) इष्टका (Blocks) इत्यादि के रूप में भी बनाया जा सकता है।

4. चित्र लेख–

वियना के डा0 ऑटो न्यूरैथ (Dr. Otto Neuroth) ने चित्र लेख की तकनीक का विकास किया जिस कारण इसे वियना पद्धति भी कहते है। इसमें आँकड़ों को सम्बन्धित वस्तुओं के चित्रों द्वारा व्यक्त किया जाता है। प्रत्येक इकाई का मान तस्वीरों की संख्या तथा उनके आकारों के अनुपात में होता है। प्रचार–प्रसार में इस तकनीक का प्रयोग महत्वपूर्ण है।

5. मानचित्र–

आँकड़ों को मानचित्र द्वारा भी प्रदर्शित किया जा सकता है। सांख्यिकीय मानचित्रों (Statistical Maps) का प्रयोग विभिन्न संख्यात्मक तथ्यों को भौगोलिक स्वरूप प्रदान करता है। अलग–अलग तथ्यों को अलग–अलग रंगों अथवा चिन्हों द्वारा दर्शाया जाता है। जनसंख्या घनत्व, उत्पादन, आय व्यय, आदि से सम्बन्धित आँकड़ों को सांख्यिकीय मानचित्रों द्वारा दर्शाया जाता है।

9.21 बारम्बारता बंटन के आलेखन–

आलेखन सांख्यिकी का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके द्वारा विभिन्न सांख्यिकीय आँकड़ों को सरल, व्यवस्थित तथा आकर्षक बनाया जाता है जिससे तथ्यों की विवेचना सरलता से की जा सके।

आलेखन के प्रकार–

1. आयत चित्र (Histogram)
2. बारम्बारता बहुभुज (Frequency Polygon)
3. बारम्बारता वक्र (Frequency Curve)
4. संचयी बारम्बारता वक्र (Cumulative Frequency Curve or ogive)

1. आयत चित्र–

इस चित्र को बारम्बारता सारणी का प्रयोग करके बनाया जाता है। यह द्विविमा वाले चित्र होते है जो आयत के रूप में बनाये जाते है। इसमें x-अक्ष पर वर्ग अन्तराल को प्रदर्शित किया जाता है तथा y–अक्ष पर बारम्बारता को दर्शाया जाता है। सभी आयत परस्पर सटा कर बनाये जाते है।

उदाहरण–12 निम्न बारम्बारता सारणी को आयत चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए–

वजन किग्रा में	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80	80-90
व्यक्तियों की संख्या	15	22	31	29	18	13	7

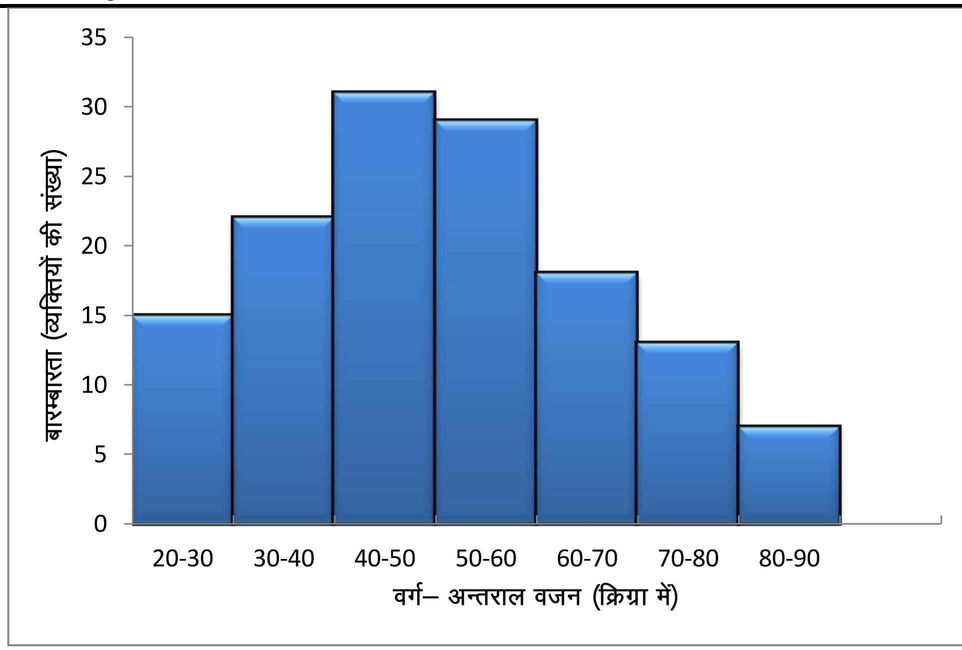

चित्र 9.11

2. बारम्बारता बहुभुज–

यह एक बहुभुज आकृति है। इसमें प्रत्येक वर्ग अन्तरालों के मध्य बिन्दुओं को बहुभुज का शीर्ष मानकर प्रथम वर्ग के न्यूनतम मान वाले बिन्दु से आरम्भ करके प्रत्येक वर्ग के मध्य बिन्दु को मिलाते हुए अन्तिम वर्ग की उच्च सीमा के बिन्दु तक मिला दिया जाता है प्राप्त आकृति बारम्बारता बहुभुज कहलाती है।

उदाहरण–13 निम्नलिखित बारम्बारता सारणी से बारम्बारता बहुभुज बनाइये।

वर्ग अन्तराल	20-40	40-60	60-80	80-100	100-120	120-140
बारम्बारता	5	7	12	8	10	3

हलः

बारम्बारता बहुभुज

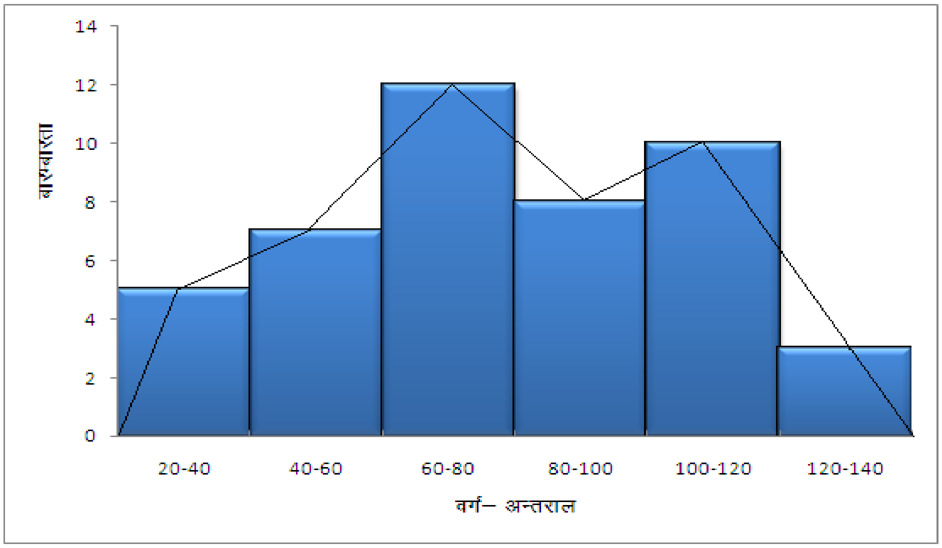

चित्र 9.12

0ABCDEFG एक बारम्बारता बहुभुज है।

3. बारम्बारता वक्र–

बारम्बारता बहुभुज के शीर्ष बिन्दुओं को मुक्त हस्त से मिलाने पर प्राप्त वक्र को बारम्बारता वक्र कहते है। अतः बारम्बारता बहुभुज व बारम्बारता वक्र में परस्पर केवल यही भिन्नता है कि बारम्बारता बहुभुज में आयत चित्र के आयतों के शिखर के मध्य बिन्दुओं को एक सरल रेखा द्वारा मिलाया जाता है जबकि बारम्बारता वक्र में बनाने के लिए उन शीर्षो को मुक्त हस्त (निष्कोण) विधि से खींचा जाता है जिससे हमें एक सरल रेखा के स्थान पर वक्र प्राप्त होता है। बारम्बारता वक्र बनाते समय यह सम्भावना रहती है कि वक्र बारम्बारता बहुभुज के प्रत्येक शीर्ष से होकर न जाए परन्तु उसके आस पास से अवश्य जाना चाहिए।

उदाहरण–14 उपरोक्त उदाहरण 13 का बारम्बारता वक्र बनाइये।

हलः **बारम्बारता वक्र**

चित्र 9.13

4. संचयी बारम्बारता वक्र या तोरण–

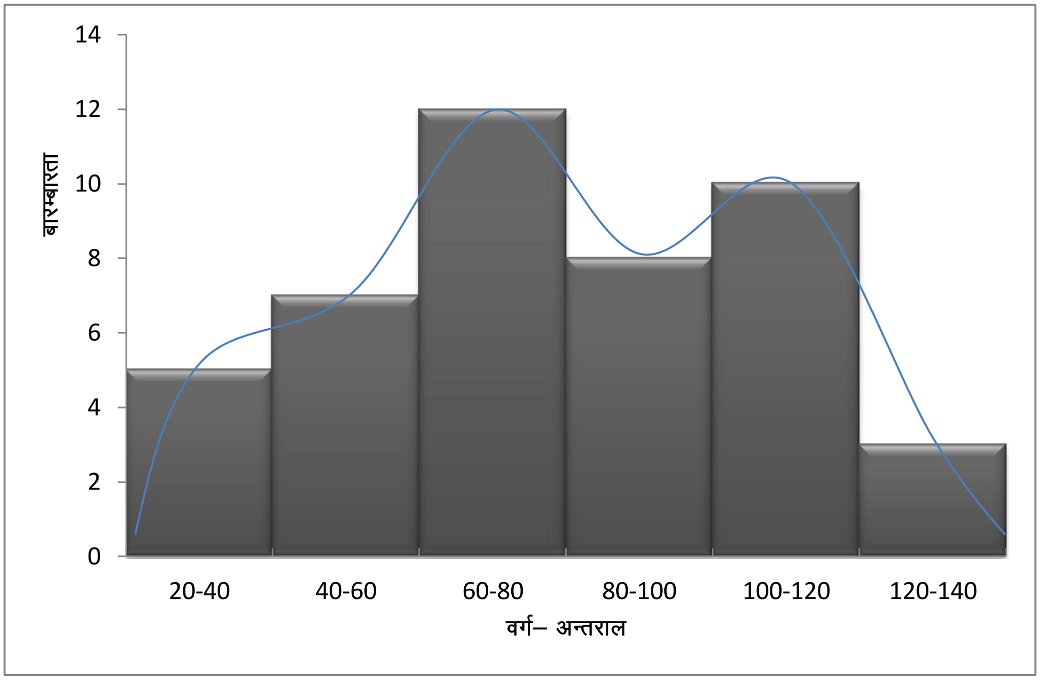

यह वक्र बनाने के लिए वर्ग अन्तराल की उच्च सीमा को भुज (ab) तथा उसकी संगत संचयी बारम्बारता को कोटि (ordinate) मानकर प्राप्त बिन्दुओं को मुक्त हस्त से मिलाने पर प्राप्त वक्र संचयी बारम्बारता वक्र कहलाता है।

उदाहरण–15 निम्नलिखित आँकड़ों से संचयी बारम्बारता वक्र बनाइये

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40
बारम्बारता	8	6	9	12

हलः

वर्ग अन्तराल	बारम्बारता	संचयी बारम्बारता
0-10	8	8
10-20	6	14
20-30	9	23
30-40	12	35

अतः बिन्दुओं A (10, 8), B (20, 14), C (30, 23), व D (40, 35) को मिलाने पर संचयी बारम्बारता वक्र प्राप्त होगा

संचयी बारम्बारता वक्र (तोरण)

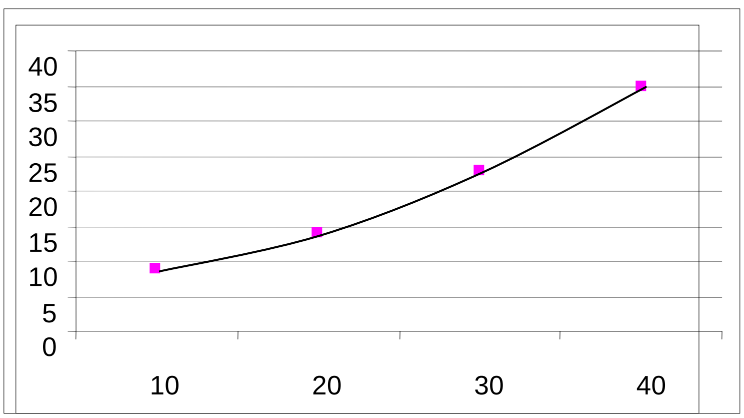

वर्ग अन्तराल

चित्र 9.14

अभ्यास हेतु प्रश्न

सही उत्तर छाँटिए–

8(i). निम्नलिखित में से कौन सा द्विविमा चित्र नहीं है?

- क. आयताकार चित्र
- ख. पाई चित्र
- ग. इष्टका चित्र

घ. वर्ग चित्र

(ii). द्विविमा चित्र कहलाते है–
क. आवृत्ति आयत चित्र
ख. क्षेत्रफल चित्र
ग. आवृत्ति बहुभुज
घ. इनमें से कोई नहीं।

(iii). आँकड़ों के चित्रीय निरूपण का उद्देश्य होता है–
क. संघनीकरण
ख. संक्षिप्तीकरण
ग. प्रस्तुतीकरण
घ. विश्लेषण

(iv). एक परिवार द्वारा विभिन्न मदों पर मासिक व्यय से सम्बन्धित आंकड़ों को प्रदर्शन के लिए सबसे उपयुक्त चित्र है–
क. पाई चित्र
ख. रेखा ग्राफ
ग. आयताकार चित्र
घ. वर्ग चित्र

9.22 सारांश–

सांख्यिकीय आँकड़ों का प्रस्तुतीकरण एक अति महत्वपूर्ण कार्य है यदि इसमें कही त्रुटि रह जाती है तो तथ्यों का विश्लेषण भी त्रुटिपूर्ण होगा। आँकड़ों को वर्गीकृत कर सारणी के रूप में लिखना एक कला है निपुण व्यक्ति ही इस कार्य को कर सकता है। संकलित आँकड़ों को वर्ग अन्तराल में वर्गीकृत कर उनकी बारम्बारता ज्ञात की जाती है। यह कार्य टैली चिन्हों के माध्यम से किया जाता है। इस प्रकार प्राप्त आँकड़ों को उनकी बारम्बारता के साथ स्तम्भ के रूप में लिखने पर सारणी का निर्माण होता है यह हमें तथ्यों की सांख्यिकीय व्याख्या करने में सहायता प्रदान करती हैं तथा इससे आँकड़ों का तुल्नात्मक विश्लेषण करना सरल हो जाता है। कुछ सीमायें होने के बावजूद भी सारणीयन सांख्यिकी में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। सारणीयन के पश्चात् आँकड़ों का चित्रीय अंकन सारणी में अति महत्वपूर्ण है। एक कुशल निर्माणकर्ता द्वारा विभिन्न चित्रों के रूप में आँकड़ों को प्रदर्शित किये जाने पर उनसे तुरन्त निष्कर्ष निकाले जा सकते है। रेखा चित्र, सरल दण्ड चित्र, बहुगुणी दण्ड चित्र, अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र व प्रतिशत दण्ड चित्र की उपयोगिता सांख्यिकी में अत्यधिक है। इनके अतिरिक्त वृत्त खण्ड चित्र, आयत चित्र, बारम्बारता बहुभुज, बारम्बारता वक्र व संचयी बारम्बारता वक्र भी अति महत्वपूर्ण है।

9.23 पारिभाषिक शब्दावली

वर्गीकरण	Clasification
वर्ग अन्तराल	Class interval
स्थिरता	Stability

अनुकूलन	Suitability
व्यापकता	Comprehensiveness
विशालता	Exhaustive
लचनशीलता	Flexibility
परस्पर अपवर्जी	Mutually Disjoint
सजातीयता	Momogeneity
वर्ग सीमायें	Class Limits
निम्न सीमा	Lower limit
उच्च सीमा	Upper Limit
वर्ग विस्तार	Length of Class Interval
मध्यमान	Mi Value
बारम्बारता या आवर्ती	Frequency
चर	Variable
वितरण या वंटन	Distribution
व्यक्तिगत श्रेणी	Individual Series
खण्डित श्रेणी	Discrete Series
सतत् श्रेणी	Continuous Series
संचयी बारम्बारता	Cumulatine Frequency
सारणीयन	Tabulation
स्तम्भ	Columns
पंक्ति	Row
मात्रक	Unit
दण्ड चित्र	Bar Diagram
वृत्त चित्र	Circle Diagram
आलेख	Graph
माप दण्ड या पैमाना	Scale
विमा	Dimension
चित्रलेख	Pictogram
मानचित्र	Cortograms
दण्ड	Bar
क्षैतिज	Horizontel
ऊर्ध्वाधर	Vertical
रेखा चित्र	Line Diagram
सरल दण्ड चित्र	Simple Bar Diagram

बहुगुणी दण्ड चित्र	Multiple Bar Diagram
अन्तविर्भक्त दण्ड चित्र	Sub Divided Bar Diagram
प्रतिशत दण्ड चित्र	Percentage Bar Diagram
आयत चित्र	Rectangular Diagram
वर्ग चित्र	Square Diagram
वृत्त चित्र	Circle Diagram or Pie Diagram
कोणिम या वृत्त खण्ड चित्र	Angular or Sector Diagram
घन	Cube
बेलनाकार	Cylinderical
गोलाकार	Spherical
इष्टाकार	Blocks
आयत चित्र	Histogram
बारम्बारता बहुभुज	Frequency Polygon
बारम्बारता वक्र	Frequency Curve
संचयी बारम्बारता वक्र	Cumulative Frequency Curve or ogive
भुज	Abscissa
कोटि	Ordinate

9.24 उत्तर अभ्यास हेतु प्रश्न–

1 – 40, 2 - 30, 3 – 20, 4 – 4 , 5 – 8, 15, 19, 25, 30

6 - (b) 7 – (b)

8 – (i) – (c), (ii) – (b), (iii) – (c), (iv) - (a)

9.25. सन्दर्भ ग्रन्थ

(i) ''सांख्यिकी सिद्धान्त एवं व्यवहार'' एस.पी. सिंह एस. चन्द (2009)

(ii) ''सांख्यिकी'' डा. बी.एन. गुप्ता, साहित्य भवन (2008)

(iii) ''सांख्यिकी के सिद्धान्त'' डा. एस.एम. शुक्ल, डा. एस.पी. सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन (2007)

(iv) ''प्रारम्भिक सांख्यिकी'' डा. के.एल. गुप्ता, नवयुग साहित्य सदन (2005)

(v) ''व्यावसायिक गणित एवं सांख्यिकी'' डा. नवीन भगत, भूमिका भगत रीडर्स चायस (2012)

(vi) ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' डा. एच.के. कपिल, विनोद पुस्तक मन्दिर

9.26 निबन्धात्मक प्रश्न–

1. वर्गीकरण को परिभाषित कीजिए। वर्गीकरण के गुणों की व्याख्या कीजिए।
2. ऑकड़ों के वर्गीकरण के उद्देश्य तथा विधियों को स्पष्ट कीजिए।
3. चर राशियों को स्पष्ट कीजिए तथा वर्ग अन्तराल बनाते समय किन बातों का ध्यान रखना चाहिए, समझाइये।
4. निम्नलिखित को स्पष्ट कीजिए।

    (I) आवृत्ति (II) संचयी बारम्बारता

    (III) वर्ग अन्तराल (IV) वर्ग की सीमाएँ

    (V) वर्ग विस्तार (VI) मध्यमान
5. सारणीयन को परिभाषित कीजिए तथा इसके उद्देश्य व उपयोग समझाइये।
6. आंकड़ों के वर्गीकरण और सारणीयन में अन्तर स्पष्ट कीजिए। वर्गीकरण के उद्देश्य, उसकी रीतियां तथा उसके महत्व की विवेचना कीजिए।
7. सारणीयन की क्या सीमायें हैं। सारणीयन का अनुसंधान में महत्व समझाइये।
8. सारणीयन का सांख्यिकी में महत्व समझाइये तथा उसके प्रकार बताइये।
9. एक उत्तम सारणी बनाने हेतु मुख्य नियम बताइये तथा सारणीयन की उपयोगिता समझाइये।
10. सांख्यिकी में चित्रीय अंकन की उपयोगिता को समझाइये तथा इसकी सीमायें क्या हैं?
11. उत्तम चित्र बनाने के महत्वपूर्ण नियम क्या है? चित्रों के प्रकारों की व्याख्या कीजिए।

12. आँकड़ों को चित्रित करते समय क्या सावधानियां रखनी चाहिए।

13. निम्नलिखित को स्पष्ट कीजिए।

(I) एक विमा चित्र (II) द्विविमा चित्र

(III) त्रिविमा चित्र (IV) आयत चित्र

(V) बारम्बारता वक्र (VI) बारम्बारता बहुभुज

14. किसी कक्षा के 20 छात्रों के सांख्यिकी के 50 में से अंक निम्न प्रकार है इनकी आवृत्ति सारणी बनाइये।

30, 41, 25, 21, 10, 36, 37, 11, 34, 15,

42, 32, 16, 22, 30, 40, 25, 35, 45, 36,

27, 38, 41, 42, 26, 44, 41, 29, 36, 28

18, 10, 18, 32, 41, 37, 15, 35, 15, 27

25, 35, 15, 25, 10, 30, 11, 27, 18, 32

15. 30 छात्रों के वजन किग्रा0 में निम्न प्रकार है–

50, 65, 48, 70, 65, 40, 48, 52, 55, 45, 48, 55 71, 68, 46,

40, 52, 80, 58, 62, 64, 39, 54, 51, 47, 44, 39, 48, 65, 62

उपरोक्त आँकड़ों की बारम्बारता सारणी बनाइये।

16. निम्नलिखित आँकड़ों के लिए बारम्बारता बंटन बनाइये जिसमें प्रथम वर्ग अन्तराल 0–10 तथा प्रत्येक वर्ग अन्तराल 10 इकाई का हो इसकी संचयी बारम्बारता सारणी भी बनाइये।

91, 81, 58, 10, 35, 28, 0, 12, 8, 84, 71, 92, 67

11, 61, 16, 15, 28, 72, 31, 39, 85, 19, 80, 97, 48

38, 29, 98, 42, 45, 59, 22, 62, 68, 82, 55, 28, 36

6, 86, 72, 41, 69, 78, 20, 17, 95, 32, 36, 48, 35

52, 24, 21, 54, 81, 26, 9, 15, 13, 58, 72, 67, 86

17. निम्न बारम्बारता सारणी को आयत चित्र तथा बारम्बारता वक्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

वर्ग अन्तराल	40-50	50-60	60-70	70-80	80-90	90-100
बारम्बारता	12	30	32	25	22	06

18. एक कक्षा के 10 छात्रों को 10 अंक का प्रश्न पत्र दिया गया जिसमें परिणाम निम्नवत् रहा।

8, 6, 4, 5, 9, 0, 7, 3, 1, 8, 6, 9, 4, 2, 6, 8, 5, 3, 7, 7, 6, 6, 6, 5, 4,

इनकी टैली चिन्ह बनाकर बारम्बारता तथा संचयी बारम्बारता ज्ञात कीजिए।

19. निम्नलिखित 50 विद्यार्थियों के आई. क्यू. को आवृत्ति आयत चित्र द्वारा प्रदर्शित कीजिए।

आई.क्यू. स्कोर	80-90	90-100	100-110	110-120	120-130	130-140
विद्यार्थियों की सं.	3	11	16	11	7	2

20. किसी स्थान के 25 खेतों की कपास की उपज कुन्तलों में निम्न प्रकार है। दस–दस कुन्तल का वर्ग अन्तराल लेकर बारम्बारता सारणी बनाइये। टैली चिन्हों का प्रयोग भी कीजिए।

40, 38, 28, 22, 30, 18, 14, 25, 34, 38, 36, 10, 22, 24, 36, 18, 16 19, 24, 41, 40, 30, 7, 5, 18

21. निम्नलिखित बारम्बारता सारणी से बारम्बारता बहुभुज बनाइये।

वर्ग अन्तराल	20-40	40-60	60-80	80-100	100-120	120-140
बारम्बारता	3	8	13	10	6	4

22. किसी उद्योग में विभिन्न मदों पर होने वाला व्यय निम्नवत् है–

मद	व्यय रूपये (करोड़ में)
समग्री श्रम शक्ति यातायात विविध	127.0 92.5 100.0 92.5 68.0
योग	480.0

उपरोक्त आंकड़ों का अन्तर्विभक्त दण्ड चित्र बनाइये।

मद	व्यय रूपये (करोड़ों में)
सामग्री	1,560
श्रम	1080
शक्ति	40
यातायात	360
विविध	120
योग	3600

23. निम्नलिखित सारणी से बारम्बारता वक्र तथा संचयी बारम्बारता वक्र बनाइये।

वर्ग अन्तराल	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25	25-30
बारम्बरता	8	6	12	9	4	3

24. एक परिवार द्वारा विभिन्न खाद्यान्नों की पैदावार के आँकड़े निम्नवत् है–

वस्तुएं	A	B	C	D	E	F	G
मूल्य (रू. में)	10	30	80	40	20	160	120

इन आँकड़ों को पाई आरेख द्वारा निरूपित कीजिए।

25. निम्न सारणी के आधार पर आयत चित्र बनाइये–

वर्ग अन्तराल	बारम्बारता
0–30	60
30–60	50
60–90	90
90–120	130

26. निम्न सारणी की संचयी बारम्बारता ज्ञात कीजिए तथा संचयी बारम्बारता वक्र बनाइये।

वर्ग अन्तराल	20-24	25-29	30-34	35-39	40-44
बारम्बरता	7	10	12	6	5

27. दो परिवारों अ तथा ब के मासिक आय व व्यय की सारणी निम्नलिखित है इसे अन्तर्विभक्त प्रतिशत दण्ड चित्र द्वारा दर्शाइये।

क्रम.स	मद		परिवार 'ब' (आय 15000)
1	भोजन	3000	4000
2	वस्त्र	2000	2500
3	शिक्षा	3000	3000
4	किराया	2000	2500
5	अन्य	1000	1500
6	बचत	1000	1500
	योग	12000	15000

इकाई–10 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप, व्यवस्थित एवं अव्यवस्थित आँकड़ों के मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलांक की गणना

इकाई की संरचना

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप का अर्थ तथा महत्व

10.4 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप उद्देश्य तथा कार्य

10.5 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप के गुण

10.6 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप के प्रकार

10.7 समान्तर माध्य या मध्यमान

10.7.1 समान्तर माध्य की गणना

10.7.2 समान्तर माध्य की विशेषताएँ

10.7.3 समान्तर माध्य के दोष

10.8 माध्यिका या मध्यांक

10.8.1 माध्यिका की गणना

10.8.2 माध्यिका या मध्यांक की विशेषताएँ

10.8.3 माध्यिका या मध्यांक के दोष

10.9 बहुलक या बहुलांक

10.9.1 बहुलक की गणना

10.9.2 बहुलक की विशेषताएँ

10.9.3 बहुलक के दोष

10.10 समान्तर माध्य, माध्यिका तथा बहुलक में सम्बन्ध

10.11 सारांश

10.12 पारिभाषिक शब्दावली

10.13 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

10.14 संदर्भ ग्रन्थ सूची

10.15 निबंधात्मक प्रश्न

10.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमने आंकड़ों के संकलन, वर्गीकरण, सारणीकरण आदि के विषयों के विषय में पढ़ा। यह सभी सांख्यिकीय विश्लेषण की प्रारम्भिक स्थितियां हैं जिनसे आंकड़ों की सभी महत्वपूर्ण विशेषताएं स्पष्ट नहीं हो पायी। सांख्यिकीय विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य एकत्रित आंकड़ों का विवरण प्रस्तुत करने के लिए तथा उनकी तुलना विभिन्न तथ्यों से करने लिए आंकड़ों को सारांश रूप में एक अंक द्वारा प्रदर्शित करना होता है। यह अंक ऐसा होना चाहिए जो आंकड़ों को मूल विशेषताओं को स्पष्ट कर सके। ऐसे मूल्य या अंक को ही केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप कहा जाता है।

10.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापों का अर्थ समझ सकेंगे।
2. मध्यमान अथवा माध्य के बारे में जान सकेंगे।
3. मध्यांक अथवा मध्यिका के बारे में जान सकेंगे।
4. बहुलांक अथवा बहुलक के बारे में जान सकेंगे।

10.3 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप का अर्थ तथा महत्व–

सांख्यिकी आँकड़ों को संकलित करके उन सभी को स्मरण रखना अत्यन्त कठिन कार्य है इसलिए सांख्यिकी की विभिन्न विधियों द्वारा 'सांख्यिकी माध्य' ज्ञात किया जाता है जो उन सभी संकलित आँकड़ों का प्रतिनिधित्व करता है। यह माध्य आवृत्ति वितरण का केन्द्र होता है अतः इसे 'केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापें' कहा जाता है।

डा0 ए0 एल0 बाउले के कथनानुसार, ''माध्य, अंकगणित के निष्कर्षो को प्रकट करने का संक्षिप्त तरीका है''

(An average is a short way of expressing arithmetical result)

सिम्पसन व काफ्का के अनुसार–'केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप एक ऐसा प्रतिरूप मान है जिसके चारों ओर उन्य संख्याएँ केन्द्रीत रहती हैं।

(A measure of central tendency is a typical value around which other figures congregate)

ए0 ई0 बाध के अनुसार, ''माध्य, मूल्यों के वर्ग से चयनित एक ऐसा मान है जो किसी न किसी रूप में उसका प्रतिनिधित्व करता है।'

(An average is a single value slected from a group of values to represent them in someway)

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप अर्थात सांख्यिकीय माध्य वर्तमान युग में अति महत्वपूर्ण है। विज्ञान की प्रत्येक शाखा में माध्य का प्रयोग होता है। डा0 बाउले ने सांख्यिकी को माध्यों का विज्ञान कहा है। माध्य सांख्यिकीय आँकड़ों को संक्षिप्त करने का कार्य करता है जिससे उनका अधिक प्रभावी तरीके से प्रयोग किया जा सके।

10.4 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप–उद्‌देश्य तथा कार्य–

केन्द्रीय प्रवृत्ति होने के कारण सांख्यिकी माध्य आँकड़ों के सम्पूर्ण समूह का प्रतिनिधित्व करता है सांख्यिकी माध्य को ज्ञात करने के उद्‌देश्य निम्नलिखित हैं–

1. इसके प्रयोग से विभिन्न आँकड़ों के बीच 'गणितीय सम्बन्ध' स्थापित किया जा सकता है।
2. यदि आँकड़ों को ऐसे ही रहने दिया जाए जैसे वे है तो उनसे विश्लेषण करने में कठिनाई होगी ऐसे आँकड़ें सदैव दिशाहीन होते है अतः उनके प्रतिनिधि की आवश्यकता होती है जिससे उन्हें एक दिशा दी जा सके।
3. सांख्यिकीय माध्य से तुलनात्मक अध्ययन सुंविधाजनक होता है।
4. माध्य का प्रयोग अनुमान लगाने में किया जाता है जिससे भविष्य में होने वाली घटनाओं का एक अंदाज लगाया जा सकता है। जैसे– किन्हीं विशेष अवसरों पर रेल से यात्रा करने वाले यात्रियों की संख्या का अनुमान लगाकर पहले से व्यवस्था की जा सकती है।

10.5 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप के गुण–

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप समस्त आँकड़ों का प्रतिनिधित्व करती है अतः उसमें कुछ विशेष गुण होना अनिवार्य है। विभिन्न सांख्यिकी विद्वानों के अनुसार उनमें निम्न गुण होने चाहिए।

1. माध्य की परिभाषा द्वि अर्थी नहीं होनी चाहिए। परिभाषा ऐसी होनी चाहिए जिससे उसका सटीक एक ही अर्थ निकले तथा भ्रमित होने से बचा जा सके।

2. माध्य एक निश्चित तथा निरपेक्ष संख्या होनी चाहिए।

3. माध्य इस प्रकार होना चाहिए कि प्रत्येक पद माध्य पर केन्द्रित हो।

4. माध्य बीजगणितीय उपयोग हेतु उपयुक्त होना चाहिए।

5. माध्य को विभिन्न परीक्षणों के लिए उपयुक्त होना चाहिए।

10.6 केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप के प्रकार–

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप अर्थात सांख्यिकीय माध्य प्रमुख रूप से निम्न प्रकार के होते हैं–

1. समान्तर माध्य या मध्यमान

2. माध्यिका या मध्यांक तथा

3. बहुलक या बहुलांक

10.7 समान्तर माध्य या मध्यमान –

समान्तर माध्य वास्तव में संकलित आंकड़ों का औसत होता है। समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए समस्त संकलित आँकड़ों के योग को उनकी कुल संख्या से भाग किया जाता है, प्राप्त संख्या उन संकलित आँकड़ों का समान्तर माध्य या मध्यमान कहलाती है। सैक्राइस्ट द्वारा भी मध्यमान की यही परिभाषा दी गयी है। उनके अनुसार एक ही इकाई के सभी आँकड़ों के योग को उनकी कुल संख्या से भाग देने पर प्राप्त संख्या समान्तर माध्य कहलाती है। समान्तर माध्य को गगग द्वारा दर्शाया जाता है।

10.7.1 समान्तर माध्य की गणना–

इसको ज्ञात करने के लिए निम्न विधियाँ प्रयोग में लायी जाती है।

1. प्रत्यक्ष विधि

2. कल्पित माध्य विधि

1. प्रत्यक्ष विधि–

क. व्यक्तिगत श्रेणी

यदि हमें व्यक्ति श्रेणी ज्ञात हो तो उसकी सभी इकाइयों के योग को उनकी कुल संख्या से भाग देने पर हमें समान्तर माध्य प्राप्त होता है।

उदाहरण–

किसी कक्षा के 10 छात्रों के गणित विषय की परीक्षा में प्राप्तांक निम्न प्रकार हैं–

30, 25, 8, 41, 28, 12, 6, 32, 17, 33

इन प्राप्तांकों का समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

हल– समान्तर माध्य $\overline{X} = \frac{\text{सभी आँकड़ों का जोड़}}{\text{आँकड़ों की संख्या}}$

$$= \frac{232}{10} = 23.2 \text{ उत्तर}$$

ख. असतत् श्रेणी

जब हमें आंकड़े असतत् श्रेणी के रूप में अर्थात बारम्बारता के रूप में ज्ञात हो तथा सभी इकाईयों के मानो को उनकी बारम्बारताओं से गुणा करके गुणनफलों के योग को सभी बारम्बारताओं के योग से भाग करने पर प्राप्त संख्या दी हुयी असतत् श्रेणी का समान्तर माध्य होगी।

यदि हमारे पास n मान क्रमशः $x_1, x_2, --- +x_n$ है तथा

उनकी बारम्बारताएँ क्रमशः $f_1, f_2, --- +f_n$ है तब

समान्तर माध्य $\overline{X} = \frac{x_1 f_1 + x_2 f_2 + - - - - - - + x_n f_n}{f_1 + f_2 - + f_n} = \frac{\sum x_1 f_1}{\sum f_1}$

उदाहरण–2 नीचे दी गयी सारणी के लिए समान्तर माध्य की गणना कीजिए।

चर का मानः

	20	25	30	35	40	45	50
बारम्बारता	5	3	8	7	2	6	4

हल :

चर का मान (x)	बारम्बारता	fx
20	5	100
25	3	75
30	8	240
35	7	245
40	2	80
45	6	270
50	4	200
	$\sum x = 35$	$\sum fx = 1210$

अतः समान्तर माध्य $\overline{X} = \frac{\sum + fx}{\sum f} = \frac{1210}{35}$

$= 34.57$ उत्तर

(ग) सतत श्रेणी

ज्ब श्रेणी सतत् रूप में ज्ञात हो अर्थात वर्ग अन्तराल ज्ञात हो तब प्रत्येक वर्ग अन्तराल के मध्य बिन्दु को पद लेगें तथा आगे की गणना उपरोक्त असतत् श्रेणी के अनुसार करेंगे।

उदाहरण–3 नीचे दिये आँकड़ों से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
छात्र संख्या	5	8	3	18	6

प्राप्तांक	मध्य–मान (x)	छात्र संख्या (f)	fx
0-10	5	5	25
10-20	15	8	120
20-30	25	13	325
30-40	35	18	630
40-50	45	6	270
योग		$\Sigma f = 50$	$\Sigma fx = 1370$

अतः समान्तर माध्य ($\overline{X}$) $= \frac{\sum fx}{\sum f} = \frac{1370}{50} = 27.4$ उत्तर

2. कल्पित माध्य विधि–

इस विधि को लघु विधि (Short Cut Method) भी कहा जाता है। प्रश्न को इस विधि से हल करने के लिए दी गयी श्रेणी में से किसी एक इकाई को स्वयं माध्य मान लिया जाता है इस माध्य को कल्पित माध्य ‘r’ कहा जाता है। इसे ‘A’ द्वारा व्यक्त करते हैं। कल्पित माध्य किसी भी संख्या को लिया जा सकता है किन्तु यह मान जितना वास्तविक मान के निकट होगा गणना करना उतना ही सरल होता है। अब कल्पित माध्य से समान्तर माध्य की गणना निम्न विधियों से करते हैं।

क. व्यक्तिगत श्रेणी

व्यक्तिगत श्रेणी ज्ञात होने की स्थिति में कल्पित माध्य मानकर उसे प्रत्येक इकाई में से घटा कर विचलन ज्ञात करते है यह विचलन ऋणात्मक, धनात्मक या शून्य कुछ भी हो सकता है। सभी विचलनों के बीजगणितीय योग (Algebraic Sum) (Σd) द्वारा व्यक्त किया जाता है तथा निम्नलिखित सूत्र द्वारा समान्तर माध्य ज्ञात किया जाता है।

समान्तर माध्य $= A + \frac{\sum d}{n}$

यहाँ n इकाइयों की संख्या है।

उदाहरण 4– श्रेणी 9, 13, 25, 31, 27, 23, 11, 17, 33, 22, का समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

हल– दी गयी श्रेणी में कल्पित माध्य 23(माना)

क्रम संख्या	संख्या	d= x - A
1	9	-14
2	13	-10
3	25	2
4	31	8
5	27	4
6	23=A	0
7	11	-12
8	17	-6
9	33	10
10	32	-1
n = 10		$\Sigma d = -19$

अतः समान्तर माध्य $\overline{X} = 23 + \frac{(-19)}{10}$

$= 23 - 1.9 = 21.1$ उत्तर

(ख) असतत् श्रेणी

असतत् श्रेणी ज्ञात होने का अर्थ है कि हमें सभी इकाइयों की बारम्बारता ज्ञात है। लघु विधि से समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए हमें कल्पित माध्य मानना होगा। यहाँ हम कल्पित माध्य वह संख्या लेंगें जिसकी बारम्बारता सर्वाधिक या उसके निकटतम हो, इससे गणना करना सरल रहेगा। समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करेगें।

$$\overline{X} = A + \frac{\sum fd}{\sum f}$$

यहाँ $\overline{X}$ = समान्तर माध्य

A = कल्पित माध्य

f = बारम्बारता

d =विचलन

उदाहरण–5 निम्न सारणी से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

पद	10	15	20	25	30	35	40
बारम्बारता	4	2	10	3	8	5	8

हलः यहाँ सबसे अधिक बारम्बारता 20 की है अतः कल्पित माध्य A = 20 (माना)

पद x	बारम्बारता f	d = x-A	fd
10	4	-10	-40
15	2	-5	-10
20 =A	10	0	0
25	3	5	15
30	8	10	80
35	5	15	75
40	8	20	160
योग	Σf= 40	-	Σfd = 280

अतः $\overline{X} = 20 + \frac{280}{40} = 20 + 7 = 27$ उत्तर

(ग) सतत् श्रेणी

सतत् श्रेणी का समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए दिये गये वर्ग अन्तरालों के मध्य बिन्दु ज्ञात करके प्रत्येक के लिए इकाई (x) प्राप्त हो जाती है। आगे की गणना असतत् श्रेणी की तरह ही की जाती है। अतः समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए वही सूत्र प्रयोग होगा जो असतत् श्रेणी के लिए होता है।

समान्तर माध्य $(\overline{X}) = A + \frac{\sum fd}{\sum f}$

उदाहरण–6 निम्न सारणी से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

आय (रूपये में)	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60
कर्मचारियों की संख्या	22	15	9	6	4

हलः

आय (रूपये में) (वर्ग अन्तराल)	मध्य मूल्य x	बारम्बारता f	(A-x = d)	fd
10-20	15	22	-10	-220
20-30	25 = A	15	0	0
30-40	35	9	10	90
40-50	45	6	20	120
50-60	55	4	30	120
		Σf = 56		Σfd =110

यहाँ सबसे अधिक बारम्बारता 15 की है किन्तु वह प्रथम पद है अतः कल्पित माध्य 25 (माना)

$$(\overline{X}) = 25 + \frac{110}{56} = 25 + 1.96 = 26.96$$ उत्तर

इसके अतिरिक्त ऐसा सम्भव है कि हमें बारम्बारता के स्थान पर संचयी बारम्बारता ज्ञात हो तो पहले संचयी बारम्बारता से बारम्बारता ज्ञात की जाती है ततपश्चात् प्रश्न को उपरोक्त तरीके से हल किया जाता है।

उदाहरण–7 निम्नलिखित आँकड़ों से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

आयु (वर्षो में)	20 से कम	30 से कम	40 से कम	50 से कम	60 से कम	70 से कम	80 से कम
व्यक्तियों की सं.	16	21	35	57	65	78	94

हलः इस प्रश्न में हमें संचयी बारम्बारता दी गयी है। पहले इससे बारम्बारता सारणी बनाकर हल करेंगे।

हलः

आयु (वर्षो में)	बारम्बारता (f)	मध्यम बिन्दु (x)	x- A = d	fd
10-20	16	15	-30	-480
20-30	5	25	-20	-100
30-40	14	35	-10	-140
40-50	22	45 = A	0	0
50-60	8	55	+10	80
60-70	13	65	+20	260
70-80	16	75	+30	480
	$\sum f = 94$			$\sum fd = 100$

समान्तर माध्य $(\overline{X}) = A + \frac{\sum fd}{\sum f}$

$$= 45 + \frac{100}{94} = 45 + 1.06$$

= 46.06 उत्तर

10.7.2 समान्तर माध्य की विशेषताएँ

समान्तर माध्य की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं–

1. समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए दी गयी श्रेणी को आरोही या अवरोही क्रम में बदलने की आवश्यकता नहीं होती।
2. समान्तर माध्य की गणना करना अत्यन्त सरल है। यह सुपरिभाषित है।
3. समान्तर माध्य की गणना करते समय प्रत्येक इकाई का प्रयोग होता है।
4. विभिन्न विधियों से ज्ञात किये जाने पर इसका मान स्थिर एवं निश्चित रहता है।
5. समान्तर माध्य की बीजगणितीय विवेचना की जा सकती है।
6. दी गयी सारणी की सभी इकाइयों की एक ही संख्या से गुणा, भाग जोड़ या घटा करने पर उसके समान्तर माध्य पर भी उसी के अनुरूप प्रभाव पड़ता है। यदि सभी इकाइयों में 4 से गुणा कर दी जाए तो समान्तर माध्य भी पहले से 4 गुना हो जाएगा।
7. समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए कल्पित माध्य विधि में निकाले गये सभी विचलनों का योग शून्य होता है।
8. अलग–अलग वर्गो का समान्तर माध्य व उनकी संख्याएं ज्ञात होने पर सभी वर्गो का एक साथ समान्तर माध्य ज्ञात किया जा सकता है।
9. कल्पित माध्य विधि में समान्तर माध्य के लिए निकाले गये विचलनों के वर्गो का योग अन्य किसी संख्या के लिए निकाले गये विचलनों के वर्गो के योग से कम होता है।

10.7.3 समान्तर माध्य के दोष–

1. समान्तर माध्य कभी–कभी ऐसी संख्या होती हो जो होना संम्भव नहीं होता। जैसे– व्यक्तियों की संख्या का समान्तर माध्य दशमलव में होना।
2. किसी इकाई के बहुत छोटे या बहुत बड़े होने पर समान्तर माध्य पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है जिससे वह मान वास्तविकता से दूर हो जाता है।
3. समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए सभी इकाइयों का मान ज्ञात होना अनिवार्य है।

4. समान्तर माध्य पूर्ण गणना द्वारा ही ज्ञात किया जा सकता है केवल निरीक्षण द्वारा इसको ज्ञात नहीं किया जा सकता।

5. इसके द्वारा अनुपात या दर ज्ञात नहीं किये जा सकते।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. श्रेणी 3, 9, 12 का समान्तर माध्य है

(a) 6 (b) 8 (c) 9 (d) 3

2. श्रेणी 8, 3, 5, 12, 10 का समान्तय माध्य है

(a) 5.6 (b) 6.6 (c) 7.6 (d) 8.6

3. असतत् श्रेणी के समान्तर माध्य ज्ञात करने का सूत्र है

(a) $\frac{\Sigma fx}{\Sigma f}$ (b) $\frac{\Sigma x}{\Sigma f}$ (c) $\frac{\Sigma f}{\Sigma x}$ (d) $\frac{\Sigma fx}{\Sigma x}$

4. समान्तर माध्य ज्ञात करने के लिए कल्पित माध्य विधि मे निकाले गये सभी विचलनों का योग होता है –

(a) धनात्मक (b) ऋणात्मक (c) शून्य (d) कुछ भी हो सकता है।

10.8 माध्यिका या मध्यांक–

संकलित सांख्यिकीय आँकड़ों को आरोही (Ascending) या अवरोही क्रम (Descending) में व्यवस्थित करने के उपरान्त श्रेणी के मध्य का आँकड़ा उस श्रेणी की मध्यिका या मध्यांक कहलाता है। माध्यिका से छोटे व बड़े आँकड़ों की संख्या समान होती है। माध्यिका को 'Md' द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

बाउले (Bowley) के अनुसार ''यदि संख्या के एक वर्ग की सभी इकाइयों को उनके मूल्यों के आधार पर क्रमबद्ध किया जाए तो लगभग मध्य का पद उस वर्ग की माध्यिका होगा''

(If the number of the group are ranked in order according to the measurement under consideration, then the measurement of the number most nearly one half is the median)

10.8.1 माध्यिका की गणना

(a) जब श्रेणी व्यक्तिगत रूप में हो: माना दी गयी श्रेणी में पदों की संख्या n है, तब दी गयी श्रेणी के आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने के पश्चात् माध्यिका निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात की जाती है।

(I) यदि n विषम संख्या है, तब

$$\text{मध्यिका} = \left(\frac{n+1}{2}\right) \text{वां पद}$$

(II) यदि समसंख्या है। इस स्थिति में दो मध्य पद होगे

$\frac{n}{2}$ वां पद तथा $\left(\frac{n}{2}+1\right)$ वां पद

$$\text{अतः मध्यिका} = \frac{\frac{n}{2}\text{वां पद} + \left(\frac{n}{2}+1\right)\text{वां पद}}{2}$$

उदाहरण 8 निम्न आँकड़ों की माध्यिका ज्ञात कीजिए।

8, 15, 3, 2, 10, 18, 7, 22, 28

हल दिये गये आँकड़ों में n=9 है जो कि एक विषम संख्या है। सर्वप्रथम दिये गये आँकड़ों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर

2, 3, 7, 8, 10, 15, 18, 22, 28

$$\text{अतः माध्यिका} = \frac{n+1}{2} \text{वां पद}$$

$$= \frac{9+1}{2} \text{वां पद} = \frac{10}{2} \text{वां पद} = 5 \text{वां पद}$$

अतः 5 वाँ पद माध्यिका है।

माध्यिका Md = 10 उत्तर

उदाहरण 9 निम्न आँकड़ों की माध्यिका ज्ञात कीजिए।

25, 13, 21, 28, 25, 28, 18, 12, 15, 27

हलः दी गयी श्रेणी को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर–

12, 13, 15, 18, 21, 25, 25, 27, 28, 28

यहाँ कुल पदों की संख्या $n = 10$ है, जो कि एक सम संख्या है।

अतः माध्यिका $(Md) = \dfrac{\dfrac{n}{2}\text{वां पद} + \left(\dfrac{n}{2}+1\right)\text{वां पद}}{2}$

$$\frac{\dfrac{10}{2}\text{वां पद} + \left(\dfrac{10}{2}+1\right)\text{वां पद}}{2}$$

$$\frac{5\text{ वां पद} + 6\text{वां पद}}{2} = \frac{21+25}{2}$$

$= 23$
उत्तर

(b) जब श्रेणी असतत् रूप में होः

असतत् श्रेणी अर्थात इकाइयों की बारम्बारता ज्ञात होने पर माध्यिका की गणना निम्न प्रकार से की जाती है–

1. सर्वप्रथम इकाइयों को आरोही या अवरोही क्रम में लिखा जाता है।
2. सभी इकाइयों के समक्ष उनकी बारम्बारता लिखकर संचयी बारम्बारता सारणी बनायी जाती है।
3. सभी बारम्बारताओं के योग (n) में एक जोड़कर आधा करने पर प्राप्त होने वाली संख्या (m) माध्यिका वाला पद होती है।
4. यह संख्या m जिस संचयी बारम्बारता में आती है उसके सम्मुख वाली इकाई माध्यिका होती है।

अतः माध्यिका $Md = \frac{n+1}{2}$ वें पद का मान

उदाहरण 10 निम्नलिखित सारणी के लिए माध्यिका ज्ञात कीजिए।

लम्बाई (सेमी)	153	154	155	156	157	158	159	160
छात्र संख्या	2	1	5	4	8	10	9	16

हलः

लम्बाई (सेमी) (x)	छात्र संख्या (बारम्बारता) f	संचयी बारम्बारता
153	2	2
154	1	3
155	5	8
156	4	12
157	8	20
158	10	30
159	9	39
160	16	55
	n = 55	

$$Md = \frac{n+1 \text{ वां पद}}{2} = \frac{55+1 \text{वां पद}}{2} = \frac{56 \text{वां पद}}{2}$$

28 वें पद की लम्बाई

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि 28 वाँ पद संचयी बारम्बारता 30 में है जिसकी लम्बाई 158 सेमी है।

अतः माध्यिका = 158 सेमी. उत्तर

उदाहरण 11 निम्नलिखित सारणी के लिए माध्यिका ज्ञात कीजिए।

आयु वर्ष	15	16	17	18	19	20
छात्र संख्या	12	8	11	14	9	6

हलः

आयु (वर्ष) x	छात्र संख्या (बारम्बारता) f	संचयी बारम्बारता
15	12	12
16	8	20
17	11	31
18	14	45
19	9	54
20	6	60
	n = 60	

$Md = \frac{n+1}{2}$ वें पद की आयु

$= \frac{60+1}{2}$ वें पद की आयु

$= \frac{61}{2} = (30.5)$ वें पद की आयु

उपरोक्त सारणी से स्पष्ट है कि 30.5 वाँ पद संचयी बारम्बारता 31 में आयेगा जिसकी आयु 17 वर्ष है

अतः माध्यिका Md = 11 वर्ष उत्तर

(c) जब श्रेणी सतत् रूप में होः

सतत् श्रेणी अर्थात वर्ग अन्तराल के रूप में श्रेणी ज्ञात होने पर माध्यिका की गणना निम्न प्रकार की जाती है–

1. दिये वर्ग अन्तराल के समक्ष लिखी बारम्बारताओं से संचयी बारम्बारता सारणी बनाते है।
2. बारम्बारताओं के कुल योग n का आधा $\frac{n}{2}$ ज्ञात करते है।
3. $\frac{n}{2}$ वें पद वाले वर्ग में माध्यिका स्थित होती है अतः वह वर्ग माध्यिका वाला वर्ग कहलाता है।

माध्यिका ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

(i) जब श्रेणी आरोही क्रम में हो

$$Md = l_1 - \frac{l_2 - l_1}{f}\left(\frac{n}{2} - c\right)$$

जहाँ Md = माध्यिका

l_1 = माध्यिका वाले वर्ग की निम्न सीमा

l_2 = माध्यिका वाले वर्ग की उच्च सीमा

f = माध्यिका वाले वर्ग की बारम्बारता

n = बारम्बारताओं का कुल योग

c = माध्यिका वर्ग से पहले वर्ग की संचयी बारम्बारता

(ii) **जब श्रेणी अवरोही क्रम में हो**

$$Md = l_2 + \frac{l_2 - l_1}{f} = \left(\frac{n}{2} - c\right)$$

यहाँ प्रयुक्त संकेतों के अर्थ वही है जो आरोही क्रम में प्रयुक्त सूत्र में है।

निम्न लिखित सारणी के लिए मध्यांक ज्ञात कीजिए।

आय (हजार रूपये)	5-10	10-15	15-20	20-25	25-30
कर्मचारियों की संख्या	18	15	11	10	6

हलः आरोही क्रम में मध्यांक की गणना

आय (हजार रूपये में)	कर्मचारियों की संख्या f	संचयी बारम्बारता
5-10	18	18 = c
10-15	15 = f	33
15-20	11	44
20-25	10	54
25-30	6	60
योग	N = 60	

यहाँ $\frac{n}{2} = \frac{60}{2} = 30$

30वें पद का मध्यांक वर्ग 10–15 है।

अतः $l_1 = 10, l_2 = 15$ $f = 15$ $c = 18$

$$Md = l_1 + \frac{l_2 - l_1}{f}\left(\frac{n}{2} - c\right)$$

$$= 10 + \frac{15-10}{15}(30-18)$$

$$= 10 + \frac{5}{15} \times 12$$

$= 10 + 4 = 14$

अतः मध्यांक आय = रूपये 14000 उत्तर

उपरोक्त प्रश्न को अवरोही क्रम में रखकर भी मध्यांक की गणना की जा सकती है।

अवरोही क्रम में मध्यांक की गणना

यहाँ $n = \frac{60}{2} = 30$

30वें पद का मध्यांक वर्ग 10–15 है। अतः

$l_1 = 10, l_2 = 15, c = 27, f = 15$

$$Md = l_2 - \frac{l_2 - l_1}{f}\left(\frac{n}{2} - c\right)$$

$$= 15 - \frac{5}{15}(30 - 27)$$

$$= 15 - \frac{1 \times 3}{3} = 14$$

अतः मध्यांक आय = रूपये 14000 उत्तर

10.8.2 माध्यिका या मध्यांक की विषेषताऐं

1. माध्यिका की गणना करना सरल है, यह सुपरिभाषित है।
2. इसमें विभिन्न चरों के बहुत अधिक या बहुत कम मानो की अधिक महत्व नहीं दिया जाता।
3. इससे गुणात्मक तथ्यों का अध्ययन सर्वोत्तम होता है।
4. अपूर्ण व अव्यवस्थित आँकड़ों से भी मध्यांक ज्ञात किया जा सकता है।
5. इसे बिन्दु रेखीय आधार पर भी ज्ञात किया जा सकता है।
6. इसे उन तथ्यों के लिए भी ज्ञात किया जा सकता है जिनका निश्चित संख्यात्मक मान ज्ञात नहीं होता जैसे– शान्ति, बुद्धिमत्ता आदि।

10.8.3 मध्यिका या मध्यांक के दोषः

1. माध्यिका का प्रयोग बीजगणितीय विवेचना में नहीं किया जा सकता। जैसे किन्हीं दो श्रेणियों के पदों के योग या अन्तर की माध्यिका का मान दोनों श्रेणियों की माध्यिकाओं के योग या अन्तर के बराबर नहीं होता।
2. माध्यिका की गणना करने के लिए आँकड़ों को आरोही या अवरोही क्रम में लगाना अनिवार्य होता है जिस कारण समय अधिक लगता है।
3. संकलित आँकडों में अधिक असमानता होने पर माध्यिका आँकड़ों का प्रतिनिधित्व करने में सक्षम नहीं है।
4. अधिक इकाइयाँ होने पर माध्यिका का मान अनिश्चित हो जाता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

5. श्रेणी 2, 4, 7, 8, 10, 12, 15 की माध्यिका है
   (a) 7 (b) 8 (c) 10 (d) 12
6. श्रेंणी 15, 5, 3, 16, 12, 18, 21, 25 की माध्यिका है
   (a) 14 (b) 15 (c) 16-5 (d) 15-5
7. मध्यका की गणना के लिए श्रेणी को व्यवस्थित किया जाता है
   (a) अवरोही क्रम में (b) आरोही क्रम में
   (c) पहले आरोही क्रम में फिर अवरोही क्रम में
   (d) आरोही या अवरोही किसी भी क्रम में
8. माध्यिका ज्ञात करने के लिए निम्न में से कौन सा सूत्र प्रयुक्त होता है।
   (a) $Md = l_1 + \left(\frac{l_1 + l_2}{f}\right)\left(\frac{n}{2} - c\right)$ (b) $Md = l_1 + \left(\frac{l_2 + l_1}{f}\right)\left(\frac{n}{2} - c\right)$
   (c) $Md = l_1 + \left(\frac{l_2 + l_2}{f}\right)\left(n - \frac{c}{2}\right)$ (d) $Md = l_1 + \left(\frac{l_2 + l_1}{f}\right)\left(\frac{n}{2} - c\right)$

10.9 बहुलक या बहुलांक (Mode)

संकलित आँकड़ों में जिस इकाई की आवृत्ति सबसे अधिक होती है, वह इकाई बहुलक कहलाती है। अर्थात बहुलक का अर्थ है सबसे अधिक प्रयोग किये जाने वाली इकाई। बहुलक को ‘Mo’ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

10.9.1 बहुलक की गणना (Computation of Mode)

1. जब श्रेणी व्यक्तिगत रूप में हो

इस श्रेणी का बहुलक ज्ञात करने के लिए दिये आँकड़ों की बारम्बारता सारणी बनाते है, उसमें सर्वाधिक बारम्बारता वाला आँकडां बहुलक होगा।

उदाहरण–13 किसी कक्षा में सांख्यिकी विषय के प्रश्न पत्र में 25 छात्रों के 50 में से अंक निम्नवत् हैं –

28, 25, 32, 36, 12, 30, 28, 28, 30, 12, 18, 28

25, 11, 25, 28, 12, 32, 11, 25, 12, 28, 36, 25, 28 इन आँकड़ों से बहुलक ज्ञात कीजिए।

हलः छात्रों के प्राप्तांकों की बारम्बारता सारणी बनाने पर

प्राप्तांक	टैली चिन्ह	बारम्बारता
11	ll	2
12	llll	4
18	l	1
25	llll	5
28	llll ll	7
30	ll	2
32	ll	2
36	ll	2

उपरोक्त तालिका से स्पष्ट है कि 28 की बारम्बारता सबसे अधिक '7' है अतः दिये आँकड़ों का बहुलक 28 है।

2. जब श्रेणी असतत् रूप में होः

असतत् श्रेणी में सर्वाधिक बारम्बारता वाली इकाई बहुलक होगी।

उदाहरण 14 निम्न आँकड़ों के लिए बहुलक ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक	10	18	20	23	26	36

छात्र संख्या	5	3	7	3	12	2

हलः दी गयी सारणी में 26 की बारम्बारता सबसे अधिक '2' है

अतः बहुलक = 26

3. जब श्रेणी सतत् रूप में होः–

इस प्रकार की श्रेणी होने पर वह वर्ग अन्तराल ज्ञात करते हैं जिसकी बारम्बारता सर्वाधिक है। जिस वर्ग की बारम्बारता सबसे अधिक होती है वह वर्ग बहुलक वर्ग कहलाता है। इन श्रेणियों के लिए बहुलक की गणना निम्न लिखित सूत्र द्वारा करते हैं–

$$Mo = l_1 + \left(\frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2}\right)(l_2 - l_1)$$

यहाँ Mo = बहुलक

l_1 = बहुलक वर्ग की निम्न सीमा

l_2 = बहुलक वर्ग की उच्च सीमा

f_1 = बहुलक वर्ग की बारम्बारता

f_0 = बहुलक वर्ग से पहले वर्ग की बारम्बारता

f_2 = बहुलक वर्ग से अगले वर्ग की बारम्बारता

उदाहरण–15 निम्नलिखित सारणी से बहुलक निकालिए–

वर्ग अन्तराल	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
बारम्बारता	8	13	6	21	17	11	9

हलः दी गयी सारणी,

वर्ग अन्तराल	बारम्बारता
10-20	8
20-30	13
30-40	$6 = f_0$
40-50	$21 = f_1$
50-60	$17 = f_2$
60-70	11
70-80	9

यहाँ सबसे अधिक बारम्बारता 21 है अतः बहुलक वर्ग 40–50 है।

अतः $l_1 = 40, l_2 = 50, f_o = 6, f_1 = 21, f_2 = 17$

बहुलक $Mo = l_1 + \left(\frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2}\right)(l_2 - l_1)$

$$= 40 + \left(\frac{21-6}{2\times21-6-17}\right)(50-40)$$

$$= 40 + \left(\frac{15}{42-23}\right)\times10$$

$$= 40 + \frac{15}{19}\times10 = 40 + 7.89$$

= 47.89 उत्तर

10.9.2 बहुलक

1. इसकी गणना व प्रयोग करना सरल है
2. इसका मान खुले सिरे वाले वर्गो के होने पर भी ज्ञात किया जा सकता है।

3. एक ग्राफ खींचकर इसका मान केवल देखने से ही प्राप्त किया जा सकता है।

4. आंकडों की असाधारण इकाइयों का बहुलक पर प्रभाव नहीं पड़ता।

10.9.3 बहुलक के दोष–

1. यह सुपरिभाषित नहीं है।
2. इसमें न्यूनतम तथा अधिकतम मानो की उपेक्षा होती है।
3. कभी–कभी इसके दो मान प्राप्त हो जाते है जिससे गणना कठिन हो जाती है।
4. वर्ग अन्तराल बदलने पर इसका मान भी बदल जाता है।
5. इसकी बीजगणितीय विवेचना नहीं की जा सकती।

10.10 समान्तर माध्य, माध्यिका तथा बहुलक में सम्बन्ध–

समान्तर माध्य $\overline{X}$, माध्यिका (Md) तथा Mo में परस्पर सम्बन्ध निम्नलिखित सूत्र द्वारा व्यक्त किया जाता है।

बहुलक $= 3 \times$ माध्यिका $- 2 \times$ समान्तर माध्य

अर्थात $Mo = 3\ Md - 2\overline{X}$

उदाहरण 16 एक आवृत्ति वितरण में समान्तर माध्य 10.5 तथा माध्यिका 12 है तब इस आवृत्ति वितरण हेतु बहुलक ज्ञात कीजिए।

हल : बहुलक $= 3 \times$ माध्यिका $- 2 \times$ समान्तर माध्य

$= 3 \times 12 - 2 \times 10.5 = 36 - 21 = 15$ उत्तर

9. निम्न आंकड़ों का बहुलक क्या है?

10, 15, 12, 10, 12, 15, 10, 12, 10, 10, 15, 12, 15, 12, 10, 18, 18

(a) 10 (b) 12 (c) 15 (d) 18

10. बहुलक होता है

(a) मध्य मूल्य (b) मध्य सर्वाधिक मूल्य

(c) सर्वाधिक बारम्बारता मूल्य (d) उनमें से कोई नहीं

11. बहुलक ज्ञात करने के लिए यह सूत्र भी प्रयुक्त किया जाता है

(a) बहुलक = 2 × माध्यिका − 3 × माध्य

(b) बहुलक = 3 × माध्यिका + 2 × माध्य

(c) बहुलक = 3 × माध्यिका − 2 × माध्य

(d) बहुलक = 2 × माध्यिका + 3 × माध्य

12. गुणात्मक मापों के लिए उचित माध्य है –

(a) समान्तर माध्य (b) माध्यिका (c) बहुलक (d) इनमें से कोई नहीं

10.11 सारांश –

ऐसी राशि जो किसी इकाई के सभी आँकड़ों का सर्वश्रेष्ठ प्रतिनिधित्व करती है, केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप कहलाती है। इनमें समान्तर माध्य (मध्यमान), माध्यिका (मध्यांक), तथा बहुलक (बहुलांक) प्रमुख है। व्यक्तिगत श्रेणी, असतत् श्रेणी, या सतत् श्रेणी ज्ञात होने पर इनके मान निकाले जा सकते है।

समान्तर माध्य सभी आँकड़ों का औसत होता है। इसे सभी आँकडों को जोड़कर आँकडों की कुल संख्या से भाग करके प्राप्त किया जा सकता है।

माध्यिका संकलित आँकडों को आरोही या अवरोही क्रम में व्यवस्थित करने के बाद उनका मध्य पद होती है।

बहुलक संकलित आँकडों में सर्वाधिक बारम्बारता वाला पद होता है।

समान्तर माध्य, माध्यिका तथा बहुलक में सम्बन्ध निम्न प्रकार हैं

बहुलक = 3 × माध्यिका − 2 × समान्तर माध्य

10.12 पारिभाषिक शब्दावली

केन्द्रीय प्रवृत्ति	Central Tendency
समान्तर माध्य	Mean
माध्यिका	Median
बहुलक	Mode
कल्पित माध्य	Assumed Mean

10.13 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. (b)	2. (c)	3. (a)	4. (c)	5. (b)
6. (d)	7. (d)	8. (b)	9. (a)	10. (c)
11. (c)	12. (b)			

10.15 निबंधात्मक प्रश्न

1. केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप से आप क्या समझते हैं। इसको मापने की विभिन्न रीतियों का वर्णन कीजिए।
2. केन्द्रीय प्रवृत्ति की मापो की व्याख्या करते हुए उसके गुण दोषों को बताइये।
3. निम्न को परिभाषित कीजिए तथा उनके गुण व दोष लिखिए।

   (i) समान्तर माध्य (ii) माध्यिका (iii) बहुलक

4. निम्नलिखित आँकड़ों से समान्तर माध्य व माध्यिका ज्ञात कीजिए।

(i) 43 47 19 26 35 41 29 32

(उत्तर $\overline{X}$ =34, Md = 33.5)

(ii) 1140, 1136, 1132, 1148

(उत्तर $\overline{X}$ =1139, Md = 1138)

(iii) 25, 15, 17, 19, 13, 9, 21, 23, 11, 27, 29, 31, 33

(उत्तर $\overline{X}$ =21, Md = 21)

(iv) 38, 39, 40, 39, 39, 40, 38, 40, 39, 38, 40

(उत्तर $\overline{X}$ =39.09, Md = 39)

5. निम्नलिखित सारणी से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
छात्र संख्या	10	12	20	18	10

(उत्तर : 25.86)

6. निम्नलिखित सारणी में समान्तर माध्य कल्पित माध्य विधि से ज्ञात कीजिए।

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
बारम्बारता	8	12	20	6	4

(उत्तर : 22.2)

7. निम्नलिखित सारणी के लिए समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए–

वजन किग्रा	64	66	68	70	72
व्यक्तियों की संख्या	4	12	4	8	2

(उत्तर : 68.8)

8. निम्नलिखित आवृत्ति वितरण सारणी से समान्तर माध्य ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
बारम्बारता	7	15	6	15	16	8	6

(उत्तर : 34.04)

9. निम्न श्रेणी की माध्यिका ज्ञात कीजिए–

12, 8, 21, 81, 54, 11, 97, 14, 9

(उत्तर : 14)

10. निम्नलिखित आवृत्ति वितरण से माध्यिका ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक	20	23	26	28	30	35
बारम्बारता	7	10	8	12	5	4

(उत्तर : 26)

11. निम्नलिखित सारणी से माध्यिका ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60
बारम्बारता	3	5	8	5	3	6

(उत्तर : 28.75)

12. निम्नलिखित सारणी से माध्यिका ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60
बारम्बारता	1	8	10	5	4	2

(उत्तर : 26)

13. निम्नलिखित बारम्बारता बंटन की माध्यिका ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	10-15	15-20	20-25	25-30	30-35	35-40
बारम्बारता	5	3	8	6	4	3

(उत्तर : 24.06)

14. निम्न आँकड़ों से माध्यिका ज्ञात कीजिए–

आयु (वर्षो में)	30	40	50	60	70	80
स्त्रियों की संख्या	05	56	112	130	90	35

(उत्तर : 60 वर्ष)

15. निम्नलिखित सारणी से समान्तर माध्य, माध्यिका व बहुलक ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	55-65	65-75	75-85	85-95	95-105	105-115	115-125	125-135	135-145
बारम्बारता	2	8	6	18	36	28	12	6	3

(उत्तर : 101.68)

Md = 102.08

Mo = 101.92

16. एक कक्षा के कुछ छात्रों ने परीक्षा में निम्न अंक प्राप्त किये

प्राप्तांक	5	7	3	4	6	2	1
छात्र संख्या	12	6	14	16	10	8	11

(उत्तर : 4)

उपरोक्त सारणी का बहुलक ज्ञात कीजिए।

17. निम्नलिखित आवृत्ति सारणी के लिए बहुलांक ज्ञात कीजिए।

वर्ग अन्तराल	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70
बारम्बारता	4	8	15	20	5	4

(उत्तर : 42.5)

18. निम्न आँकड़ों से बहुलक ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	0-5	5-10	10-15	15-20	20-25	25-30
बारम्बारता	12	24	36	38	37	15

(उत्तर : 18.33)

19. निम्न श्रेणी का बहुलक ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
बारम्बारता	5	15	20	20	32	14	14	5

(उत्तर : 44)

20. निम्नलिखित सारणी से बहुलक ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	1-11	11-21	21-31	31-41	41-51	51-61
बारम्बारता	5	7	10	16	12	6

(उत्तर : 37)

21. निम्नलिखित सारणी से बहुलक ज्ञात कीजिए–

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
बारम्बारता	8	15	22	18	7

($\overline{X}$ = 25.14, Md = 25.45, M0 = 26.36)

समूहन विधि–

इस विधि का प्रयोग उस समय किया जाता है जब आँकड़ों की बारम्बारताएँ अनियमित हो। इस अवस्था में अधिकतम बारम्बारता का ज्ञान नहीं हो पाता। बारम्बारता निम्न स्थितियों में अनियमित होती हैं।

1. जब सबसे बड़ी बारम्बारता की पुनरावृत्ति हो
2. जब सबसे बड़ी बारम्बारता समंक माला के प्रारम्भ या अन्त में हो।
3. सबसे बड़ी बारम्बारता से ठीक पहले व बाद वाली बारम्बारताएँ बहुत छोटी हों।
4. जब बारम्बारता वितरण में बहुत अधिक उतार–चढ़ाव हो।

विधि की व्याख्या

इस विधि में कुल पद मूल्यों के 6 अतिरिक्त खाने किये जाते हैं–

1. **प्रथम खाना–** इस खाने में दी गयी बारम्बारताओं को लिखा जाता है।
2. **दूसरा खाना–** इसमें प्रारम्भ से दो–दो बारम्बारताओं को जोड़ करके क्रमशः लिखा जाता है।
3. **तीसरा खाना–** इसमें पहली बारम्बारता को छोड़कर दो–दो बारम्बारताओं का जोड़ करके क्रमशः लिखा जाता है।
4. **चौथा खाना–** इसमें प्रारम्भ से तीन–तीन बारम्बारताओं को जोड़कर क्रमशः लिखा जाता है।
5. **पाँचवाँ खाना–** इसमें पहली बारम्बारता को छोड़कर तीन–तीन बारम्बारताओं का जोड़ करके क्रमशः लिखा जाता है।
6. **छठा खाना–** इसमें पहली दो बारम्बारताओं को छोड़कर तीन–तीन बारम्बारताओं को जोड़कर क्रमशः लिखा जाता है।

उपर्युक्त सारणीयन करके पहले खाने की सबसे बड़ी बारम्बारता तथा शेष खानों में सबसे बड़े जोड़ के सामने आने वाले मूल्यों के टैली चिन्ह लगाते हैं। जिस मूल्य के टैली चिन्ह अधिकतम होते है वही मूल्य बहुलक कहलाता है।

उदाहरण– निम्न सारणी के बारम्बारता बंटन का बहुलक ज्ञात कीजिए।

मूल्य :	5	10	15	20	25	30
बारम्बारता :	4	6	10	9	10	7

हल– यहाँ अधिकतम बारम्बारता 10 है जो दो बार आयी है। जिससे यह निर्णय लेना कठिन है कि बहुलक वाला पद कौन सा है। समूहन विधि द्वारा इसे निश्चित किया जाता है।

समूहन सारणी

उपर्युक्त समूहन से स्पष्ट है कि मूल्य 20 की अधिकतम टैली चिन्ह है

अतः बहुलक = 20

विश्लेषण सारणी

विश्लेषण सारणी से स्पष्ट है कि 20 सबसे अधिक बार आया है।

अतः बहुलक = 20
उत्तर

विशेष टिप्पणी : सतत् श्रेणी होने पर यदि बारम्बारता श्रेणी में अनियमितता हो तो बहुलक वर्ग का निर्णय लेने के लिए भी समूहन विधि का प्रयोग किया जाता है।

इकाई 11 विचलन की माप, प्रमाणिक विचलन

इकाई की संरचना

11.1 प्रस्तावना

11.2 इकाई के उद्देश्य

11.3 अपकिरण – परिभाषा

11.4 विस्तार या परास

11.4.1 परास गुणांक

11.4.2 परास के गुण

11.4.3 परास के दोष

11.5 माध्य विचलन

11.5.1 माध्य विचलन गुणांक

11.5.2 माध्य विचलन की गणना

11.5.3 माध्य विचलन की विशेषताऍ

11.5.4 माध्य विचलन के दोष

11.6 प्रमाणिक विचलन

11.6.1 प्रमाणिक विचलन ज्ञात करने की विधियाँ

11.6.2 प्रमाणिक विचलन गुणांक

11.6.3 विचरण गुणांक

11.6.4 प्रसरण या विचरण मापांक

11.6.5 प्रमाणिक त्रुटि

11.6.6 सम्भावी त्रुटि

11.6.7 प्रमाणिक विचलन के गुण

11.5.8 प्रमाणिक विचलन के दोष

11.7 सारांश

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

11.9 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

11.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

11.11 निबंधात्मक प्रश्न

11.1 प्रस्तावना–

विभिन्न माध्यों का अध्ययन हम पिछली इकाई में कर चुके हैं। यह माध्य समंक माला के प्रतिनिधि कहलाते हैं तथा उसकी सामान्य स्थिति दर्शाते है। केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप के रूप में प्राप्त माध्य बहुउपयोगी होते है किन्तु यह जानना भी आवश्यक होता है कि क्या यह माध्य आँकड़ों का सही प्रतिनिधित्व करते है या नहीं। कइ्र बार समंकमाला के विभिन्न पद आकार की दृष्टि से भिन्न होते हैं इस स्थिति में इनसे प्राप्त केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप इन आँकड़ों का सही मायनों में प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती। चूँकि इस माप से हमें पदों के मूल्यों का माध्य से वास्तविक अन्तर का पता नहीं चल पाता। इसके लिए प्रत्येक आँकड़ों से व्यक्तिगत रूप से माध्य का अन्तर ज्ञात किया जाता है तथा यह देखा जाता है कि संकलित आँकड़े माध्य से कितने बड़े तथा छोटे है, आँकड़ों का यह अन्तर विचलन कहलाता है।

11.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप–

- विचलन की विभिन्न मापों के विषय में जान पायेंगे।
- परास, परास के गुण तथा दोष जान पायेंगे।
- माध्य विचलन ज्ञात करने की विभिन्न विधियां जान पायेंगे।
- माध्य विचलन के गुण व दोष जान पायेंगे।
- प्रमाणिक विचलन की परिभाषा व प्रमाणिक विचलन ज्ञात करने की विधियाँ जान पायेंगे।
- प्रमाणिक विचलन गुणांक, विचरण गुणांक, प्रसरण, प्रमाणिक त्रुटि, व सम्भावी त्रुटि ज्ञात करने के सूत्र जान पायेंगे।
- सामूहिक प्रमाणिक विचलन की गणना करना जान पायेंगे।
- प्रमाणिक विचलन के गुण व दोष जान पायेगे।

11.3 अपकिरण – परिभाषा

मध्य माध्य ज्ञात होने से आंकड़ों के विषय में सम्पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं होती है इसके साथ–साथ यह भी जानना आवश्यक होता है कि प्रत्येक आंकड़ा माध्य से कितनी दूरी पर है। आंकड़ों की माध्य से यह दूरी विचलन कहलाती है। विचलन का यह 'फैलाव'

या 'विस्तार' ही अपकिरण (Dispersion) कहलाता है। अतः अपकिरण किसी श्रेणी की विभिन्न इकाइयों की माध्य से औसत दूरी की माप होती है। डा0 ए0एल0 बाउले (Dr. A.L. Bowley) के अनुसार ''अपकिरण इकाइयों के विचलन की माप है'' (Dispersion is the measure of variation of items).

स्थिति 1

जैसे – श्रेणी 1, 19, 25, 29, 32, 36, 38, 42, 43, 45

इस श्रेणी का मध्यमान 31 है, किन्तु इसकी इकाइयों का विचलन माध्य से अत्यधिक है यहाँ अधिकतम मान तथा न्यूनतम मान में अन्तर 44 है यह अन्तर ही मध्यमान से कहीं अधिक है। इस स्थिति में मध्यमान इकाइयों का सही प्रतिनिधित्व नहीं करता।

स्थिति 2

श्रेणी 33, 37, 28, 27, 36, 24, 33, 35, 29, 28

इस श्रेणी का मध्यमान भी 31 है। यहाँ प्रत्येक इकाई मध्यमान के निकट है अतः विचलन कम है इसका कारण यह है कि इस श्रेणी में अधिकतम व न्यूनतम मानों में अन्तर अधिक नहीं है।

स्थिति 3

श्रेणी 31, 31, 31, 31, 31, 31, 31, 31, 31, 31,

इस श्रेणी का मध्यमान 31 है तथा विचलन शून्य है।

अतः विचलन का मान जितना कम होगा माध्य आँकड़ों का उतना सही प्रतिनिधित्व करेगा।

अपकिरण की प्रमुख मापें निम्न प्रकार है

1. विस्तार या परास (Range)
2. माध्य विचलन (Mean Deviation)
3. प्रमाणिक विचलन (Standard Deviation)

11.4 विस्तार या परास–

किसी श्रेणी की अधिकतम इकाई व न्यूनतम इकाई का अन्तर उस श्रेणी का विस्तार या परास कहलाता है।

उदाहरण–1 किसी कक्षा में 10 छात्रों के 50 में से अंक निम्नवत् है–

40, 10, 32, 21, 28, 29, 35, 38, 8, 12 इसका परास ज्ञात कीजिए।

हलः यहां अधिकतम प्राप्तांक 40 तथा न्यूनतम प्राप्तांक 8 है।

अतः परास = 40–8 = 32 उत्तर

उदाहरण 2 निम्न श्रेणी की परास ज्ञात कीजिए।

प्राप्तांक	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
छात्र सं.	2	12	8	15	21	18	13	3

हल : यहाँ अधिकतम प्राप्तांक = 80

न्यूनतम प्राप्तांक = 0

अतः परास = 80 – 0 = 80

11.4.1 परास गुणांक (Coefficient of Range)

परास गुणांक निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$\text{परास गुणांक} = \frac{\text{श्रेणी का महत्तम पद} - \text{श्रेणी का न्यूनतम पद}}{\text{श्रेणी का महत्तम पद} + \text{श्रेणी का न्यूनतम पद}}$$

11.4.2 परास के गुण

1. इसे समझना तथा ज्ञात करना आसान है। यह अपकिरण की सरलतम माप है।

2. परास द्वारा संकलित आँकड़ों के फैलाव (प्रसार) की विस्तृत व्याख्या होती है।

11.4.3 परास के दोष–

1. परास ज्ञात करने के लिए केवल अधिकतम मान तथा न्यूनतम मान का उपयोग होता है शेष पदों की कोई महत्व नहीं दिया जाता जबकि एक अच्छी माप वह होती है जिसकी गणना करने में सभी या अधिकतम इकाइयों को शामिल किया गया हो।

2. परास से श्रेणी की वास्तविक रचना का ज्ञान नहीं होता।

3. परास श्रेणी के सीमान्त मानों पर निर्भर करती है अतः इसका मान निश्चित होता है।

11.5 माध्य विचलन –

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप (समान्तर माध्य, माध्यिका या बहुलक) से विभिन्न इकाइयों के निरपेक्ष विचलनों के माध्य को 'माध्य विचलन' (Mean Deviation) कहते है। इसे 'M.D.' या 'δ' (Small detla) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है। यदि माध्य विचलन समान्तर माध्य $\overline{X}$ से निकाला गया हो तो उसे $\delta\overline{X}$ द्वारा प्रदर्शित किया जाता है और यदि माध्य विचलन माध्यिका Md या बहुलक Mo द्वारा ज्ञात किया गया हो तो उसे क्रमशः δMd या δMo द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

11.5.1 माध्य विचलन गुणांक– माध्य विचलन गुणांक (Coefficient of mean deviation) ज्ञात करने के लिए माध्य विचलन को उस सांख्यिकीय माध्य से भाग दिया जाता है जिससे विचलन प्राप्त किये गये हो। यदि माध्य विचलन $\delta\overline{X}$ समान्तर माध्य $\overline{X}$ से निकाला गया है तब माध्य विचलन गुणांक $\frac{\delta\overline{X}}{\overline{X}}$ होगा इसी प्रकार माध्यिका Md तथा बहुलक Mo द्वारा निकाले गये माध्य विचलनों δMd तथा δMo के माध्य विचलन गुणांक क्रमशः $\frac{\delta Md}{Md}$ तथा $\frac{\delta Mo}{Mo}$ होंगे।

11.5.2 माध्य विचलन की गणना –

1. सर्वप्रथम हमें दिये गये आँकड़ों से माध्य चुनना होता है, यदि प्रश्न में यह नहीं दिया हो कि किस माध्य से विचलन लेना है तो सामान्यतः समान्तर माध्य या माध्यिका को चुना जाता है। माना यह माध्य M है।
2. अब दिये गये आँकड़ों (x) से M के अन्तर का निरपेक्ष मान अर्थात विचलन (X-M) ज्ञात करते है। इसे (d) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।
3. विभिन्न दी गयी श्रेणियों में इसे निम्न प्रकार ज्ञात किया जाता है।
4. यदि श्रेणी व्यक्तिगत रूप में हो तब सभी विचलनों के योग $\Sigma|d|$ को कुल इकाइयों की संख्या 'n' से भाग करके माध्य विचलन ज्ञात किया जाता है। अतः

माध्य विचलन $(\delta) = \frac{\Sigma|d|}{n}$

(II) जब श्रेणी असतत् के रूप में ज्ञात हो तब माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए विचलनों को उनकी बारम्बारताओं से गुणा करके योगफल $\Sigma f|d|$ को कुल बारम्बारताओं के योग Σf से भाग करते है।

अतः माध्य विचलन $\delta = \frac{\Sigma f\,|d|}{\Sigma f}$

(III) जब श्रेणी सतत् रूप में ज्ञात हो तब भी माध्य विचलन की गणना असतत् श्रेणी की भाँति $\Sigma f\,|d|$ को Σf से भाग करके की जाती है।

अतः माध्य विचलन $\delta = \frac{\Sigma f\,|d|}{\Sigma f}$

उदाहरण 3 निम्नलिखित आँकड़ों के लिए समान्तर माध्य तथा माध्यिका से माध्य विचलन तथा माध्य विचलन गुणांक ज्ञात कीजिए।

32, 23, 8, 41, 27, 19, 21, 36, 12, 40

हलः सर्वप्रथम दिये आँकड़ों को आरोही क्रम में व्यवस्थित करने पर,

8, 12, 19, 21, 23, 27, 32, 36, 40, 42

x	माध्य $\overline{X}$ =26 से विचलन $|d\overline{X}|$	मध्यिका Md = 25 से विचलन |dMd|
8	18	17
12	14	13
19	7	6
21	5	4
23	3	2
27	1	2
32	6	7
36	10	11
40	14	15
42	16	17
n = 10, $\Sigma X = 260$	$\Sigma\,|d\,\overline{X}| = 94$	$\Sigma\,|dMd| = 94$

माध्य $\overline{X} = \frac{\Sigma X}{n} = \frac{260}{10} = 26$

मध्यिका $= \dfrac{\left(\dfrac{n}{2}\right)\text{वें पद का मान} + \left(\dfrac{n}{2}+1\right)\text{वें पद का मान}}{2}$

$= \dfrac{5\text{वें पद का मान} + 6\text{वें पद का मान}}{2}$

$= \dfrac{23+27}{2} = 25$

समान्तर माध्य द्वारा

माध्य विचलन $(M.D)\delta\overline{X} = \dfrac{\Sigma\left|d\overline{X}\right|}{n}$

$= \dfrac{94}{10} = 9.4$

माध्य विचलन गुणांक $= \dfrac{\delta\overline{X}}{\overline{X}} = \dfrac{9.4}{26} = 0.36$

माध्यिका द्वारा

माध्य विचलन $(M.D.)\delta Md = \dfrac{\Sigma\left|dMd\right|}{n} = \dfrac{94}{10} = 9.4$

माध्य विचलन गुणांक $= \dfrac{\delta Md}{Md} = \dfrac{9.4}{25} = .38$

उदाहरण 4 निम्न सारणी से समान्तर माध्य ज्ञात कर माध्य विचलन तथा माध्य विचलन गुणांक ज्ञात कीजिए।

आय (हजार रू. में)	6	8	13	18	25	30	35
बारम्बारता	12	10	10	8	6	6	4

हल : समान्तर माध्य के आधार पर माध्य विचलन

आय (हजार रू. में) x	बारम्बारता f	fx	समान्तर माध्य से विचलन |d|	f |d|
6	12	72	10	120
8	10	80	8	80
13	10	130	3	30
18	8	144	2	16
25	6	150	9	54
30	6	180	14	84
35	4	140	19	76
योग	$\Sigma f = 56$	$\Sigma fx = 896$		$\Sigma f\|d\| = 460$

समान्तर माध्य $\overline{X} = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{896}{56} = 16$

अतः माध्य विचलन $\delta = \frac{\Sigma f\,|d|}{\Sigma f} = \frac{460}{56} = 8.21$

माध्य विचलन गुणांक $= \frac{\delta}{\overline{X}} = \frac{8.21}{16} = 0.513$

उदाहरण 8 दी गयी श्रेणी का माध्यिका द्वारा माध्य विचलन तथा माध्य विचलन गुणांक ज्ञात कीजिए।

वर्ग अन्तराल	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50
बारम्बारता	8	18	28	29	17

हल मध्यिका के आधार पर माध्य विचलन

वर्ग अन्तराल	मध्यमान x	बारम्बारता f	संचयी बारम्बारता	माध्यिका Md=28.67 से विचलन|d|	fd
0-10	5	8	8	23.57	188.56
10-20	15	18	26	13.57	244.26
20-30	25	28	54	3.57	99.96
30-40	35	29	83	6.43	186.47
40-50	45	17	100	16.43	279.31
योग		$\Sigma f = 100$			$\Sigma f\|d\| = 998.56$

माध्यिका (Md) $= \frac{n}{2}$ वें पद का मान (n = 100 एक सम संख्या है)

$= \frac{100}{2}$ वें पद का मान

= 50वें पद का मान

50वां पद वर्ग (20–30) में आता है।

अतः $l_1 = 20, l_2 = 30, f = 28$ तथा $c = 26$

माध्यिका $Md = l_1 + \frac{l_2 - l_1}{f}\left(\frac{n}{2} - C\right)$

$$= 20 + \frac{30-20}{28}(50-26)$$

$$= 20 + \frac{10}{28} \times 24 = 28.57$$

माध्य विचलन $\delta Md = \frac{\Sigma f|d|}{\Sigma f} = \frac{998.56}{100} = 9.99$

माध्यक विचलन गुणांक $= \frac{\delta Md}{Md} = \frac{9.99}{100} = 0.10$(लगभग)

11.5.3 माध्य विचलन की विशेषतायें–

1. माध्य विचलन को सरलता से समझा जा सकता है तथा इसकी गणना करना भी सरल है।
2. इसकी गणना करने में सभी पदों का प्रयोग होता है। अतः इससे श्रेणी की रचना स्पष्ट हो जाती है।
3. इसकी गणना केन्द्रीय प्रवृत्ति की प्रत्येक माप द्वारा की जा सकती है।
4. संकलित आँकड़ों के सीमान्त मानों का प्रभाव इस पर न्यूनतम होता है।
5. यह एक शुद्ध माप है।

11.5.4 माध्य विचलन के दोष–

1. माध्य विचलन निकालने के लिए विचलन के निरपेक्ष मान की गणना की जाती है जिससे चिन्हों '+' या '–' की उपयोगिता नहीं रह जाती। इस प्रकार की गणना गणित की दृष्टि से अधिक उपयुक्त नहीं है।
2. इसे विभिन्न सांख्यिकीय मापों द्वारा ज्ञात किया जा सकता है, किन्तु अलग–अलग मापों से इसका मान अलग आता है।

उपर्युक्त दोषों के होने से माध्य विचलन की उपयोगिता कम नहीं होती इसका अपना महत्व है। विभिन्न सामाजिक, आर्थिक क्षेत्रों में इसका महत्वपूर्ण प्रयोग होता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. निम्न आँकड़ों से विस्तार ज्ञात कीजिए–

   10, 5, 8, 0, 4, –5, –10

2. निम्न आँकड़ों से माध्य विचलन गुणांक ज्ञात कीजिए यदि

   $\overline{X} = 20$ $\delta \overline{X} = 5.6$

3. यदि माध्यिका =12 तथा माध्यिका से माध्य विचलन = 2.4 हो तो पदों की संख्या क्या होगी?
4. माध्य विचलन न्यूनतम होता है

   (i) माध्य से (ii) माध्यिका से (iii) बहुलक से (iv) प्रथम चतुर्थक से

5. सत्य और असत्य लिखिए–

(i) अपकिरण की माप द्वितीय श्रेणी का माध्य कहलाती है।

(ii) प्रमाणिक विचलन का वर्ग माध्य विचलन कहलाता है।

(iii) प्रमाणिक विचलन में समान्तर माध्य से प्राप्त विचलनों के वर्गो का योग किसी भी अन्य माध्य से प्राप्त विचलनों के वर्गो के योग से कम होता है।

(ix) यदि प्रसरण 16 हो तब प्रमाणिक विचलन + 4 या – 4 होगा

(v) प्रमाणिक विचलन ऋणात्मक हो सकता है।

6. विचरण गुणांक का सूत्र लिखिए

7. यदि प्रसरण 169 हो तो प्रमाणिक विचलन क्या होगा?

8. निम्न प्रश्नों में सही उत्तर बताइये

(I) यदि प्रमाणिक विचलन 4, पदों की संख्या 10 तथा पदों का योग 160 हो तो विचरण गुणांक का मान होगा–

(i) 16% (ii) 20%

(iii) 25% (iv) 30%

(II) लगभग सामान्य वितरण में

(i) माध्य विचलन $=\frac{3}{5}$ प्रमाणिक विचलन

(ii) माध्य विचलन $= \frac{2}{5}$ प्रमाणिक विचलन

(iii) माध्य विचलन $= \frac{4}{5}$ प्रमाणिक विचलन

(ix) माध्य विचलन $= \frac{1}{5}$ प्रमाणिक विचलन

(III) प्रमाणिक विचलन की गणना की जाती है

(i) माध्य (ii) माध्यिका (iii) बहुलक (ix) उपरोक्त सभी

(IX) विचलनों के वर्गो का योग न्यूनतम होगा जब यह लिया जाये–

(i) माध्य (ii) माध्यिका (iii) बहुलक (ix) उपरोक्त सभी

11.6 प्रमाणिक विचलन–

माध्य विचलन ज्ञात करने के लिए विचलन के निरपेक्ष मान की गणना की जाती है यही इसमें सबसे बड़ा दोष है जो कि बीजगणितीय विश्लेषणों हेतु उपयुक्त नहीं है। अतः इसे दूर करने के लिए नये अपकिरण ''प्रमाणिक विचलन'' को परिभाषित किया गया। इसमें $\Sigma |x-M|$ के स्थान पर $\Sigma (x-M)^2$ का प्रयोग किया जाता है जिससे उपरोक्त दोष दूर हो जाता है।

अतः प्रमाणिक विचलन का मान किसी श्रेणी की इकाइयों के समान्तर माध्य से प्राप्त विचलनों के वर्गो के समान्तर माध्य का वर्गमूल होता है। इसे प्रमाप विचलन या मानक विचलन भी कहा जाता है।

चूँकि घनात्मक तथा ऋणात्मक दोनों प्रकार की संख्याओं का वर्ग घनात्मक होता है अतः मानक विचलन का चिन्ह धनात्मक '+' होता है। इसे ग्रीक भाषा के अक्षर σ (small sigma) द्वारा प्रदर्शित किया जाता है।

11.6.1 प्रमाणिक विचलन ज्ञात करने की विधियाँ–

1. जब श्रेणी व्यक्तिगत रूप में हो–

माना दिये आँकडे $x_1, x_3, --- x_n$ है तथा इनका समान्तर माध्य M है। अतः इनके विचलन क्रमशः $x_1-M, x_2-M --- x_n-M$ होंगे।

इन विचलनों के वर्गो का समान्तर माध्य $=\dfrac{(x_1-M)^2+(x_2-M)^2-(x_nM)^2}{n}$

$$=\frac{\Sigma(x-M)^2}{n}$$

अतः प्रमाणिक विचलन $(\sigma)=\sqrt{\dfrac{\Sigma(x-M)^2}{n}}=\sqrt{\dfrac{\Sigma d^2}{n}}$

2. जब श्रेणी असतत् रूप में दी गयी हो

इस प्रकार की श्रेणी ज्ञात होने पर सर्वप्रथम दिये आँकड़ों का समान्तर माध्य ज्ञात करते है तथा इससे विचलन ज्ञात करते हैं।

इस प्रकार की श्रेणी का प्रमाणिक विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

$$\text{प्रमाणिक विचलन } (\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{\Sigma f}}$$

3. जब श्रेणी सतत् रूप में ज्ञात होः

जब श्रेणी सतत्–रूप में अर्थात् वर्ग अन्तराल के रूप में ज्ञात हो तब प्रत्येक वर्ग अन्तराल से के मध्य बिन्दु ज्ञात कर लिये जाते है। उसके बाद असतत् श्रेणी की तरह से ही प्रमाणिक विचलन ज्ञात कर लिया जाता है। इस प्रकार की श्रेणी ज्ञात होने पर निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग करके भी प्रमाणिक विचलन ज्ञात करते हैं यह विधि लघु विधि कहलाती है।

$$(\sigma) = \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{n} - \left(\frac{\Sigma fd}{n}\right)^2}$$

जहां f= वर्ग अन्तराल की आवृत्ति

d= कल्पित माध्य से पदों का विचलन

n= कुल आवृत्तियों का योग

प्रमाणिक विचलन से प्राप्त कुछ परिभाषाएँ–

11.6.2 प्रमाणिक विचलन गुणांक

प्रमाणिक विचलन (σ) को समान्तर माध्य $\overline{X}$ से भाग करने पर प्रमाणिक विचलन गुणांक (Coefficient of Standard deviation) प्राप्त होता है।

$$\text{प्रमाणिक विचलन गुणांक } = \frac{\sigma}{\overline{X}}$$

उदाहरण 9 5 छात्रों की ऊँचाइयों की माप (इंचों में) निम्नलिखित है–

56, 58, 62, 64, 65

इनका प्रमाणिक विचलन ज्ञात कीजिए।

हलः दिये आँकड़ों का समान्तर माध्य $\overline{X} = \frac{56+58+62+64+65}{5} = 61$

ऊँचाई (इंचों में) x	समान्तर माध्य से विचलन $d=x-\overline{X}$	d^2
56	-5	25
58	-3	6
62	+1	1
64	+3	6
65	+4	16
		$\Sigma d^2 = 54$

प्रमाणिक विचलन $= \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n}} = \sqrt{\frac{54}{5}}$

$= \sqrt{10.8} = 3.29$

11.6.3 विचरण गुणांक

प्रमाणिक विचलन गुणांक को 100 से गुणा करने पर विचरण गुणांक प्राप्त होता है।

सूत्र, विचरण गुणांक $= \frac{\sigma}{A} \times 100$

11.6.4 प्रसरण या विचरण मापांक

प्रमाणिक विचलन σ के वर्ग को विचरण–मापांक कहते है

सूत्र प्रसरण $= (\sigma)^2$

11.6.5 प्रमाणिक त्रुटि–

प्रमाणिक त्रुटि ज्ञात करने के लिए मानक विचलन को कुल पदों की संख्या के वर्गमूल से भाग देते है।

सूत्र, प्रमाणिक त्रुटि $= \frac{\sigma}{\sqrt{n}}$

11.6.6 सम्भावी त्रुटि–

प्रमाणिक त्रुटि को 0.6745 से गुणा करने पर सम्भावी त्रुटि का मान प्राप्त होता है।

सम्भावी त्रुटि $= 0.6745 \times$ प्रमाणिक त्रुटि

उदाहरण 11 निम्नलिखित आँकड़ों के लिए मानक विचलन ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक x	18	21	26	32	41
छात्रों की संख्या f	5	4	6	3	2

हल

प्राप्तांक x	बारम्बारता f	fx	समान्तर माध्य से विचलन (d)	d^2	fd^2
18	5	90	-7.4	54.76	273.8
21	4	84	-4.4	19.36	77.44
26	6	156	+0.6	.36	2.16
32	3	96	+6.6	43.56	130.68
41	2	82	+15.6	243.36	486.72
	$\Sigma f = 20$	$\Sigma fx = 508$			Σfd^2=970.8

समान्तर माध्य $\left(\overline{X}\right) = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{508}{20} = 25.4$

प्रमाणिक विचलन $= \sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{n}} = \sqrt{\frac{970.8}{20}}$

$= \sqrt{48.5}$

= 6.96

उदाहरण 12 निम्न सतत् श्रेणी का प्रमाणिक विचलन तथा उसका गुणांक ज्ञात कीजिए–

प्राप्तांक	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
आवृत्ति	6	8	15	7	3	0	1

हल :

प्राप्तांक	माध्य बिन्दु x	आवृत्ति f	fx	स.मा. 45 से विचलन d	fd	d^2	fd^2
10-20	15	6	90	-30	-180	900	5400
20-30	25	8	200	-20	-160	400	3200
30-40	35	15	525	-10	-150	100	1500
40-50	45	7	315	0	0	0	0
50-60	55	3	165	+10	30	100	300
60-70	65	0	0	+20	0	400	0
70-80	75	1	75	+30	30	900	900
		$\Sigma f=40$	$\Sigma fx=1370$		-430		11300

(I) समान्तर माध्य $(\overline{X}) = \frac{\Sigma fx}{\Sigma f} = \frac{1370}{40} = 34.25$

(II) प्रमाणिक विचलन $(\sigma)=\sqrt{\frac{\Sigma fd^2}{n}-\left(\frac{\Sigma fd}{n}\right)^2}$

$$=\sqrt{\frac{11300}{40}-\left(\frac{-430}{40}\right)^2}$$

$$=\sqrt{282.5-115.56}$$

$$=\sqrt{166.94}=12.92$$

(III) प्रमाणिक विचलन गुणांक $=\frac{\sigma}{\overline{\overline{X}}}=\frac{12.92}{34.25}=0.38$

11.6.7 सामूहिक प्रमाणिक विचलन–

यदि अलग–अलग वर्गो के समान्तर माध्य, प्रमाप विचलन और पदों की संख्या ज्ञात हो तब उस आधार पर प्रमाणिक विचलन ज्ञात किया जा सकता है। इसका क्रम निम्न प्रकार है।

1. सर्वप्रथम सामूहिक समान्तर माध्य ज्ञात किया जाता है।
2. प्रत्येक समूह के समान्तर माध्य से सामूहिक समान्तर माध्य घटाकर अन्तर (D_1, D_2 ----) ज्ञात किया जाता है।
3. सामूहिक प्रमाणिक विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग करते है–

सामूहिक प्रमाणिक विचलन

$$\sigma_C=\sqrt{\frac{n_1(\sigma_1^2+D_1^2)+n_2(\sigma_2^2+D_2^2)+----n_t(\sigma_t^2+D_t^2)}{n_1+n_2+-+n_t}}$$

जहाँ σ_c = सामूहिक प्रमाणिक विचलन

σ_1, σ_2, -- σ_t = प्रत्येक वर्ग का प्रमाणिक विचलन

D_1, D_2, --- D_t = प्रत्येक वर्ग के माध्य से सामूहिक माध्य का अन्तर

उदाहरण 12 एक आवृत्ति वितरण के तीन सम्भाग है, जिनकी कुल आवृत्तियाँ क्रमशः 100, 140 तथा 160 है, माध्य 18, 10 तथा 15 तथा प्रमाणिक विचलन 4, 5 तथा 6 है। सामूहिक वितरण का माध्य तथा प्रमाणिक विचलन ज्ञात कीजिए।

हल : सामूहिक माध्य $= \frac{n_1\overline{X}_1 + n_2\overline{X}_2 + n_3\overline{X}_3}{n_1 + n_2 + n_3}$

$$= \frac{100\times18 + 140\times10 + 160\times15}{100 + 140 + 160}$$

$$= \frac{1800 + 1400 + 2900}{400}$$

$$= \frac{5600}{400} = 14$$

$D_1 = 18-14 = 4$, $D_2 = 10-14=-4$, $D_3 = 15-14 = 1$

सामूहिक प्रमाणिक विचलन $= \sqrt{\frac{n_1(\sigma_1^2+D_1^2)+n_2(\sigma_2^2+D_2^2)+n_3(\sigma_3^2+D_3^2)}{n_1+n_2+n_3}}$

$$= \sqrt{\frac{100(4^2+4^2)+140(5^2+(-4)^2)+160(6^2+1^2)}{100+140+160}}$$

$$= \sqrt{\frac{100(32)+140(41)+160(37)}{400}}$$

$$= \sqrt{\frac{3200+5740+5920}{400}}$$

$$= \sqrt{\frac{14860}{400}}$$

$$= \sqrt{37.15} = 6.09$$

11.6.8 प्रमाणिक विचलन के गुण–

1. प्रमाणिक विचलन में समान्तर माध्य से विचलन ज्ञात किया जाता है। इन विचलनों के वर्गो का योग किसी भी अन्य माध्य से ज्ञात किये गये विचलनों के वर्गो के योग से कम होता है।

2. यह अपकिरण की सबसे स्पष्ट तथा निश्चित माप है। यह सभी स्थितियों में ज्ञात की जा सकती है।

3. इस पर आकस्मिक होने वाले परिवर्तनों का बहुत कम प्रभाव पड़ता है।

4. प्रमाणिक विचलन समंक माला के सभी पदों पर आधारित होता है। अतः इसकी प्रमाणिकता अधिक है।
5. इसके द्वारा विभिन्न सांख्यिकीय मापों की सत्यता की जाँच की जा सकती है।
6. इसका प्रयोग बीजगणितीय विश्लेषण के लिए उपयुक्त है।
7. यह प्रसार की सर्वाधिक वैज्ञानिक माप है।
8. इसकी गणना गणितीय विधि द्वारा शुद्धतापूर्वक की जाती है।

11.6.9 प्रमाणिक विचलन के दोष–

1. प्रमाणिक विचलन पर सीमान्त मानों का अधिक प्रभाव पड़ता है।
2. प्रमाणिक विचलन ज्ञात करने के लिए गणित का अच्छा ज्ञान होना आवश्यक है चूँकि इसकी गणना कठिन होती है।

(II)

आयु (वर्षो में)	10	11	12	13	14	15	16
छात्र संख्या	4	8	12	15	10	6	5

(III)

वर्ग अन्तराल	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60
बारम्बारता	8	5	7	6	4

8.निम्न असतत् श्रेणी का परास ज्ञात कीजिए–

वर्ग	2	3	4	5	6
बारम्बारता	3	4	7	8	3

9.निम्न आँकड़ों से माध्य विचलन एवं उसका गुणांक ज्ञात कीजिए–

वर्ग	25-30	30-35	35-40	40-45	45-50	50-55
बारम्बारता	18	27	39	42	33	21

10.निम्न आँकड़ों से माध्यिका द्वारा माध्य विचलन और उसका गुणांक ज्ञात कीजिए–

अंक से अधिक	0	10	20	30	40	50	60	70
छात्र संख्या	100	90	75	50	20	10	5	0

11.एक कम्पनी का छः माह का मासिक लाभ–हानि निम्न प्रकार है–

वर्ग	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सितम्बर
बारम्बारता	700	400	-1300	1800	5000	-200

12. प्रसार तथा प्रसार गुणांक ज्ञात कीजिए।

वर्ग	1-5	6-10	11-15	16-20	21-25
बारम्बारता	3	7	20	15	4

13.निम्न आँकड़ों से माध्य और माध्यिका द्वारा माध्य विचलन तथा उनके गुणांक की गणना कीजिए–

10, 70, 50, 20, 95, 55, 42, 60, 48, 80

14. निम्न आँकड़ों के लिए माध्यिका से माध्य विचलन ज्ञात कीजिए–

आकार	20-30	30-35	35-40	40-45	45-50	50-55
बारम्बारता	18	27	39	42	33	21

15.समान्तर माध्य तथा प्रमाणिक विचलन ज्ञात कीजिए–

पदों का आकार	3.5	4.5	5.5	6.5	7.5	8.5	9.5
आवृत्ति	3	7	22	60	85	32	8

16. निम्न आँकड़ों के लिए प्रमाणिक विचलन तथा उसका गुणांक ज्ञात कीजिए–

48, 53, 47, 45, 48, 40, 43, 50

17. निम्न श्रेणी का माध्य प्रमाणिक विचलन तथा विचरण गुणांक ज्ञात कीजिए–

वर्ग	14-16	16-18	18-20	20-22	22-24	24-26
बारम्बारता	6	10	12	18	20	4

18. निम्न बंटन का प्रमाणिक विचलन तथा उसका गुणांक ज्ञात कीजिए–

मध्यमान	11.5	13.5	15.5	17.5	19.5	21.5	23.5	25.5	27.5	29.5
बारम्बारता	5	426	720	741	665	395	38	8	5	7

19. निम्न समंकों से माध्य तथा प्रमाणिक विचलन ज्ञात कीजिए।

श्रेणी	70	60	50	40	30	20
बारम्बारता	7	18	40	40	63	65

20. निम्न समंकों से समान्तर माध्य तथा माध्यिका द्वारा माध्य विचलन ज्ञात कीजिए–

वस्तु का आकार	10	12	14	16	18	20	22
बारम्बारता	2	1	3	6	4	3	1

11.7 सारांश–

इस इकाई में हमने अध्ययन किया अपकिरण इकाइयों के विचलन की माप है। विस्तार या प्रसार, माध्य विचलन तथा मानक विचलन अपकिरण की प्रमुख मापें है। परास गुणांक, माध्य विचलन, माध्य विचलन गुणांक, की परिभाषाएँ समझी तथा माध्य विचलन को समान्तर माध्य तथा माध्यिका द्वारा ज्ञात करना सीखा। प्रमाणिक विचलन को समझा तथा उसे ज्ञात करने की विधियों को सीखा। प्रमाणिक विचलन गुणांक, विचरण गुणांक, प्रसरण, प्रमाणिक त्रुटि सम्भावी त्रुटि आदि के मान ज्ञात करने के सूत्र पढ़े तथा सामूहिक प्रमाणिक विचलन ज्ञात करना सीखा।

11.8 पारिभाषिक शब्दावली

अपकिरण - Dispersion

केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप – Centre tendancy

विचलन	-	Deviation
विस्तार या परास	-	Range
माध्य विचलन	-	Mean Deviation
निरपेक्ष	–	Absolute
माध्य विचलन गुणांक	-	Mean Deviation Coefficient
मानक विचलन	-	Standard Deviation
परास गुणांक	-	Coefficient of Rang
समान्तर माध्य	-	Arithmatic Mean
माध्यिका	-	Median
प्रमाणिक विचलन	-	Standard Deviation
प्रमाणिक विचलन गुणांक	-	Coefficent of Standard Deviation
प्रसरण या विचरण मापाक	-	Variance
विचरण गुणांक	-	Coefficent of Variation
प्रमाणिक त्रुटि	-	Standard Error
सम्भावी त्रुटि	-	Probable Erroro
सामूहिक प्रमाणिक विचलन	-	Combined Standard Deviation

11.9 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

(1) 20 (2) 0.28 (3) 5 (4) ii

5. (i) सत्य (ii) असत्य (iii) सत्य (ix) असत्य (v) असत्य

6. $\text{विचलन गुणांक} = \frac{\text{प्रमाणिक विचलन}}{\text{माध्य}} \times 100$

7. 13

8. (i) (c) (ii) (c) (iii) (a) (iv) (a)

7 (i) 37

(ii) 6

(iii) 50

8. 4

9. माध्य विचलन = 40.71, मा0वि0 गुणांक = 6.29

10. माध्यिका = 30 माध्य विचलन = 12 गुणांक = 0.4

11. प्रसार = 6300, प्रसार गुणांक = 1.7

12. प्रसार = 25, प्रसार गुणांक = 0.962

13. माध्य = 53, माध्यिका=19 समान्तर माध्य द्वारा विचलन=52.5 गुणांक=0.358

माध्यिका द्वारा विचलन = 19 गुणांक = 0.362

14. स0मा0 = 7.09, प्रमाणिक विचलन = 1.15

15. प्रमाणिक विचलन = 3.8,गुणांक = 0.081

16. माध्य = 20.37, प्र0वि0 = 2.78, विचरण गुणांक = 13.65 प्रतिशत

17. माध्य = 17.55, प्र0वि0 = 2.72, गुणांक = 0.155

18. माध्य = 50.85, प्र0वि0 = 14.56

19. स0मा0 = 16.2 स0मा0 से माध्य विचलन = 2.44

माध्यिका = 16, माध्यिका से माध्य विचलन = 24

11.11 निबंधात्मक प्रश्न–

1. अपकिरण को परिभाषित कीजिए। अपकिरण की विभिन्न मापों को बताते हुए उनके आपेक्षिक गुणों तथा अवगुणों की तुलना कीजिए।

2. माध्य विचलन से आप क्या समझते है? इसके गुणों व सीमाओं की विवेचना कीजिए।

3. अपकिरण को परिभाषित कीजिए। अपकिरण मापने की प्रमुख विधियाँ कौन सी है।

4. निम्न पर टिप्पणी लिखिए–

(i) माध्य विचलन

(ii) परास

(iii) प्रमाणिक विचलन

(iv) विचरण गुणांक

(v) प्रमाणिक विचलन गुणांक

5. निम्नलिखित की परिभाषा दीजिए–

(i) प्रमाणिक त्रुटि

(ii) सम्भावित त्रुटि

(iii) प्रसरण

(iv) विचरण मापांक

6. प्रमाणिक विचलन के गुण व दोष स्पष्ट कीजिए।

7. निम्न समग्रों का परास ज्ञात कीजिए–

(I) 25, 40, 5, 12, 35, 42, 24

इकाई—12 सामान्य संभाव्यता वक्र : अर्थ, विशेषता, उपयोग

इकाई की संरचना—

12.1 प्रस्तावना

12.2 उद्देश्य

12.3 सामान्य संभाव्यता वक्र का अर्थ

12.4 सामान्य वक्र की विशेषताएं

12.5 जेड – प्राप्तांक

12.6 प्रसामान्य वक्र के अन्तर्गत क्षेत्रों की तालिका/सारणी

12.7 प्रसामान्य संभावना वक्र के स्थिरांकों में सम्बन्ध

12.8 सामान्य संभावना वक्र से विचलन

12.8.1 विषमता

12.8.1.1 ऋणात्मक विषमता

12.8.1.2 धनात्मक विषमता

12.8.2 ककुदता या कुर्टोसिस

12.9 सामान्य संभाव्यता वक्र के उपयोग

12.9.1 अनुप्रयोग – 1

12.9.2 अनुप्रयोग – 2

12.9.3 अनुप्रयोग – 3

12.9.4 अनुप्रयोग – 4

12.9.5 अनुप्रयोग – 5

12.10 सारांश

12.11 शब्दावली

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

12.13 संदर्भ ग्रन्थ सूची

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

12.1 प्रस्तावना–

पिछली इकाई में आपने सांख्यिकी विषय की मूलभूत अवधारणों, प्रदत्तों के आवृत्ति वितरण में प्रस्तुतीकरण, केन्द्रीय प्रवृत्ति के विभिन्न मापों तथा केन्द्रीय प्रवृत्ति से विचलनों की जानकारी प्राप्त की। प्रस्तुत इकाई में वैसे प्रदत्तों एवं उनके वितरणों की चर्चा की जायेगी जो सामान्य रूप से वितरित होते हैं तथा जिनके आधार पर एक घंटीनुमा वक्र तैयार होता है जिसे सामान्य संभाव्यता वक्र कहते हैं। इस इकाई में आप सामान्य संभाव्यता वक्र का अर्थ, उसकी विशेषता, सामान्यता से विचलन की माप (विषमता एवं ककुदता), सामान्य वक्र के अनुप्रयोग आदि के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन से आपको यह लाभ होगा कि आप किसी वितरण की सामान्यता की जाँच कर सकेंगे तथा इसके विभिन्न सूत्रों का अनुप्रयोग इस पर आधारित समस्या का समाधान करने हेतु कर सकेंगे।

12.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप–

1. सामान्य संभाव्यता वक्र की विशेषताएं बता सकें।
2. सामान्य वक्र तालिका को देखने एवं इसका इस्तेमाल करने में सक्षम हो सकें।
3. विषमता एवं ककुदता को परिभाषित कर सकें तथा उनमें अन्तर बता सकें।
4. सामान्य वक्र के विभिन्न अनुप्रयोगों पर आधारित प्रश्नों को हल कर सकें।

12.3 सामान्य संभाव्यता वक्र का अर्थ –

सामान्य संभाव्यता वक्र को सामान्य वक्र भी कहा जाता है। इसका विकास 'त्रुटि के नियम' के आधार पर हुआ है। इस वक्र के जन्मदाता ए.डी–मुवरे (1667–1754) कहे जाते हैं। वे एक फ्रेंच गणितज्ञ थे। अपने जीवन का 66 वर्ष उन्होंने इग्लैण्ड में बिताया और यहीं पर जुआ के खेल में 'संयोग' की घटना की व्याख्या सामान्य संभाव्यता के आधार पर की। खगोलविद लैपलेस तथा गौस ने भी भौतिक विज्ञान में निरीक्षण सम्बन्धी त्रुटियों की व्याख्या सामान्यता के आधार पर की तथा त्रुटियों का सामान्य वक्र बनाया। चाहे जुए के खेल में संयोग की घटना हो या ग्रहों के निरीक्षण में त्रुटियों की घटना, इसके आधार पर इन गणितज्ञों ने प्रकृति की विभिन्न विशेषताओं की व्याख्या सामान्य वितरण के आधार पर करने का प्रयास किया। सामान्य वितरण की विशेषता यह होती है कि वितरण के मध्य में सर्वाधिक प्राप्तांक होते हैं तथा क्रमशः दोनों किनारों पर घटते जाते हैं। इसी सामान्य वितरण के आधार पर जो वक्र बनता है उसे सामान्य वितरण वक्र या सामान्य सम्भाव्यता

वक्र या सामान्य वक्र कहते हैं। यह वक्र सममित होता है तथा इसकी ऊँचाई मध्य में सर्वाधिक होती है। दोनों किनारों की ओर इसकी ऊँचाई घटती जाती है, परन्तु आधार रेखा को स्पर्श नहीं करती।

भौतिक विज्ञान, जीव–विज्ञान, खगोलशास्त्र, समाजशास्त्र, शिक्षाशास्त्र, मनोविज्ञान, योग एवं चिकित्सा आदि के क्षेत्रों में जो प्रदत्त प्राप्त होते हैं उनमें सामान्य वितरण की विशेषता होती है। यदि हम व्यक्तियों की बुद्धि, समायोजन, चिन्ता, सांवेगिकता, तनाव, कार्य संतुष्टि आदि का मापन करें तो इनमें वैयक्तिक भिन्नता का दर्शन होता है और एक विशाल समूह की उपर्युक्त विशेषताओं को मापने पर पता चलता है कि व्यक्तियों में ये विशेषताएँ सामान्य रूप से वितरित होती हैं। ये शीलगुण अधिकांश व्यक्तियों में औसत स्तर पर विद्यमान होते हैं जबकि बहुत कम व्यक्तियों में औसत से अधिक या औसत से कम शीलगुण विद्यमान होते हैं। यानी, विभिन्न शीलगुणों/विशेषताओं में से किसी भी गुण का अध्ययन करने पर एक सामान्य वितरण वक्र निर्मित होता है जिसके आधार पर समूह की उस विशेषता की व्याख्या की जा सकती है।

सामान्य वितरण के आंकड़े इस प्रकार के होते हैं कि इनके आधार पर बनाया गया वक्र घण्टी के आकार का दिखाई पड़ता है। इसके मध्य में अधिकतम प्राप्तांक होता है और दोनों किनारे पर प्राप्तांकों की संख्या कम होती जाती है। इस वक्र के मध्य एक खड़ी रेखा खींची जाय तो वक्र दो बराबर भागों में विभक्त हो जायेगा तथा इस रेखा के दोनों ओर कुल प्राप्तांकों के 50–50 प्रतिशत प्राप्तांक अवस्थित होंगे। किसी सामान्य वितरण के मध्यमान, मध्यांक और बहुलांक समान होते हैं और वे सामान्य वक्र के मध्य में एक ही बिन्दु पर स्थित होते हैं। प्राप्तांकों का फैलाव भी दोनों ओर समान रूप से होता है। आधार रेखा को प्रामाणिक विचलन द्वारा मापा जाता है। इसे निम्न चित्र से प्रदर्शित किया गया है–

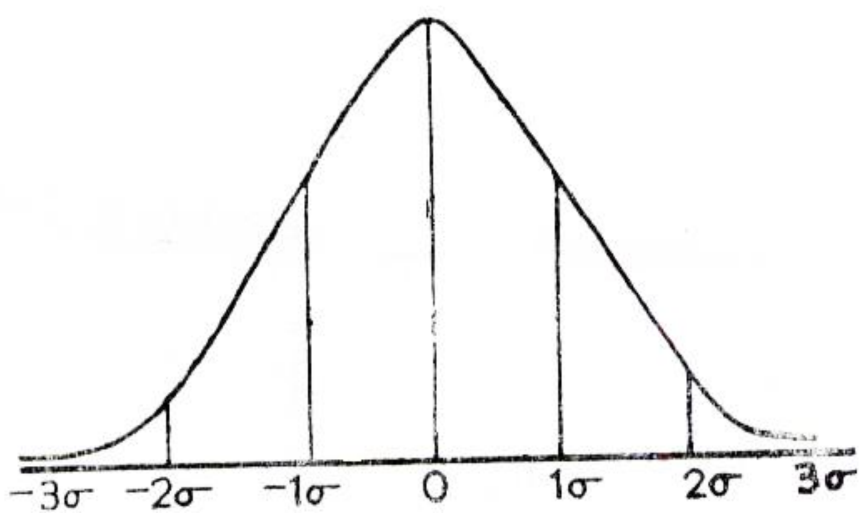

12.4 सामान्य वक्र की विशेषताएं–

सामान्य वक्र की निम्नलिखित विशेषताएं होती हैं जिनके आलोक में विभिन्न घटनाओं की व्याख्या की जाती है–

1. सामान्य वक्र का आविर्भाव संभाव्यता के सांख्यिकीय सिद्धान्त से हुआ है। यह एक सैद्धान्तिक कल्पना है।

2. यह सममित वक्र होता है। यदि इसे दो भागों में मोड़ दिया जाय तो दोनों भाग एक–दूसरे को पूरी तरह ढक लेते हैं यानी, वक्र की ऊँचाई मध्य–बिन्दु के दोनों तरफ केन्द्र से समान दूरी पर समान होती है।

3. सामान्य वितरण का मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलांक समान होता है तथा तीनों ही सामान्य वक्र के मध्य में पड़ता है जहाँ वक्र की ऊँचाई अधिकतम होती है।

4. सामान्य वक्र का फैलाव अनन्त, सीमाहीन होता है, परन्तु माध्य से जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है, वक्र क्षैतिज रेखा (x–अक्ष) के करीब आता जाता है। लेकिन सैद्धान्तिक रूप से वह x–अक्ष को कभी नहीं छू पाता।

5. वक्र की आधार रेखा (x–अक्ष) को z प्राप्तांक द्वारा मापा जाता है जिसे σ–इकाई भी कहते हैं। z प्राप्तांक का माध्य शून्य तथा मानक विचलन 1 होता है।

6. चूँकि सामान्य वक्र का माध्य शून्य और मानक विचलन 1 होता है, अतः इसमें समस्त प्रतिदर्श सांख्यिकी सही ढंग से समाहित हो जाती है।

7. सामान्य वक्र का फैलाव $M \pm 3\sigma$ होता है। इस सीमा के अन्तर्गत किसी वितरण के सारे केसेज आ जाते हैं।

8. सामान्य वक्र वैसे तो क्षैतिज रेखा को नहीं छूता, परन्तु, माध्य से $\pm$ 1. 96 σ के अन्तर्गत 95% केसेज तथा माध्य से $\pm$ 2.58σ के अन्तर्गत लगभग 99% केसेज आ जाते हैं।

9. सामान्य वक्र की ऊँचाई केन्द्र–बिन्दु के दोनों ही ओर समान दूरी पर समान होती है। इसकी ऊँचाई का न्यूनतम मान कभी भी शून्य नहीं होता, परन्तु अधिकतम मान 0.3989 होता है।

10. सामान्य वक्र के दोनों ही ओर मध्य–बिन्दु से समान दूरी पर या एक दी हुई सीमा के भीतर पड़ने वाले केसेज का प्रतिशत समान होता है।

11. सामान्य वक्र का विषमता गुणांक शून्य होता है। यानी, वक्र में किसी प्रकार की विषमता नहीं पाई जाती, वह पूर्णतः संतुलित व सममित होता है।

12. सामान्य वक्र न ही अधिक चपटा होता है, न ही अधिक नुकीला। इसकी ऊँचाई औसत होती है तथा इसका ककुदता गुणांक 0.263 होता है।

13. सामान्य वक्र के मध्यमान से 1σ ऊपर तथा 1σ नीचे ($\pm$ 1σ तक) वक्र की आकृति अवतल होती है तथा इसके पश्चात् उत्तल में परिवर्तित होती है।

14. सामान्य वक्र के अन्तर्गत विचलनों के विभिन्न मापकों के मध्य एक निश्चित सम्बन्ध होता है। प्रथम चतुर्थांक (Q_1) तथा तृतीय चतुर्थांक (Q_3) का मध्यमान से अन्तर समान होता है जिसे चतुर्थक विचलन या सम्भाव्य त्रुटि कहा जाता है।

12.5 जेड–प्राप्तांक–

Z-प्राप्तांक मानक प्राप्तांकों के कई प्रकारों में से एक है जिसका माध्य तथा मानक विचलन निर्दिष्ट होता है। यह वितरण के माध्य से प्राप्ताकों की दूरी मानक विचलन की इकाई में बतलाता है। इसे σ– प्राप्तांक भी कहा जाता है। Z-प्राप्तांक की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसका माध्य हमेशा शून्य तथा मानक विचलन हमेशा एक होता है। यानी, Z-प्राप्तांक में $M = 0$ तथा $\sigma = 1$ होता है। Z-प्राप्तांक यह बतलाता है कि वितरण का कोई भी प्राप्तांक माध्य से मानक विचलन की कितनी इकाई ऊपर है या नीचे है।

किसी दिए हुए माध्य तथा मानक विचलन के लिए किसी प्राप्तांक का

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$ होता है

जहाँ

Z = जेड प्राप्तांक

X - प्राप्तांक

M – माध्य

σ - मानक विचलन

इसे एक उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। मान लिया जाय कि किसी वितरण का माध्य 25 तथा मानक विचलन 5 है। अब यदि हम यह पता लगाना चाहें कि प्राप्तांक

30 तथा 20 माध्य से कितना इकाई ऊपर या नीचे है, तो हम Z-प्राप्तांक का सहारा इस प्रकार लेगें –

प्राप्तांक 30 के लिए,

$$Z = \frac{30-25}{5} = \frac{5}{5} = 1$$

ठीक इसी प्रकार प्राप्तांक 20 के लिए,

$$Z = \frac{20-25}{5} = \frac{5}{5} = -1$$

इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राप्तांक 30 इस वितरण में माध्य से $+1\sigma$ इकाई ऊपर है तथा प्राप्तांक 2.0 इसी वितरण में $-1\,\sigma$ इकाई नीचे है (माध्य से)।

यदि इस प्राप्तांक 25 का इसी वितरण में Z–मूल्य निकालना चाहे तो यह शून्य होगा क्योंकि

यहा, $Z = \frac{25-25}{5} = \frac{0}{5} = 0$

सामान्य वक्र के सम्पूर्ण क्षेत्र को 10,000 मानते हुए इसे अलग–अलग Z प्राप्तांक के आधार पर बांटा गया है जिसकी एक तालिका (तालिका –2 जो इस इकाई के अन्त में है) भी बनायी गई है। इस तालिका के आधार पर कुछ महत्वपूर्ण मान इस प्रकार हैं –

$M + 1\sigma = 34.13\,\%$ केसेज or, $\frac{3413}{10,000}$ या .3413 इकाई क्षेत्र में माध्य से दायें।

$M - 1\sigma = 34.13\,\%$ केसेज or, $\frac{3413}{10,000}$ या .3413 इकाई क्षेत्र में माध्य से बायें।

इस तरह, $M \pm 1\sigma = 68.26\%$ केसेज मध्य का।

पुनः, $M - 2\sigma = 47.72\%$ केसेज or, $\frac{4772}{10,000}$ या .4772 इकाई क्षेत्र में माध्य से दायें।

$M + 2\sigma = 47.72\%$ केसेज or, 4772 इकाई क्षेत्र में माध्य से बायें।

इस तरह, $M \pm 2\sigma$ = 95.44% केसेज माध्य से बराबर–बराबर दूरी बायें व दायें।

तथा $M + 3\sigma$ = 49.865% केसेज or, $\frac{4986.5}{10,000}$ या .49865 इकाई क्षेत्र में माध्य से दायें।

$M - 3\sigma$ = 49.865% केसेज or, 49865 इकाई क्षेत्र में माध्य से बायें।

इस तरह $M \pm 3\sigma$ = 99.73% केसेज (लगभग वक्रका सम्पूर्ण क्षेत्र)

सामान्य वक्र के दोनों छोरों पर यानी, $+3\sigma$ तथा -3σ के बाद में आने वाले केसेज को छोड़ दिया जाता है क्योंकि व्यावहारिक दृष्टिकोण से वक्र को यहां पर समाप्त माना जाता है तथा वे केसेज सामान्य वितरण के पूरे क्षेत्र, यानी 10,000 का सिर्फ 0.27 प्रतिशत ही बच जाते हैं जिस पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया जाता है। नीचे के ग्राफ से यह बात अधिक स्पष्ट होती है –

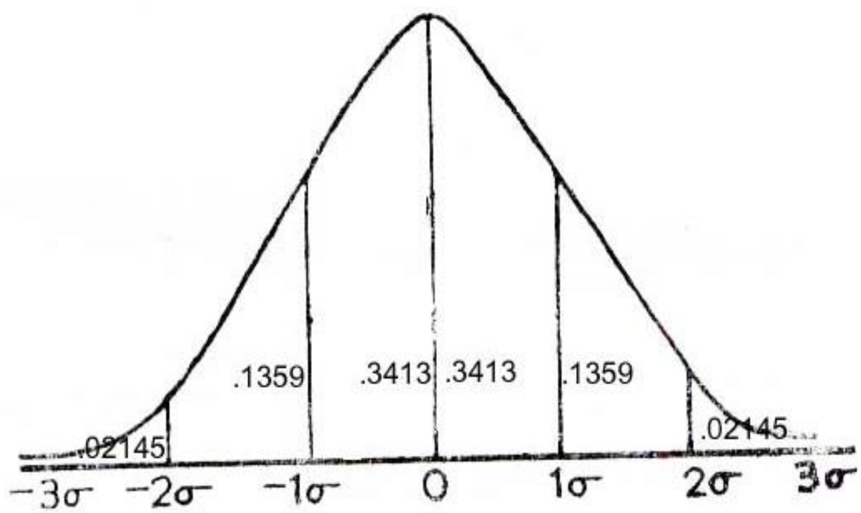

यहाँ सामान्य वक्र के क्षेत्र को अनुपात में दिखाया गया है। इसका बांया भाग =.3413 +.1359 +.02145 = दायां भाग। सम्पूर्ण क्षेत्र = 2x बायां भाग या 2x दायां भाग = .9973. परन्तु इसे पूरा 1 होना चाहिए। ऐसा इसलिए नहीं होता है क्योंकि वक्र के दोनों छोरों पर के क्षेत्र, ($\pm 3\sigma$ के बाद का क्षेत्र है) जो कि .0027 के बराबर है, को नगण्य समझकर छोड़ दिया जाता है। इस तरह से स्पष्ट है कि सामान्य विवरण में $M \pm 1\sigma$ के बीच लगभग दो–तिहाई (68.26 प्रतिशत) केसेज होते हैं, $M \pm 2\sigma$ के बीच लगभग 95 प्रतिशत केसेज तथा $M \pm 3\sigma$ के बीच लगभग 99.7 प्रतिशत केसेज होते हैं।

Z - score का प्रयोग सार्थकता की जांच में भी किया जाता है। Z - score का यह एक बहुत ही प्रमुख प्रयोग है। माध्य से $\pm$ 1.96σ के बाद सामान्य वितरण में 05 प्रतिशत केसेज आते हैं तथा $\pm$2.58σ के बाद 1 प्रतिशत केसेज आते हैं क्योंकि Z-Table में 1.96σ का मूल्य 47.50 है तथा 2.58 σ का मूल्य 49.51 है। अतः यदि Z - प्राप्तांक $\pm$1.96 से लेकर $\pm$ 2.58 के बीच में हो तो उसे .05 या 5 प्रतिशत पर सार्थक माना जाता है। परन्तु Z - प्राप्तांक $\pm$2.58 से ज्यादा है तो उसे 01 प्रतिशत पर सार्थक माना जाता है।

कभी–कभी सामान्य वितरण वक्र में माध्य से 25 प्रतिशत ऊपर तथा 25 प्रतिशत नीचे के प्राप्तांक को जानने की आवश्यकता हो जाती है। अतः ऐसी स्थिति में मानक विचलन की जगह चतुर्थका विचलन (Q) का प्रयोग करके सामान्य वितरण के क्षेत्र को दिखाया जा कसता है जिसे सामान्य वक्र के संदर्भ में संभाव्य त्रुटि (PE) कहते हैं। σ का आकार संभाव्य त्रुटि से बड़ा होता है क्योंकि M $\pm$ 1σ के बीच जहां 68.26 प्रतिशत केसेज आते हैं वहीं M $\pm$ 1 PE के बीच सिर्फ 50 प्रतिशत केसेज ही आते हैं। दूसरी ओर, सामान्य वितरण के 99.7 प्रतिशत केसेज जहां M $\pm$ 3σ के अन्तर्गत आते हैं वहीं संभाव्य त्रुटि केस में इस मान के लिए M $\pm$ 4.5 PE की आवश्यकता पड़ती है।

$PE = 0.6745\sigma$

या $\sigma = 1.4826$ P.E. होता हैं

संभाव्य त्रुटि तथा मानक त्रुटि की विभिन्न इकाइयों के अन्तर्गत सामान्य वितरण के क्षेत्र का विभाजन निश्चित एवं स्थिर रहता है, अतः इन दोनों को सामान्य वितरण का स्थिरांक भी कहा जाता है।

12.6 प्रसामान्य वक्र के अन्तर्गत क्षेत्रों की तालिका या सारणी

इस इकाई के अन्त में दी हुई तालिका – 2 प्रसामान्य वक्र के अन्तर्गत सम्पूर्ण क्षेत्र के आंशिक भागों को दर्शाता है। यहाँ दूरी की माप σ'इकाईयों' के आधार पर किया गया है, अर्थात् मध्यमान और भुजाएँ जो मध्यमान से विभिन्न दूरियों पर खड़ी की गई हैं, उनके बीच प्रसामान्य वितरण के संपूर्ण क्षेत्र का कितना अंश या भाग पड़ेगा, यह तालिका द्वारा ज्ञात किया जाता है। गणना की सुगमता के लिए वक्र के अन्तर्गत संपर्ण क्षेत्र को 10,000 मान लिया गया।

तालिका –2 को देखने से स्पष्ट होता है कि पहले 'कालम' में $\frac{x}{\sigma}$ दिया हुआ है। यहाँ प्रसामान्य वितरण के आधार रेखा पर मध्यमान से या उद्गम से σ इकाई की दूरी दी गई है। यह ज्ञात हो चुका है कि $x = X - M$। यह किसी प्राप्तांक का मध्यमान से विचलन

को बताता है। अब यदि x को वितरण के प्रमाणिक विचलन से भाग दिया जाय तो मध्यमान से विचलन को इकाई के रूप में प्रकट किया जाता है। इसे 'सिग्मा' प्राप्तांक या 'प्रमाणिक प्राप्तांक' कहते हैं।

'कालम के शीर्ष में 'σ की सौवें' में मध्यमान से दूरियों को दिया गया है। अब यदि यह ज्ञात करना है कि प्रसामान्य वितरण में मध्यमान और इससे 1σ की दूरी पर खड़ी की गई भुजा में कितने 'केसेज' पड़ेंगे तो 'कालम' में नीचे तब तक देखना होगा, जब तक 1.0 नहीं पहुंच जाय और दूसरे कालम में दाई ओर क्षैतिज दिशा में .00 के नीचे देखना होगा। यहां 3413 दिया हुआ है। इसका यह अर्थ हुआ कि मध्यमान और इससे 1σ के बीच प्रसामान्य वितरण के कुल 10,000 केसेज में से 3413 अर्थात् 34.13 या 34 केसेज पड़ेंगे। मान लिया जाय हमें यह ज्ञात करना है कि मध्यमान और 1.63σ के बीच प्रसामान्य वितरण के सम्पूर्ण क्षेत्र में से कितने केसेज पड़ेंगे। अब हमें टेबुल–2 में $\frac{x}{\sigma}$ के नीचे तब तक देखना है जब तक 1.0 नहीं पहुंच जाय और फिर ठीक इसके सामने दाईं ओर कॉलम में क्षैतिज दिशा में .03 के नीचे देखना होगा। तब ही हमें माध्य और 1.63σ के बीच के केसेज की संख्या मालूम पड़ेगी जो यहाँ 4,484 है। अतः, हम कह सकते हैं कि प्रसामान्य वितरण या वक्र के सम्पूर्ण क्षेत्र के 10,000 केसेज में से 4,484 केसेज मध्यमान और 1.63 σ के बीच पड़ेंगे।

अब तक हम लोगों ने 'प्रसामान्य वक्र' में मध्यमान और इससे 'धनात्मक दिशा' में σ इकाई की दूरी को देखा है। चूंकि, प्रसामान्य वक्र दोनों पक्षों से ही सममित है, अतः टेबुल–2 में दी हुई σ दूरियां मध्यमान से 'धनात्मक' तथा 'ऋणात्मक दोनों दिशाओं में समान रूप से लागू होंगी। प्रसामान्य वक्र के कुल क्षेत्र का आधा भाग जो मध्यमान से बाईं ओर है, वह मध्यमान से σ इकाई की दूरियों की ऋणात्मक दिशा और दूसरा आधा भाग जो मध्यमान से दाईं ओर है, वह मध्यमान से σ इकाई दूरियों को धनात्मक दिशा में दर्शाता है। उदाहरण के लिए, यदि हमें यह मालूम करना है कि मध्यमान और – 1.63σ के बीच प्रसामान्य वितरण के कितने केसेज पड़ेंगे तो टेबुल–2 में $\frac{x}{\sigma}$ के कॉलम में नीचे 1.6 तक देखना होगा और फिर बाईं ओर क्षैतिज दिशा में 0.03 के बीच देखना है और तब मालूम पड़ेगा कि प्रसामान्य वक्र के संपूर्ण क्षेत्र के कुल 10,000 केसेज मे से 4,484 केसेज मध्यमान और – 1.63σ के नीचे ऋणात्मक दिशा में होंगे।

प्रायोगिक उद्‌देश्य से यह मान लिया गया है कि प्रसामान्य वक्र का अन्त या समापन मध्यमान से –3σ और + 3σ दूरियों पर होता है। हालांकि, प्रसामान्य वक्र आधार रेखा से वास्तव में नहीं मिलता है। (क) टेबुल–2 को देखने से स्पष्ट होता है कि प्रसामान्य वक्र में मध्यमान से +3σ और – 3σ दूरियों के बीच प्रसामान्य वितरण के संपूर्ण क्षेत्र के 10,000 केसेज में से 9973 या 99.73 प्रतिशत केसेज पड़ेंगे, अर्थात 4.986.5 केसज मध्यमान

से नीचे ऋणात्मक दिशा में मध्य और -3σ के बीच और 4,986.5 केसेज धनात्मक दिशा में मध्य और $+3\sigma$ के बीच पड़ेंगे। वितरण के कुल केसेज का .27 या 1 प्रतिशत $\pm 3\sigma$ के बाहर होता है जिसकी उपेक्षा बहुत बड़े प्रतिदर्श के अलावा दूसरे प्रतिदर्श में करने पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव नहीं पड़ता।

(ख) मध्यमान से $\mp 2\sigma$ अर्थात M और -2σ तथा M और $+2\sigma$ के बीच क्रमशः ऋणात्मक और धनात्मक दिशाओं में 4,772 केसेज पड़ेंगे, अर्थात् M और -2σ के बीच ऋणात्मक दिशा में 4,772 केसेज तथा M और $+2\sigma$ के बीच धनात्मक दिशा में 4,772 केसेज पड़ेंगे। कुल मिलाकर प्रसामान्य वक्र के संपूर्ण क्षेत्र के कुल 10,000 केसेज में से 9,544 या 95.44 प्रतिशत केसेज मध्यमान और $\pm 2\sigma$ के बीच पड़ेंगे (टेबुल–2 देखें)।

(ग) मध्यमान से $\mp 1\sigma$ अर्थात M और -1σ तथा $M+1\sigma$ के बीच क्रमशः ऋणात्मक और धनात्मक दिशाओं में 3413 केसेज पड़ेंगे अर्थात् M और -1σ के बीच ऋणात्मक दिशा में 3413 केसेज पड़ेंगे तथा M और $+1\sigma$ के बीच धनात्मक दिशा में 3413 केसेज पड़ेंगे। कुल मिलाकर प्रसामान्य वक्र के संपूर्ण क्षेत्र के कुल 10,000 केसेज में से 6,826 या 68.26 प्रतिशत केसेज मध्यमान और $\mp 1\sigma$ के बीच पड़ेंगे (टेबुल–2 देखें)।

12.7 प्रसामान्य संभावना वक्र के स्थिरांकों में संबंध

प्रसामान्य संभावना वक्र में मध्यमान, मध्यांक और बहुलांक सभी वितरण के ठीक मध्य–बिंदु पर पड़ते हैं और संख्यागत दृष्टि से समान होते हैं। चूंकि, प्रसामान्य वक्र दोनों तरफ से सममित है, इसलिए केन्द्रीय प्रवृत्ति के सभी मापक वितरण के मध्य यानी बीचों बीच में एक ही बिंदु पर पड़ेंगे।

परिवर्तनीयता या विचलनशीलता के मापकों में प्रसामान्य वक्र के संपूर्ण क्षेत्र के 'खास स्थिर भिन्न अंक' निहित होते हैं जिन्हें टेबुल से पढ़ा जा सकता है। जैसा कि ऊपर (क), (ख) और (ग) में बताया गया है कि $M \mp 1\sigma$ के बीच प्रसामान्य वक्र के संपूर्ण क्षेत्र का दो–तिहाई (2/3) भाग, यानी, 68.26 प्रतिशत केसेज निहित है। $M \pm 2\sigma$ के बीच 95 प्रतिशत केसेज तथा $M \pm 3\sigma$ के बीच 99.7 प्रतिशत, यानी, करीब 100 प्रतिशत केसेज निहित हैं। दूसरे शब्दों में, यह कह सकते हैं कि संभावना है कि प्रसामान्य वितरण में $M \pm 1\sigma$, $M \pm 2\sigma$ और $M \pm 3\sigma$ के बीच क्रमशः 68.26 प्रतिशत, 95 प्रतिशत तथा 99.7 प्रतिशत केसेज निहित होंगे।

मानक विचलन की जगह Q (चतुर्थक विचलन) को प्रसामान्य वक्र के क्षेत्रफल को निर्धारित करने हेतु माप की इकाई के रूप में उपयोग में लाया जा सकता है। साधारणतया

प्रसामान्य वक्र में Q को साधारणतः संभावित त्रुटि कहा जाता है। PE और σ के संबंध को निम्नलिखित ढंग से व्यक्त किया जा सकता है –

(क) संभावित त्रुटि = $.6745\sigma$

(ख) मानक विचलन = 1.4826PE

अतः स्पष्ट है कि मानक विचलन सदा संभावित त्रुटि से करीब 50 प्रतिशत बड़ा होता है। टेबुल–2 को देखने से स्पष्ट होता है कि $M \pm .6745\sigma$ or $\pm$ 1 PE के बीच 25 प्रतिशत केसेज मध्यमान के ठीक ऊपर और नीचे निहित है। वक्र के इस भाग को कभी–कभी बीच का 50 प्रतिशत कहा जाता है जिसका अत्यधिक महत्व है, क्योंकि यह सामान्य व्यवहार के प्रसार को निर्धारित करता है। उच्च 25 प्रतिशत और निम्न 25 प्रतिशत बीच के प्रसार की तुलना में क्रमशः श्रेष्ठ और कमजोर होते हैं। टेबुल–2 से स्पष्ट होता है कि प्रसामान्य वक्र में मध्यमान और $\pm$ 2 P.E. (M$\pm$2 P.E. or $\pm 1.3490\sigma$) के बीच इसके कुल क्षेत्र के 82.26 प्रतिशत केसेज पड़ते हैं। इसी प्रकार M$\pm$3 P.E. (or $\pm 2.0235\sigma$) और M$\pm$4 P.E. (or $\pm$ 2.6980σ) के बीच क्रमशः 97.70 प्रतिशत और 99.30 प्रतिशत केसेज निहित हैं।

12.8 सामान्य संभाव्यता वक्र से विचलन–

सामान्य वितरण में बहुत से केसेज वितरण केबीच में आते हैं तथा वितरण के दोनों छोरों की ओर बढ़ने पर केसेज धीरे–धीरे कम होते जाते हैं, परन्तु कभी–कभी ऐसा नहीं होता और वितरण का वक्र सामान्य वक्र से बहुत ही भिन्न हो जाता है। दरअसल, सामान्य वितरण भी एक प्रकार का आवृत्ति वितरण ही है, अन्तर सिर्फ इतना है कि सामान्य वितरण में मध्य की आवृति अधिकतम रहती है तथा ऊपर और नीचे की आवृत्ति क्रमशः एक समान रूप से कम होती जाती है।

जैसा कि ऊपर बताया गया, सामान्य वितरण वक्र एक सैद्धान्तिक कल्पना है। सामान्यतः प्राप्त आंकड़ों के आधार पर निर्मित वक्र सामान्य संभाव्यता वक्र के अनुरूप प्राप्त नहीं होता है। उसमें सामान्य वक्र की अपेक्षा कुछ–न–कुछ विचलन प्राप्त होता है। यह विचलन मुख्यतः दो प्रकार का होता है–

1. विषमता
2. ककुदता

12.8.1 विषमता–

विषमता से तात्पर्य सामान्य वक्र में होने वाले अपसरण से है जो किसी जनसंख्या के माध्य और मध्यिका में होने वाले अन्तर से उत्पन्न होता है। सामान्य वक्र में माध्य, मध्यिता तथा बहुलांक वक्र की आधार रेखा के मध्य एक ही बिन्दु पर पड़ते हैं तथा इन तीनों का मान संख्यात्मक रूप से भी बराबर होता है। इसके फलस्वरूप सामान्य वक्र का

चित्र काफी संतुलित दीख पड़ता है क्योंकि इसका दायां और बायां भाग समान ढाल वाला और एक दूसरे के बराबर होता है। परन्तु जब वितरण सामान्य न होकर विषम होता है तो माध्य तथा मध्यिका एक ही बिन्दु पर न पड़कर अलग–अलग पड़ते हैं और प्राप्तांकों का केन्द्रीकरण वितरण के बायीं या दायीं ओर पर हो जाता है। सामान्य वक्र में माध्य और मध्यिका दोनों बराबर होते है, इसलिए विषमता शून्य होती है, परन्तु विषम वितरण में माध्य और मध्यिका में अन्तर होता है। यह अन्तर जितना ज्यादा होता है, विषमता उतनी अधिक होती है।

तो स्पष्ट है कि सामान्य वक्र में विषमता तभी उत्पन्न होती है जब आवृति वितरण में माध्य और मध्यिका के मानों का अन्तर बढ़ जाता है तथा इस कारण प्राप्तांकों का केन्द्रीकरण कभी वक्र के बायीं ओर तथा कभी वक्र के दायीं ओर हो जाता है। इसी कारण विषमता के दो प्रकार बताये गये हैं–

(i) ऋपात्मक विषमता तथा

(ii) धनात्मक विषमता

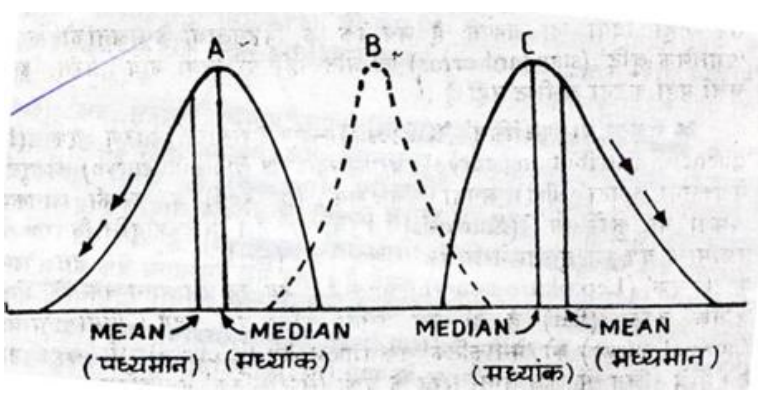

1. ऋणात्मक विषमता–

ऋणात्मक विषमता उसे कहते हें जब वितरण में अधिक प्राप्तांक 'स्केल' की दाई ओर अर्थात् ऊपरी छोर की ओर जमा रहते हैं और धीरे–धीरे बाई ओर यानी निचली छोर की ओर फैलते हैं। इस तरह के वितरण में मध्यमान, मध्यांक की बाई ओर होता है, अर्थात् यहाँ मध्यांक मध्यमान से बड़ा होता है।

2. घनात्मक विषमता–

घनात्मक विषमता में ऋणात्मक विषमता के ठीक विपरित, अधिक प्राप्तांक 'स्केल' की बाई ओर, अर्थात् नीचे की ओर जमा रहते हैं और धीरे–धीरे दाई अर्थात् ऊपरी छोर की

ओर फैलते हैं। इस प्रकार के वितरण में मध्यमान, मध्यांक की दाई ओर होता है, अर्थात् यहाँ मध्यांक, मध्यमान से छोटा होगा।

'विषमता' को इन दो 'सूत्रों' द्वारा ज्ञात किया जा सकता है–

(क) $$Sk = \frac{3\,(\text{माध्य} - \text{मध्यिका})}{\sigma}$$

यहाँ – Sk = विषमता, σ = मानक विचलन।

(ख) $$Sk = \frac{(P_{99} + P_{10})}{2} - P_{50}$$

जहां, SK = विषमता

P_{90} = प्रतिशतता 90

P_{10} = प्रतिशतता 10

P_{50} = प्रतिशतता 50 या मध्यिका

सूत्र 'क' का प्रयोग आवृत्ति वितरण से विषमता निकालने में तथा सूत्र 'ख' का प्रयोग प्रतिशत के आधार पर विषमता को निकालने में किया जाता है।

यदि Sk = 0 है तो इसका अर्थ हुआ कि वितरण 'प्रसामान्य' है। एक वितरण में कितनी विषमता होनी चाहिए जिससे कि इसे सार्थक रूप से विषम कहा जा सके, इसका उत्तर तब तक नहीं दिया जा सकता जब तक कि 'विषमताओं के सूचनांकों' के लिए 'मानक त्रुटि' को ज्ञात नहीं कर लिया जाये।

12.8.2 ककुदता या 'कुर्टोसिस'–

एक 'आवृत्ति वितरण वक्र' प्रसामान्य वक्र की तुलना में कितना 'चपटा' अथवा 'शिखरीय' है, इसकी जानकारी ककुदता या कुर्टोसिस' से मिलती है। यदि आवृत्ति वितरण वक्र प्रसामान्य वक्र की तुलना में अधिक शिखरीय है तो उसे लेप्टोकुर्टिक वक्र कहते हैं। जब यह प्रसामान्य वक्र की अपेक्षा अधिक चपटा है तो उसे 'प्लेटी कुर्टिक वक्र' कहेंगे। 'प्रसामान्य वक्र' को 'मेसोकुर्टिक' वक्र भी कहा जाता है। नीचे चित्र में इन तीनों तरह के वक्रों (लेप्टोकुर्टिक– मेसोकुर्टिक तथा प्लेटीकुर्टिक) को दर्शाया गया है।

'लेप्टोकुर्टिक' वक्र – बिंदु रेखा से,

सामान्य वक्र या 'मेसोकुर्टिक वक्र' सीधी रेखा से तथा

लेप्टोकुर्टिक' वक्र – टूटी रेखा से।

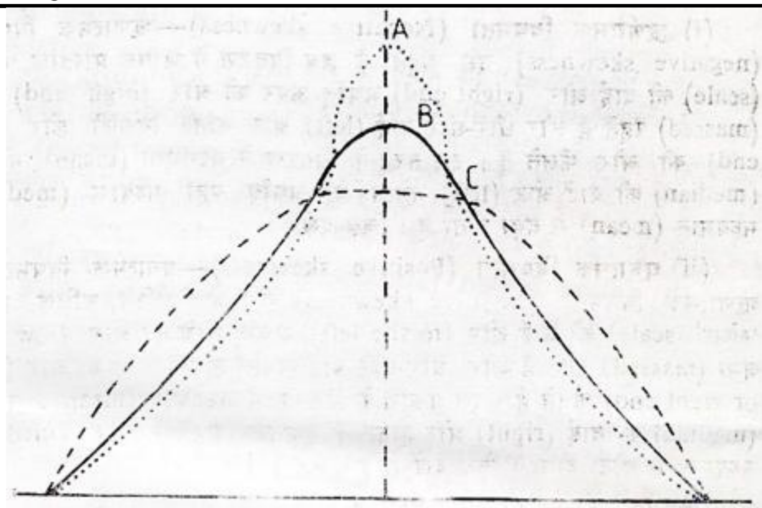

'ककुदता या 'कुर्टोसिस' को नीचे दिये गये 'सूत्र' द्वारा निकाला जा सकता है।

$$Ku = \frac{Q}{(P_{90} + P_{10})}$$ (प्रतिशत के आधार पर वक्रता को निकालना।)

जहां, Ku = ककुदता

Q = चतुर्थक विचलन

P_{90} = प्रतिशतता 90

P_{100} = प्रतिशतता 10

प्रसामान्य वक्र में Ku = .263 होता है।

$$Ku = \frac{.6745}{[1.28-(-1.28)]} = .263$$

टेबुल से ज्ञात होता है कि PE (Q) = .6745σ और P_{10}= - 1.28σ है। अतः यदि ककुदता .263 से अधिक है तो वितरण को प्लेटीकुर्टिक कहा जायेगा और कम है तो लेप्टोकुर्टिक।

12.9 सामान्य संभाव्यता वक्र के उपयोग–

यदि किसी गुण या विशेषता की माप की जाय और प्राप्त प्रदत्त का स्वरूप सामान्य या लगभग सामान्य हो तो ऐसी स्थिति में सामान्य वक्र के आधार पर किसी

जनसंख्या के सम्बन्ध में बहुत–सी जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इसके लिए सामान्य वक्र के विभिन्न उपयोगों की जानकारी आवश्यक है। आइये, यहाँ हम लोग सामान्य वक्र के कुछ आवश्यक उपयोगों या अनुप्रयोगों पर विचार करें।

12.9.1 अनुप्रयोग–1

सामान्य वक्र के आधार पर किसी सामान्य वितरण की दी हुई सीमाओं के अन्तर्गत आने वाले केसेज (प्राप्तांकों) का प्रतिशत ज्ञात करना।

यदि किसी सामान्य वितरण में प्राप्तांकों की सीमा मालूम है तो उस सीमा के भीतर आने वाले केसेज का प्रतिशत मालूम किया जा सकता है। उदाहरण स्वरूप, मान लीजिए कि एक सामान्य वितरण का माध्य 12 तथा मानक विचलन 4 है। अब यदि इस वितरण के प्राप्तांक 8 और 16 के बीच आने वाले केसेज (प्राप्तांकों) का प्रतिशत निकालना हो तो इसे आसानी से निम्नांकित तरीके से निकाला जा सकता है–

हम जानते हैं कि –

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$ जहाँ, X = प्राप्तांक

M = माध्य

σ = मानक विचलन तथा

Z = जेड प्राप्तांक

यहाँ, $M =$ 12 तथा $\sigma =$ 4 है। अब हम पहले प्राप्तांक 8 के लिए फिर प्राप्तांक 16 के लिए z का मान निकालेंगे।

प्राप्तांक 8 के लिए Z :–

$$Z = \frac{8-12}{4} = \frac{-4}{4} = -1.00$$

माध्य से -1σ के बीच कुल 34.13% केसेज आयेंगे (टेबुल–2) इसी प्रकार, प्राप्तांक 16 के लिए Z :-

$$Z = \frac{16-12}{4} = \frac{4}{4} = 1.00$$

माध्य से $+1\sigma$ के बीच 34.13% केसेज आयेंगे (टेबुल–.2)

यानी, प्राप्तांक 8 और 16 के बीच आने वाले केसेज (प्राप्तांकों) का प्रतिशत होगा (34.13+34.13) = 68.26.

दूसरे शब्दों में, हम कह सकते हैं कि इस वितरण में किसी प्राप्तांक के 8 और 16 के बीच आने की संभावना 100 में लगभग 68 बार है।

इसी तरीके से किसी दिए गए प्राप्तांक के ऊपर या किसी दिए गए प्राप्तांक के नीचे आने वाले केसेज का प्रतिशत भी ज्ञात किया जा सकता है।

12.9.2 अनुप्रयोग –2

किसी सामान्य वितरण में दिये गए प्रतिशत की प्राप्तांक सीमाएं निर्धारित करना

यदि वितरण सामान्य हो तथा हमें यह ज्ञात करना हो किसी दिए हुए प्रतिशत केसेज के ऊपर और नीचे के प्राप्तांक क्या हैं तो इसका पता हम सामान्य वक्र के आधार पर लगा सकते हैं। उदाहरण स्वरूप, मान लीजिए कि किसी सामान्य वक्र का माध्य 16 और मानक विचलन 4 है तो मध्य के 75 प्रतिशत की सीमाएं क्या होंगी?

यहाँ बीच का 75 प्रतिशत केसेज दिया हुआ है। इसका मतलब यह हुआ कि माध्य से 37.5 प्रतिशत ऊपर यानि, धनात्मक दिशा में तथा शेष 37.5 प्रतिशत नीचे यानि ऋणात्मक दिशा में इसका फैलाव है।

अब 37.50 प्रतिशत केसेज माध्य तथा 1.15σ के बीच पड़ता है तथा माध्य से नीचे भी माध्य और –1.15σ के बीच शेष 37.5 प्रतिशत केसेज पड़ता है (टेबुल 2)। इस तरह, यदि इस फैलाव की ऊपरी सीमा X हो तो,

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$

या, $1.15 = \frac{X - M}{\sigma}$

या, $x = 1.15\sigma + M = 1.15 \text{ x } 4 + 16 = 4.60 + 16 = 20.60$

पुनः,

यदि निचली सीमा X' हो तो

$$-1.15 = \frac{X' - 16}{4}$$

X' = 16 – 4.60 = 11.40

अतः दिए हुए वितरण में 75 प्रतिशत केसेज 20.60 तथा 11.40 के बीच पड़ता है।

उदारहण – 2 किसी वितरण की मध्यिका 150 तथा संभाव्य त्रुटि 17 है। यदि वितरण सामान्य हो तो ऊपरी 20 प्रतिशत तथा निचली 10 प्रतिशत की सीमाएं क्या होगी।

हल : σ = 1.4826 PE

= 1.4826 × 17 = 25.2042 = 25.20

चूंकि मध्यिका के ऊपर 50 प्रतिशत कैसेज/प्राप्तांक रहते हैं, अतः अधिकतम 20 प्रतिशत के निचली सीमा और मध्यिका के बीच 30 प्रतिशत कैसेज पड़ेंगे। मध्यिका से इस 30 प्रतिशत का फैलाव σ –दूरी में टेबुल–2 के अनुसार .84 होगा।

अब, $Z = \frac{X - M}{\sigma} or, 0.84 = \frac{X - M}{\sigma}$

X-M = .84σ = .84 x 25.20 = 21.17

X = 21.17 + 150 = 171.17

अतः उच्चतम 20 प्रतिशत का निचली सीमा 171.17 होगी तथा ऊपरी सीमा वितरण का अधिकतम प्राप्तांक होगा, चाहे उसका मान जो हो।

पुनः चूंकि मध्यिका के नीचे भी 50 प्रतिशत कैसेज रहता है। अतः निम्नतम 10 प्रतिशत के ऊपरी सीमा तथा मध्यिका के बीच 40 प्रतिशत कैसेज होंगे। इस 40 प्रतिशत का फैलाव σ – दूरी में टेबुल–2 के अनुसार -1.28 होगा।

अब, $-1.28 = \frac{X' - M}{\sigma}$

X' – M = - 1.28 x 25.20 = -32.26

X' = 150 – 32.26

= 117.74

इस तरह वितरण के निम्नतम 10% का ऊपरी सीमा 117.94 होगा तथा निचली सीमा वितरण का न्यूनतम प्राप्तांक होगा। चाहे उसका मान कुछ भी हो।

12.9.3 अनुप्रयोग –3

दो सामान्य वितरणों की आच्छांदन के सन्दर्भ में तुलना करना।

सामान्य वितरण के आधार पर दो विभिन्न वितरणों, जो आपस में आच्छादित होते हैं, की तुलना की जा सकती है। उदाहरणस्वरूप, मान लीजिए, छात्र तथा छात्राओं के समूह पर एक बुद्धि परीक्षण प्रशासित किया गया। छात्रों का मध्यमान 105 तथा प्रमाणिक विचलन 10 प्राप्त हुआ, जबकि छात्राओं का मध्यमान 101 तथा प्रामाणिक विचलन 12 प्राप्त हुआ। छात्र तथा छात्राओं के परिणामों को सामान्य वितरण के रूप में मानते हुए बताइये–

1.छात्रों के मध्यमान से कितने प्रतिशत छात्राओं के बुद्धि–लब्धि प्राप्तांक अधिक हैं?

2.छात्राओं के मध्यमान से कितने प्रतिशत छात्रों के बुद्धि–लब्धि प्राप्तांक कम प्राप्त हुए हैं?

सामान्य वितरण के सूत्र का प्रयोग कर इस समस्या का समाधान निम्नवत् किया जा सकता है।

सर्वप्रथम छात्राओं के मध्यमान तथा छात्रों के मध्यमान के मध्य स्थित प्रतिशत ज्ञात करेंगे। प्राप्त प्रतिशत के छात्राओं के मध्यमान बिन्दु के दांयी ओर के कुल 50 प्रतिशत में से घटाकर उन छात्राओं के प्रतिशत को ज्ञात कर सकते हैं जिनकी बुद्धि–लब्धि छात्रों के मध्यमान से अधिक है।

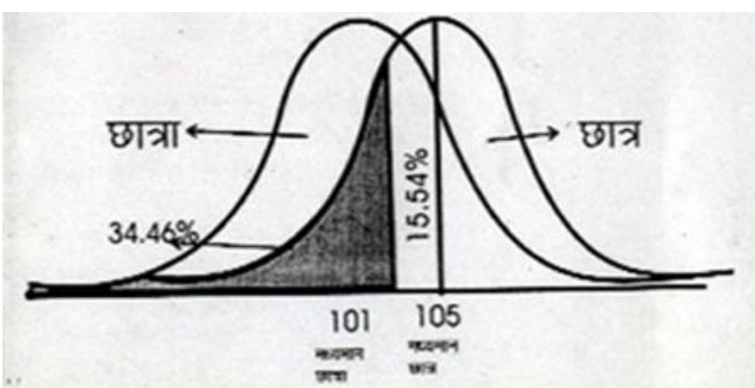

छात्राओं के मध्यमान से छात्रों के मध्यमान तक प्रतिशत ज्ञात करने के लिये जेड Z मूल्य ज्ञात करेंगे—

$$Z = \frac{X\text{-}M}{\sigma} = \frac{105-101}{12} = \frac{4}{12} = .33$$

0.33 Z मूल्य के आधार पर टेबुल—2 का निरीक्षण करने से स्पष्ट होता है कि छात्राओं के मध्यमान से छात्रों के मध्यमान तक 12.93 प्रतिशत छात्रायें स्थित हैं, अतः छात्रों के मध्यमान से अधिक कुल (50—12.93) 37.07 प्रतिशत छात्रायें स्थित हैं।

इसी प्रकार, छात्रों के मध्यमान से छात्राओं के मध्यमान के मध्य स्थित छात्रों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। बांयी ओर के छात्रों के कुल 50 प्रतिशत में से प्राप्त प्रतिशत को घटाकर उन छात्रों के प्रतिशत को ज्ञात कर सकते हैं, जिनकी बुद्धि—लब्धि छात्राओं के मध्यमान से कम है।

छात्रों के मध्यमान से छात्राओं के मध्यमान तक बुद्धि—लब्धि प्राप्तांक रखने वाले छात्रों का प्रतिशत होगा—

$$Z = \frac{X\text{-}M}{\sigma} = \frac{101-105}{10} = \frac{-4}{10} = .40$$

—0.40 Z मूल्य के आधार पर टेबुल—2 का निरीक्षण करने से स्पष्ट होता है, कि छात्रों के मध्यमान तथा छात्राओं के मध्यमान के मध्य 15.54 प्रतिशत छात्र स्थित हैं, अतः छात्राओं के मध्यमान से कम बुद्धि—लब्धि प्राप्तांक रखने वाले छात्र (50—15.54) 34.46 प्रतिशत हैं।

12.9.4 अनुप्रयोग 4—

किसी सामान्य वितरण समूह को विभिन्न उपसमूहों में विभाजित करना।

चूँकि सामान्य वितरण का विस्तार -3σ से $+3\sigma$ तक कुल छः σ दूरियां रहता है, अतः इन छः भागों के आधार पर किसी सामान्य वितरण को जितने भागों में बांटना चाहें, बांट सकते हैं। उदाहरण स्वरूप मान लीजिए कि एक सामान्य वितरण समूह को पाँच उपसमूहों में विभक्त करना है तथा प्रत्येक उप समूह में स्थित प्रतिशत बताना है। यदि विद्यार्थियों की संख्या 500 है, प्रत्येक उपसमूह में कितने विद्यार्थी स्थित होंगे?

सामान्य वितरण वक्र का विस्तार —3 से +3 मानक विचलन के मध्य प्रमुख रूप से होते हैं, अतः सामान्य वितरण वक्र का विस्तार 6 Z मूल्य (सिग्मा दूरी) को माना जाता है। जितने उपसमहों में सामान्य वितरण वक्र को विभाजित करना है, उस संख्या से 6 में भाग दिया जाता है ताकि प्रत्येक उपसमूह का समान विस्तार ज्ञात हो जाये। यदि हमें पाँच उपसमूहों में सामान्य वितरण को विभक्त करना है, तब प्रत्येक उप समूह का विस्तार 6/5 यानी, 1.20 Z मूल्य का होगा। प्रत्येक उपसमूह का विस्तार 1.20 Z मूल्य निर्धारित करते

हुए पाँच उपसमूह में सामान्य वितरण वक्र को विभक्त करते हैं। मान लीजिए ये उपसमूह क्रमशः A, B, C, D तथा E है ।

उपसमूह A का विस्तार–3 से–1.80 तक यानी, (50–46.41 प्रतिशत) यानी, 3.59 प्रतिशत

उपसमूह B का विस्तार–1.80 से –0.60 तक यानी, (46.41–22.57) यानी, 23.84 प्रतिशत

उपसमूह C का विस्तार–0.60 से +0.60 तक यानी, (22.57+22.57) यानी, 45.14 प्रतिशत

उपसमूह D का विस्तार+0.60 से +1.80 तक यानी, (46.41–22.57) यानी, 23.84 प्रतिशत

उपसमूह E का विस्तार +1.80 से + 3.00 तक यानी, (50–46.41) यानी, 3.59 प्रतिशत

कुल योग 100 प्रतिश

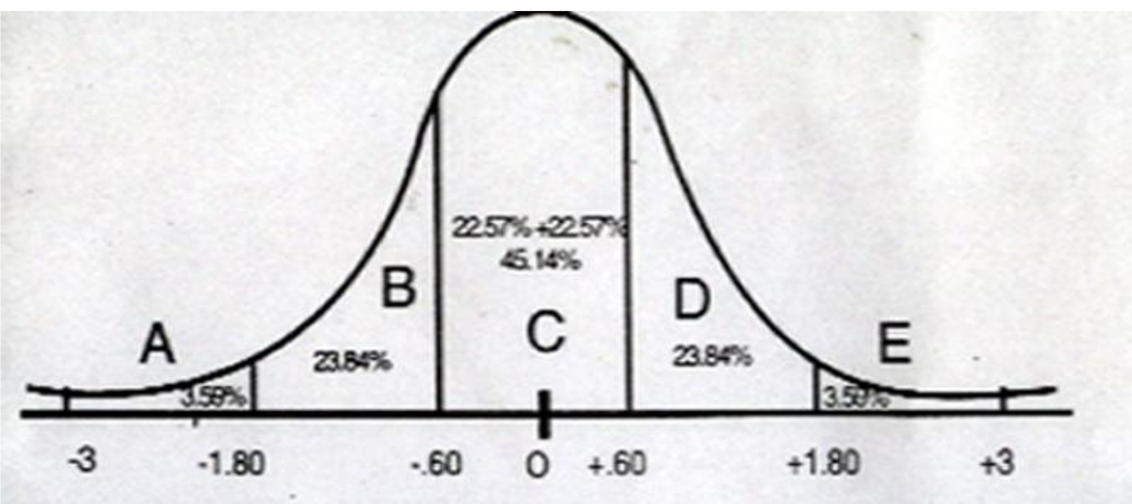

प्रथम उपसमूह का विस्तार निर्धारित करने के लिए बांयी ओर –3 Z मूल्य से 1.20 Z मूल्य को घटाया गया (3–1.20) जो कि –1.80 प्राप्त हुआ। अतः प्रथम उपसमूह A का विस्तार –3 से –1.80 निर्धारित होता है। इसी प्रकार उपसमूह B का विस्तार –1.80 से –0.60 (1.80–1.20) तक निर्धारित किया गया। उपसमूह C का विस्तार –0.60 से +0.60 तक निर्धारित किया गया। उपसमूह D का विस्तार + 0.60 से +1.80 (0.60 +1.20) तक निर्धारित किया गया। उपसमूह E का विस्तार +1.80 से +3 तक निर्धारित हुआ। इस प्रकार प्रत्येक उपसमूह का विस्तार समान रूप से 1.20 मूल्य निर्धारित है।

प्रथम समूह A का प्रतिशत ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम –1.80 Z मूल्य का प्रतिशत टेबुल–2 A से ज्ञात किया गया जो कि 46.41 प्राप्त हुआ। इस प्रकार मध्यमान बिन्दु से बांयी ओर के Z मूल्य –1.80 का प्रतिशत 46.41 हैं, जबकि मध्यमान बिन्दु से बांयी ओर का कुल प्रतिशत 50 है अतः –3 से –1.80 का प्रतिशत 50–46.41 = 3.59 प्रतिशत हुआ। इसी प्रकार उपसमूह B का प्रतिशत ज्ञात करते हैं। Z मूल्य – 0.60 का प्रतिशत टेबुल–2 A द्वारा 22.57 प्रतिशत ज्ञात हुआ, अतः उपसमूह B का प्रतिशत ज्ञात करने के लिए Z मूल्य –1.80 के प्रतिशत 46.41 में से –0.60 Z मूल्य के प्रतिशत 22.57 को घटाकर (46.41–22.57) 23.84 प्रतिशत प्राप्त किया। उपसमूह C का प्रतिशत –0.60 Z मूल्य के प्रतिशत 22.57 तथा +0.60 Z मूल्य के प्रतिशत 22.57 का योग (22.57+22.57) कर 45.14 प्रतिशत निर्धारित किया गया। उपसमूह D का प्रतिशत उपसमूह B के समान ही (46.41–22.57) 23.84 प्रतिशत प्राप्त किया। इसी प्रकार उपसमूह E का प्रतिशत (50–46.41) 3.59 निर्धारित किया गया। यदि सभी उपसमूहों के निर्धारित प्रतिशत का योग किया जाये तब यह योग लगभग 100 प्राप्त होता है।

प्रत्येक उपसमूह का प्रतिशत निर्धारित होने के पश्चात् निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्रत्येक उपसमूह में स्थित विद्यार्थियों की संख्या भी ज्ञात कर सकते हैं –

$$\text{विद्यार्थियों की संख्या} = \frac{\text{उपसमूह का प्रतिशत} \times \text{कुल विद्यार्थियों की संख्या}}{100}$$

सूत्र के आधार पर –

$$\text{प्रथम उपसमूह A के विद्यार्थियों की संख्या} = \frac{3.59 \times 500}{100} = 17.95 = 18$$

$$\text{द्वितीय उपसमूह B के विद्यार्थियों की संख्या} = \frac{23.84 \times 500}{100} = 119.20 = 119$$

$$\text{तृतीय उपसमूह C के विद्यार्थियों की संख्या} = \frac{45.14 \times 500}{100} = 225.70 = 226$$

चतुर्थ उपसमूह D के विद्यार्थियों की संख्या $= \frac{23.84 \times 500}{100} = 119.20 = 119$

पंचम उपसमूह E के विद्यार्थियों की संख्या $= \frac{3.95 \times 500}{100} = 17.95 = 18$

इसी प्रकार किसी सामान्य वितरण वक्र को विभिन्न उपसमूहों जैसे 3, 4 व 6 उपसमूहों में विभाजित कर प्रत्येक उपसमूह में स्थित प्रतिशत निर्धारित कर सकते हैं। जैसे निम्नलिखित चित्र द्वारा स्पष्ट है।

तीन उपसमूहों में विभक्त करना

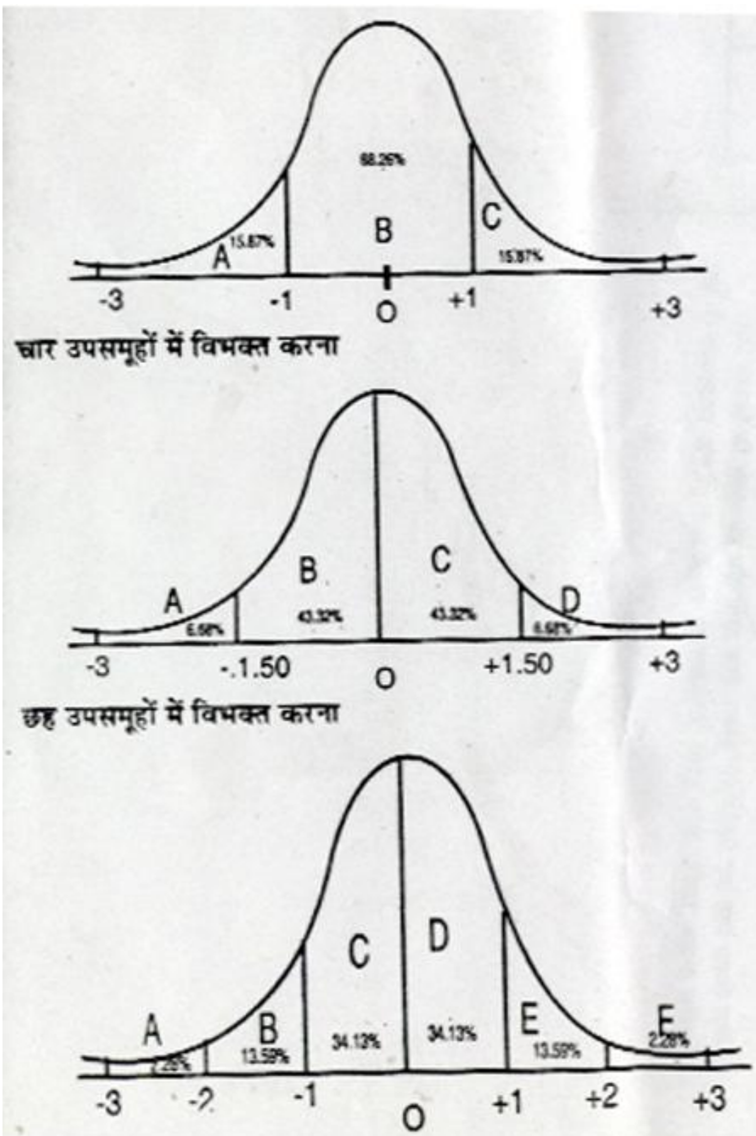

12.9.5 अनुप्रयोग 5

मनोवैज्ञानिक परीक्षण के पदों की सापेक्षिक कठिनाई स्तर का निर्धारण करना।

मान लीजिए कि स्नातक स्तर के प्रथम वर्ष के विद्यार्थियों पर एक बुद्धि परीक्षण प्रशासित किया गया। परीक्षण के प्रथम पद को 50 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा द्वितीय पद को 30 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा तथा तृतीय पद को 20 प्रतिशत विद्यार्थियों द्वारा हल किया गया। सामान्य वितरण मानते हुए प्रत्येक पद का कठिनता स्तर ज्ञात कीजिये। चतुर्थ पद कितने प्रतिशत विद्यार्थी हल कर पायेंगे, जबकि चतुर्थ पद तृतीय पद से उतना ही कठिन है, जितना कि द्वितीय पद प्रथम पद की अपेक्षा कठिन है।

हल : प्रथम पद को 50 प्रतिशत विद्यार्थी हल कर पाते हैं, जबकि 50 प्रतिशत हल नहीं कर पाते हैं, अतः इस प्रकार के पद का कठिनता स्तर (50–50) शून्य माना जाता है।

द्वितीय पद को 30 प्रतिशत विद्यार्थी हल कर पाते हैं जबकि मध्यमान से शेष 20 प्रतिशत (50–30) विद्यार्थी, हल नहीं कर पाते हैं। अतः 20 प्रतिशत का Z मूल्य 0.52 (टेबुल–2 के आधार पर) हुआ जो कि द्वितीय पद का कठिनता स्तर है।

तृतीय पद को 20 प्रतिशत विद्यार्थी हल कर पाते हैं, यानी कि मध्यमान से शेष 30 प्रतिशत (50–20) विद्यार्थी हल नहीं कर पाते हैं। अतः 30 प्रतिशत का Z मूल्य 0.84 (टेबुल–2 के आधार पर) हुआ जो कि तृतीय पद का कठिनता स्तर है।

चतुर्थ पद तृतीय पद से उतना ही कठिन है जितना कि द्वितीय पद प्रथम पद की अपेक्षा कठिन है। चूंकि द्वितीय पद प्रथम पद की अपेक्षा 0.52 अधिक कठिन है, अतः, चतुर्थ पद का कठिनता स्तर तृतीय पद के कठिनता स्तर 0.84 से 0.52 अधिक कठिन है, इस प्रकार चतुर्थ पद का कठिनता स्तर (0.84+0.52) 1.36 Z मूल्य के रूप में प्राप्त होता है। Z मूल्य 1.36 के आधार पर टेबुल–2 द्वारा निरीक्षण करने से स्पष्ट है कि चतुर्थ पद को केवल 8.69 प्रतिशत विद्यार्थी ही हल कर पाते हैं। (50–41.31 = 8.69 प्रतिशत)। निम्न ग्राफ देखें –

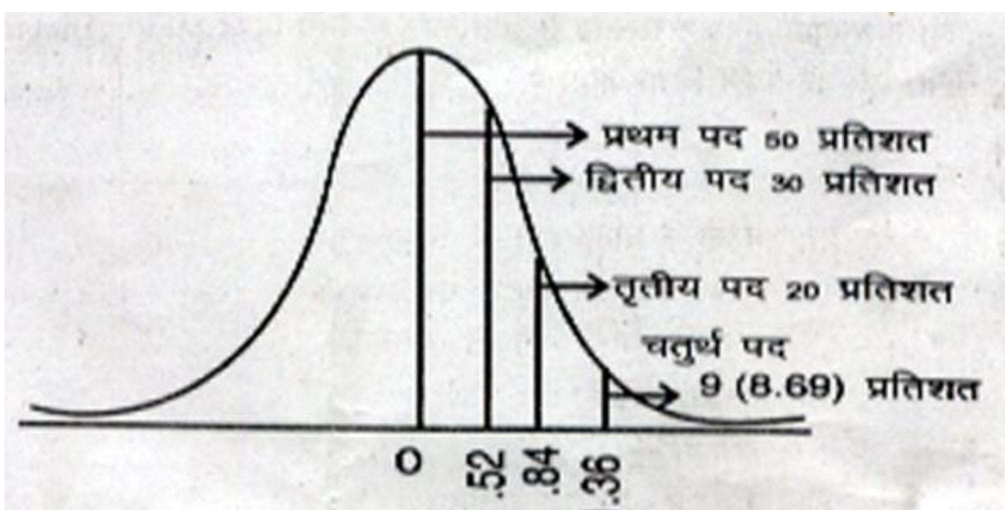

परिणाम को नीचे की तालिका से समझा जा सकता है –

पद संख्या	हल किये गये विद्यार्थियों का प्रतिशत	कनिठता स्तर	अन्तर
प्रथम पद	50	0	0.52
द्वितीय पद	30	.52	
तृतीय पद	20	.84	).52
चतुर्थ पद	9 (8.69%)	1.36	

अभ्यास प्रश्न

1. **सामान्य संभाव्यता वक्र का जन्मदाता किसे कहा जाता हैं?**
2. **यदि किसी सामान्य वितरण का माध्य 25 तथा मानक विचलन 5 है तो प्राप्तांक 30 का जेड–मूल्य कितना होगा?**
3. **यदि किसी सामान्य वितरण का माध्य 20 और मानक विचलन 6 है तो प्राप्तांक 14 सामान्य वक्र में माध्य के बायें होगा या दायें?**
4. **किसी सामान्य वक्र में $M\pm1\sigma$ के बीच कुल कितने प्रतिशत केसेज आते हैं?**

12.10 सारांश

- चर सामान्य वक्र सामान्य रूप से वितरित प्रदत्त के आधार पर तैयार होता है। यह घंटाकार वक्र होता है जिसकी ऊँचाई बीच में अधिकतम होती है तथा दोनों किनारों की ओर इसकी ऊँचाई घटती जाती है। यह वक्र आधार रेखा को कभी स्पर्श नहीं करती।

- सामान्य वक्र के दोनों ही ओर मध्य–बिन्दु से समान दूरी पर या एक दी हुई सीमा के भीतर पड़ने वाले केसेज का प्रतिशत समान होता है।

- सामान्य वक्र की आधार रेखा को σ –इकाई में मापते हैं। वक्र की आधार रेखा पर मध्य–बिन्दु से दायें तथा बायें तीन–तीन σ –इकाइयों में वक्र बंटा होता है। यानी आधार रेखा कुछ छः भागों में बंटी होती है। मध्य–बिन्दु से बायें भाग की ओर क्रमशः -1σ, -2σ तथा -3σ का फैलाव होता है तथा इसी तरह, मध्य–बिन्दु से दायें भाग की ओर क्रमशः $+1\sigma$, $+2\sigma$ तथा $+3\sigma$ का फैलाव होता है।

- माध्य से σ–दूरी को जेड– प्राप्तांक भी कहते हैं। जेड–प्राप्तांक ज्ञात करने का सूत्र होता है–

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$

- सामान्य संभाव्यता वक्र से दो तरह का विचलन पाया जाता है जिसे विषमता एवं ककुदता के रूप में जानते हैं। विषमता से तात्पर्य सामान्य वक्र में होने वाले अपसरण से है जो किसी जनसंख्या के माध्य और मध्यिका में होने वाले अन्तर से उत्पन्न होता है। विषमता दो तरह की होती है– ऋणात्मक विषमता तथा धनात्मक विषमता। ककुदता से तात्पर्य किसी वितरण का सामान्य वितरण की तुलना में अधिक 'चपटा' या 'शिखरीय' होना है। अधिक चपटा वितरण का वक्र प्लेटीकुर्टिक तथा अधिक शिखरीय वितरण का वक्र लेप्टोकुर्टिक कहलाता है।

- सामान्य संभाव्यता वक्र के निम्नलिखित महत्वपूर्ण अनुप्रयोग हैं–

(क) इसके आधार पर किसी सामान्य वितरण की दी हुई सीमाओं के अन्तर्गत आने वाले प्राप्तांकों का प्रतिशत ज्ञात किया जा सकता है।

(ख) किसी सामान्य वितरण में दिए गए प्रतिशत की प्राप्तांक सीमाएं निर्धारित की जा सकती हैं।

(ग) दो सामान्य वितरणों की आच्छादन के संदर्भ में तुलना की जा सकती है।

(घ) किसी सामान्य वितरण समूह को विभिन्न उपसमूहों में विभाजित किया जा सकता है।

(च) मनोवैज्ञानिक परीक्षण के पदों की सापेक्षिक कठिनाई स्तर को निर्धारित किया जा सकता है।

12.11 शब्दावली

सामान्य वक्र : किसी सामान्य वितरण के प्राप्तांकों से निर्मित वैसा वक्र जो देखने में घंटाकार होता है तथा जिसकी ऊँचाई मध्य में अधिकतम होती है एवं दोनों किनारों की ओर क्रमशः घटती जाती है परन्तु आधार रेखा को कभी नहीं छूती।

विषमता : जब किसी वितरण का माध्य और मध्यिका समान न होकर अलग–अलग मूल्यों का होता है तो इसके अन्तर से सामान्य वक्र में उत्पन्न होने वाला अपसरण विषमता कहलाता है।

ककुदता : ककुदता से तात्पर्य किसी वितरण का सामान्य वक्र की तुलना में अधिक चपटा या शिखरीय होने से है।

12.12 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. ए0 डी–मुवरे
2. 1.00
3. बायें
4. 68.26 प्रतिशत

12.13 संदर्भ –ग्रन्थ सूची

1. श्रीवास्तव, डी.एन. सांख्यिकी एवं मापन, विनोद प्रस्तक मंदिर, आगरा।
2. भाटिया, टी. आधुनिक मनोवैज्ञानिक सांख्यिकी, लावण्य प्रकाशन, उरई।
3. सिन्हा एवं मिश्रा, मनोविज्ञान में प्रयोग परीक्षण एवं सांख्यिकी, भारती भवन, पटना
4. गैरेट एवं वुडवर्थ, स्टैटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन, वैकिल्स, फिफर एण्ड साइमन्स लि. बॉम्बे।
5. कपिल, एच.के. सांख्यिकीय विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

12.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. सामान्य वक्र से आप क्या समझते हैं? इसकी विशेषताओं का उल्लेख करें।
2. सामान्य वितरण से होने वाले विचलनों से आप क्या समझते हैं? उदाहरण के साथ विषमता एवं ककुदता को समझायें।
3. एक सामान्य वितरण का माध्य 50 तथा मानक विचलन 10 है तो बतायें कि

   (क) माध्य तथा प्राप्तांक 65 के बीच कितने प्रतिशत केसेज पड़ेंगे?

(ख) प्राप्तांक 45 के नीचे आने वाले केसेज का प्रतिशत क्या होगा?

टेबुल–2

प्रसामान्य वक्र के क्षेत्रफल की सारणी

(Table of Areas Under the Normal Curve)

[प्रसामान्य वितरण क्षेत्र के अन्तर्गत मध्यमान (**mean**) से σ-इकाई (σ-**unit**) दूरी (distances) के अन्दर आने वाली संख्याओं या 'केसेज' (cases) का सूचनांक या विवरण टेबुल-F (**Table-F**) से ज्ञात हो सकता है। 'प्रसामान्य वक्र' (normal curve) के कुल क्षेत्र (total area) के अन्तर्गत 10,000 'केसेज' पड़ते हैं, मान लिया गया है। यह मानते हुए, मध्यमान से विभिन्न σ-इकाई (σ-unit) दूरी निकाल कर, दिये हुए 'प्राप्तांक (scores) अथवा, 'प्रतिशत' (percentage) से संख्या या 'केसेज' निश्चित किये जा सकते हैं।]

उदाहरण (Example)—मध्यमान (M) और $1{\cdot}25\sigma$ $\left(\frac{x}{\sigma} = 1{\cdot}25\right)$ बिन्दु के बीच सम्पूर्ण वक्र (curve) का 39·44% क्षेत्रफल (area) आता है।

$\frac{x}{\sigma}$	·00	·01	·02	·03	·04	·05	·06	·07	·08	·09
0·0	0000	0040	0080	0120	0160	0199	0239	0279	0319	0359
0·1	0398	0438	0478	0517	0557	0596	0636	0675	0714	0753
0·2	0793	0822	0871	0910	0948	0987	1026	1064	1103	1141
0·3	1179	1217	1255	1293	1331	1368	1406	1443	1480	1517
0·4	1554	1591	1628	1664	1700	1736	1772	1808	1844	1879
0·5	1915	1950	1985	2019	2054	2088	2123	2157	2190	2224
0·6	2257	2291	2324	2357	2389	2422	2454	2486	2517	2549
0·7	2580	2611	2642	2673	2704	2734	2764	2794	2823	2852
0·8	2881	2910	2939	2967	2995	3023	3051	3078	3106	3133

$\frac{x}{\sigma}$	·00	·01	·02	·03	·04	·05	·06	·07	·08	·09
0·9	3159	3186	3212	3238	3264	3290	3315	3340	3365	3389
1·0	3413	3438	3461	3485	3508	3531	4554	3577	3599	3621
1·1	3643	3665	3686	3708	3729	3749	3770	3790	3810	3830
1·2	3849	3869	3888	3907	3925	3944	3962	3980	3997	4015
1·3	4032	4049	4066	4082	4099	4115	4131	4147	4162	4177
1·4	4192	4207	4222	4236	4251	4265	4279	4292	4306	4319
1·5	4332	4345	4357	4370	4383	4394	4406	4418	4429	4441
1·6	4452	4463	4474	4484	4495	4505	4515	4525	4535	4545
1·7	4554	4564	4573	4582	4591	4599	4608	4616	4625	4633
1·8	4641	4649	4656	4664	4671	4678	4686	4693	4699	4706
1·9	4713	4719	4726	4732	4738	4744	4750	4756	4761	4767
2·0	4772	4778	4783	4788	4793	4798	4803	4808	4812	4817
2·1	4821	4826	4830	4834	4838	4842	4846	4850	4854	4857
2.2	4861	4864	4868	4871	4875	4878	4881	4884	4887	4890
2.3	4893	4896	4998	4901	4904	4906	4909	4911	4913	4916
2·4	4918	4920	4922	4925	4927	4929	4931	4932	4934	4936
2·5	4938	4940	4941	4943	4945	4946	4948	4949	4951	4952

$\frac{x}{\sigma}$	·00	·01	·02	·03	·04	·05	·06	·07	·08	·09
2·6	4953	4955	4956	4957	4959	4960	4961	4962	4963	4964
2·7	4965	4966	4967	4968	4969	4970	4971	4972	4973	4974
2·8	4974	4975	4976	4977	4977	4978	4979	4979	4980	4981
2·9	4981	4982	4982	4983	4984	4984	4985	4985	4986	4986
3·0	4886·5	4986·9	4987·4	4987·8	4988·2	4988·6	4288·9	4989·3	4989·7	4990·0
3·1	4990·3	4990·6	4991·0	4991·3	4991·6	4991·8	4992·1	4992.4	4992·6	4992·6
3·2	4993·129									
3·3	4995·166									
3·4	4996·631									
3·5	4997·674									
3·6	4998·409									
3·7	4998·922									
3·8	4999·277									
3·9	4999·519									
4·0	4999·683									
4·5	4999·966									
5·0	4999·997133									

इकाई–13 सामान्य संभाव्यता वक्र सम्बन्धी प्रश्न

इकाई की संरचना–

13.1 प्रस्तावना

13.2 उद्देश्य

13.3 जेड–प्राप्तांक पर आधारित प्रश्न

13.3.1 हल किए गए प्रश्न

13.4 प्रसामान्यता से अपसरण पर आधारित प्रश्न

13.4.1 हल किए गए प्रश्न

13.5 सामान्य संभाव्यता वक्र के अनुप्रयोग पर आधारित प्रश्न

13.5.1 हल किए गए प्रश्न

13.6 सारांश

13.7 शब्दावली

13.8 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

13.10 निबन्धात्मक प्रश्न

13.1 प्रस्तावना–

पिछली इकाई में आपने सामान्य संभाव्यता वक्र के संप्रत्यय विशेषताएं, सामान्यता से अपसरण आदि के बारे में जानकारी प्राप्त की तथा सामान्य संभाव्यता वक्र के विभिन्न अनुप्रयोगों का अध्ययन किया।

प्रस्तुत इकाई में आप सामान्य संभाव्यता सम्बन्धी विभिन्न प्रश्नों को हल करने का अभ्यास करेंगे। सुविधा की दृष्टि से अभ्यास को तीन शीर्षकों में विभाजित कर दिया गया है– जेड–प्राप्तांक से सम्बद्ध, प्रसामान्यता से अपसरण पर आधारित तथा सामान्य संभाव्यता वक्र के अनुप्रयोग पर आधारित अभ्यास प्रश्न।

हमें विश्वास है कि इस इकाई का सही अभ्यास आपको सामान्य संभाव्यता वक्र से सम्बन्धित विभिन्न सवालों को हल करने में मददगार साबित होगा, साथ–ही सामान्य वक्र के संप्रत्यय एवं अनुप्रयोगों को आप और सही ढंग से समझने एवं व्याख्या करने में सक्षम हो सकेंगे।

13.2 उद्देश्य–

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो पायेंगे कि आप–

1. सामान्य वक्र में जेड–प्राप्तांक पर आधारित प्रश्नों को हल कर सकें।
2. सामान्यता से अपसरण पर आधारित प्रश्नों को हल कर सकें एवं इसके आधार पर विषमता एवं ककुदता का अन्तर स्पष्ट कर सकें।
3. सामान्य वक्र के विभिन्न अनुप्रयोगों पर आधारित प्रश्नों को हल करने में सक्षम हो सकें।

13.3 जेड – प्राप्तांक पर आधारित प्रश्न –

जैसा कि हमनें इकाई 12 में देखा – जेड प्राप्तांक द्वारा सामान्य वक्र की आधार रेखा को मापा जाता है जिसे σ–इकाई भी कहते हैं। इसका सूत्र होता है –

$$Z = \frac{X - M}{\sigma} \text{ या } \frac{x}{\sigma}$$ जहां, $x = X - M$ (माध्य से प्राप्तांक का विचलन)

13.3.1 हल किए गए प्रश्न –

प्रश्न – 1 यदि किसी सामान्य वक्र में माध्य 15 और मानक विचलन 5 हो तो प्राप्तांक 10 का जेड़ मूल्य क्या होगा? यह प्राप्तांक माध्य के बांयी ओर होगा या दायीं ओर?

पस्तुत सवाल में,

X = 10

M = 15

$\sigma = 5$ है,

अतः, $Z = \frac{X - M}{\sigma} = \frac{10 - 15}{5} = \frac{-5}{5} = -1$

चूंकि जेड–मूल्य ऋणात्मक है, अतः प्राप्तांक 10 माध्य से बांयी ओर 1 σ इकाईं दूरी पर पड़ेगा।

प्रश्न – 2 किसी वितरण का माध्य 16 तथा मानक विचलन 6 है। यदि वितरण सामान्य है तो प्राप्तांक 22 का जेड़–मूल्य क्या होगा और सामान्य वक्र में इसका स्थान माध्य के बांयी ओर होगा या दायीं ओर?

प्रस्तुत सवाल में,

X = 22

M = 16

$\sigma = 6$

अतः, $Z = \frac{22 - 16}{6} = \frac{6}{6} = 1$

चूंकि जेड–मूल्य धनात्मक है, अतः प्राप्तांक 22 माध्य से दायीं ओर 1 σ इकाई दूरी पर पड़ेगा।

अभ्यास प्रश्न – क

1. **यदि किसी सामान्य वितरण में माध्य 10 तथा मानक विचलन 2 है तो 1.5 जेड़–मूल्य के लिए प्राप्तांक क्या होगा?**
2. **यदि किसी सामान्य वितरण का जेड–मूल्य 2.0 हो तथा माध्य 12 हो तो प्राप्तांक 18 का मानक विचलन क्या होगा?**

13.4 प्रसामान्यता से अपसरण पर आधारित प्रश्न–

सामान्य वक्र में दो तरह के अपसरण पाये जाते हैं–विषमता एवं ककुदता। दोनों की चर्चा इकाई 12 में की जा चुकी है। विषमता ज्ञात करने का सूत्र निम्नवत है –

$$SK = \frac{3(M - Mdn)}{\sigma}$$

जहां, SK = विषमता

M = माध्य

Mdn = मध्यिका

σ = मानक विचलन

उपर्युक्त सूत्र का प्रयोग तब किया जाता है जब विषमता की गणना आवृत्ति वितरण के दिए रहने पर करनी होती है।

यदि प्रतिशत के आधार पर विषमता ज्ञात करनी हो निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$$SK = \frac{P_{90} + P_{10}}{2} - P_{50}$$

जहां, SK = विषमता

P_{90} = प्रतिशतता 90

P_{10} = प्रतिशतता 10

P_{50} = प्रतिशतता 50 या मध्यिका

ककुदता ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

$$Ku = \frac{Q}{P_{90} - P_{10}}$$

जहां, Ku = ककुदता

Q = चतुर्थक विचलन

P_{90} प्रतिशतता 90

P_{100} प्रतिशतता 10

13.4.1 हल किए गए प्रश्न –

प्रश्न–1 यदि किसी वितरण का माध्य 25, मध्यिका 24 तथा मानक विचलन 6 हो तो क्या यह विचलन सामान्य है? यदि नहीं, तो इसमें किस प्रकार की विषमता है?

प्रस्तुत सवाल में,

$M = 25, Md^n = 24$ तथा $\sigma = 6$

अतः, $SK = \frac{3(25-24)}{6}$

$= \frac{3\times1}{6} = \frac{3}{6} = 0.5$

अतः वितरण सामान्य नहीं है, बल्कि इसमें 0.5 धनात्मक विषमता है।

प्रश्न 2 यदि किसी वितरण की मध्यिका 52 तथा P_{90} एवं P_{10} तो एवं क्रमशः 82 एवं 21 हो तो क्या वितरण विषम होगा?

प्रस्तुत सवाल में,

$Md^n = 52$, यानी $P_{50} = 52$

$P_{90} = 82$

$P_{10} = 21$

अतः सूत्र, $SK = \frac{P_{50} + P_{10}}{2} - P_{50}$ का प्रयोग करने पर,

$SK = \frac{82+21}{2} - 52$

$\frac{103}{2} - 52$

$= 51.5 – 52$

$= - 0.5$

अतः विवरण सामान्य नहीं है बल्कि इसमें 0.5 ऋणात्मक विषमता है।ष

प्रश्न 3 – यदि किसी वितरण में चतुर्थक विचलन का मान 24 हो तथा उसकी P_{90} एवं P_{10} प्रतिशतता क्रमशः 64 एवं 14 हो तो वितरण में किस प्रकार की ककुदता होगी?

प्रस्तुत सवाल में,

$Q = 24$

$P_{90} = 64$

$P_{10} = 14$

अतः सूत्र, $Ku = \frac{Q}{P_{90} - P_{10}}$ का प्रयोग करने पर,

$$Ku = \frac{24}{64-14} = \frac{24}{50} = .480$$

चूंकि प्राप्त ककुदता का मान 0.263 से अधिक है, अतः वितरण प्लैटीकुर्टिक कहा जायेगा, यानी वितरण से बना वक्र सामान्य वक्र की तुलना में चपटा होगा।

अभ्यास प्रश्न – ख

1. **यदि किसी वितरण का माध्य 24 तथा मध्यिका 25 है तो वितरण में किस प्रकार की विषमता होगी?**
2. **यदि किसी वितरण का चतुर्थक विचलन 12 है तथा P_{90} एवं P_{10} क्रमशः 58 एवं 8 है तो वितरण में किस प्रकार की ककुदता होगी?**

13.5 सामान्य संभाव्यता वक्र के अनुप्रयोग पर आधारित प्रश्न –

सामान्य संभाव्यता वक्र के अनुप्रयोग में ज्यादात्र जिस गणितीय सूत्र का प्रयोग होता है वह है –

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$

जहां,

Z = जेड मूल्य (एक मानक प्राप्तांक)

X = प्राप्तांक

M = माध्य

σ = मानक विचलन

इसी सूत्र पर आधारित

अन्य सूत्र जो प्रयोग में लाये जाते हैं, वे हैं –

X - M या = Z. σ

X = M + Z. σ

इसके अतिरिक्त, सामान्य वितरण का टेबुल देखकर (टेबुल–2 जो इकाई 12 के अन्त में दिया गया है) प्रतिशत वितरण को भी कई प्रश्नों का हल ढूंढने में आधार बनाया जाता है। इसी प्रकार, कुछ ऐसे भी अनुप्रयोग हैं, जिनमें Z- मूल्य को T- प्राप्तांक में परिणत करने की जरूरत पड़ती है जिसका सूत्र है –

T = 10.Z + 50

13.5.1 हल किए गए प्रश्न –

प्रश्न–1 : एक वितरण का माध्य 12 तथा मानक विचलन 4 हे, यदि यह वितरण सामान्य है तो

(क) प्राप्तंक 8 और 16 के बीच कितने प्रतिशत कैसेज आयेंगे?

(ख) प्राप्तंक 18 के ऊपर कितने प्रतिशत कैसेज आयेंगे?

(ग) प्राप्तंक 6 के नीचे कितने प्रतिशत कैसेज आयेंगे?

हल – उपर्युक्त तीनों ही प्रश्न का हल सूत्र $Z = \frac{X - M}{\sigma}$ से होगा

(क) प्राप्तांक 16 के लिए Z :

$$Z = \frac{16-12}{4} = \frac{4}{4} = +1.00$$

प्राप्तांक 8 के लिए Z :

$$Z = \frac{8-12}{4} = \frac{-4}{4} = -1.00$$

अंतः प्राप्तांक और 16 के बीच $M \pm 1.\sigma$ के फैलाव में आने वाले प्राप्तांक प्रतिशत होंगे टेबुल – 2 से पता चलता है कि यह मान 68.26 (2x34.13) है। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि इस वितरण में किसी प्राप्तांक के 8 एवं 16 के बीच पड़ने की संभावना 100 में लगभग 68 बार है।

(ख) प्राप्तांक 18 के लिए Z :

$Z = \frac{18.5-12}{4} = \frac{6.5}{4} = 1.625$ (प्राप्तांक 18 की जगह उसकी निचली सीमा 18.5 लिया गया)

अब, टेबुल–2 से पता चलता है कि $M + 1\text{-}625\sigma$ के बीच 44.79 प्रतिशत केसेज पड़ते हैं। अतः प्राप्तांक 18 के ऊपर (50–44.79) = 5.21 प्रतिशत कैसेज पड़ेंगे। दूसरे शब्दों में, इस बात की संभावना 100 में 5 बार है कि इस वितरण का कोई प्राप्तंक 18 से बड़ा होगा।

प्राप्तांक 6 के लिए Z :

$Z = \frac{5.5-12}{4} = \frac{-6.5}{4} = -1.625$ (प्राप्तांक 6 की जगह उसकी निचली सीमा 5.5 लिया गया)

टेबुल–2 से पता चलता है कि $M - 1.625\sigma$ के बीच 44.79 प्रतिशत केसेज पड़ते हैं। अतः प्राप्तांक 16 के नीचे (50–44.79) = 5.21 प्रतिशत कैसेज पड़ेंगे। दूसरे शब्दों में, इस बात की संभावना 100 में 5 बार है कि इस वितरण का कोई प्राप्तांक 6 से कम होगा, यानी, 6 की निचली सीमा (5.5) कम होगा।

प्रश्न 2– किसी दिए गए वितरण का माध्य 30 तथा मानक विचलन 5 है, यदि वितरण सामान्य हो तो बतायें कि

(क) 25 से 35 तक अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

(ख) 37 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

(ग) 20 से कम अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

(घ) 25 से 28 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

(च) 33 से 35 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

हल – यहां भी उपर्युकत प्रश्नों का हल सूत्र $Z = \frac{X - M}{\sigma}$ का प्रयोग करके किया जायेगा।

(क) प्राप्तांक 25 के लिए Z :

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$

यहां, प्राप्तांक (X) = 25

माध्य (M) = 30

मानक विचलन (S.D.) = 5

अतः Z मूल्य $= \frac{25 - 30}{5}$

$$= \frac{-5}{5} = -1.00$$

टेबुल – 2 से पता चलता है कि M-1σ के बीच का 34.13 प्रतिशत केसेज होता है, अतः 25 से माध्य के 30 बीच अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत 34.13 है।

इसी प्रकार, प्राप्तांक 35 के लिए Z :

Z मूल्य $= \frac{X - M}{S.D.}$

$$= \frac{35 - 30}{5} = 1.00$$

टेबुल – 2 से पता चलता है कि $M+1\sigma$ के बीच का प्रतिशत भी 34.13 होता है (ऋणात्मक Z मूल्य माध्य से नीचे की ओर का प्रतिशत प्रदर्शित करता है, जबकि धनात्मक z मूल्य माध्य से ऊपर की ओर का प्रतिशत प्रदर्शित करता है)। अतः माध्य 30 से प्राप्तांक 35 के मध्य का प्रतिशत भी 34.13 होगा।

अब प्रश्न है कि प्राप्तांक 25 से 35 तक अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा? अतः दोनों प्रतिशत का योग 34.13 + 34.13 = 68.26 प्रतिशत उन व्यक्तियों का प्रतिशत है, जिनको 25 से 35 प्राप्तांक मिले हैं। दूसरे शब्दों में, वैसे व्यक्तियों की संख्या 68.26 प्रतिशत है जिन्होंने 25 से 35 के मध्य अंक प्राप्त किए हैं।

(ख) 37 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

सर्वप्रथम माध्य 30 से 37 प्राप्तांक के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। माध्य 30 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले कुल 50 प्रतिशत व्यक्तियों में से 30 से 37 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले प्रतिशत को घटाकर जो प्रतिशत प्राप्त होगा वह उन व्यक्तियों का प्रतिशत होगा जिनको 37 से अधिक अंक प्राप्त हुए हैं। इसके लिए प्राप्तांक 37 की जगह उसकी ऊपरी सीमा 37.5 लेते हैं।

माध्य 30 से 37.5 प्राप्तांक की सिग्मा दूरी अथवा

$$z \text{ मूल्य} = \frac{X-M}{S.D.} = \frac{37.5-30}{5} = \frac{7.5}{5} = 1.50$$

टेबुल – 2 के आधार पर जेड मूल्य 1.50 का प्रतिशत 43.32 है। माध्य 30 से अधिक अंक प्राप्त करने वाले कुल 50 प्रतिशत व्यक्तियों में से 30 से 37 अंक प्राप्त करने वाले का प्रतिशत घटाने पर (50–43.32=6.68 प्रतिशत) शेष 6.68 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको 37 अंक से अधिक अंक प्राप्त हुए हैं।

(ग) 20 से कम प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

सर्वप्रथम, प्राप्तांक 20 से माध्य 30 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। तत्पश्चात माध्य 30 से कम अंक प्राप्त करने वाले कुल 50 प्रतिशत व्यक्तियों में से 20 से माध्य 30 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के प्रतिशत को घटा देंगे। शेष प्रतिशत उन व्यक्तियों का प्रतिशत होगा जिनको 20 से कम अंक प्राप्त हुए हैं। इसके लिए प्राप्तांक 20 की निचली सीमा 19.5 लेते हैं।

माध्य 30 से 19.5 प्राप्तांक की सिग्मा दूरी अथवा मूल्य

$$z \text{ मूल्य} = \frac{X-M}{S.D.} = \frac{19.5-30}{5} = \frac{10.5}{5} = -2.10$$

टेबुल – 2 के आधार पर जेड मूल्य 2.10 का प्रतिशत 48.21 है। माध्य 30 से कम अंक प्राप्त करने वाले कुल 50 प्रतिशत व्यक्तियों में से 20 से 30 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले 48.21 प्रतिशत व्यक्तियों को घटाने पर (50–48.21) शेष 1.79 प्रतिशत ऐसे व्यक्ति हैं, जिनको 20 अंक से कम अंक प्राप्त हुए हैं।

(घ) 25 से 28 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

सर्वप्रथम अंक 25 से माध्य 30 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। तत्पश्चात्, अंक 28 से माध्य 30 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। अंक 25 से माध्य 30 के मध्य प्राप्त प्रतिशत में से अंक 28 से मध्यमान 30 के मध्य प्राप्त प्रतिशत को घटायेंगे। शेष प्राप्त प्रतिशत ही 25 से 28 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत होगा। चूंकि अंक 25 एवं 28 दोनों ही माध्य 30 से कम हैं, अतः ये दोनों अंक माध्य के बायीं ओर होंगे।

अंक 25 से मध्यमान 30 की सिग्मा दूरी अथवा

$$z \text{ मूल्य} = \frac{X-M}{S.D.} = \frac{25-30}{5} = \frac{-5}{5} = -1.00$$

टेबुल – 2 के आधार पर जेड मूल्य –1.00 का प्रतिशत 34.13 है। इसी प्रकार, माध्य 30 से अंक 28 की सिग्मा दूरी या

$$z \text{ मूल्य} = \frac{X-M}{S.D.} = \frac{28-30}{5} = \frac{-2}{5} = -0.40$$

टेबुल – 2 के आधार पर जेड मूल्य –0.40 का प्रतिशत 15.54 है। अतः अंक 25 से 28 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के प्रतिशत को ज्ञात करने के लिए अंक 25 से माध्य 30 के मध्य प्राप्त 34.13 प्रतिशत में से अंक 28 से माध्य 30 के मध्य प्राप्त 15.54 प्रतिशत को घटायेंगे (34.13–15.54), जो कि शेष 18.59 प्रतिशत प्राप्त हुआ। 18.59 प्रतिशत ही 25 से 28 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत है।

(च) 33 से 35 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत क्या होगा?

सर्वप्रथम माध्य 30 से 35 अंक के मध्य अंक पाप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। तत्पश्चात् माध्य 30 से 33 अंक के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का प्रतिशत ज्ञात करेंगे। माध्य 30 से 35 अंक के मध्य प्राप्त प्रतिशत में से माध्य 30 से 33 अंक के मध्य के प्रतिशत को घटाकर शेष प्राप्त प्रतिशत ही 33 से 35 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का होगा। चूंकि अंक 33 एवं 35 दोनों ही माध्य 30 से अधिक हैं, अतः ये दोनों ही अंक माध्य के दायीं ओर होंगे।

माध्य 30 से 35 अंक की सिग्मा दूरी अथवा

$$z \text{ मूल्य} = \frac{X-M}{S.D.} = \frac{35-30}{5} = \frac{5}{5} = 100$$

टेबुल – 2 के आधार पर जेड मूल्य 1.00 का प्रतिशत 34.13 है। इसी प्रकार माध्य 30 से 33 अंक की सिग्मा दूरी अर्थात

$$z \text{ मूल्य} = \frac{X-M}{S.D.} = \frac{33-30}{5} = \frac{3}{5} = 0.60$$

टेबुल – 2 के आधार पर जेड मूल्य 0.60 का प्रतिशत 22.57 है। अतः अंक 33 ये 35 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों के प्रतिशत को ज्ञात करने के लिये माध्य 30 से 35 अंक के मध्य प्राप्त 34.13 प्रतिशत में से माध्य 30 से 33 अंक के मध्य प्राप्त 22.57 प्रतिशत को घटाने पर (34.13–22.57) शेष प्राप्त 11.56 प्रतिशत ही 33 से 35 के मध्य अंक प्राप्त करने वाले व्यक्तियों का है।

प्रश्न – 3

किसी सामान्य वितरण का माध्य 50 है तथा प्रामाणिक विचलन 7 है। बताइये कि –

(क) मध्य के 60 प्रतिशत विद्यार्थियों की प्राप्तांक सीमा क्या होगी?

(ख) मध्य के 75 प्रतिशत विद्यार्थियों की प्राप्तांक सीमा क्या होगी?

(ग) श्रेष्ठ 15 प्रतिशत विद्यार्थियों की निम्नतम प्राप्तांक सीमा क्या होगी?

हल

(क) मध्य के 60 प्रतिशत विद्यार्थियों की प्राप्तांक सीमा क्या होगी?

सामान्य वितरण वक्र के मध्य के 60 प्रतिशत का अर्थ है माध्य बिन्दु के बांयी ओर 30 प्रतिशत तथा दांयी ओर शेष 30 प्रतिशत विद्यार्थी स्थित हैं।

सर्वप्रथम बांयी ओर के 30 प्रतिशत की प्राप्तांक सीमा ज्ञात करेंगे। माध्य बिन्दु से बांयी ओर के 30 प्रतिशत का जेड मूल्य टेबुल–2 द्वारा ज्ञात किया गया जो कि –0.84 प्राप्त हुआ। माध्य बिन्दु के बांयी ओर अर्थात माध्य बिन्दु से निम्न दिशा की ओर जेड मूल्य ऋणात्मक माना जाता है। 30 प्रतिशत का जेड–मूल्य निकलाने के लिए टेबुल–2 में 3000 या उसके आसपास की संख्या, जो भी 3000 के निकटतम हो का जेड–मूल्य देखते हैं। जेड मूल्य के आधार पर निम्नलिखित सूत्र द्वारा प्राप्तांक ज्ञात करते हैं –

प्राप्तांक = जेड मूल्य × प्रमाणिक विचलन + मध्यमान

$X = z \times S.D. + Mean$

सूत्र में संख्यायें रखने पर,

$X = -0.84 \times 7 + 50$

$= -5.88 + 50$

$= 44.12$

माध्य बिन्दु के दांयी ओर 30 प्रतिशत की प्राप्तांक सीमा ज्ञात करने के उद्देश्य से टेबुल–2 द्वारा जेड मूल्य वही प्राप्त होता है, (सामान्य वितरण के कारण) किन्तु यह जेड़ मूल्य माध्य से दायीं ओर या उच्च दिशा का होने के कारण धनात्मक 0.84 प्राप्त होता है। सूत्र के आधार पर प्राप्तांक सीमा होगी –

$X = 0.84 \times 7 + 50$

$= 5.88 + 50 = 55.88$

अतः स्पष्ट है कि मध्य के 60 प्रतिशत विद्यार्थियों की प्राप्तांक सीमा 44.12 से 55. 88 (पूर्णांक में दिखाया गया है) के मध्य स्थित है। यानी, निम्नतम सीमा अंक 44 तथा अधिकतम सीमा अंक 56 है।

(ख) मध्य के 75 प्रतिशत विद्यार्थियों की प्राप्तांक सीमा क्या होगी?

सामान्य वितरण वक्र के मध्य के 75 प्रतिशत का तात्पर्य है माध्य बिन्दु के नीचे (बांयी ओर) 37.50 प्रतिशत तथा माध्य बिन्दु के ऊपर (दांयी ओर) शेष 37.50 प्रतिशत विद्यार्थी स्थित हैं। 37.50 प्रतिशत का जेड मूल्य टेबुल–2 के आधार पर 1.15 होता है, अतः प्राप्तांक सीमा इस प्रकार ज्ञात करेंगे।

उच्च सीमा हेतु, $X = Z.\sigma + Mean$ $= 1.15 \times 7 + 50$

$= 8.05 + 50 = 58.05$

निम्न सीमा हेतु, $X = Z.\sigma + Mean$ $= -1.15 \times 7 + 50$

$= -8.05 + 50 = 41.95$

अतः मध्य के 75 प्रतिशत की निचली सीमा 42 तथा ऊपरी सीमा 58 होगी (पूर्णांक में दिखा गया है)

(ग) श्रेष्ठ 15 प्रतिशत विद्यार्थियों की निम्नतम प्राप्तांक सीमा क्या होगी?

श्रेष्ठ 15 प्रतिशत विद्यार्थी, मध्यमान बिन्दु के ऊपर दांयी ओर कुल 50 प्रतिशत के अन्मि छोर पर स्थित होगें, अतः यहां शेष 35 प्रतिशत (50–15) की प्राप्तांक सीमा निर्धारित करेंगे, वहीं प्राप्तांक सीमा श्रेष्ठ 15 प्रतिशत विद्यार्थियों की निम्नतम प्राप्तांक सीमा होगी। माध्य से 35 प्रतिशत के आधार पर टेबुल–2 के द्वारा प्राप्त जेड मूल्य 1.04 को सूत्र में रखने पर –

$$X = Z.\ \sigma + M = 1.04 \times 7 + 50$$

$$= 7.28 + 50 = 57.28$$

अतः श्रेष्ठ 15 प्रतिशत विद्यार्थियों की निम्नतम प्राप्तांक सीमा 57.28 है। यानी, प्राप्तांक 57 (पूर्णांक में) से अधिक अंक प्राप्त करने वाले श्रेष्ठ 15 प्रतिशत विद्यार्थी हैं।

प्रश्न 4 – एक परीक्षण में 100 परीक्षार्थयों को तीन ग्रेड A, B तथा C में विभाजित किया जाना है। अब यदि विभाजन का आधार सामान्य विवरण हो, तो बताइये प्रत्येक श्रेणी में कितने परीक्षार्थियों के आने की संभावना रहेगी?

हलः चूंकि सामान्य वक्र का 100 प्रतिशत क्षेत्र 6– भागों में बंटा रहता है, अतः इसे सिर्फ तीन श्रेणियों में विभाजित करने पर प्रत्येक श्रेणी को $6/3\ \sigma$ या 2σ दूरी तय करना पड़ेगा।

अब, श्रेणी A का प्रसार $+1\sigma$ से $+3\sigma$ होगा।

श्रेणी B का प्रसार $+1\sigma$ से -1σ होगा।

श्रेणी C का प्रसार $+1\sigma$ से -3σ होगा।

चूंकि, $M+1\sigma$ के बीच 34.13 प्रतिशत क्षेत्र आते हैं। अतः श्रेणी A द्वारा आच्छादित क्षेत्र = 50–34.13 =15.87 प्रतिशत इसी प्रकार $M\pm1\sigma$ प्रतिशत के बीच 68.26 प्रतिशत क्षेत्र आच्छादित होते हैं।

अतः श्रेणी B द्वारा आच्छादित क्षेत्र = 68.26 प्रतिशत। पुनः $M-1\sigma$ के बीच 34.13 प्रतिशत क्षेत्र आते हैं।

अतः श्रेणी C द्वारा आच्छादित क्षेत्र = 50–34.13 = 15.87 प्रतिशत।

इस तरह पूर्ण संख्या के रूप में श्रेणी A में 16, श्रेणी B में 68 तथा श्रेणी C में 16 परीक्षार्थियों के आने की संभावना होगी।

प्रश्न 5 – शिक्षा मनोविज्ञान के प्रश्न–पत्र में प्रथम प्रश्न को किसी बड़े समूह के 10 प्रतिशत ने हल किया, दूसरे प्रश्न को उसी समूह के 30 प्रतिशत ने हल किया तथा तीसरे प्रश्न को उसी समूह के 40 प्रतिशत ने हल किया। इन तीनों प्रश्नों का सापेक्षिक कठिनता–स्तर बतायें?

हल – चूंकि पहला प्रश्न समूह के 10 प्रतिशत ने हल किया, अतः 90 प्रतिशत हल करने में असमर्थ रहे। अब सामान्य वितरण में हमें सबसे पहले उस बिन्दु का पता लगाना होगा जिसके ऊपर 10 प्रतिशत तथा नीचे 90 प्रतिशत आता है।

ऊपर का 10 प्रतिशत सामान्य वक्र में दायां भाग में है क्योंकि यह उत्तम गुण को प्रदर्शित करता है। अब चूंकि माध्य का दायां भाग 50 प्रतिशत क्षेत्र का होता है, अतः माध्य तथा 10 प्रतिशत के निचली सीमा के बीच (50–10) = 40 प्रतिशत केसेज आयेंगे। इसे σ–दूरी में परिणत करने पर हम पाते हैं कि माध्य तथा 1.28σ के बीच लगभग 40 प्रतिशत केसेज आ जाते हैं। अतः यहां जेड–मूल्य = 1.28σ हुआ।

इसी प्रकार, दूसरा प्रश्न समूह के 30 प्रतिशत ने हल किया, यानी, माध्य के दायीं ओर 20 प्रतिशत ने इसे हल नहीं किया। अब माध्य से 20 प्रतिशत क्षेत्र को σ – दूरी में बदलने पर टेबुल–2 से यह मान .52 आता है, अतः इसका जेड–मूल्य $.52\sigma$ हुआ।

तीसरा प्रश्न समूह के 40 प्रतिशत छात्रों ने हल किया। अतः माध्य से दायीं ओर इसे (50–40) = 10 प्रतिशत ने हल नहीं किया जिसका मध्य से मध्य से σ–दूरी टेबुल–2 के अनुसार .25 होगा। यानी, तीसरे प्रश्न का जेड–मूल्य 0.25 होगा

इस प्रकार इन तीनों प्रश्नों का कठिनता–स्तर निम्नलिखित हुआ –

प्रश्न	उत्तीर्ण	जेड–मूल्य	अन्तर
1	10 प्रतिशत	$+ 1.28\sigma$	–
2	30 प्रतिशत	$+.52\sigma$	76σ
3	40 प्रतिशत	$+.25\sigma$	27σ

अब इन तीनों प्रश्नों का कठिनता–स्तर इस तरह होगा।

प्रश्न 1 तथा 2 : – $1.28\sigma - .52\sigma = .76\sigma$

प्रश्न 2 तथा 3 : – $.52\sigma - .25\sigma = .27\sigma$

प्रश्न 6 – एक परीक्षण में जिसके प्राप्तांकों के विषय में सामान्य संभावना की कल्पना की जाती है, माध्य 116.4 तथा मानक विचलन 8.2 है। इस परीक्षण में दो विद्यार्थियों A तथा B के प्राप्तांक क्रमशः 124 तथा 110 है। इन प्राप्तांकों के आधार पर दोनों विद्यार्थियों की समूह में स्थिति ज्ञात करें।

हल : छात्र A के प्राप्तांक का z मूल्य = $\frac{124-116.4}{8.2} = \frac{7.6}{8.2}$

$= .93$

छात्र B के प्राप्तांक का z मूल्य = $\frac{110-116.4}{8.2} = \frac{-6.4}{8.2}$

$=-.78$

इस प्रकार, सामान्य वितरण में इन दोनों विद्यार्थियों की स्थितियों को निम्नलिखित मानक प्राप्तांक द्वारा भी व्यक्त किया जा सकता है।

विद्यार्थी A की स्थिति : +.93 z

विद्यार्थी B की स्थिति : +.78 z

पुनः, T- प्राप्तांक के रूप में

विद्यार्थी A का T – प्राप्तांक = $10 \times .93 + 50$

$= 9.30 + 50 = 59.30$

या 59 (पूर्ण संख्या में)

विद्यार्थी B का T – प्राप्तांक = $10 \times (-.78) + 50$

$= -7.80 + 50 = 42.20$

या 42 (पूर्ण संख्या में)

इस प्रकार T प्राप्तांक के माध्यम से प्रस्तुत समस्या में दोनों विद्यार्थियों के मानक प्राप्तांक निम्नलिखित होंगे –

A का T प्राप्तांक = 59

B का T प्राप्तांक = 42

अभ्यास प्रश्न

1. **जब दो चरों या परीक्षणों के प्राप्तांकों के सहसम्बन्ध को एक सीधी रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है तो उसे .... सहसम्बन्ध कहते हैं।**
2. **यदि दो चरों के बीच का मात्रात्मक सहसम्बन्ध + 1.00 है तो इसे .... सहसम्बन्ध कहते हैं।**
3. **सूत्र** $P = 1\frac{6.\Sigma D^2}{N(N^2 - 1)}$ **का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?**

3. **गुणन–आघूर्ण विधि से सहसम्बन्ध निकालने का सूत्र किसने दिया?**
4.

13.6 सारांश

- जेड–प्राप्तांक द्वारा सामान्य वक्र की आधार रेखा को मापा जाता है। इसे σ– इकाई भी कहते हैं। इसे ज्ञात करने का सूत्र होता है–

$$Z = \frac{X - M}{\sigma}$$

- सामान्य वितरण से दो तरह के अपसरण देखे जाते हैं जिन्हें विषमता एवं ककुदता के रूप में जानते हैं। इन्हें ज्ञात करने का सूत्र निम्नवत है–

$$SK = \frac{3(M - Mdn)}{\sigma}$$

- प्रतिशतता के आधार पर विषमता ज्ञात करने का सूत्र है–

$$SK = \frac{P_{90} + P_{10}}{2} - P_{50}$$

- ककुदता ज्ञात करने का सूत्र निम्नवत् है–

$$Ku = \frac{Q}{P_{90} - P_{10}}$$

13.7 शब्दावली

सामान्य वक्र : वह वक्र जिसकी ऊँचाई बीच में सर्वाधिक एवं दोनों किनारों की ओर एकरूप से घटती हुई होती है तथा जो आधार रेखा को कभी स्पर्श नहीं करती।

जेड–प्राप्तांक : सामान्य वक्र की आधार रेखा को मापने की इकाई जिसे σ – इकाई भी कहते हैं।

विषमता : सामान्य वक्र से प्राप्तांकों का अपसरण जो कभी बायीं ओर तो कभी दायीं ओर संचयित होकर माध्य एवं मध्यिका के मानों में अन्तर उत्पन्न कराता है।

ककुदता : सामान्य वक्र की तुलना में किसी वितरण से निर्मित वक्र का अधिक चपटा या अधिक नुकीला हो जाना ककुदता कहलाता है।

13.8 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

अभ्यास प्रश्न–क		अभ्यास प्रश्न–ख	
1.	13	1.	ऋणात्मक
2.	3	2.	लेप्टोकुर्टिक

13.9 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. उच्चतर सामान्य मनोविज्ञान–अरूण कुमार सिंह– मोतीलाल – बनारसी दास
2. शारीरिक मनोविज्ञान– ओझा एवं भार्गव – हर प्रसाद भार्गव, आगरा
3. आधुनिक सामान्य मनोविज्ञान– सुलैमान एवं खान–शुक्ला बुक डिपो, पटना
4. सामान्य मनोविज्ञान– सिन्हा एवं मिश्रा – भारती भवन

13.10 निबंधात्मक प्रश्न

1. चार परीक्षण पदों 1, 2, 3 और 4 को एक बड़े समूह के क्रमशः 50 प्रतिशत, 40 प्रतिशत, 30 प्रतिशत और 20 प्रतिशत ने हल किया। यदि वितरण सामान्य हो तो इन चार परीक्षण पदो के कठिनता स्तर एवं सापेक्षिक कठिनता स्तर को निर्धारित करें।
2. किसी सामान्य ज्ञान परीक्षण में सामान्य विरतण के अन्तर्गत माध्य 100 तथा मानक विचलन 20 है।

(क) 80 तथा 120 के मध्य कितने प्रतिशत प्राप्तांक है?

(ख) मध्य के 60 प्रतिशत, 70 प्रतिशत, 80 प्रतिशत, 90 प्रतिशत किन प्राप्तांकों के मध्य स्थित है?

3. एक प्रसामान्य वितरण में माध्य 18 तथा मानक विचलन 4 हो तो प्राप्तांक 10 के नीचे कितने प्रतिशत होंगे?

4. किसी वितरण से सम्बन्धित सूचनायें निम्नलिखित हैं –

   माध्य = 11.35, मानक विचलन (S.D.) = 3.03, N = 120

   वितरण में प्रसामान्यता की कल्पना करते हुए यह बताइये कि प्राप्तांक 9 तथा प्राप्तांक 17 के बीच कितने प्रतिशत केसेज पड़ते हैं।

5. किसी सामान्यत वितरण का माध्य 16 है तथा मानक विचलन 4 है। यह बताइये कि मध्य के 75 प्रतिशत कैसेज किन सीमाओं के बीच होंगे?

इकाई – 14 सहसम्बन्ध गुणांक : कार्ल पियर्सन एवं स्पीयरमैन विधि

इकाई की संरचना

14.1 प्रस्तावना
14.2 उद्देश्य
14.3 सहसम्बन्ध
- 14.3.1 गुणात्मक सहसम्बन्ध
  - 14.3.1.1 रैखिक सहसम्बन्ध
  - 14.3.1.2 वक्रीय सहसम्बन्ध
- 14.3.2 मात्रात्मक सहसम्बन्ध
  - 14.3.2.1 धनात्मक सहसम्बन्ध
  - 14.3.2.2 ऋणात्मक सहसम्बन्ध
  - 14.3.2.3 शून्य सहसम्बन्ध
- 14.3.3 सहसम्बन्ध गुणांक

14.4 गुणन–आधूर्ण विधि
- 14.4.1 मूल विधि या वास्तविक विधि
- 14.4.2 मानित या कल्पित माध्य विधि

14.5 स्पीयरमैन की कोटि–अन्तर विधि
14.6 सहसम्बन्ध की गणना
- 14.6.1 वास्तविक माध्य विधि से पियर्सन सहसम्बन्ध (r) की गणना
- 14.6.2 कल्पित माध्य विधि से ‘r’ की गणना
- 14.6.3 कोटि अन्तर विधि से ‘P’ की गणना

14.7 सारांश
14.8 शब्दावली
14.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची
14.11 निबंधात्मक प्रश्न

14.1 प्रस्तावना –

पूर्व की इकाइयों में आपने सांख्यिकीय आंकड़ों का वर्गीकरण, सारणीयन, केन्द्रीय प्रवृत्ति की माप, विचलनशीलता की माप, सामान्य वक्र की विशेषता एवं अनुप्रयोग आदि का अध्ययन किया और विभिन्न प्रकार के प्रदत्तों के स्वरूप से परिचित हुए।

प्रस्तुत इकाई में दो वितरणों, दो चरों या दो गुणों में पाये जाने वाले आपसी सम्बन्धों पर चर्चा की जायेगी और आप दो चरों या परीक्षणों पर के प्राप्तांकों के बीच सहसम्बन्ध गुणांक की गणना की विधियों का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन से आपको यह लाभ होगा कि आप चरों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्धों को समझ सकेंगे तथा दो परीक्षणों पर के प्राप्तांकों के बीच सहसम्बन्ध गुणांक का सांख्यिकीय विधि से निर्धारण कर सकेंगे।

14.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि आप–

1. सहसम्बन्ध का अर्थ एवं उसकी विशेषताएं बतला सकें।
2. सहसम्बन्ध गुणांक की व्याख्या कर सकें।
3. गुणन–आघूर्ण विधि एवं कोटि–अन्तर विधि द्वारा सहसम्बन्ध गुणांक निर्धारण का सूत्र समझ सकें एवं
4. इन दोनों विधियों के सूत्रों का प्रयोग कर दिये गये वितरणों के बीच सहसम्बन्ध निकाल सकें।

14.3 सहसम्बन्ध–

व्यवहार विज्ञान, योग विज्ञान आदि के अन्तर्गत व्यक्ति के बहुत – सारे गुणों को माप कर विभिन्न सांख्यिकीय विधियों के सहारे विभिन्न प्रकार के निष्कर्षो पर पहुँचा जाता है। जब भी हम प्रयोज्यों के किसी दो या अधिक गुणों का मापन करते हैं तो हमारी उत्सुकता उन दोनों गुणों के बीच के आपसी सम्बन्धों को जानने की ओर भी होती है। वैसे मानव–व्यवहार एक जटिल प्रक्रिया है, अतः व्यवहार विज्ञान के क्षेत्र में कारण एवं परिणाम के सम्बन्धों को समझना अत्यन्त कठिन कार्य है तथा उसको प्रभावित करने वाले कारकों का ठीक–ठीक पता लगाना एक कठिन समस्या है। फिर भी, समाज विज्ञानिकों ने अपने सिद्धान्तों के निर्माण में वैज्ञानिक–पद्धति को अपनाकर कार्य–कारण सम्बन्ध को समझने के लिए विभिन्न सहसम्बन्ध विधियों का सहारा लिया हैं।

हमारे दैनिक जीवन में सह–सम्बन्ध शब्द बहुत ही प्रचलित है तथा इसका प्रयोग हम किसी–न–किसी रूप में अवश्य करते हैं। साधारणतः सह–सम्बन्ध से मतलब दो व्यक्तियों, घटनाओं या तथ्यों के बीच पाये जाने वाले साहचर्य से होता है, परन्तु सांख्यिकी में इसका अभिप्राय दो चरों या परीक्षणों के प्राप्तांकों में निहित सम्बन्धों से होता है। जब दो या दो से अधिक चरों या घटनाओं में साहचर्यात्मक सम्बन्ध पाया जाता है, तो ऐसे सम्बन्ध को सह–सम्बन्ध कहते हैं। दैनिक जीवन में भी सहसम्बन्ध की बात खूब सुनने को मिलता है, जिसका गणित अच्छा है उसकी भौतिकी भी अच्छी होगी; जो संस्कृत में अच्छा है वह हिन्दी में भी अच्छा होगा आदि चरों के बीच पाये जाने वाले सहसम्बन्ध के ही तो उदाहरण हैं। इसी प्रकार, कपाल भाती और अनुलोम विलोम आपस में सहसहम्बन्धित चर हो सकते हैं।

इस प्रकार, जब कभी व्यक्तियों और अन्य तथ्यों में किसी एक आयाम पर मध्यम श्रेणी, मध्यम श्रेणी से ऊपर तथा मध्यम श्रेणी से नीचे के स्तर के विशेष गुण होते हैं, और साथ–ही–साथ उसमें किसी एक–दूसरे आयाम पर क्रमशः मध्यम श्रेणी से ऊपर तथा मध्यम श्रेणी के नीचे के स्तर के विशेष गुणों के पाये जाने की प्रवृत्ति देखने में आती है–तब इस प्रकार के सम्बन्ध को सह–सम्बन्ध कहते हैं। ब्लौमर्स एवं लिन्डक्विस्ट (1958) ने सहसम्बन्ध को इसी रूप में परिभाषित किया है। उनके अनुसार, ''सहसम्बन्ध के द्वारा यह अध्ययन किया जाता है कि व्यक्ति या वस्तुएं एक आयाम या दिशा में औसत, औसत से अधिक या औसत से कम है तो दूसरी दिशा में क्या प्रवृति है अर्थात् औसत है, औसत से अधिक है या औसत से कम है।''

सह–सम्बन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं– गुणात्मक तथा मात्रात्मक

14.3.1 गुणात्मक सहसम्बन्ध–

जब दो चरों या दो परीक्षणों पर के प्राप्तांकों में सह–सम्बन्ध किसी खास गुण के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तो उसे गुणात्मक सह–सम्बन्ध कहते हैं। गुणात्मक सहसम्बन्ध की अभिव्यक्ति मुख्यतः इसके दो प्रकारों द्वारा होती है– रैखिक एवं वक्रीय।

14.3.1.1 रैखिक सहसम्बन्ध–

जब दो चरों या परीक्षणों पर के प्राप्तांकों के सह–सम्बन्ध को एक सीधी रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है तो उसे रैखिक सहसम्बन्ध कहते हैं। जैसे– यदि ऊँचाई और भार के बीच के सहसम्बन्ध को ग्राफ द्वारा अभिव्यक्त करना चाहें तो एक रेखीय सम्बन्ध दृष्टिगत होगा क्योंकि व्यक्ति की ऊँचाई जैसे–जैसे बढ़ती जाती हैं, उसके शरीर का भार भी बढ़ता जाता है।

14.3.1.2 वक्रीय सहसम्बन्ध–

जब दो चरों या दो परीक्षणों के प्राप्तांकों के बीच के सह–सम्बन्ध को एक सीधी रेखा द्वारा न व्यक्त कर टेढ़ी–मेढ़ी रेखा या वक्र द्वारा व्यक्त किया जाता है, तो यह सह–सम्बन्ध वक्रीय या अरैखिक कहलाता है। अधिकतर वक्रीय सह–सम्बन्ध वैसे प्राप्तांकों

में देखने को मिलता है, जो मनोभौतिकी, थकान, विस्मरण तथा अधिगम के प्रयोगों से प्राप्त होते हैं। अभ्यास तथा सीखने की मात्रा के बीच प्राप्त सह–सम्बन्ध वक्रीय होगा क्योंकि बढ़ते हुए प्रयास के साथ एक खास सीमा तक तो अधिगम की मात्रा बढ़ती है, परन्तु उसके बाद उसमें थकान के कारण ह्रास होने लगता है।

14.3.2 मात्रात्मक सहसम्बन्ध–

जब दो चरों या परीक्षणों के प्राप्तांकों के बीच पाये जाने वाले सह–सम्बन्ध को रेखा द्वारा अभिव्यक्त न कर संख्या द्वारा अभिव्यक्त किया जाता हैं तो इसे मात्रात्मक सह–सम्बन्ध कहते हैं। मात्रात्मक सह–सम्बन्ध तीन प्रकार के होते हैं'– धनात्मक, ऋणात्मक तथा शून्य।

14.3.2.1 धनात्मक सहसम्बन्ध–

जब दो चरों के बीच का सम्बन्ध ऐसा होता हैं कि किसी एक में किसी तरह का परिवर्तन होने से दूसरे में भी ठीक उसी तरह का परिवर्तन होता है तो इस सम्बन्ध को धनात्मक सह–सम्बन्ध कहते हैं। जैसे– उम्र में वृद्धि होने के साथ–साथ व्यक्ति की संवेगात्मक परिपक्वता में भी वृद्धि होती हैं। जैसे–जैसे आयु बढ़ती है, सामान्यतः व्यक्ति में सांवेगिक परिपक्वता भी बढ़ती जाती है। यहाँ दोनों चरों उम्र एवं सांवेगिक परिपक्वता में एक ही तरह का परिवर्तन हो रहा हैं। अतः इनके बीच धनात्मक सहसम्बन्ध हैं।

धनात्मक सह–सम्बन्ध में भी कुछ चरों के बीच पूर्ण धनात्मक सह–सम्बन्ध पाया जाता हैं तो कुछ के बीच उच्च स्तरीय सहसम्बन्ध तथा कुछ के बीच मध्यम स्तरीय या फिर निम्न स्तरीय सहसम्बन्ध भी। जैसे–वृत के व्यास और उसकी परिधि के बीच प्राप्त सह–सम्बन्ध पूर्ण धनात्मक होगा। इसी तरह इंच और सेंटीमीटर के बीच भी पूर्ण धनात्मक सह–सम्बन्ध पाया जाता है। ऊँचाई और भार के बीच प्रायः उच्च स्तरीय सहसम्बन्ध पाया जाता है तथा यदि आर्थिक पृष्ठभूमि एवं शैक्षिक लब्धि के बीच सहसम्बन्ध निकाला जाय तो वह मध्यम स्तर का धनात्मक सह–सम्बन्ध होगा।

14.3.2.2 ऋणात्मक सहसम्बन्ध–

जब दो चरों में ऐसा सम्बन्ध देखने में आता है कि एक चर की मात्रा घटने पर दूसरे चर की मात्रा बढ़ती है या फिर एक चर की मात्रा बढ़ने पर दूसरे चर की मात्रा घटने लगती है, तब ऐसी स्थिति में भी दोनों चरों में सह–सम्बन्ध अवश्य रहता है, परन्तु वह विपरीत दिशा में रहता है। अतः ऐसे सहसम्बन्ध को ऋणात्मक सह–सम्बन्ध कहते हैं। वस्तु के मूल्य और आपूर्ति के बीच ऋणात्मक सह–सम्बन्ध पाया जाता है। जैसे–जैसे वस्तु की पूर्ति अधिक होती जायेगी इसके मूल्य में कमी आती जायेगी या फिर पूर्ति जब कमती जायेगी तो मूल्य में वृद्धि होती जायेगी। ऋणात्मक सह–सम्बन्ध के अन्तर्गत भी पूर्ण ऋणात्मक सहसम्बन्ध, उच्च स्तरीय ऋणात्मक सह–सम्बन्ध, मध्यम स्तरीय ऋणात्मक सह–सम्बन्ध तथा निम्न स्तर का सह–सम्बन्ध आदि पाये जाते हैं।

14.3.2.3 शून्य सहसम्बन्ध–

जब दो चरों के बीच कोई संगत यानी, एक तरह का सम्बन्ध नहीं होता है, यानी जब दो चरों में से कोई भी चर एक–दूसरे को प्रभावित नहीं करता है तब ऐसी स्थिति में दोनों चरों में साहचर्यात्मक सम्बन्ध शून्य होता है, अतः उनमें सह–सम्बन्ध की मात्रा भी शून्य होती है। जैसे– यदि व्यक्ति की बुद्धिलब्धि और इसके भार के बीच सह–सम्बन्ध जानना चाहें तो यह निश्चित रूप से शून्य होगा, क्योंकि यहाँ कोई भी चर एक–दूसरे पर प्रभाव नहीं डालता है, यानी सामान्यतः न तो शरीर के भार से बुद्धि बढ़ती ही है, और न घटती ही है।

कभी–कभी साधारण अध्ययनकर्ता अपने अध्ययन में दो बिल्कुल ही असम्बन्धित चरों में भी सहसम्बन्ध की स्थिति स्थापित करने का प्रयत्न करते हैं। ऐसा प्रायः उस स्थिति में होता है, जबकि अध्ययनकर्ता को परस्पर कारण–सम्बन्ध का ठीक ज्ञान नहीं होता। अतः ऐसी स्थिति में प्राप्त सहसम्बन्ध को निरर्थक सहसम्बन्ध कहते हैं। जैसे– अध्ययनकर्ता द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास करना कि जैसे–जैसे देश में सड़कों की संख्या बढ़ रही है वैसे–वैसे ही देश में बीमार बच्चों की संख्या बढ़ती जा रही है। यद्यपि आँकड़ों के आधार पर यह दिखलाया जा सकता है कि पिछले वर्षों में देश में सड़कों की संख्या में बृद्धि हुई है तथा कुछ अधिक बच्चे भी बीमार पड़े हैं। परन्तु यहाँ इन दोनों चरों के बीच समय का साहचर्य है, कारणात्मक सम्बन्ध नहीं है।

दो चरों में समय एवं स्थान के अन्तर्गत साहचर्य हो सकता है, परन्तु ऐसे साहचर्यात्मक सम्बन्ध को कारणता का सम्बन्ध नहीं कह सकते क्योंकि साहचर्य स्वयं कारणता के सम्बन्ध का प्रमाण नहीं होता। जैसे–उच्च सहसम्बन्ध से उच्च श्रेणी के साहचर्यात्मक सम्बन्ध का ही पता लगता है, यह स्वयं कारणता के सम्बन्ध का प्रमाण नहीं हैं, क्योंकि सहसम्बन्ध गुणांक केवल साहचर्य की मात्रा को संख्यात्मक रूप में व्यक्त करता है, इससे अधिक कुछ भी नहीं।

14.3.3 सहसम्बन्ध गुणांक–

सहसम्बन्ध से केवल यही ज्ञात होता है कि दोनों चरों में पारस्परिक सम्बन्ध किस प्रकार का है– धनात्मक ऋणात्मक या शून्य। इसके अतिरिक्त, सहसम्बन्ध से हमें अधिक–से–अधिक यह ज्ञात हो सकता है कि सहसम्बन्ध थोड़ा है, सामान्य है या अधिक है, परन्तु इसके द्वारा दोनों चरों में सहसम्बन्ध की मात्रा का परिशुद्ध, वस्तुनिष्ठ तथा स्पष्ट ज्ञान उपलब्ध नहीं होता। इस दोष को दूर करने के लिए सहसम्बन्ध को सहसम्बन्ध गुणांक के द्वारा व्यक्त किया जाता है। सहसम्बन्ध गुणांक के अन्तर्गत निम्न, मध्यम, उच्च तथा पूर्ण सहसम्बन्ध को क्रमशः $\pm .4$, $\pm .6$, $\pm .9$ तथा ± 1.00 द्वारा व्यक्त करनेमें शुद्धता और वस्तुनिष्ठता बढ़ जाती है तथा ऐसी स्थिति में उसे अधिक वैज्ञानिक कहा जा सकता है।

सहसम्बन्ध गुणांक को परिभाषित करते हुए गिलफोर्ड ने कहा है कि ''सहसम्बन्ध गुणांक एक एकल संख्या है जो हमें बताता है कि कि सीमा तक दो वस्तुएं सम्बन्धित हैं तथा किसी सीमा तक एक में आया परिवर्तन दूसरे में भी परिवर्तन उत्पन्न करता है।''

इस प्रकार जहाँ सहसम्बन्ध से गुणात्मक मात्रा का बोध होता है, वहाँ सहसम्बन्ध गुणांक से दोनों चरों के सम्बन्ध के विषय में मात्रात्मक ज्ञान उपलब्ध होता है। वास्तव में सहसम्बन्ध गुणांक एक प्रकार का ऐसा सूचक है, जिससे दो चरों में एक का ज्ञान होने पर दूसरे चर के विषय में पूर्वकथन किया जा सकता है।

सहसम्बन्ध गुणांक का मान +1.00 से लेकर –1.00 तक की सीमाओं के अन्तर्गत आता है। जब सहसम्बन्ध गुणांक का मान धन में आता है तो वह धनात्मक सहसम्बन्ध का प्रतीक होता है तथा जब इसका मान ऋण में आता है, तो ऋणात्मक सहसम्बन्ध कहलाता है। पुनः, इसका मान शून्य आने पर शून्य सहसम्बन्ध कहलाता है।

सहसम्बन्ध गुणांक की विभिन्न मात्राओं की गुणात्मक व्याख्या–

सहसम्बन्ध गुणांक	सहसम्बन्ध विवरण
+ 1.00	पूर्ण धनात्मक सहसम्बन्ध
+.81 से +.99	अत्यन्त उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध
+.61 से + .80	उच्च धनात्मक सहसम्बन्ध
+ .41 से +.60	औसत धनात्मक सहसम्बन्ध
+.21 से +.40	निम्न धनात्मक सहसम्बन्ध
.01 से + .20	नगण्य धनात्मक सहसम्बन्ध
0	शून्य सहसम्बन्ध
.01 से –.20	नगण्य ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–.21 से –.40	निम्न ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–.41 से –.60	औसत ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–.61 से –.80	उच्च ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–.81 से –.99	अत्यधिक उच्च ऋणात्मक सहसम्बन्ध
–1.00	पूर्ण ऋणात्मक सहसम्बन्ध

14.4 गुणन–आघूर्ण विधि–

सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने की अनेक विधियाँ हैं जिनमें गुणन–आघुर्ण विधि अधिक प्रचलित तथा लोकप्रिय है। इस विधि का प्रतिपादन प्रो0 कार्ल पीयर्सन ने सन् 1900 ई0 के लगभग में किया था। इस विधि को अँग्रेजी के छोटा अक्षर 'आर' (r) से सम्बोधित करते हैं। इसीलिए इसे विधि पियर्सन r (आर) भी कहा जाता है। गुणन–आघूर्ण सहसम्बन्ध की कुछ मान्यताएं/पूर्वकल्पनाएं हैं जिनकी संतुष्टि वांछनीय है। ये मान्यताएं/पूर्वकल्पनाएं निम्न हैं–

1. दोनों चरों (X एवं Y) के प्राप्तांकों का संबंध रैखिक होना चाहिए। वक्रीय सम्बन्ध रहने पर आर का गुणन यथासम्भव नहीं करना चाहिए।

2. X तथा Y चरों के प्राप्तांकों का वितरण सामान्य होना चाहिए।

3. X तथा Y चरों के प्राप्तांकों में समविसारिता होनी चाहिए समविसारिता से मतलब होता है कि स्कैटर डायग्राम के प्रत्येक 'रो' तथा 'कॉलम' में प्राप्तांकों का विसरण बराबर या करीब–करीब बराबर है। समविसारिता का अंदाज स्कैटर डायग्राम देखने से होता है।

यदि आँकड़े उपर्युक्त पूर्वकल्पनाओं के अनुरूप हैं, तो सहसम्बन्ध r द्वारा ज्ञात किया जाना सबसे उपयुक्त सिद्ध होता है।

r ज्ञात करने के निम्नलिखित प्रमुख तरीके हैं जो इस प्रकार हैं–

14.4.1 मूल विधि या वास्तविक माध्य विधि–

r ज्ञात करने की यह मूल विधि है जिसका प्रयोग तब करते हैं जब दोनों चरों में, यानी X तथा Y में प्राप्तांकों का विचलन वास्तविक माध्य से लिया जाता है तथा आँकड़े प्रायः असंगठित होते हैं। इसका सूत्र इस प्रकार है–

$$r = \frac{\sum xy}{N.\sigma_x.\sigma_y}$$

जहां r = चर X और Y के बीच का सहसम्बन्ध

x = चर X के प्राप्तांकों का माध्य से विचलन

y = चर Y के प्राप्ताकों का माध्य से विचलन

σ_x = चर X के प्राप्तांकों का मानक विचलन

σ_y = चर Y के प्राप्तांकों का मानक विचलन

N = प्राप्तांकों की संख्या (जोड़ों में)

उपर्युक्त सूत्र को निम्न प्रकार भी लिखा जा सकता है –

$$r = \frac{\sum xy}{N\sqrt{\frac{\sum x^2}{N}} \times \sqrt{\frac{\sum y^2}{N}}}$$

$$\text{या}, r = \frac{\sum xy}{N\sqrt{\frac{(\sum x^2).(\sum y^2)}{N^2}}}$$

$$\text{या}, \ r = \frac{\sum xy}{\sqrt{(\sum x^2)(\sum y^2)}}$$

r का यह सूत्र ऊपर लिखित मूल सूत्र का ही सरल रूप है। दोनों चरों में माध्य से प्राप्तांकों के विचलनों के गुणनफल के योग को छात्रों की संख्या (N) से भाग देने पर औसत विचलन निकल आता है। जब इसको दोनों चरों के मानक विचलन (σ_x एवं σ_y) से विभाजित कर दिया जाात है तब हमारे पास वह मूल्य या अनुपात प्राप्त हो जाता है जिसमें दोनों चरों के विचलन अपने माध्यों से विचलित हैं।

14.4.2 मानित माध्य विधि –

'r' ज्ञात करने की यह दूसरी प्रमुख विधि है। इस विधि का प्रयोग तब होता है जब प्राप्तांकों का विचलन मानित या कल्पित माध्य से लिया जाता है। यहां आंकड़े अंसगठित तथा संगठित दोनों तरह के हो सकते हैं। कल्पित माध्य विधि द्वारा r ज्ञात करने का सूत्र इस प्रकार है –

$$r = \frac{\sum xy/_N - C_x C_y}{\sigma_x \sigma_y}$$

जहां, r = X तथा Y चरों के बीच का सहसम्बन्ध

x = X चर के प्राप्तांकों का माध्य से विचलन

y = Y चर के प्राप्ताकों का माध्य से विचलन

N = प्राप्तांकों के जोड़े की संख्या

σ_x = X चर में प्राप्तांकों का मानक विचलन

σ_x = Y चर में प्राप्तांकों का मानक विचलन

C_x = X चर में प्राप्तांकों की शुद्धि

C_y = Y चर में प्राप्तांकों की शुद्धि

$C_x = M_x - AM_x$

$Cy = M_y - AM_y$

$$\sigma x = \sqrt{\frac{\sum x^2}{N} - (Cx)^2}$$

$$\sigma y = \sqrt{\frac{\sum x^2}{N} - (Cx)^2}$$

मानित या कल्पित माध्य के रूप में प्रायः वास्तविक माध्य के तुरंत पहले या तुंरत बाद वाले प्राप्तांक (पूर्ण संख्या) को कल्पित कर लिया जाता है तथा दशमलव का वह अंश जो कल्पित माध्य को वास्तविक माध्य से अन्तर कराता है, शुद्धि कहलाता है।

कभी–कभी सामाजिक विज्ञान के प्रयोगों में दोनों चरों के आंकड़ें काफी बड़े–बड़े होते हैं तथा प्रयासों अथवा निरीक्षणों की संख्या (N) भी काफी बड़ी होती है। इस प्रकार संख्याओं के बड़े होने से गुणन का भार अत्यधिक हो जाता है। ऐसी स्थिति में सहसम्बन्ध गुणांक निकालने के लिए घटित अंक विधि का प्रयोग अधिक उपयोगी रहता है, जिसमें किसी स्थिर अंक को चर के प्रत्येक प्राप्तांक में से घटाकर बड़े–से–बड़े आंकड़ों को सरलतापूर्वक कम कर दिया जाता है। इससे जहां एक ओर गणन का भार घट जाता है वहीं दूसरी ओर परिणाम की शुद्धता में भी कमी नहीं आती।

14.5 स्पीयरमैन की कोटि – अन्तर विधि –

कोटि पर आधारित सांख्यिकी के लिए सबसे पहली विधि स्पीयरमैन द्वारा प्रतिपादित सहसम्बन्ध की कोटि–अन्तर विधि है जिसे '*P*' ('रो' अक्षर) से सूचित किया जाता है। यह विधि उस परिस्थिति में सबसे ज्यादा उपर्युक्त है, जब N छोटा होता है दोनों चरों X और Y का मापन क्रमसूचक मापनी पर संभव है, यानि आंकड़े कोटि पर प्राप्त हुए हों या अगर प्राप्तांक या मापन में भी आये हों, तो उन्हें कोटि में परिवर्तित किया जाना संभव हो।

कोटि अन्तर विधि द्वारा सहसम्बन्ध ज्ञात करने का सूत्र निम्न प्रकार है –

$$P = 1 - \frac{6.\sum D^2}{N(N^2 - 1)}$$

जहां, P = चर X एवं Y के बीच सहसम्बन्ध

D = चर X के प्राप्तांकों को कोटि तथा चर Y के प्राप्तांकों की कोटि का अन्तर

N = प्राप्तांकों के जोड़े की संख्या।

14.6 सहसम्बन्ध की गणना हल प्रश्न –

आइये, अब उपर्युक्त सूत्रों का प्रयोग कर सहसम्बन्ध गुणांक की गणना करें। पहले गुणन–आघूर्ण की दोनों ही विधियों (वास्तविक माध्य विधि तथा कल्पित माध्य विधि) द्वारा 'r' की गणना का उदाहरण देखें। फिर कोटि–अन्तर विधि से 'p' की गणना करेंगे।

14.6.1 वास्तविक माध्य विधि से पियर्सन सहसम्बन्ध (r) की गणना –

वास्तविक माध्य विधि से 'r' की गणना करते समय सर्वप्रथम दोनों चरों के प्राप्तांकों का माध्य ज्ञात करते हैं। माध्य निकालने के लिए सूत्र $M = \frac{\sum X}{N}$ का प्रयोग करते हैं।

चर X और चर Y से सम्बन्धित प्राप्तांकों का माध्य ज्ञात कर लेने के बाद इन दोनों चरों के प्राप्तांकों का माध्य से विचलन तालिका के अनुसार ज्ञात करते हैं। माध्य से विचलन ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्रों का प्रयोग करते हैं –

$x = X – M_x$; $y = Y - M_y$

माध्य से विचलन–x और विचलन–y ज्ञात करने के बाद x कॉलम की प्रत्येक संख्या का वर्ग करके x^2 कॉलम में लिखते हैं। इसी प्रकार से y^2 ज्ञात करते हैं।

तालिका पूरी करने के लिए तालिका के अन्तिम कॉलम में xy की गणना करते हैं। xy की गणना करने के लिए x कॉलम के अंक को y कॉलम के अंक से गुणा करके xy कॉलम में लिखते हैं।

तालिका पूरी हो जाने के बाद x^2 का योग अर्थात् Σx^2; y^2 का योग अर्थात् Σy^2 और xy का योग अर्थात Σxy की गणना करके तालिका के नीचे लिखते हैं और फिर इन मूल्यों को उपरोक्त बताये गये सूत्र में रखकर सह–सम्बन्ध गुणांक के मानक की गणना करते हैं।

उदाहरण : 10 विद्यार्थियों के अर्थशास्त्र और गणित के प्राप्तांक नीचे दिये हुए हैं। इन प्रातांकों की सहायता से वास्तविक मध्यमान विधि से सह–सम्बन्ध गुणांक की गणना कीजिए –

अर्थशास्त्र (X) 27 26 26 30 31 30 26 28 29 27

गणति (Y) 34 32 32 30 33 31 32 32 31 33

X	Y	x = X – Mx	y = Y - My	x^2	y^2	xy
27	34	27 - 28 = - 1	34 – 32 = 2	1	4	-2
26	32	26 - 28 = - 2	32 – 32 = 0	4	0	0
26	32	26 - 28 = - 2	32 – 32 = 0	4	0	0
30	30	30 - 28 = 2	30 – 32 = - 2	4	4	-4
31	33	31 - 28 = 3	32 – 32 = 1	9	1	3
30	31	30 - 28 = 2	31 – 32 = - 1	4	1	-2
26	32	26 - 28 = - 2	32 – 32 = 0	4	0	0
28	32	28 - 28 = 0	32 – 32 = 0	0	0	0
29	31	29 - 28 = 1	31 – 32 = - 1	1	1	-1
27	33	27 - 28 = - 1	31 – 32 = 1	1	1	-1
$\Sigma X=280$	$\Sigma X=320$	$\Sigma x=0$	$\Sigma y=0$	$\Sigma x^2=32$	$\Sigma y^2=12$	$\Sigma xy=-7$

Nx = 10 Ny = 10

$$Mx = \frac{\sum X}{Nx} = \frac{280}{10} = 28, My = \frac{\sum Y}{Ny} = \frac{320}{10} = 32$$

हल : प्रश्न में, $\sum xy = -7, \sum x^2 = 32, \sum y^2 = 12$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$r = \frac{\sum xy}{\sqrt{\sum x^2 \times \sum y^2}}$$

$$= \frac{-7}{\sqrt{32 \times 12}} = \frac{-7}{\sqrt{384}}$$

$$r = \frac{-7}{19.59} = -.357 = -.36$$

अतः अर्थशास्त्र और गणित के बीच ऋणात्मक एवं औसत से नीचे स्तर का सहसम्बन्ध है।

14.6.2 कल्पित माध्य विधि से 'r' की गणना –

सर्वप्रथम चर X और Y के प्राप्तांकों का माध्य ज्ञात करते हैं जिसके लिए $M = \sum X/N$ सूत्र का उपयोग करते हैं। इस मध्यमान के आधार पर कल्पित मध्यमान निश्चित करते हैं। कल्पित मध्यमान पूर्णांकों में मानते हैं। यह दोनों ही चरों का कोई भी प्राप्तांक हो सकता है।

X प्राप्तांकों के कल्पित मध्यमान से अन्य प्राप्तांकों का विचलन ज्ञात करके x कालम में रखा जाता है। इसी प्रकार से Y प्राप्तांकों के कल्पित मध्यमान से अन्य प्राप्तांकों का विचलन ज्ञात करके y कॉलम में रखते हैं। फिर x^2 और y^2 तथा xy सूत्र को नीचे के उदाहरण के अनुसार पूरा करते हैं।

$Cx = Mx - AMx$ सूत्र द्वारा Cx का मान ज्ञात करते हैं। इसी प्रकार $Cy = My - AMy$ सूत्र द्वारा Cy का मान ज्ञात करते हैं। अन्त में सूत्र के सभी संकेतों के मूल्यों को सूत्र में रखकर R की गणना करते हैं।

उदाहरण : कल्पित मध्यमान विधि द्वारा नीचे दिए गए जांच A और जांच B के बीच पियर्सन सहसम्बन्ध गुणांक की गणना कल्पित माध्य विधि द्वारा कीजिए।

प्रयोज्य	टेस्ट–ए X	टेस्ट–बी Y	कल्पित माध्य से विचलन x	y	x^2	y^2	xy
A	6	10	-3	3	9	9	-9
B	7	9	-2	2	4	4	-4
C	8	9	-1	2	1	4	-2
D	7	7	-2	0	4	0	0
E	9	7	0	0	0	0	0
F	10	5	1	-2	1	4	-2
G	10	5	1	-2	1	4	-2
H	9	4	0	-3	0	9	0
I	9	4	0	-3	0	9	0

$\Sigma X = 75$ $\Sigma Y = 60$ $\Sigma x^2 = 20$ $\Sigma y^2 = 43$ $\Sigma xy = -19$

$Nx = 9$ $Ny = 9$

$Mx = 8.33$ $My = 6.67$

$AMx = 9$ $AMy = 7$

कल्पित मध्यमान विधि द्वारा सह सम्बन्ध गुणांक की गणना निम्न सूत्र द्वारा किया गया है।

$$r=\frac{\frac{\sum xy}{N}-(Cx)(Cy)}{\sqrt{\left[\frac{\sum x^2}{N}-(Cx)^2\right)\left[\frac{\sum y^2}{N}-(Cy)^2\right)}}$$

यहां, Cx = Mx - AMx = 8.33 - 9 = - 67

Cy = My - AMy = 6.67 - 7 = - .33

उपर्यक्त सभी मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$r=\frac{\frac{-19}{9}-(-.67)(-.33)}{\sqrt{\left[\frac{20}{9}-(-.67)^2\right]\left[\frac{43}{9}-(-.33)^2\right]}}$$

$$=\frac{-2.11-(0.22)}{\sqrt{[2.22-.45][4.78-.11]}}=\frac{-2.33}{\sqrt{[1.77][4.67]}}$$

$$=\frac{-2.33}{\sqrt{[8.265)}}=\frac{-2.33}{\sqrt{[2.874)}}=-.81$$

अतः, परीक्षण A और परीक्षण B के प्राप्तांकों में अति उच्च ऋणात्मक सह–सम्बन्ध है।

14.6.3 कोटि अन्तर विधि से स्पीयरमैन *'P'* की गणना –

प्राप्तांक यदि कोटियों के रूप में नहीं है तो सर्वप्रथम कोटियों का निर्धारण नीचे के उदाहरण के अनुसार करते हैं। कोटियों का निर्धारण एक–दूसरे की तुलना में किया जाता है। जिस व्यक्ति का प्राप्तांक सर्वाधिक होता है उसे कोटि 1 दी जाती है। सर्वाधिक से कम प्राप्तांक पाने वाले को कोटि 2 दी जायेगी। उसी प्रकार से कोटि 3, 4, 5, 6 आदि का निर्धारण किया जाता है। इस प्रकार कोटियां प्रदान करके नीचे के उदाहरण का कालम R_1, जो परीक्षण–क पर आधारित है, पूरा करते हैं। फिर इसी प्रकार से कालम R_2 को परीक्षण–ख के आधार पूरा करते हैं। उदाहरण में परीक्षण–क में सर्वाधिक प्राप्तांक 37 को

कोटि 1, उससे कम प्राप्तांक 35 को कोटि 2 दी गई है, इसी प्रकार अन्य कोटियों का निर्धारण किया गया है। विद्यार्थी B, C और E के समान प्राप्तांक हैं। इन तीनों के प्राप्तांक 27, 27, 27 हैं। विद्यार्थी D को कोटि 4 प्राप्त हो चुकी है। अतः इन तीनों को 5, 6 और 7 कोटि देनी है। 5,6 और 7 की मध्यमान कोटि 6 है (5+6+7 ⁄ 3) जो तीनों विद्यार्थियो को दिया गया है। इस उदाहरण के परीक्षण – ख में सभी कोटियों का निर्धारण परीक्षण–क के अनुसार किया गया है। इसमें C और D विद्यार्थियों के समान प्राप्तांक 14, 14 हैं। कोटि 4 तक निर्धारण हो चुका है, कोटि 5 और 6 देनी है। यहां 5 और 6 का मध्यमान 5.5 है जो दोनों विद्यार्थियों को प्रदान की गई है।

R_1 और R_2 कालम में रैंक प्रदान करने का काम पूरा कर लेने के बाद अगले कॉलम में $D = R_1 - R_2$ का मान ज्ञात करते हैं। फिर D कालम की संख्याओं का वर्ग करके D^2 का मान प्राप्त कर D^2 कालम पूरा कर लेते हैं। अन्त में ΣD^2 का मान नीचे के उदाहरण के अनुसार प्राप्त करके सूत्र में सभी मानों को रखकर '*P*' के मान की गणना कर लेते हैं।

उदाहरण : नीचे आठ विद्यार्थियों के परीक्षण 'क' एवं 'ख' पर प्राप्तांक दिए गए हैं। इन प्राप्तांकों से सहसम्बन्ध गुणांक की गणना कीजिए –

विद्यार्थी संख्या	परीक्षण–क	परीक्षण–ख	कोटि		अन्तर	
			R_1	R_2	D ($R_1 - R_2$)	D^2
A	25	12	8	8	0.0	0.0
B	27	13	6	7	-1.0	1.0
C	27	14	6	5.5	-0.5	0.25
D	29	14	4	5.5	1.5	2.25
E	27	16	6	4	2.0	4.0
F	30	18	3	3	0.0	0.0
G	35	19	2	2	0.0	0.0
H	37	20	1	1	0.0	0.0
$\Sigma D^2 = 7.50$						

हल : प्रश्न में, $\Sigma D^2 = 7.50, N = 8$

इन मूल्यों को सूत्र में रखने पर,

$$p = 1 - \frac{6 \times \sum D^2}{N(N^2 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{6 \times 7.5}{8(8^2 - 1)} = 1 - \frac{6 \times 7.5}{8(64 - 1)}$$

$$= 1 - \frac{45}{8 \times 63} = 1 - \frac{45}{504}$$

$$= 1 - 0.89 = 911 = .91$$

अतः, परीक्षण –क और परीक्षण ख के प्राप्तांकों में सहसम्बन्ध गुणांक का मान 0.91 है। यह सहसम्बन्ध अति उच्च और धनात्मक है।

अभ्यास प्रश्न

1. **जब दो चरों या परीक्षणों के प्राप्तांकों के सहसम्बन्ध को एक सीधी रेखा द्वारा व्यक्त किया जाता है तो उसे .... सहसम्बन्ध कहते हैं।**
2. **यदि दो चरों के बीच का मात्रात्मक सहसम्बन्ध + 1.00 है तो इसे .... सहसम्बन्ध कहते हैं।**
3. **सूत्र $P = 1 - \frac{6.\Sigma D^2}{N(N^2 - 1)}$ का प्रतिपादन किसके द्वारा किया गया?**
4. **गुणन–आघूर्ण विधि से सहसम्बन्ध निकालने का सूत्र किसने दिया?**

14.7 सारांश

- सहसम्बन्ध से तात्पर्य दो चरों या परीक्षणों के प्राप्तांकों में निहित सम्बन्धों से होता है। जब दो या दो से अधिक चरों या घटनाओं में साहचर्यात्मक सम्बन्ध पाया जाता है, तो ऐसे सम्बन्ध को सहसम्बन्ध कहते हैं।

- सहसम्बन्ध मुख्यतः दो प्रकार के होते हैं– गुणात्मक तथा मात्रात्मक। गुणात्मक सह–सम्बन्ध के दो रूप हैं– रैखिक एवं वक्रीय। मात्रात्मक सहसम्बन्ध तीन रूपों में पाया जाता है– धनात्मक, ऋणात्मक तथा शून्य।
- जब दो चरों या परीक्षणों के बीच के सहसम्बन्ध को मात्रात्मक रूप में व्यक्त किया जाता है तो उसे सहसम्बन्ध गुणांक की संज्ञा दी जाती है। जहाँ सहसम्बन्ध से गुणात्मक मात्रा का बोध होता है, वहीं सहसम्बन्ध गुणांक से दोनों चरों के सम्बन्ध के विषय में मात्रात्मक ज्ञान उपलब्ध होता है।
- सहसम्बन्ध गुणांक ज्ञात करने की वैसे तो कई विधियां हैं, परन्तु पियर्सन की गुणन–आधूर्ण विधि तथा स्पीयरमैन की कोटि–अन्तर विधि लोकप्रिय विधि है।

14.8 शब्दावली

सहसम्बन्ध : दो चरों, परीक्षणों, धटनाओं के बीच पाया जाने वाला साहचर्यात्मक सम्बन्ध सहसम्बन्ध कहलाता है।

गुणात्मक सहसम्बन्ध : जब दो चरों या दो परीक्षणों पर के प्राप्तांकों में सहसम्बन्ध किसी खास गुण के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तो उसे गुणात्म्क सहसम्बन्ध कहते हैं।

मात्रात्मक सहसम्बन्ध : जब दो चरों या परीक्षणों के प्राप्तांकों के बीच पाये जाने वाले सहसम्बन्ध को रेखा द्वारा अभिव्यक्त न कर संख्या द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तो इसे मात्रात्मक सहसम्बन्ध कहते हैं।

14.9 अभ्यास प्रश्नों का उत्तर

1. रैखिक
2. पूर्ण धनात्मक
3. स्पीयरमैन
4. पियर्सन

14.10 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. श्री वास्तव, डी.एन. सांख्यिकी एवं मापन, विनोद प्रस्तक मंदिर, आगरा।
2. भाटिया, टी. आधुनिक मनोवैज्ञानिक सांख्यिकी, लावण्य प्रकाशन, उरई।

3. सिन्हा एवं मिश्रा, मनोविज्ञान में प्रयोग परीक्षण एवं सांख्यिकी, भारती भवन, पटना

4. गैरेट एवं वुडवर्थ, स्टैटिस्टिक्स इन साइकोलॉजी एण्ड एजुकेशन, वैकिल्स, फिफर एण्ड साइमन्स लि. बॉम्बे।

5. कपिल, एच.के., सांख्यिकी, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा।

14.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1 सहसम्बन्ध से आप क्या समझते हैं? मात्रात्मक सहसम्बन्ध के विभिन्न प्रकारों का उल्लेख करें।

2. सहसम्बन्ध गुणांक को परिभाषित करें। इसकी विभिन्न मात्राओं की गुणात्मक व्याख्या करें।

3. दो परीक्षकों ने 6 विद्यार्थियों को निम्न प्रकार से स्थानक्रम प्रदान किये हैं। p की गणना करें।

विद्यार्थी	प्रथम परीक्षक के रैंक	द्वितीय परीक्षक के रैंक
1	3	1
2	2	2
3	4	3
4	1	4
5	6	5
6	5	6

4. नीचे प्रश्न–क और प्रश्न–ख में दिये हुए आंकड़ों से अलग–अलग p की गणना करें।

(क)

विद्यार्थी	परीक्षक–अ	परीक्षक–ब
A	17	20

B	12	25
C	14	30
D	15	35
E	19	30
F	20	23
G	24	21

(ख)

प्रयोज्य	इतिहास	भूगोल
1	35	35
2	24	42
3	26	28
4	30	32
5	19	20
6	20	23
7	25	24
8	30	30
9	35	37
10	30	32

5. नीचे 'अ', 'ब' एवं 'स' में परीक्षण A और B पर 10 प्रयोज्यों के प्राप्तांक दिए गए हैं। तीनों ही स्थितियों में परीक्षण A एवं B के बीच वास्तविक माध्य विधि एवं कल्पित माध्य विधि से 'r' की गणना करें।

(अ)		(ब)		(स)	
परीक्षण–A	परीक्षण–B	परीक्षण–A	परीक्षण–B	परीक्षण–A	परीक्षण–B
16	17	52	25	5	7
14	13	54	27	2	1
29	20	55	28	10	7
23	20	55	29	3	6
19	16	56	30	13	11
15	19	57	34	6	11
26	16	59	34	12	14
10	16	60	34	6	3
10	11	61	36	8	9
18	12	63	35	10	7

इकाई – 15 मध्यमान, मध्यांक, प्रामाणिक विचलन, सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता

इकाई संरचना

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 सांख्यिकी की सार्थकता का अर्थ

15.4 माध्य या मध्यमान की सार्थकता या विश्वसनीयता

15.5 मध्यांक की सार्थकता

15.6 प्रामाणिक विचलन की सार्थकता

15.7 सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता

15.8 सारांश

15.9 शब्दावली

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

15.1 प्रस्तावना

इससे पूर्व की इकाईयों में आपने अध्ययन किया कि सांख्यिकी क्या है, किन–किन क्षेत्रों में इसका उपयोग किया जाता है? मध्यमान, मध्यांक, प्रामाणिक विचलन इत्यादि का क्या महत्व है? इन तथ्यों से भली–भांति परिचित हो चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में हम इन्हीं साख्यिकी मापों (मध्यमान, सहसम्बन्ध इत्यादि) की सार्थकता का अध्ययन करेंगे। सांख्यिकीय विधियों के द्वारा सम्पूर्ण जनसंख्या का अध्ययन करते समय कुछ सांख्यिकीय मापों जैसे मध्यमान (Mean), मध्यांक (Median), प्रामाणिक विचलन (SD), सहसम्बन्ध (Correlation) की आवश्यकता होती है। जनसंख्या में से कुछ इकाईयों का चयन किया जाता है, जिन्हें 'प्रतिदर्श' (Sample) कहते हैं। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रतिदर्श से यहां तात्पर्य नमूने से है जैसे कि एक बोरी अनाज है और उसकी गुणवत्ता का हमें पता लगाना है तो इस स्थिति में बोरी में से मुट्ठी भर अनाज निकालकर देखा जाता है कि उसकी गुणवत्ता (Quality) कितनी है। अतः यहां पर जो मुट्ठी भर अनाज निकाला गया वह प्रतिदर्श कहलायेगा। प्रतिदर्श के अध्ययन उपरान्त सामान्यीकरण के आधार पर अनुसंधान का निष्कर्ष निकाला जाता है। सम्पूर्ण जनसंख्या में से प्रतिदर्श चुनकर अध्ययन करते समय प्रायः यह संभावना व्यक्त की जाती है कि सम्पूर्ण जनसंख्या के माध्य तथा प्रामाणिक विचलन इत्यादि में तथा प्रतिदर्श के माध्य एवं प्रामाणिक विचलन आदि में कोई अन्तर नहीं होगा क्योंकि प्रतिदर्श वस्तुतः जनसंख्या का प्रतिनिधित्व करता है अर्थात् प्रतिदर्श (Sample) में वे सारी विशेषतायें विद्यमान हैं जो कि जनसंख्या में है क्योंकि प्रतिदर्श का चुनाव जनसंख्या में से ही किया जाता है लेकिन यह भी उतना ही सत्य है कि प्रतिदर्श के आधार पर निकाले गये सांख्यिकी माप अर्थात माध्य (Mean), मध्यांक (Median), प्रामाणिक विचलन (SD), सहसम्बन्ध (Correlation) आदि निश्चित ही सम्पूर्ण जनसंख्या को आधार मानकर निकाले गये प्राचल अर्थात वास्तविक माध्य, मध्यांक प्रामाणिक विचलन, सहसम्बन्ध से कम विश्वसनीय होंगे। जनसंख्या पर आधारित सांख्यिकीय मापों को निकालना अत्यधिक कठिन है। अतः प्रतिदर्श के सांख्यिकीय मापों की विश्वसनीयता की जांच के लिये अनुसंधानकर्ता यह जानने की कोशिश करता है कि कितने प्रतिशत स्थितियों में प्रतिदर्श का मध्यमान या प्रामाणिक विचलन वास्तविक मध्यमान या प्रामाणिक विचलन से कितना दूर या निकट है। इसे ही सांख्यिकीय मापों की सार्थकता या विसनीयता कहा जाता है प्रतिदर्श मध्यमान, जनसंख्या मध्यमान के जितना निकट होता है उसकी सार्थकर्ता या विश्वसनीयता उतनी ही ज्यादा होती है।

15.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई का अध्ययन करने के बाद आप –

- मध्यमान की सार्थकता को स्पष्ट कर सकेंगे।
- मध्यांक की सार्थकर्ता का अध्ययन कर सकेंगे।

- प्रामाणिक विचलन की महत्ता एवं सार्थकता का विश्लेषण कर सकेंगे।
- सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता एवं महत्व को स्पष्ट कर सकेंगे।

15.3 सांख्यिकी की सार्थकता का अर्थ

पाठकों अब आपके मन में जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि सांख्यिकी अर्थात – मध्यमान, मध्यांक इत्यादि की सार्थकता या विश्वसनीयता का अर्थ क्या है?

वस्तुतः सांख्यिकी की सार्थकता का अर्थ होता है कि सांख्यिकी अपने प्राचल अर्थात वास्तविक मध्यमान, मध्यांक, प्रामाणिक विचलन एवं सहसम्बन्ध गुणांक के कितना नजदीक या दूर है।

प्रतिदर्श के आधार पर निकाले गये मान अर्थात मध्यमान, मध्यांक इत्यादि प्राचल के (जनसंख्या के आधार पर निकाले गये मान) जितना पास में होते हैं, उन्हें उतना ही अधिक सार्थक या विश्वसनीयता माना जाता है।

15.4 मध्यमान (माध्य) की सार्थकता या विश्वसनीयता

मध्यमान की सार्थकता से अभिप्राय है कि प्रतिदर्श मध्यमान अपने जनसंख्या मध्यमान अर्थात वास्तविक माध्य से कितना दूर या पास में है।

प्रतिदर्श मध्यमान की सार्थकता या विश्वसनीयता की गणना –

माध्य की सार्थकता ज्ञात करने के लिये सबसे पहले आवश्यक है कि मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि (standard Error of mean (SE_M)) ज्ञात की जाये।

प्रामाणिक त्रुटि SE_M के द्वारा हम जनसंख्या माध्य (M_{POP}) की सीमाओं का पता सरलतापूर्वक लगा सकते हैं। अनुसंधान के लिये जिस प्रतिदर्श का चयन किया जाता है। वह बड़ा भी हो सकता है और छोटा भी। सामान्यतः जब प्रतिदर्श की संख्या 30 से अधिक होती है तो उससे बड़ा प्रतिदर्श माना जाता है और 30 से कम होने पर छोटा प्रतिदर्श। बड़े एवं छोटे प्रतिदर्श की प्रमाणिक त्रुटि (SE_M) ज्ञात करने के सूत्र भी अलग–अलग है, जो निम्नानुसार है–

बड़े प्रतिदर्श की प्रामाणिक त्रुटि ज्ञात करने का सूत्र

$$SE_M \text{ or } \sigma m = \frac{\sigma}{\sqrt{N}}$$

छोटे प्रतिदर्श की प्रामाणिक त्रुटि ज्ञात करने का सूत्र

$$SE_M = \frac{\sigma}{\sqrt{N-1}}$$

सूत्र की व्याख्या

SE_M or σ_M = मध्यमान की प्रामाणिक त्रुटि

(Standard Error of Mean)

σ = जनसंख्या का प्रामाणिक विचलन

(Standard Deviation of population)

N = प्रतिदर्श की इकाईयों की संख्या

(Number of Units in the sample)

बड़े प्रतिदर्श मध्यमान की सार्थकता की गणना

उदाहरण 1 – एक समूह पर उपलब्धि परीक्षण का व्यवहार किया गया। उससे प्राप्त आंकड़े निम्नानुसार हैं–

Mean	=	120
SD	=	18
N	=	100

उपर्युक्त आंकड़ों के आधार पर प्रतिदर्श मध्यमान की सार्थकता ज्ञात कीजिए।

हल :

$$SE_M \text{ or } \sigma_M = \frac{\sigma}{\sqrt{N}}$$

σ = 18

N = 100

$$SE_M = \frac{18}{\sqrt{100}} = 1.8$$

$SE_M = 1.8$

किसी भी प्रतिदर्श मध्यमान की सार्थकता विश्वास के दो स्तरों (levels of confidence) पर की जा सकती है। जो निम्न है –

(i) 0.05 level (95%)

(ii) 0.01 level (99%)

जब सार्थकता का स्तर 0.05 होता है तो इसका अर्थ है कि 100 प्रतिशत में से 95 प्रतिशत संभावना उस प्रकार की घटना के घटित होने की होती है तथा 0.01 स्तर का आशय है कि 100 प्रतिशत में से 99 प्रतिशत संभावना उस प्रकार की घटना के घटित होने की है अर्थात मात्र 1 प्रतिशत स्थिति में ही ऐसा हो सकता है कि उस प्रकार की घटना न हो।

अतः जनसंख्या माध्य (M_{POP}) के लिये .95 सार्थकता का अन्तराल

$= M \pm 1.96 \times SE_M$

$= 120 \pm 1.96 \times 1.8$

$= 120 \pm 3.53$

= 123.53 से 116.47 तक

100 प्रतिशत में से 95 प्रतिशत इस बात की संभावना है कि जनसंख्या माध्य अर्थात वास्तविक माध्य से अधिक से अधिक 123.53 तथा कम से कम 116.47 के प्रसार में होगा।

यह भी कहा सकते हैं कि प्रतिदर्श माध्य अपने वास्तविक माध्य का केवल 3.53 से चूक रहा है।

ऐसा होने की संभावना 95 प्रतिशत है अर्थात ऐसा कहने से हम 95 प्रतिशत सही ओर 5 प्रतिशत गलत हो सकते हैं।

जनसंख्या माध्य के लिये .99 सार्थकता का अन्तराल

$= M \pm 2.58 \times SE_M$

$= 120 \pm 2.58 \times 1.8$

$+ 120 \pm 4.64$

= 124.64 से 115.36 तक

99% इस बात की संभावना है कि जनसंख्या मध्यमान अधिकाधिक 124.64 तथा कम से कम 115.36 के प्रसार में होगा। कहने का आशय यह है कि प्रतिदर्श माध्य अपने वास्तविक माध्य से केवल 4.64 से चूक रहा है और ऐसी संभावना व्यक्त करने में हम केवल 1% गलत और 99% सही है।

छोटे प्रतिदर्श मध्यमान की सार्थकता की गणना –

उदाहरण 2 : एक अभिवृत्ति परीक्षण पर 20 विद्यार्थियों द्वारा प्राप्त आंकड़ें निम्नानुसार है–

M = 12

SD = 4

उपर्युक्त आंकड़ों के आधार पर प्रतिदर्श मध्यमान की विश्वसनीयता या सार्थकता की गणना कीजिए।

हल :

$$\sigma_M \text{ or } SE_M = \frac{\sigma}{\sqrt{N}}$$

σ = 4

N = 20

$$SE_M = \frac{4}{\sqrt{20}} = 0.89$$

SE_M = 0.89

महत्वपूर्ण : जब प्रतिदर्श की इकाइयाँ 30 से कम होती है तो उसे छोटा –प्रतिदर्श माना जाता है। प्रतिदर्श छोटा होने पर भी SE_M या $(\sigma_M) = \frac{\sigma}{\sqrt{N}}$ सूत्र के माध्यम से ही निकाला जाता है। लेकिन मानक विचलन का सूत्र $\sqrt{\frac{\Sigma \times^2}{N-1}}$ होता है। अतः यह बात ध्यान रखने योग है।

वास्तविक या जनसंख्या (M_{POP}) माध्य के लिये .95 सार्थकता का अन्तराल

$= M \pm 1.96 \times SE_M$

$= 12 \pm 1.96 \times 0.89$

$= 12 \pm 1.74$

= 13.74 से 10.26 तक

उपर्युक्त मान की गणना करने पर 95% संभावना इस बात की है कि वास्तविक माध्य (Centre Mean) अधिकाधिक 13.74 तथा कम से कम 10.26 के प्रसार में होगा। इस बात को हम इस ढंग से भी व्यक्त कर सकते हैं कि प्रतिदर्श मध्यमान, वास्तविक मध्यमान से केवल 1.74 से चूक रहा है। अतः प्रतिदर्श मध्यमान काफी विश्वसनीय या सार्थक है। इस बात की संभावना 100% में से 95% है, केवल 5% स्थितियों में ऐसा सकता है जिसमें ऐसा संभव न हो।

जनसंख्या माध्य (M_{POP}) के लिये .99 सार्थकर्ता का अन्तराल –

$= M \pm 2.58 \times SE_M$

$= 12 \pm 2.58 \times 0.89$

$= 12 \pm 2.29$

= 14.29 से 9.71 तक

अर्थात 100% में से 99% इस बात की संभावना व्यक्त की जा सकती है कि जनसंख्या मध्यमान अधिक से अधिक 14.29 तथा कम से कम 9.71 के प्रसार में होगा। अर्थात् प्रतिदर्श मध्यमान, जनसंख्या माध्य से मात्र 2.29 से चूक रहा है। ऐसा कहने में हम 99% सही और 1% गलत हो सकते हैं। अर्थात 100 स्थितियों में से 99 स्थितियों में ऐसा होने की संभावना है, केवल 1 स्थिति में ऐसा हो सकता है कि ऐसा न हो।

15.5 मध्यांक की सार्थकता

जिज्ञासु पाठकों, मध्यांक की सार्थकता का आशय वही है, जो माध्य की सार्थकता या विश्वसनीयता का है। इसको निकालने की विधि भी मध्यमान की सार्थकता ज्ञात करने की विधि जैसी ही है अर्थात् इसमें भी प्रामाणिक या मानक त्रुटि की गणना करनी होती है। ऐसा माना जाता है कि मध्यांक की मानक त्रुटि माध्य की मानक त्रुटि की सवा गुनी अधिक होती है। प्रिय व़िद्यार्थियों अब आपके मन में यह जिज्ञासा उत्पन्न हो रही होगी कि माध्य

एवं मध्यांक में से कौन अधिक विश्वसनीय या सार्थक है। माध्यांक की तुलना में मध्यमान को अधिक विश्वसनीय माना जाता है क्योंकि इसकी (मध्यमान) की गणना में प्रतिदर्श (Sample) से सम्बन्धित विचलन (Fluctuations) अपेक्षाकृत कम होते हैं।

मध्यांक की प्रामाणिक त्रुटि ज्ञात करने के लिये निम्नांकित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है।

N तथा σ मालूम होने पर निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

बड़े प्रतिदर्श के लिये –

$$\sigma_{Md} = \frac{1.253\sigma}{\sqrt{N}}$$

छोटे प्रतिदर्श के लिये

$$\sigma_{Md} = \frac{1.253\sigma}{\sqrt{N-1}}$$

N तथा Q (चतुर्थक) ज्ञात होने पर निम्नलिखित सूत्रों का प्रयोग किया जाता है :

बड़े प्रतिदर्श के लिये–

$$\sigma_{Md} = \frac{1.858Q}{\sqrt{N}}$$

छोटे प्रतिदर्श के लिये

$$\sigma_{Md} = \frac{1.858Q}{\sqrt{N-1}}$$

उदाहरण 3 : 500 विद्यार्थियों द्वारा एक बुद्धि परीक्षण पर प्राप्त अंकों का मध्यांक 64.30 है तथा प्रमाणिक विचलन (SD) 4.90 है। दिया हुआ मध्यांक जनसंख्या मध्यांक का कहां तक प्रतिनिधित्व कर रहा है? ज्ञात कीजिये।

हल :

Md = 64.30

N = 500

SD = 4.90

उपर्युक्त उदाहरण में N का मान 30 से अधिक है। अतः यह बड़ा प्रतिदर्श है। इसलिये प्रामाणिक त्रुटि ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग किया जायेगा –

$$\sigma_{Md} = \frac{1.253\sigma}{\sqrt{N}}$$

$$= \frac{1.253 \times 4.90}{\sqrt{500}}$$

$$= \frac{6.14}{22.36}$$

$$\sigma_{Md} = 0.27$$

व्याख्या – जनसंख्या मध्यांक (Md_{POP}) के लिये .99 सार्थकता स्तर

$= Md \pm 2.58\ \sigma_{Md}$

$= 64.30 \pm 2.58 \times .27$

$= 64.30 \pm .69$

अर्थात 64.99 से 63.61 तक

अतः 99% विश्वास के साथ कहा जा सकता है कि जनसंख्या मध्यांक अधिक से अधिक 64.99 तथा कम से कम 63.61 होगा। यह प्रसार सीमित है जो इस बात का प्रमाण है कि प्रतिदर्श मध्यांक, अपने जनसंख्या मध्यांक का बहुत अधिक प्रतिनिधित्व कर रहा है। इसलिये प्रतिदर्श मध्यांक अत्यधिक सार्थक एवं विश्वसनीय है।

15.6 प्रमाणिक विचलन की सार्थकता

प्रिय विद्यार्थियों, मध्यमान एवं मध्यांक की सार्थकता ज्ञात करना आप सीख चुके हैं। अब हम बात करते हैं, प्रामाणिक विचलन की सार्थकता के विषय में।

प्रामाणिक विचलन की सार्थकता का अर्थ है कि प्रतिदर्श प्रामाणिक विचलन, जनसंख्या प्रामाणिक विचलन का किस सीमा तक प्रतिनिधित्व करता है। अर्थात वह उसके कितना निकट या दूर है।

जिज्ञासु पाठकों जैसा कि आप जान ही चुके हैं कि सांख्यिकीय मानों की विश्वसनीयता जांचने के लिये सर्वप्रथम मानक त्रुटि की गणना की जाती है। मानक त्रुटि ज्ञात करने के लिये प्रत्येक सांख्यिकीय मान के भिन्न–भिन्न सूत्र है।

मानक विचलन की विश्वसनीयता को जानने के लिये मानक त्रुटि की गणना के लिये निम्न सूत्रों का प्रयोग किया जाता है –

बड़े प्रतिदर्श के लिये

$$\mathrm{SE}_{\sigma}(\sigma_{\sigma}) = \frac{.71\sigma}{\sqrt{N}}$$

छोटे प्रतिदर्श के लिये

$$\mathrm{SE}_{\sigma}(\sigma_{\sigma}) = \frac{\sigma}{\sqrt{2N}}$$

SE_{σ} (σ_{σ}) = (प्रामाणिक विचलन की मानक त्रुटि) Standard Error of SD

SD = (प्रामाणिक विचलन) Standard Deviation

N = (प्रतिदर्श की इकाईयों की संख्या) Number of cases in the sample

उदाहरण 4 :

N = 500

σ = 5.80

प्रतिदर्श के मानक विचलन की सार्थकता ज्ञात कीजिये।

हल :

N = 500

σ = 5.80

$$\mathrm{SE}_{\sigma} = \frac{.71\sigma}{\sqrt{N}}$$

$$= \frac{.71 \times 5.80}{\sqrt{500}}$$

$$= \frac{4.11}{\sqrt{500}}$$

$$= 0.18$$

$SE_{\sigma} = 0.18$

प्रिय विद्यार्थियों अब जनसंख्या प्रामाणिक विचलन के लिये .99 विश्वसनीयता अर्थात .01 स्तर पर सार्थकता ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं।

$= \sigma \pm 2.58\, \sigma_{\sigma}$

$= 5.80 \pm 2.58 \times .18$

$= 5.80 \pm 0.46$

= 6.26 से 5.34 तक

अर्थात् जनसंख्या प्रामाणिक विचलन 6.26 से अधिक और 5.34 से कम नहीं है और ऐसा कहने में हम 99% सही है तथा केवल 1% ही गलत हो सकते हैं। प्रतिदर्श मानक विचलन 5.80 है, जो जनसंख्या मानक विचलन से बहुत दूर नहीं है।

अतः हम कह सकते हैं कि प्रतिदर्श मानक विचलन अत्यधिक सार्थक एवं विश्वसनीय है।

15.7 सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता

प्रिय पाठकों प्रामाणिक विचलन की सार्थकता का अध्ययन करने के बाद अब हम सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता के विषय में चर्चा करते हैं।

सहसम्बन्ध गुणांक की विश्वसनीयता ज्ञात करने के लिए भी पहले मानक त्रुटि निकाली जाती है जिसका सूत्र निम्नानुसार है

$$SE_r = \frac{1-r^2}{\sqrt{N}}$$

SE_r या σ_r=सहसम्बन्ध की प्रामाणिक त्रुटि (Standard error of Correlation)

r = सहसम्बन्ध गुणांक (Coefficient)

N = प्रतिदर्श की इकाईयों की संख्या (Number of cases in the sample)

उदाहरण 5 – दो चरों के बीच सहसम्बन्ध

r = .55

N = 100

$$SE_r = \frac{1-r^2}{\sqrt{N}}$$

$$= \frac{1-.55^2}{\sqrt{100}}$$

$$= \frac{1-.30}{10}$$

$$= \frac{0.7}{10}$$

$SE_r = 0.07$

अब जनसंख्या सहसम्बन्ध के लिये .99 विश्वसनीयता अर्थात .01 स्तर पर सार्थकता ज्ञात करने के लिये निम्न सूत्र का प्रयोग करते हैं –

$r \pm 2.58\, \sigma_r$

$= .55 \pm 2.58 \times .07$

$= .55 \pm 0.18$

= 0.73 से .37 तक

अर्थात .01 स्तर पर जनसंख्या सहसम्बन्ध अधिकाधिक .73 तथा कम से .37 तक हो सकता है। ऐसा होने की संभावना 99% है तथा 1% नहीं है। प्रतिदर्श सहसम्बन्ध .55 है जो जनसंख्या सहसम्बन्ध से ज्यादा दूर नहीं है। अतः हम कह सकते हैं कि प्रतिदर्श सहसम्बन्ध जनसख्ंया का अत्याधिक प्रतिनिधित्व करता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न

नीचे कुछ कथन दिये गये हैं सत्य और असत्य लिखिए–

इनमें से जो सही है उसके आगे सत्य तथा जो गलत हो उसके गलत असत्य लिखिए–

1. सांख्यिकीय मानों की सार्थकता ज्ञात करने के लिये प्रामाणिक त्रुटि ज्ञात करने की आवश्यकता होती है।
2. प्रतिदर्श का सांख्यिकीय मान, जनसंख्या मान अर्थात वास्तविक मान के जितना नजदीक होता है, उतना ही विष्वसनीय माना जाता है।
3. प्रतिदर्श का सांख्यिकीय मान, जनसंख्या मान के जितना नजदीक होता है, उतना ही अविश्वसनीय माना जाता है।
4. प्रतिदर्श का सांख्यिकीय मान, जनसख्ंया मान (वास्तविक मान) से जितना दूर होता है,, उतना ही विश्वसनीय या सार्थक माना जाता है।
5. जब N का मान 30 या 30 से कम होता है तो उसे छोटा समूह माना जाता है।

15.8 सारांश

सांख्यिकीय मान की सार्थकता –

प्रतिदर्श के सांख्यिकीय मान (मध्यमान, मध्यांक प्रामाणिक विचलन के सहसम्बन्ध) की सार्थकर्ता का अर्थ यह है कि प्रतिदर्श माध्य अपने वास्तविक मान के कितना निकट या दूर है। प्रतिदर्श के सांख्यिकीय मान की सार्थकता ज्ञात करने हेतु उसकी प्रमाणिक त्रुटि ज्ञात की जाती है। प्रतिदर्श की संख्या 30 से कम होने पर बड़ा छोटा प्रतिदर्श तथा 30 से अधिक होने पर बड़ा प्रतिदर्श कहलाता है। बड़े व छोटे प्रतिदर्श की प्रमाणिक त्रुटि ज्ञात करने का सूत्र अलग–अलग है। मध्यांक की अपेक्षा मध्यमान को अधिक विश्वसनीय माना जाता है।

15.9 पारिभाषिक शब्दावली

सार्थकता	=	Significance
मध्यमान	=	Mean
मध्यांक	=	Median
प्रमाणिक विलचन	=	Standard Deviation
सहसम्बन्ध गुणांक	=	Correlation Coefficient
प्रतिदर्श	=	Sample
प्राचल	=	Parameter
प्रमाणिक त्रुटि	=	Standard Error

15.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. सत्य 2. सत्य 3. असत्य 4. असत्य 5. सत्य

15.11 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. डा. मुहम्मद सुलैमान : मनोविज्ञान शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी (मोतीलाल बनारसी दास, दिल्ली, 2010)
2. ए.पी. सिंह सांख्यिकी सिद्धान्त एवं व्यवहार, (एस. चन्द, दिल्ली, 2009)

15.12 निबंधात्मक प्रश्न

1. किसी बारम्बारता वितरण का माध्य = 25.40, मानक विचलन = 4.20 और N=100 है तब

   (i) वास्तविक माध्य के लिए 0.99 तथा

(ii) वास्तविक मानक विचलन के लिए 0.95 विश्वसनीयता अन्तराल ज्ञात कीजिए।

(उत्तर : (i) 26.48 से 23.32 (ii) 26.22 से 24.58)

2. यदि r = 35 तथा N = 500 हो तो विशुद्ध सहसम्बन्ध की सीमाओं को .01 स्तर तथा .05 स्तर पर ज्ञात कीजिए।

(उत्तर : 0.43 से 0.27 (.01 स्तर पर) तथा 0.41 से 0.29 (.05 स्तर पर))

3. 400 छात्रों के एक प्रतिदर्श में माध्य ऊँचाई 171.38 सेमी पायी गयी। क्या यह माना जा सकता है कि यह प्रतिदर्श एक ऐसे वृहत समग्र में से चुना गया है जिसका माध्य 171.17 सेमी तथा प्रमाप विचलन 3.30 सेमी है।

(उत्तर : हाँ)

4. किसी नगर के 16 से 19 वर्ष के 1000 युवकों के एक प्रतिदर्श द्वारा एक चिन्तामापनी (Anxiety Scale) पर प्राप्त आंकड़ों के माध्य 60 तथा मानक विचलन 24 पाये गए।

0.95 विश्सनीयता अन्तराल के लिए अधिक से अधिक वास्तविक माध्य क्या होगा।

(उत्तर : 61.49 से 58.51)

5. एक प्रसामान्य वितरण में माध्य एवं प्रमाणिक विचलन क्रमशः 100 और 20 हैं।

ज्ञात करें।

1. 85 और 125 के बीच कितने प्रतिशत प्राप्तांक पाये जायेंगे।

2. किन दो प्राप्तांकों के बीच 60% प्राप्तांक पाए जायेंगे।

(उत्तर : (i) 66.78% (ii) 116.80 तथा 83.20 के बीच)

इकाई 16 टी अनुपात की गणना एवं क्रान्तिक अनुपात

इकाई की रूपरेखा

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 टी वितरण का अर्थ एवम् सूत्र

16.4 दो प्रतिदर्श–माध्यों के अन्तर का सार्थकता परीक्षण

16.5 अन्तर–परीक्षण या युग्मित t परीक्षण

16.6 सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता का t परीक्षण

16.7 सारांश

16.8 पारिभाषिक शब्दावली

16.9 अभ्यास हेतु प्रश्न व उत्तर

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

16.12 निबंधात्मक प्रश्नों के उत्तर

16.1 प्रस्तावना–

सार्थकता परीक्षण में लघु प्रतिदर्शो $(n<30)$ करने हेतु बड़े प्रतिदर्शो $(n>30)$ वाले परीक्षणों का प्रयोग नहीं किया जा सकता क्योंकि जिन मान्यताओं पर हम बड़े प्रतिदर्शो के माध्य, विचलन, इत्यादि का विश्लेषण करते है, वे मान्यताएं छोटे प्रतिदर्शो में नहीं मिलती। हालांकि आर्थिक व सामाजिक क्षेत्र के अध्ययनों में तो सामान्यतः प्रतिदर्शो का आकार पर्याप्त रूप से बड़ा होता ही है। किन्तु जहाँ आँकडे विस्तृत प्रयोगों द्वारा या प्रयोगशाला में एकत्र किये जाते है जिनमें समय व धन अधिक व्यय होता है वहाँ छोटे आकार के प्रतिदर्श प्राप्त करना ही उचित रहता है। छोटे प्रतिदर्शो का विश्लेषण करते समय हमें यह मालूम करना होता है कि प्रतिचयन के अवलोकित मूल्य और प्राचल मूल्य का अन्तर प्रतिदर्श उच्चावचनों के कारण उत्पन्न हुआ है अथवा नहीं।

16.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

1. t अनुपात या t वितरण का अर्थ व सूत्र जान सकेंगे।
2. t वितरण की विशेषताएं जान सकेंगे।
3. छोटे प्रतिदर्शो के माध्य की जाँच t परीक्षण द्वारा कर पायेंगे।
4. दो प्रतिदर्श माध्यों के अन्तर की सार्थकता का परीक्षण कर पायेंगे।
5. एक जैसे पदों पर किसी घटना की दो क्रियाओं का प्रभाव युग्मित t परीक्षण द्वारा समझ सकेंगे।
6. सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता का t परीक्षण कर सकेंगे।

बेस्सेल का संशोधन–

लघु प्रतिदर्शो के प्रमाप विचलन में कमी के कारण विभ्रम की गणना में कमी होती है। समग्र का अनुमानित प्रमाणिक विचलन $\sigma_P = \sqrt{\left(\frac{n}{n-1}\right)\sigma_s^2}\left(\frac{n}{n-1}\right)$

यहाँ $\left(\frac{n}{n-1}\right)$ बेस्सेल का संशोधन है।

सर विलियम सीली गोस्सेट (Sir William Sealy Gosset) द्वारा छोटे प्रतिदर्शो में सार्थकता परीक्षण के क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान दिया। गोस्सेट ने टी प्रतिदर्शज की संकल्पना की जो स्टुडेण्ट का टी बंटन या टी वितरण नाम से प्रसिद्ध हुयी।

16.3 टी वितरण का अर्थ एवम् सूत्र–

टी वितरण के अनुसार ''समग्र माध्य तथा प्रतिदर्श माध्य के अन्तर तथा प्रतिदर्श माध्य के प्रमाप विभ्रम का अनुपात 'टी' मूल्य कहलाता है जिसे 'टी' अनुपात भी कहते है। प्रमाप विभ्रम के लिए प्रमाप विचलन बेस्सेल–संशोधन द्वारा ज्ञात किया जाता है।

अतः सूत्र रूप में,

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{s}\sqrt{n} \quad \text{या} \quad t = \frac{\overline{X} - \mu}{s^1}\sqrt{n-1}$$

जहां $\overline{X}$ = प्रतिदर्श का माध्य

μ = समग्र का माध्य

S = प्रतिदर्श का प्रमाप विचलन = $\sqrt{\frac{\Sigma\left(X-\overline{X}\right)^2}{n-1}}$

$$S^1 = \sqrt{\frac{\Sigma\left(X-\overline{X}\right)^2}{n}}$$

n = प्रतिदर्श की इकाइयों की संख्या

टी वितरण (टी अनुपात) की विशेषताएँ–

1. टी अनुपात का वक्र सममित या घंटाकार तथा एक शिखर वाला होता है।

2. टी का मान $-\infty$ से $+\infty$ के बीच होता है।

3. टी वक्र की आकृति प्रतिदर्श की इकाइयों पर निर्भर होती है।

स्वातन्त्रय संख्या अलग होने पर टी वक्र अलग होता है।

4. सामान्यतः टी वितरण का प्रसरण एक से बड़ा होता है। स्वातन्त्रय संख्या (df) इकाई के बराबर होने पर प्रसामान्य वक्र का रूप ले लेता है। इसी कारण टी वितरण को बड़े प्रतिदर्शो के लिए भी प्रयोग किया जा सकता है जबकि बड़े प्रतिदर्शो का सिद्धान्त छोटे प्रतिदर्शो पर लागू नहीं किये जा सकते।

5. टी वितरण का माध्य शून्य होता है।

टी परीक्षण द्वारा छोटे प्रतिदर्श के माध्य की सार्थकता जाँच–

छोटे प्रतिदर्श के माध्य तथा समग्र के माध्य के बीच अन्तर की सार्थकता की जाँच हेतु अपनायी जाने वाली प्रक्रिया निम्न है –

1. **शून्य परिकल्पना–** सर्वप्रथम यह परिकल्पना की जाती है कि प्रतिदर्श माध्य एवं समग्र माध्य में कोई अन्तर नहीं है।

2. **समग्र के प्रमाप विचलन का आंकलन–** समग्र के प्रमाप विचलन का आंकलन निम्नलिखित सूत्र द्वारा किया जाता है।

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma\left(X - \overline{X}\right)^2}{n-1}}$$

3. **t –प्रतिदर्शज की गणना–** t के मान की गणना निम्न सूत्र द्वारा की जाती है।

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{s}\sqrt{n}$$

नोट– प्रतिदर्श का प्रमाप विचलन (σ) ज्ञात होने पर 't' का मान ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र प्रयोग किया जाता है–

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{\sigma}\sqrt{n-1}$$

4. **स्वातन्त्रय संख्या या स्वातन्त्रयांश संख्या–** स्वातन्त्रय संख्या (df) ज्ञात करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है –

d.f. = n – k

जहाँ n = कुल आवृत्तियों की संख्या

k = प्रतिबन्धों की संख्या

'टी' परीक्षण के लिए यह संख्या अधिकतर (n–1) होती है।

5. **टी–सारणी तथा क्रान्तिक मान–** 't' सारणी से सम्बन्धित स्वातन्त्रय संख्या (d.f.) तथा वांछित सार्थकता स्तर पर (5% या 1%) मूल्य देख लिया जाता है। सामान्यतः 5% सार्थकता स्तर का ही प्रयोग किया जाता है। सारणी में दिये गये 't' के मान क्रान्तिक मान है जो कि t के वह मूल्य है जो केवल प्रतिचयन उच्चावचनों के कारण उत्पन्न होते है। इसलिए निष्कर्ष निकालने के लिए टी के वास्तविक मान की तुलना टी के क्रान्तिक मान से की जाती है।

6. **निष्कर्ष–**

't' का वास्तविक मान t के क्रान्तिक मान (सारणी मान) से अधिक होने पर अन्तर को सार्थक माना जाता है तथा शून्य परिकल्पना असत्य मानी जाती है। 't' का वास्तविक मान टी के क्रान्तिक मान (सारणिक मान) से कम होने पर अन्तर अर्थहीन माना जाता है तथा शून्य परिकल्पना सत्य मानी जाती है।

उदाहरण–

दैव आधार पर एक कक्षा के 8 छात्रों का वजन किया गया जो निम्न पाये गये।

51, 55, 57, 60, 63, 67, 72, 78

इन आँकड़ों के आधार पर क्या आप विश्वसनीयता के साथ कह सकते है कि कक्षा में औसत वजन 64 है? 5% सार्थकता स्तर का प्रयोग कीजिए।

हल–

शून्य परिकल्पना के लिए समग्र माध्य $\mu = 64$

समग्र के माध्य की सीमाओं का निर्धारण

सामान्य वितरण वाले आँकड़ों के लिए प्रतिदर्श के माध्य के आधार पर आँकड़ों की सीमाओं का निर्धारण करने के लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है।

माध्य का 95% विश्वास्यता अन्तराल $\mu = \overline{X} \pm \frac{S}{\sqrt{n}} t$

यहाँ t का मान सारणी से 5% सार्थकता स्तर पर देखा जायेगा

माध्य का 99% विश्वास्यता अन्तराल $\mu = \overline{X} \pm \frac{S}{\sqrt{n}} t$

यहाँ t का मान सारणी से 1% सार्थकता स्तर पर देखा जायेगा।

वजन	माध्य से विचलन d = x-x	
51	12	144
55	8	64
58	6	36
60	3	9
63	0	0
67	-4	16
72	-9	81
78	-15	225
$\Sigma X = 504$	$\Sigma d = 0$	$\Sigma d^2 = 575$

प्रतिदर्श का प्रमाप विचलन

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n-1}} = \sqrt{\frac{575}{8-1}} = \sqrt{\frac{575}{7}} = \sqrt{82.14}$$

= 9.06

$$t = \frac{64-62}{9.06}\sqrt{8} = \frac{2}{9.06} x 2.828$$

= 0.624

d.f. = (n-1) = (8-1) = 7

t का 7d.f. का 5% सार्थकता स्तर पर सारणी मूल्य 2.365 है, तथा t का गणना द्वारा प्राप्त मूल्य 0.624 है जो कि t के सारणी मूल्य से कम है अतः शून्य परिकल्पना सत्य है अर्थात माध्य 64 हो सकता है।

उदाहरण 2–

एक प्रतिदर्श जिसमें 12 समग्र है का माध्य 45 है और इस माध्य से लिये गये विचलनों का योग 110 है। क्या इस प्रतिदर्श को 42 माध्य वाले समग्र में से लिया गया माना जा सकता है?

95% तथा 99% विश्वास्यता सीमायें पर सीमायें ज्ञात कीजिए।

हलः

शून्य परिकल्पना : $\overline{X}$ तथा μ में अन्तर नहीं है।

दिया है $n = 12$, $\overline{X} = 45$, $\Sigma(x-\overline{X})^2 = 110$

$\mu = 42$

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma\left(X-\overline{X}\right)^2}{n-1}} = \sqrt{\frac{110}{12-1}} = \sqrt{\frac{110}{11}} = \sqrt{10}$$

= 3.162

$$t = \frac{\overline{X} - \mu}{S}\sqrt{n} = \frac{45-42}{3.162}\sqrt{11}$$

$$= \frac{3 \times 3.317}{3.162} = 3.147$$

df = n-1 = 12-1 = 11

5% सार्थकता स्तर पर 11 d.f. के लिए t का सारणी मान 2.20 है। t का गणना द्वारा प्राप्त मान 3.147 है जो कि सारणी मूल्य से अधिक है अतः अन्तर सार्थक है तथा शून्य परिकल्पना असत्य है। अतः दिया गया प्रतिदर्श ऐसे समग्र से नहीं लिया गया जिसका माध्य 42 है।

समग्र की विश्वास्यता सीमायें

1. 95% पर 11 d.f. के लिए t = 2.201

अतः विश्वास्यता सीमायें $= \overline{X} \pm \frac{S}{\sqrt{n}} t$

$$= 45 \pm \frac{3.162}{\sqrt{12}} \times 2.201$$

$$= 45 \pm \frac{3.162}{3.464} \times 2.201 = 45 \pm 2.01 = 42.99 \text{ और } 47.01$$

99% विश्वास्यता स्तर पर 11 d.f. के लिए t का मान = 3.106

अतः विश्वास्यता की सीमायें $= \overline{X} \pm \frac{S}{\sqrt{n}} t$

$$= 45 \pm \frac{3.162}{\sqrt{12}} \times 3.106$$

$$= 45 \pm \frac{3.162}{3.464} \times 3.106$$

$$= 45 \pm 2.835$$

= 42.165 और 47.835

अभ्यास हेतु प्रश्न

1. यदि n आवृत्तियों की संख्या तथा k प्रतिबन्धों की संख्या हो तो स्वातन्त्रय संख्या (d.f.) के लिए सूत्र होगा–

(a) n - k. (b) n + k (c) n × k (d) $\frac{n}{k}$

2. स्टुडेन्ट परीक्षण का प्रतिपाद किसने किया था

(a) स्नेडेकोर (b) गौसेट (c) थूल (d) कार्ल पियर्सन

3. डब्ल्यू. एस. गौसेट के 'स्टुडेन्ट' उपनाम से 't' प्रतिदर्शज की संकल्पना की थी–

(a) 1910 में (b) 1907 में (c) 1908 में (d) 1909 में

4. छोटे प्रतिदर्श का आकार n होता हैं–

(a) n < 30 (b) n < 80 (c) n < 100 (d) n > 150

5. लघु प्रतिदर्शो के प्रमाप विचलन में कमी के कारण विभ्रम की गणना में कमी होती है इस हेतु समग्र का अनुमानित प्रमाणिक विचलन संशोधन द्वारा दिया गया

(a) गौसेट (b) थूल (c) बेस्सेल (d) स्नेडेकोर

6. टी–वितरण का माध्य होता है–

(a) धनात्मक (b) शून्य (c) ऋणात्मक (d) कुछ भी हो सकता है

7. 'टी' का मान होता है–

(a) 10 से कम (b) 50 से कम (c) –00 से + 00 के बीच (d) धनात्मक

16.4 दो प्रतिदर्श–माध्यों के अन्तर का सार्थकता–परीक्षण

छोटे आकार के दो प्रतिदर्शो के माध्यों के बीच पाये जाने वाले अन्तर की सार्थकता का परीक्षण का अर्थ यह जानना है कि दोनों प्रतिदर्श–माध्यों में अन्तर सार्थक है या अर्थहीन, अर्थात दोनों प्रतिदर्श एक ही मूल समग्र में से चुने गये है या अलग–अलग समग्रों में से। इस परीक्षण के लिए t का मान निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$t = \frac{\overline{X}_1 - \overline{X}_2}{S} \times \sqrt{\frac{n_1 \times n_2}{n_1 + n_2}}$$

जहाँ $\overline{X}_1$, $\overline{X}_2$ क्रमशः दोनों प्रतिदर्शो के माध्य हैं,

n_1, n_2 क्रमशः दोनों प्रतिदर्शो में शामिल पदों की संख्या प्रकट करते है तथा S दोनों प्रतिदर्शो के अन्तरों के प्रमाप विचलन का मान प्रकट करता है। S का मान निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है।

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma d_1^2 + \Sigma d_2^2}{n_1 + n_2 - 2}}$$

यहाँ d_1, d_2 क्रमशः प्रतिदर्शो के संगत माध्य से लिये गये विचलन हैं।

यहाँ स्वातन्त्रय संख्या $d.f. = (n_1 - 1) + (n_2 - 1)$

$= n_1 + n_2 - 2$

यदि दोनों प्रतिदर्शो के प्रमाप विचलन पहले से प्रश्न में दिये गये हो (माना S_1 तथा S_2) बेस्सेल संशोधन के आधार पर संशोधित S का सूत्र निम्न प्रकार होगा–

$$S = \sqrt{\frac{n_1 s_1^2 + n_2 s_2^2}{n_1 + n_2 - 2}}$$

निष्कर्ष– यदि गणना द्वारा प्राप्त t का मान t के सारणी मूल्य से अधिक है तो अन्तर सार्थक होगा तथा कम होने पर अन्तर सार्थक नहीं होगा।

उदाहरण 3: दिये गये दो प्रतिदर्श A तथा B के माध्य तथा प्रमाप विचलन निम्न प्रकार है–

प्रतिदर्श	माध्य	प्रमाप विचलन
A	250	33
B	400	28

प्रत्येक के लिए प्रतिदर्श आकार, $n = 50$ है क्या दोनों माध्यों का अन्तर सार्थक है?

हल : शून्य परिकल्पना $\mu_1 = \mu_2$

दिया है $S_1 = 30\ S_2 = 28, n_1 = 50, n_2 = 50$

अतः $S = \sqrt{\frac{n_1 s_1{}^2 + n_2 s_2{}^2}{n_1 + n_2 - 2}} = \sqrt{\frac{50 \times 30^2 + 50 \times 28^2}{50 + 50 - 2}}$

$$= \sqrt{\frac{50 \times 900 + 50 \times 784}{98}} = \sqrt{\frac{45000 + 39200}{98}}$$

= 29.31

$$t = \frac{\overline{X_1} - \overline{X_2}}{S}\sqrt{\frac{n_1 \times n_2}{n_1 + n_2}}$$

$$= \frac{250 - 400}{29.31}\sqrt{\frac{50 \times 50}{50 + 50}}$$

$$= \frac{150}{29.31}\sqrt{\frac{2500}{100}}$$

$$= \frac{150}{29.31} \times \sqrt{25} = \frac{150 \times 5}{29.31} = 25.58$$

d.f. = (50+50 – 2) = 98

5% सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य = 1.984 < 2.56

1% सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य = 1.66 < 2.56

अतः दोनों माध्यों का अन्तर सार्थक है।

उदाहरण 4: 5 धावकों और 5 तैराकों की यदृच्छया लम्बइयाँ (इंच में) नापी गयी जो निम्न प्रकार है–

धावकों की लम्बाईः 65, 68, 70, 67, 71

तैराकों की लम्बाईः 72, 72, 70, 67, 69

इस तथ्य की जाँच कीजिए कि तैराक औसतन रूप से धावकों से अधिक लम्बे हैं।

हलः शून्य परिकल्पनाः धावकों तथा तैराकों की लम्बाइयाँ समान हैं।

धावकों की लम्बाई			तैराकों की लम्बाई		
x_1	$d_1 = x_1 - \overline{X}_1 = x_1 - 68$	d_1^2	x_2	$d_2 = x_2 - \overline{X}_2 = x_2 - 70$	d_2^2
65	-3	9	72	+2	4
68	0	0	72	+2	4
71	+3	9	70	0	0
66	-2	4	67	-3	9
70	+2	4	69	-1	1
$\Sigma x_1=340$	$\Sigma d_1=0$	$\Sigma d_1^2=26$	$\Sigma x_2=350$	$\Sigma d_2=0$	$\Sigma d_2^2=18$

धावकों की लम्बाइयों का औसत $\overline{X_1} = \frac{340}{5} = 68$

तैराकों की लम्बाइयों का औसत $\overline{X_2} = \frac{350}{5} = 70$

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma d_1^2 + \Sigma d_2^2}{n_1 + n_2 - 2}} = \sqrt{\frac{26+18}{5+5-2}} = \sqrt{5.5}$$

$= 2.35$

$$t = \frac{\overline{X_1} - \overline{X_2}}{S}\sqrt{\frac{n_1 \times n_2}{n_1 + n_2}} = \frac{340-350}{2.35} \times \sqrt{\frac{5\times5}{5+5}}$$

$$= \frac{10}{2.35}\sqrt{2.5} = \frac{10}{2.35} \times 1.58$$

$= 6.72$

स्वतंत्रय संख्या $= n_1 + n_2 - 2 = 5+5 - 2 = 8$

8 d.f. के लिए 5% सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य 2.31 है तथा t का गणना द्वारा प्राप्त मूल्य 6.72 है जो कि अतः सारणी मूल्य, गणना द्वारा प्राप्त मूल्य से कम

है। अतः अन्तर सार्थक है अर्थात परिकल्पना सार्थक नहीं है। अतः तैराक तथा धावकों की लम्बाइयों में अन्तर है तथा तैराक औसतन रूप से धावकों से अधिक लम्बे है।

उदाहरण:5– यदृच्छया चुने गये दो प्रतिदर्शो जिनके आकार 6 तथा 4 लिये गये, के समान्तर माध्य क्रमशः 22 वे 130 है। माध्य से ज्ञात मानक विचलनों के वर्गो के योग क्रमशः 25 व 16 है। क्या यह प्रतिदर्श एक ही प्रसामान्य समष्टि से चुने गये माने जा सकते हैं।

हलः दिया है $n_1 = 6$, $n_2 = 4$, $X_1 = 122$, $X_2 = 130$ $\Sigma d_1^2 = 25$ व $\Sigma d_2^2 = 16$

शून्य परिकल्पनाःदोनों माध्य एक ही सामान्य समष्टि से लिये गये है।

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma d_1^2 + \Sigma d_2^2}{n_1 + n_2 - 2}} = \sqrt{\frac{25+16}{6+4-2}} = \sqrt{\frac{41}{8}} = 2.26 \text{ उत्तर}$$

उदाहरण 6: एक ही ट्रैक को पूरा करने के समयानुसार (सेकण्ड में) दो घोड़ों ए तथा बी का परीक्षण किया गया तथा निम्न परिणाम प्राप्त हुए–

घोड़ा ए 31, 32, 32, 30, 29, 33, 30

घोड़ा बी28, 30, 33, 28, 30, 30, 31

5% सार्थकता स्तर पर दोनों घोड़ों में अन्तर होने का परीक्षण कीजिए।

हलः शून्य परिकल्पना दोनों घोड़ों में कोई अन्तर नहीं है।

घोड़ा A			घोड़ा B		
x_1	$d_1 = x_1 - \overline{X}_1 -$ $= x_1-(31)$	d_1^2	x_2	$d_2 = x_2 - \overline{X}_2 -$ $= x_2-(30)$	d_2^2
31	0	0	28	-2	4
32	+1	1	30	0	0
32	+1	1	33	+3	9
30	-1	1	28	-2	4
29	-2	4	30	0	0
33	+2	4	30	0	0
30	-1	1	31	+1	1
$\Sigma x_1=217$	$\Sigma d_1=0$	$\Sigma d_1^2=12$	$\Sigma x_2=210$	$\Sigma d_2=0$	$\Sigma d_2^2=18$

$$\overline{X_1} = \frac{217}{7} = 13$$

$$\overline{X_2} = \frac{210}{7} = 30$$

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma d_1^{\,2} + \Sigma d_2^{\,2}}{n_1 + n_2 - 2}} = \sqrt{\frac{12+18}{7+7-2}} = \sqrt{\frac{30}{12}} = 1.58$$

$$t = \frac{\overline{X_1} - \overline{X_2}}{S} \sqrt{\frac{n_1 \times n_2}{n_1 + n_2}}$$

$$= \frac{217-210}{1.58} \times \sqrt{\frac{7\times 7}{7+7}} = \frac{7\times\sqrt{3.5}}{1.58}$$

$$= \frac{7}{1.58} \times 1.87 = 8.28$$

d.f. = 7+7-2 = 12

12 d.f. के लिए 5% सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य 2.18 है, तथा t का गणना द्वारा मान 8.28 है। अतः t का गणना द्वारा प्राप्त मान t के सारणी मूल्य से अधिक है इसलिए अन्तर सार्थक है अर्थात दोनों घोड़ों में अन्तर है।

16.5 अन्तर परीक्षण या युग्मित t परीक्षण–

जब एक जैसे पदों पर किसी घटना की दो क्रियाओं का प्रभाव ज्ञात करना हो तब अन्तर परीक्षण विधि से सार्थकता परीक्षण किया जाता है। उदाहरण के लिए खिलाड़ियों में प्रशिक्षण का प्रभाव, व्यक्ति पर योगासन का प्रभाव, नवजात शिशुओं पर पौष्टिक आहार का प्रभाव, शिक्षकों को प्रशिक्षण का प्रभाव, छात्रों पर कोचिंग का प्रभाव आदि। यहाँ प्रतिदर्श की इकाइयाँ समान होती है परन्तु उसे विभिन्न परिस्थितियों में देखा जाता है। इसी कारण इस तरह के प्रतिदर्शो को युग्मित प्रतिदर्श भी कहा जाता है तथा इस परीक्षण को युग्मित t परीक्षण कहते है।

अन्तर परीक्षण विधि–

1. सबसे पहले दोनों परिस्थितियों में समकों का अन्तर (D) ज्ञात किया जाता है। यह अन्तर बाद की स्थिति से पहले की स्थिति को घटाकर निकाला जाता है जिससे समकों में हुयी वृद्धि या कमी का पता चलता है।

2. प्राप्त अन्तरों का समान्तर माध्य ज्ञात किया जाता है जो सूत्र $\overline{D} = \frac{\Sigma D}{n}$ द्वारा किया जाता है।

3. इस समान्तर माध्य $\overline{D}$ से विचलन निकाल कर विचलनों का वर्ग करके अन्तरों का प्रमाप विचलन (δ) निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जाता है–

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma(D-\overline{D})^2}{n-1}} = \sqrt{\frac{\Sigma d^2}{n-1}}$$ यहाँ $d = D - \overline{D}$

4. शून्य परिकल्पना 'वास्तविक अन्तर शून्य है' लेकर t के मान की गणना की जाती है। इसके लिए निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$t = \frac{\overline{D}-0}{S}\sqrt{n} \quad \text{या} \quad t = \frac{\overline{D}\sqrt{n}}{S}$$

स्वातंत्र संख्या d.f. = n-1

उदाहरण 7

किसी संस्था द्वारा निर्मित आइसक्रीम में वसा की मात्रा के दो शोधशालाओं द्वारा स्वतन्त्र अनुमान लगाये गये। प्रत्येक समूह में एक प्रतिदर्श लेकर उसे आधा–आधा किया गया और अलग–अलग अर्द्ध भागों को दोनों शोधशालाओं में भेज दिया गया। निम्न परिणाम प्राप्त हुए।

आइसक्रीम में वसा की मात्रा

वर्ग संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10
प्रयोगशाला A	7	8	7	3	8	6	9	4	7	8
प्रयोगशाला B	9	8	8	4	7	7	9	6	6	6

हलः

शून्य परिकल्पना– परीक्षण विश्वसनीय नहीं है।

अन्तर का माध्य और प्रमाप विचलन का परिकलन

बैच संख्या	शोधशाला		अन्तर	विचलन	विचलन वर्ग
	A	B	D	d = D- $\overline{D}$	$d^2 = (D-\overline{D})^2$
1	7	9	+2	+1.7	2.89
2	8	8	0	-0.3	0.09
3	7	8	+1	+0.7	0.49
4	3	4	+1	+0.7	0.49
5	8	7	-1	-1.3	1.69
6	6	7	+1	+0.7	4.9
7	9	9	0	-0.3	0.09
8	4	6	+2	+1.7	2.89
9	7	6	-1	-1.3	1.69
10	8	6	-2	-2.3	5.29
n = 10			$\Sigma D = 3$		16.10

अन्तरों का माध्य

$$\overline{D} = \frac{\Sigma D}{n} = \frac{3}{10} = 0.3$$

अन्तरों का प्रमाप विचलन

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma\left(D-\overline{D}\right)^2}{n-1}} = \sqrt{\frac{16.10}{9}} = 1.34$$

$$t = \frac{\overline{D}-0}{S}\sqrt{n} = \frac{0.3-0}{1.34}\sqrt{10}$$

$$= \frac{0.9486}{1.34} = 0.71$$

9 d.f. के लिए 5% सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य 2.262 है जो गणना किये गये मूल्य 0.71 से अधिक है। अतः शून्य परिकल्पना असत्य है तथा अन्तर सार्थक नहीं है। अर्थात परीक्षण विश्वसनीय है।

उदाहरण 8– 12 रोगियों में से प्रत्येक को दिये गये उद्धीपक से उनके रक्तचाप में निम्नलिखित परिवर्तन हुआ

5 2 8 –1 6 0 –2 5 1 0 4
3

क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उद्धीपक से सामान्यतः रक्तचाप में वृद्धि होती है?

हलः शून्य परिकल्पना : रक्तचाप में कोई वृद्धि नहीं हुयी।

रक्तचाप में अन्तर D	माध्य से विचलन D^2
+5	25
+2	4
+8	64
-1	1
+6	36
0	0
-2	4
+5	25
+1	1
0	0
+4	16
+3	9
$\Sigma d = 31$	$\Sigma d^2 = 185$

$$\overline{D} = \frac{\Sigma D}{n} = \frac{31}{12} = 2.583$$

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma\left(D-\overline{D}\right)^2}{n-1}} = \sqrt{\frac{1}{n-1}\left(\Sigma D^2 - n\overline{D}^2\right)}$$

$$= \sqrt{\frac{1}{11}\left(185 - 12\times\left(2.58\right)^2\right)} = 3.09$$

$$t = \frac{\overline{D}}{S}\sqrt{n} = \frac{2.58\sqrt{12}}{3.09} = 2.9$$

स्वातंत्र संख्या d.f. = 12 – 1 = 11

5% सार्थकता स्तर पर 11 d.f. के लिए t का सारणी मान 2.201 है। अतः t का गणना द्वारा प्राप्त मान t के सारणी मान से अधिक है। इसलिए शून्य परिकल्पना सार्थक नहीं है, अर्थात उद्धीपक से सामान्यतः रक्तचाप में वृद्धि होती है।

16.6 सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता का टी परीक्षण–

सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता के टी परीक्षण करते समय शून्य परिकल्पना की जाती है कि समष्टि में सहसम्बन्ध शून्य है तथा यह परीक्षण किया जाता है कि शून्य परिकल्पना सार्थक है या नहीं। t का मान ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है :

$$t = \frac{r}{\sqrt{1-r^2}} \times \sqrt{n-2}$$

यहाँ स्वातंत्रय संख्या d.f. = (n-2) है।

यहाँ r = सहसम्बनध गुणांक

n = युग्मित अवलोकनों की संख्या

उदाहरण 9

अवलोकनों के कितने युग्म एक प्रतिदर्श में समावेशित किये जाये ताकि r के प्रेक्षित मान .42 से सम्बन्धित t का परिकलित मान 2.36 से अधिक रहे?

हल– दिया है r = 0.42 t = 2.36

सूत्र : $t = \frac{r}{\sqrt{1-r^2}} \times \sqrt{n-2}$

$$2.36 = \frac{0.42}{\sqrt{1-(0.42)^2}}\sqrt{n-2}$$

या $$2.36 = \frac{0.42}{.9075}\sqrt{n-2}$$

या $$2.36 = 0.4628\sqrt{n-2}$$

या $$\sqrt{n-2} = \frac{2.36}{.4628}$$

दोनों ओर वर्ग करने पर

(n – 2) = 26 (लगभग)

n = 26+2 = 28 उत्तर

उदाहरण 10

5% सार्थकता स्तर पर सार्थक होने के लिए r का न्यूनतम मान ज्ञात कीजिए जबकि युग्मित अवलोकनों की संख्या 11 हो।

हल– दिया हैः n = 11 d.f. = n – 2 = 11 – 2 = 9

$$t = \frac{r}{\sqrt{1-r^2}} \times \sqrt{n-2}$$

$$t = \frac{r}{\sqrt{1-r^2}} \times \sqrt{11-2} = \frac{r}{\sqrt{1-r^2}}\sqrt{9}$$

$$t = \frac{3r}{\sqrt{1-r^2}}$$

5% स्तर पर t का गणना द्वारा प्राप्त मान, सारणी मान (2.26, 9.d.f. के लिए) से अधिक होना चाहिए।

अतः t = 2.26

या $$\frac{3r}{\sqrt{1-r^2}} > 2.26$$

या 3r > 2.26

या $9-\pi^2 > (2.26)^2 (1-r^2)$

या $9-\pi^2 > (5.1076)(1-r^2)$

या $9-\pi^2 > 5.1076-5.1076r^2$

या $14.1076 r^2 > 5.1076$

या $$r^2 > \frac{5.1076}{14.1076}$$

$$r > \sqrt{\frac{5.1076}{14.1076}}$$

$r > 0.6017$ उत्तर

अभ्यास हेतु प्रश्न

8. छोटे न्यादर्श की स्थिति में सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता जबकि समग्र का सहसम्बन्ध गुणांक शून्य माना जाए का परीक्षण किया जाता है

(a) t - परीक्षण (b) F परीक्षण (c) x^2 परीक्षण (d) इनमें से कोई नहीं

9. यदि n_1 व n_2 दो प्रतिदर्शो में शामिल पदों की संख्या हो तब स्वातन्त्रय संख्या होगी

(a) $n_1 - n_2 + n_3$ (b) (a) $n_1 - n_2 - 2$

(c) $n_1 + n_2 + 2$ (d) (a) $n_1 + n_2 - 2$

10. यदि सहसम्बन्ध गुणांक .39 तथा प्रतिदर्श में कुल युग्म 6 हो तब का मान होगा

(a) 0.847 (b) 0.321 (c) 0.213 (d) 0.732

16.7 सारांश–

प्रतिदर्श बड़े होने पर जो विश्लेषण का आधार होता है वह छोटे आकार के प्रतिदर्शो हेतु लागू नहीं होता। छोटे प्रतिदर्श हेतु t अनुपात (या t वितरण) का प्रयोग किया जाता है।

t 'समग्र माध्य तथा प्रतिदर्श माध्य की अन्तर तथा प्रतिदर्श माध्य के प्रमाप विभ्रम का अनुपात 't' मूल्य कहलाता है।

t का मान $-\infty$ से $+\infty$ के बीच होता है। टी परीक्षण द्वारा छोटे प्रतिदर्श के माध्य की जाँच की जा सकती है इस जाँच की प्रक्रिया में सबसे पहले शून्य परिकल्पना लेकर समग्र के प्रमाप विचलन का आंकलन कर t प्रतिदर्शज की गणना की जाती है। तत्पश्चात स्वातन्त्रय संख्या ज्ञात कर दी गयी सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य ज्ञात करते है। यह सारणी मान दरअसल t के क्रान्तिक मान होते है जो केवल प्रतिचयन उच्चावचनों के कारण उत्पन्न होते है। t के वास्तविक मान व t के क्रान्तिक मान की तुलना कर निष्कर्ष निकाला जाता है कि अन्तर सार्थक है अथवा नहीं।

छोटे आकार के दो प्रतिदर्शो के माध्यों के अन्तर की सार्थकता का परीक्षण भी t परीक्षण द्वारा किया जाता है। एक जैसे पदों पर किसी घटना की दो क्रियाओं का प्रभाव ज्ञात करने के लिए अन्तर परीक्षण विधि द्वारा सार्थकता परीक्षण किया जाता है। इस परीक्षण को युग्मित टी परीक्षण भी कहा जाता है।

सहसम्बन्ध गुणांक की सार्थकता के t परीक्षण करने के लिए शून्य परिकल्पना करके परीक्षण किया जाता है कि वह सार्थक है या नहीं।

16.8 पारिभाषिक शब्दावली

सार्थकता	Significance
प्रतिदर्श	Sample
प्रमाप विचलन	Standard
प्रमाप विभ्रम	Standard Error
प्रसामान्य वक्र	Natural Curve
स्वातन्त्रय संख्या	Degree of freedom
विश्वास्यता सीमाएं	Confidence limits

क्रान्तिक मान प्रतिदर्श	Critical Value
युग्मित प्रतिदर्श	Matched paired samples
सहसम्बन्ध गुणांक	Coefficient Correlation

16.9 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

1 (a) 2 (b) 3 (c) 4 (a) 5 (c) 6 (b) 7 (c) 8 (a) 9 (d) 10 (a)

16.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

(i) ''सांख्यिकी सिद्धान्त एवं व्यवहार'' एस.पी. सिंह एस. चन्द (2009)

(ii) ''सांख्यिकी'' डा. बी.एन. गुप्ता, साहित्य भवन (2008)

(iii) ''सांख्यिकी के सिद्धान्त'' डा. एस.एम. शुक्ल, डा. एस.पी. सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन (2007)

(iv) ''प्रारम्भिक सांख्यिकी'' डा. के.एल. गुप्ता, नवयुग साहित्य सदन (2005)

(v) ''व्यावसायिक गणित एवं सांख्यिकी'' डा. नवीन भगत, भूमिका भगत रीडर्स चायस (2012)

(vi) ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' डा. एच.के. कपिल, विनोद पुस्तक मन्दिर ।

16.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. स्टूडेण्ट के टी परीक्षण से आप क्या समझते हैं? टी परीक्षण के कुछ व्यावहारिक अनुप्रयोगों का वर्णन कीजिए।
2. टी वितरण पर आधारित सार्थकता परीक्षणों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. स्टुडेण्ट टी परीक्षण पर संक्षिप्त लेख लिखिए।
4. एक महाविद्यालय के 10 छात्रों को दैव प्रतिचयन प्रणाली से चुना जाता है और उनकी ऊँचाइयाँ इंचों में 64, 65, 65, 67, 67, 69, 69, 70, 72, 72 पायी गयीं। इन समकों के आधार पर क्या यह कहा जा सकता है कि महाविद्यालयों के छात्रों की औसत ऊँचाई 66 इंच हैं?

5. एक महाविद्यालय के 10 छात्रों की याद्रच्छिक रूप से चुना गया जिनके सांख्यिकी में अंक इस प्रकार हैं

71, 72, 73, 75, 76, 77, 78, 79, 79, 80

इन अंकों की सहायता से ज्ञात कीजिए कि क्या महाविद्यालय में छात्रों के औसत प्राप्तांक 78 हैं?

6. किसी समग्र में से 10 बच्चे दैव रूप से चुने गए और उनकी ऊँचाई इंचों में निम्न प्रकार पायी गयी। इस परिकल्पना का परीक्षण कीजिए कि समग्र में माध्य ऊँचाई 65 इंच है।

63, 63, 64, 65, 66, 69, 69, 70, 70, 71

7. एक स्कूल के 6 लड़के यादृच्छया चुने गये हैं उनके सांख्यिकी में प्राप्तांक निम्न है।

63, 63, 64, 66, 60, 68

इन समकों के आधार पर इस सामान्य कथन की जाँच कीजिए कि स्कूल में सांख्यिकी में माध्य प्राप्तांक 66 थे।

8. एक कॉलिज से 6 लड़के यादृच्छया चुने गये जिनके प्राप्तांक सांख्यिकी में 100 में से क्रमशः निम्नानुसार है –

63, 63, 64, 64, 65, 68

इन आँकड़ों के आधार पर विवेचना कीजिए कि इस कॉलिज में सांख्यिकी के प्राप्तांकों का औसत 66 है।

9. 9 रोगियों में से प्रत्येक को एक विशिष्ट दवा दी गयी जिसके कारण उनके रक्तचाप में निम्नलिखित वृद्धि हुयी।

7, 3, –1, 4, –3, 5, 6, –4, 1

क्या यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि उक्त दवा से सामान्यतः रक्तचाप में वृद्धि होती है।

8 स्वातन्त्र्यांश के लिए 5% सार्थकता स्तर पर t का सारणी मूल्य 2.306 है।

10. 9 और 7 आकार के दो दैव प्रतिदर्श के माध्य क्रमशः 196.42 तथा 198.82 है। संगत माध्यों से विचलनों के वर्गो का योग क्रमशः 26.94 तथा 18.73 है। क्या ये प्रतिदर्श एक ही प्रसामान्य समग्र से लिये गये है?

12. क्या निम्न दो प्रतिदर्शो के लिए यह माना जा सकता है कि वह एक ही प्रसामान्य समग्र से चुने गये है।

	आकार	माध्य	$\Sigma(X-\overline{X})^2$
प्रतिदर्श I	10	12	120
प्रतिदर्श II	12	15	134

12. 9 छात्रों की स्मरण–शक्ति का प्रशिक्षण से पूर्व तथा पश्चात परीक्षण किया गया। निम्न परिणामों के आधार पर बताइये कि क्या प्रशिक्षण प्रभावी था या नहीं–

छात्र	1	2	3	4	5	6	7	8	9
प्रशिक्षण से पूर्व	10	15	8	3	7	12	15	18	4
प्रशिक्षण के बाद	12	17	8	5	6	10	18	20	3

13. 6 दुकानदारों पर विज्ञापन से पूर्व व पश्चात् किसी वस्तु के संमक निम्नलिखित हैं।

विज्ञापन से पूर्वः	53	28	31	48	50	42
विज्ञापन के पश्चात्:	58	29	30	50	56	45

5% सार्थकता स्तर पर परीक्षण कीजिए कि क्या विज्ञापन को प्रभावशाली माना जा सकता है?

14. पाँच व्यक्तियों का प्रशिक्षण से पूर्व तथा पश्चात बुद्धि–लब्धि (I.Q.) परीक्षण किया गया/प्राप्त परिणाम इस प्रकार है।

प्रशिक्षण से पूर्व (IQ)	110	120	123	132	125
प्रशिक्षण से बाद (IQ)	120	118	125	136	121

परीक्षण कीजिए कि क्या प्रशिक्षण के बाद बुद्धि–लब्धि में कोइ सुधार है?

15. एक महाविद्यालय A के 16 छात्रों के IQ का माध्य 107 तथा प्रमाप विचलन 10 है। एक दूसरे महाविद्यालय B के 14 छात्रों के IQ का माध्य 112 तथा प्रमाप विचलन 8 है। क्या दोनों महाविद्यालयों के औसत I.Q. में सार्थक अन्तर है?

16. छात्रों के दो समूहों द्वारा एक परीक्षा में प्राप्तांक निम्न है।

प्रथम समूह	18	20	36	50	49	36	34	49	41
द्वितीय समूह	29	28	26	35	30	44	46	-	-

दोनों समूहों द्वारा प्राप्तांकों के माध्यों के अन्तर की सार्थकता का परीक्षण कीजिए।

17. कुछ वस्तुओं के दो बैचों में से 8 व 12 आकार के दो प्रतिदर्श लिये गये है। वस्तुओं की विशेषताओं के बीच सह सम्बन्ध गुणांक क्रमशः 0.32 तथा 0.19 परिकलित किये गये। क्या यह मान सार्थक हैं?

18. औषधि A से उपचार करने पर 5 मरीजों के एक समूह का भार (किग्रा0 में) 42, 39, 48, 60 तथा 41 है। औषधि B से उपचार करने पर उसी अस्पताल के 7 मरीजों के एक समूह का भार (किग्रा0 में) 38, 42, 56, 64, 68, 69 तथा 62 है। क्या आप इस दावे से सहमत हैं कि औषधी B से भार में महत्वपूर्ण वृद्धि होती है?

19. एक–एक एकड़ के 15 खेतों में दो प्रकार की रासायनिक खाद का प्रयोग किया गया। उपज (कुंतल में) निम्न लिखित है।

खाद I	14	20	34	48	32	42	30	44
खाद II	31	18	22	28	40	26	45	

दोनों प्रकार की खाद के प्रयोग के फलस्वरूप औसत उपज के अन्तर की सार्थकता का परीक्षण कीजिए।

20. एक प्रसामान्य समग्र जिसका मानक विचलन 5.2 है, से लिये गये 20 आकार वाले एक यादृच्छिक प्रतिदर्श का माध्य 16.9 है। 5% सार्थकता स्तर पर जाँच कीजिए कि क्या समग्र का माध्य 15.5 हो सकता है।

निबन्धात्मक प्रश्नों के उत्तर

4. $t = 2.206$, हाँ
5. सार्थक नहीं, औसत अंक 78 हो सकते है।
6. $t = 2.02$, शून्य परिकल्पना सत्य है।
7. $t = 1.777$, शून्य परिकल्पना सत्य है।
8. $t = 1.96$, हाँ, शून्य परिकल्पना सही है।
9. $t = 1.51$, वृद्धि सार्थक नहीं है।
10. $t = 2.64$, एक समग्र से नहीं लिये गये है।
11. $t = 1.504$, शून्य परिकल्पना सत्य है।
12. $t = 1.306$, प्रशिक्षण प्रभावी नहीं था।
13. $t = 3.65$, विज्ञापन प्रभावशाली है।
14. $t = 0.82$, कोई सुधार नहीं है।
15. $t =1.497$, सार्थक अन्तर नहीं है।
16. $t = 0.577$, कोई अन्तर नहीं है।
17. (I) $t = 0.827$, (II) $t = 0.612$, दोनों में ही सार्थक नहीं है।
18. $t = 1.704$, शून्य परिकल्पना सही है, दावे से सहमत नहीं है।
19. $t = 0.536$, सार्थक नहीं है।
20. $t =1.174$, शून्य परिकल्पना सत्य है, समग्र का माध्य 15.5 हो सकता है।

इकाई– 17 काई वर्ग परीक्षण

इकाई की संरचना

17.1 प्रस्तावना

17.2 उद्देश्य

17.3 काई वर्ग परीक्षण की परिभाषा

17.4 काई वर्ग परीक्षण की प्रक्रिया

17.5 काई वर्ग परीक्षण के प्रयोग की शर्तें

17.6 येट का संशोधन

17.7 अन्वायोजन की उत्कृष्टता की जांच

17.8 काई वर्ग परीक्षण की विशेषताएं

17.9 काई वर्ग परीक्षण के उपयोग

17.10 सारांश

17.11 पारिभाषिक शब्दावली

17.12 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

17.13 सार ग्रन्थ

17.14 निबंधात्मक प्रश्न

17.1 प्रस्तावना

यदि A तथा B दो परस्पर स्वतंत्र गुण हैं तो AB की वास्तविक आवृत्ति तथा प्रत्याशित आवृत्ति परस्पर समान होंगी, यदि वास्तविक आवृत्ति तथा प्रत्याशित आवृत्ति में कुछ अन्तर है तो इसका अर्थ है कि दोनों में परस्पर धनात्मक या ऋणात्मक गुण सम्बन्ध है। अर्थात दोनों में यदि गुण सम्बन्ध है तो वास्तविक आवृत्ति तथा प्रत्याशित आवृत्ति में अन्तर होगा। परन्तु यदि वास्तविक व प्रत्याशित आवृत्तियों में अन्तर है तो यह निश्चित नहीं कहा जा सकता इनमें गुण सम्बन्ध है। यह अन्तर प्रतिचयन या उच्चावचनों या किसी अन्य कारण से सभी हो सकता है। यह जानना महत्वपूर्ण है कि इस अन्तर का कारण क्या है। वास्तविक व प्रत्याशित आवृत्तियों के बीच पाये जाने वाले अन्तर के विश्लेष्णात्मक अध्ययन के लिए काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग किया जाता हैं काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग सर्वप्रथम हेलमर्ट (Helmert) द्वारा 1875 में किया गया जिसका विस्तृत अध्ययन कार्ल पियरसन (Karl Pearson) द्वारा सन् 1900 ई. में "goodness fit" के रूप में किया गया।

17.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढने के बाद आप

(1) काई वर्ग परीक्षण की परिभाषा जान सकेंगे।

(2) काई वर्ग परीक्षण की प्रक्रिया (i) शून्य परिकल्पना की मान्यता (ii) काई वर्ग के मान की गणना (iii) परिकल्पना परीक्षण के विषय में जान सकेंगे।

(3) काई वर्ग परीक्षण की शर्तें व उस पर आधारित उदाहरण से परीक्षण प्रक्रिया समझ सकेंगे।

(4) येट का संशोधन की प्रक्रिया समझ सकेंगे।

(5) अन्वायोजन की उत्कृष्टता की जांच कर पायेंगे।

(6) काई वर्ग परीक्षण की विशेषताओं, गुण व उपयोग की चर्चा कर सकेंगे।

17.3 काई वर्ग परीक्षण की परिभाषाः–

काई वर्ग (Chi square) को ग्रीक भाषा के अक्षर χ का वर्ग करके χ^2 द्वारा प्रकट किया जाता है। यह परीक्षण हमें बाताता है कि वास्तविक तथा प्रत्याशित आवृत्तियों में प्राप्त होने वाला अन्तर महत्वपूर्ण है या प्रतिचयन उच्चावचानों या अन्य कारणों द्वारा उत्पन्न हुआ है।

वास्तविक व प्रत्याशित आवृत्तियों में अन्तर न होने की स्थिति में χ^2 का मान शून्य होता है। χ^2 का मान वास्तविक व प्रत्याशित आवृत्तियों के अन्तर बढने पर बढता है।

17.4 काई वर्ग परीक्षण की प्रक्रिया–

काई वर्ग परीक्षण में की जाने वाली प्रक्रिया निम्न प्रकार है।

(1) शून्य परिकल्पना की मान्यता

(2) काई वर्ग के मान की गणना

(3) परिकल्पना परीक्षण

1– शून्य परिकल्पना की मान्यताः–

काई वर्ग की गणना हेतु सर्वप्रथम यह परिकल्पना की जाती है कि वास्तविक आवृत्ति व प्रत्याशित आवृत्ति के बीच कोई अन्तर नहीं है अर्थात् व स्वतंत्र है।

2– काई वर्ग के मान की गणनाः–

यदि किसी वर्ग अन्तराल में वास्तविक आवृत्ति को f_0 तथा प्रत्याशित आवृत्ति को f_e द्वारा प्रकट किया जाए तो

$$\chi^2 = \Sigma\left[\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}\right]$$

यहाँ चिन्ह Σ सभी वर्ग अन्तरालों के योग हेतु प्रयुक्त किया गया है।

3– परिकल्पना परीक्षणः–

χ^2 की गणना के पश्चात् प्राप्त मान की तुलना χ^2 सारणी के मान से एक विशेष सार्थकता स्तर तथा स्वातन्त्रय संख्या के लिए की जाती है।

स्वातंत्रय संख्याः– χ^2 का मान सारणी में देखने के लिए स्वातंत्रय संख्या की आवश्यकता होती है। यह संख्या उन आवृत्तियों की संख्या है जिन्हें हम स्वतंत्र रूप से लिख सकते हैं।

अर्थात् कुल वर्गों की संख्या में से प्रतिबन्धों की संख्या कम करके स्वातंत्र संख्या ज्ञात हो जाती है। निम्न सूत्र द्वारा ज्ञात किया जा सकता है –

स्वातंत्रय संख्या (d.f) = (r – 1) (c – 1)

जहां r = पंक्तियां तथा c = स्तम्भ

सार्थकता स्तरः– यह वह प्रायिकता है जिससे कम होने पर हम शून्य परिकल्पना को निरस्त करते है। सार्थकता स्तर कुछ भी हो सकता है किन्तु व्यवहार में 1% तथा 5% सार्थकता स्तर का प्रयोग ही अधिक प्रचलित है। 1% सार्थकता स्तर का अर्थ है कि प्रतिचयन उच्चावचनों के कारण अधिक से अधिक 1% संख्याऐं गलत हो सकती हैं तथा 5% सार्थकता स्तर होने पर प्रतिचयन उच्चावचनों के कारण अधिक से अधिक 5% संख्याएं गलत हो सकती हैं। 5% सार्थकता स्तर सर्वाधिक प्रयोग किया जाता है।

नोटः– χ^2 के सारणी के मान प्रश्न में सामान्तः दिए होते है। हमें χ^2 का मान निकाल कर इसकी तुलना करनी होती है।

17.5 काई वर्ग परीक्षण के प्रयोग की शर्ते

1. काई वर्ग परीक्षण हेतु प्रतिदर्शो का चयन दैव आधार पर किया जाता है।
2. प्रत्येक प्रतिदर्श का परिणाम पिछले परिणाम से स्वतंत्र होता है।
3. प्रतिदर्शो की संख्या 50 से अधिक होनी चाहिए। कम होने पर वास्तविक तथा प्रत्याशित आवृत्तियों के अन्तर वितरण प्रसामान्य नहीं होगा।
4. इस परीक्षण का प्रयोग परस्पर अपवर्जी घटनाओं के लिए किया जाता है।
5. वास्तविक या प्रत्याशित आवृत्ति बहुत कम (5 से कम) होने पर येट का संशोधन (2×2 आसंग सारणी होने पर) या आवृत्तियों की समूहन विधि ($m x n$, $m>2$, $n>2$ आसंग सारणी होने पर) का प्रयोग किया जाना चाहिए।
6. वास्तविक आवृत्तियों का योग प्रत्याशित आवृत्तियों के योग के बराबर होना चाहिए (अर्थात $\Sigma f_o = \Sigma f_e$)
7. कोष्ठ आवृत्तियों के अवरोध रैखीय होने चाहिए।
8. समंक मौलिक इकाइयों में व्यक्त किये जाने चाहिए न कि प्रतिशत या अनुपात मे जिससे तुलना में सुविधा हो।

उदाहरणः 1– दी गई सारणी हैपेटाइटिस B से सम्बन्धित आंकड़े दर्शाती है।

	हैपेटाइटिस B हुआ	हैपेटाइटिस B नही हुआ	कुलयोग
टीका लगा	12	288	300
टीका नहीं लगा	160	1040	1200
	172	1328	1500

इस सारणी से हैपेटाइटिस B को रोकने के लिए टीका लगाने की उपयोगिता की जांच कीजिए।

हलः– सर्वप्रथम हम काई वर्ग परीक्षण के लिए शून्य परिकल्पना करेंगे। इसके लिए हम यह मानते हैं कि टीका लगने से हैपेटाइटिस B होने या होने में कोई गुण सम्बन्ध नहीं है।

वास्तविक आवृत्तियां f_o

12 (AB)	288 (αB)	300 (B)
160 (A β)	1040 (αβ)	1200 (β)
172 (A)	1328 (α)	1500 (N)

प्रत्याशित आवृत्तियां f_e

$(AB)=\frac{(A)\times(B)}{N}$ $=\frac{172\times300}{1500}$ = 34.4	$(\alpha B)=\frac{(\alpha)\times(B)}{N}$ $=\frac{1328\times300}{1500}$ = 265.5	300
(A β)= 137.6	(αβ) = 1062.4	1200
172	1328	1500

χ^2 की गणना हेतु सारणी

वास्तविक आवृत्त f_o		प्रत्याशित आवृत्ति f_e	अन्तर ($f_o – f_e$)	अन्तर का वर्ग $(f_o – f_e)^2$	(f_0
(AB)(αB)(Aβ	12288160104	34.4265.6137.6	-22.422.422	501.76501.7	14.586 1.889 3.646 0.472

)($\alpha\beta$)	0	1062.4	.4-22.4	6501.76501.76	
	1500	1500			χ^2 =20593

स्वातंत्र संख्या (d.f.) = (c –1) (r – 1)

= (2 – 1) (2 – 1) = 1

सार्थकता स्तर 5% पर स्वातंत्र संख्या 1 के लिए χ^2 सारणी मूल्य = 3.841 है । χ^2 का ज्ञात किया गया 20.593 जो कि χ^2 के सारणी मूल्य से अधिक है अतः हमारे द्वारा की गई परिकल्पना असत्य है। यहाँ हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है। कि हैपेटाइटिस B का टीका लगाना, हैपेटाइटिस बी होने से स्वतंत्र नहीं है। अतः टीका लगवाना व हैपेटाइटिस B होना परस्पर सम्बन्धित है। अतः हम यहा कह सकते है कि टीका लगा कर हैपेटाइटिस B को रोका जा सकता है।

उदाहरण 2:– एक विशेष योगासन करने हेतु 100 व्यक्तियों का प्रतिदर्श चुना गया। निम्न परिणाम प्राप्त हुए–

	योगासन करने वाले	योगासन न करने वाले	कुल
रोग मुक्त	42	20	62

रोग मुक्त नहीं	12	26	38
योग	54	46	100

5% सार्थकता स्तर पर इस परिकल्पना का परीक्षण कीजिए कि रोग मुक्त होने और रोगमुक्त न होने वालों में कोई अन्तर नहीं है।

हल : χ^2 परीक्षण के लिए हमारी शून्य परिकल्पना है कि रोगमुक्त होने और रोगमुक्त नहीं होने वालों में कोई अन्तर नहीं है।

वास्तविक आवृत्तियां f_o

42 (AB)	20 (αB)	62 (B)
12 (A β)	26 ($\alpha\beta$)	38 (β)
54(A)	46(α)	100(N)

प्रत्याशित आवृत्तियां f_e

33.48	28.52	62
20.52	17.48	38
54	46	100

χ^2 का परिकलन

वास्तविक आवृत्ति f_o		प्रत्याशित आवृत्ति f_e	अन्तर $(f_o - f_e)$	अन्तर का वर्ग $(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
(AB)	42	33.48	8.52	72.59	2.17
(αB)	20	28.52	-8.52	72.59	2.55
(Aβ)	12	20.52	-8.52	72.59	3.54
	26	17.48	8.52	72.59	4.15

$(\alpha\beta)$					
	$\Sigma f_o = 100$	$\Sigma f_e = 100$			χ^2 =12.41

5% सार्थकता स्तर पर 1 d.f. के लिए χ^2 का सारणिक मान 3.841 है तथा χ^2 का गणना किया गया मूल्य 12.41 है। यह मान सारणी के माान से बहुत अधिक है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना गलत है अतः विशेष योगासन रोग मुक्त होने हेतु प्रभावशाली है।

उदाहरण 3:– निम्न सारणी से χ^2 का मान ज्ञात कीजिएः–

वर्ग	A	B	C	D	E
वास्तविक आवृत्ति	54	38	62	29	75
प्रत्याशित आवृत्ति	48	29	65	22	70

हल :

वर्ग	वास्तविक आवृत्ति f_o	प्रत्याशित आवृत्ति f_e	$(f_o - f_e)$	$(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
A	54	48	6	36	0.75
B	38	29	9	81	2.793
C	62	65	-3	9	0.138

D E	29 75	22 70	7 5	49 25	2.227 0.357
					χ^2 =6.265

उदाहरण 4:– दो निश्चेतक X तथा Y द्वारा शल्य चिकित्सा किए जाने से प्राप्त कुछ परिणाम निम्न हैः–

	जीवित	मृत
निश्चेतक X	418	20
निश्चेतक Y	162	26

काई वर्ग परीक्षण द्वारा निश्चेतकों तथा मृत्यु दर के गुण सम्बन्ध के अन्तर की जांच कीजिए।

हलः– शून्य परिकल्पना ''मृत्यु दरों में अन्तर नहीं है।''

माना निश्चेतक 1-A, निश्चेतक 2 = α, जीवित = B, मृत =b तब

वास्तविक आवृत्तियां f_o प्रत्याशित आवृत्तियां f_e

418(AB)	19(αB)	437(B)
162(A β)	26($\alpha\beta$)	188(β)
580(A)	45(α)	625(N)

405.54	31.46	437
174.46	13.54	188
580	45	625

वर्ग	वास्तविक आवृत्ति f_o	प्रत्याशित आवृत्ति f_e	$(f_o - f_e)$	$(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
(AB)	418	405.54	+12.46	155.25	.383
(Aβ)	162	174.46	-12.46	155.25	.890
(αB)	19	31.46	-12.46	155.25	4.935
(αβ)	26	13.54	+12.46	155.25	11.466
					χ^2 =17.674

χ^2 का गणना का मूल्य 17.674 है जबकि 5% सार्थकता स्तर पर 1 d.f. के लिए χ^2 का सारणी का मान 3.841 है अतः मृत्यु दर तथा निश्चेतक स्वतंत्र नहीं है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

1. काई वर्ग परीक्षण का उपयोग नहीं होता :

   (a) स्वातन्त्रता परीक्षण में

   (b) प्रसरण परीक्षण में

   (c) सहसम्बन्ध गुणांक की जांच में

   (d) आसंजन परीक्षण में

2. काई वर्ग परीक्षण का विस्तृत अध्ययन सर्वप्रथम कार्ल पियरसन द्वारा किया गया।

   (a) 1850 में (a) 1900 में (a) 1800 में (a) 1915 में

3. काई वर्ग परीक्षण में निम्न प्रक्रिया नहीं की जाती –

   (a) शून्य परिकल्पना की मान्यता (b) काई वर्ग के मान की गणना

(c) परिकल्पना परीक्षण (d) माध्य की गणना

4. काई वर्ग की गणना में वास्तविक आवृत्तियों का योग प्रत्याशित आवृत्तियों के योग के

(a) बराबर होता है (b) बड़ा होता है

(c) छोटा होता है (d) कुछ भी हो सकता है

5. यदि आंसग तालिका 3×4 है तो स्वातंत्र्य संख्या होगी

(a) 8 (b) 6 (c) 4 (d) 2

17.6 येट का संशोधनः–

हमने पहले पढा है कि जब हम χ^2 परीक्षण का प्रयोग करते हैं तब किसी भी प्रकोष्ठ में आवृत्ति 5 से कम नहीं होनी चाहिए। परिणाम की सत्यता के लिए यह आवश्यक है। इस प्रकार की समस्याएं जिनमें आवृत्ति प्रकोष्ठ में आवृत्ति 5 से कम है, को हल करने के लिए भेट द्वारा संशोधन दिया गया है संशोधन येट का संशोधन कहलाता है।

इसका प्रयोग 2×2 सारणी में किसी कोष्ठ की आवृत्ति 5 से कम होने पर ही किया जाता है इसके अनुसार जिस आवृत्ति प्रकोष्ठ में आवृत्ति 5 से कम है उसमें 5 जोड़ दिया जाता है। परिणामतः प्रत्येक वास्तविक तथा प्रत्याशित आवृत्ति का अन्तर 5 से कम हो जाता है तथा χ^2 का मान वास्तविकता के निकट आ जाता है। शेष गणना पहले की तरह ही की जाती है।

आवृत्तियों का समूहनः– यदि प्रत्याशित आवृत्तियां बहुत कम है 5 से कम तब वास्तविक आवृत्ति f_o तथा प्रत्याशित आवृत्ति f_e का अन्तर करने से पहले ही, ऐसी दो या दो से अधिक आवृत्तियों को जोड़ दिया जाता है। समूहन के पश्चात् ही हम स्वातंत्रता संख्या (d.f.) का निर्धारण करते हैं। उदाहरण हेतु यदि 8 वर्गों में से 2 वर्गों की आवृत्तियां काफी कम है तब इन दोनों को जोड़कर एक वर्ग बनाने पर कुल वर्ग 7 होंगे तब स्वातंत्रता संख्या 7-1=6 होगी।

उदाहरण:5– एक विशेष विषाणु से होने वाले रोग के संक्रमण से बचाव के लिए बने टीके की सार्थकता की जांच कीजिए

	रोग हुआ	रोग नहीं हुआ	योग
टीका लगा	3	12	15
टीका नहीं लगा	8	7	15

योग	11	19	30

हलः– चूंकि इस प्रश्न में टीक लगने पर रोग होने वाले व्यक्तियों की संख्या 5 से कम हैं अतः हम इस प्रश्न को येट – संशोधन द्वारा हल करेंगे।

सर्वप्रथम हम शून्य परिकल्पना करेंगे कि टीका लगाने तथा रोग होने बीच कोई सम्बन्ध नहीं है।

χ^2 की गणना (येट संशोधन के अनुसार)

वास्तविक आवृत्ति f_o

3	12	15
8	7	15
11	19	30

संशोधित आवृत्ति f_o

3.5	11.5	15
7.5	7.5	15
11	19	30

प्रत्याशित आवृत्ति f_e

5.5	9.5	15
5.5	9.5	15
11	19	30

वर्ग	f_o	f_e	$(f_o - f_e)$	$(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
(AB)	3.5	5.5	-2	4	0.727
(Aβ)	7.5	5.5	+2	4	0.727
(αB)	11.5	9.5	+2	4	0.421
(αβ)	7.5	9.5	-2	4	0.421
					$\chi^2 = 2.296$

स्वातंत्रय संख्या = (2-1) (2-1) = 1

5% सार्थकता स्तर स्वातंत्रय संख्या 1 के लिए काई वर्ग χ^2 का सारणिक मान 3.841 है तथा गणना द्वारा χ^2 का मान 2.296 प्राप्त हुआ है जो सारणिक मान से कम है अतः शून्य परिकल्पना सत्य है। टीका लगाना तथा रोग होना परस्पर स्वतंत्र है।

उदाहरणः 6– निम्नलिखित सारणी से काई वर्ग χ^2 का मान ज्ञात कीजिए

वर्ग	A	B	C	D	E
वास्तविक आवृत्ति	6	25	48	13	3
प्रत्याशित आवृत्ति	5	24	40	21	6

हलः– चूंकि A तथा E की आवृत्तियां 10 से कम है अतः वर्गों की पुनर्निर्धारण करने पर

वर्ग	f_o	f_e	$(f_o - f_e)$	$(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
(A+B)	31	29	+2	4	0.138
C	48	40	+8	64	1.6
(D+E)	16	27	-11	121	4.481
					χ^2 =6.219

17.7 अन्वायोजन की उत्कृष्टता की जांच (Test of Goodness of Fit)

अन्वायोजन की उत्कृष्टता की जांच प्रतिपादन व प्रयोगिक मतो के अन्तर की सार्थकता का पता लगाने के लिए की जाती है। यह जांच भी काई वर्ग (χ^2) के मान से की जाती है। यदि χ^2 का गणना द्वारा प्राप्त मूल्य उसके सारणी मूल्य से कम है तो अन्वायोजन उत्कृष्ट (The fit is good) माना जाता है। अर्थात् वास्तविक व प्रत्याशित आवृत्तियों का अन्तर केवल दैव कारण से है, अतः यह अर्थहीन है। यदि χ^2 का गणना द्वारा प्राप्त मूल्य उसके सारणी मूल्य से अधिक है तो अन्वायोजन उत्तम नहीं माना जाता (The fit is not good), आवृत्ति वास्तविक तथा प्रत्याशित आवृत्तियों का अन्तर सार्थक है और यह अन्तर केवल दैव के कारण से नहीं है।

उदाहरण 7:– मेण्डल द्वारा मटर प्रजनन से सम्बद्ध एक प्रयोग में बीजों की आवृत्तियां निम्न प्राप्त की गई। :

गोल व पीले	झुर्रीदार व पीले	गोल व हरे	झुर्रीदार व हरे	कुल बीज
315	101	108	32	556

प्रतिपादित मतानुसार आवृत्तियां 9:3:3:1 के अनुपात में होनी चाहिये। प्रयोगिक तथा प्रतिपादित मतों में सामजंस्य की जांच कीजिए।

हलः– काई वर्ग की गणना

क्रम. सं.	संयोग	वास्तविक आवृत्ति f_o	प्रत्याशित आवृत्ति f_e	अन्तर $(f_o - f_e)$	वर्ग $(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
1	गेल व पीले	315	$\frac{556x9}{16} = 313$	+2	4	0.013
2	झुर्रीदार व पीले	101	$\frac{556x3}{16} = 104$	-3	9	0.087
3	गोल व पीले	108	$\frac{556x3}{16} = 104$	+4	16	0.154
4	झुर्रीदार व हरे	32	$\frac{556x1}{16} = 35$	-3	9	02.57
		$\Sigma f_o = 556$	$\Sigma f_e = 556$			χ^2 =0.511

स्वातंत्र्य संख्या (d.f.) = (4-1) (2-1) = 3

χ^2 का सारणी के अनुसार 5% सार्थकता स्तर व 3 d.f. के लिए मान 7.815 है। जबकि गणना अनुसार यह मान 0.511 है, जो कि सारणी मूल्य से बहुत कम है। प्रतिपादित मत तथा प्रायोगिक मत में उत्तर काफी सामजस्य है।

उदाहरणः 8– उत्पत्ति सिद्धान्त के अनुसार, जिन बच्चों के माता पिता में से एक x वर्ग के रक्त और दूसरा y वर्ग के रक्त वाला होगा, वे बच्चे हमेशा तीन वर्गों x, xy, y के होंगे और उनका अनुपातः 1:2:1 (लगभग) होगा। ऐसे 300 बंच्चों का परीक्षण किया गया जिनके माता पिता में से एक x वर्ग का तथा दूसरा y वर्ग का था। उन बच्चों में 25% x वर्ग के, 45% xy वर्ग के तथा शेष y वर्ग के थे। χ^2 का प्रयोग करके इस सिद्धान्त की प्रमाणिकता सिद्ध कीजिए।

हलः शून्य परिकल्पना वास्तविक आवृत्तियां, प्रत्याशित आवृत्तियों के अनुरूप है।

x तथा y वर्गों की प्रत्याशित आवृत्तियां

1:2:1 के अनुपात में है जो क्रमशः

$300\times\frac{1}{4}=75$, $300\times\frac{2}{4}=150$ $300\times\frac{1}{4}=75$ है।

χ^2 की गणना

वर्ग	f_o	f_e	$(f_o - f_e)$	$(f_o - f_e)^2$	$\frac{(f_0 - f_e)^2}{f_e}$
x	300 का 25% =75	75	0	0	0
xy	300 का 45% = 135	150	-15	225	1.5
y	300-210 = 90	75	+15	225	3.0
	300	300			χ^2 =4.5

स्वातत्रंय संख्या (d.f.) = (r-1) (c-1)

= (3-1) (2-1)

= 2

5% सार्थकता स्तर पर 2 स्वातंत्रता संख्या के लिए χ^2 का सारणी मूल्य 5.99 है तथा गणना द्वारा χ^2 का मूल्य 4.50 है जो कि सारणी अर्थात् अन्वायोजन उत्कृष्ट है अर्थात् वास्तविक आवृत्तियां, प्रत्याशित आवृत्तियों के अनुरूप है।

17.8 काई वर्ग परीक्षण की विशेषताएं

1. व्यावहारिक तथा प्रत्याशित आवृत्तियों के अन्तर का योग सदैव शून्य होता है।

   अर्थात $\Sigma (f_0 - f_e) = 0$

   काई वर्ग परीक्षण की इस गुण से χ^2 की गणना में होने वाली गलती का आसानी से पता चल जाता है।

2. यह परीक्षण आवृत्तियों या घटनाओं पर आधारित हैं अतः यह गैर–प्राचल परीक्षण है।

3. काई वर्ग बंटन एक सतत् बंटन हैं, पर यह उन खंडित दैव चरों पर भी लागू हो सकता है जिनकी आवृत्तियां समूहन या बिना समूहन द्वारा सारणीबंद्ध की जा सकती है।

4. χ^2 परीक्षण में संख्यात्मक गुण पाया जाता है। इस गुण द्वारा विभिन्न प्रतिदर्शो के अलग–अलग काई वर्गो को मान जोड़कर पूरे समग्र के बारे में अधिक विश्वसनीय निष्कर्ष निकाले जा सकते है। इस प्रकार प्राप्त सामूहिक काई वर्ग और स्वातंत्रय संख्या का योग, अलग अलग काई वर्गो की स्वातंत्रय संख्या के योग के बराबर होगा।

   इस गुण में काई वर्गो को जोड़ते समय दो बातों को संज्ञान में रखा जाता है।

   (1) प्रतिदर्श स्वतंत्र होना चाहिए (2) येट का संशोधन प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए।

5. काई वर्ग परीक्षण निष्कर्ष निकालने के लिए एक बहुउपयोगी उपकरण है किन्तु अनुमान हेतु यह अधिक उपयोगी नहीं है।

उदाहरण 9 : उत्तराखण्ड के 5 जिलों के एक सर्वेक्षण में महामारी तथा टीका लगाने के सम्बन्ध में χ^2 के निम्नलिखित मान ज्ञात किये गये। पांचों जिलों को सम्मिलित करके आप क्या निष्कर्ष निकालेगें?

जनपद	:	A	B	C	D	E
स्वातंत्र संख्या	:	1	1	1	1	1
χ^2 का मान	:	2.14	3.52	4.28	3.66	4.82

हल :

जिला	काई वर्ग	स्वतंत्रय संख्या
A	2.14	1
B	3.52	1
C	4.28	1
D	3.66	1

E	4.82	1
योग	18.42	5

5% सर्थकता स्तर पर स्वातंत्रय संख्या 1 के लिए χ^2 का सारणी मूल्य 3.841 है तथा

5 स्वातंत्रय संख्या के लिए χ^2 का सारणी मूल्य 11.070 है।

(1) जिलों के परिणामों को देखने पर निष्कर्ष निकलता है कि A, B तथा D जिलों में अन्तर सार्थक नहीं है। जिले C तथा E में अन्तर सार्थक है तथा परिकल्पना असत्य है। पाँचों जिलों की सामूहिक जांच में χ^2 का कुल मूल्य 18.42 है जो कि सारणी मूल्य से अधिक है अतः अन्तर सार्थक है अर्थात सभी जिलों में कुल मिलाकर परिकल्पना असत्य है।

(2) χ^2 परीक्षण में अलग अलग स्वातंत्र संख्याओं (d.f.) के लिए χ^2 का अलग मान प्राप्त होता है अर्थात यह परीक्षण d.f. पर निर्भर करता है। d.f. का बहुत कम होने पर χ^2 बंटन वक्र धनात्मक विषमता लिये हुए होगा और χ^2 का मान बढ़ने पर वक्र सममित होने लगता है।

17.9 काई वर्ग परीक्षण के उपयोग

काई वर्ग परीक्षण आधुनिक समय में सांख्यिकी में बहुधा प्रयुक्त होता है। विभिन्न परीक्षणों में निष्कर्ष निकालने χ^2 का प्रयोग अति महत्वपूर्ण है।

1. **स्वतंत्रता की जांच** – इस परीक्षण के द्वारा दो गुणों के बीच साहचर्य की जांच की जाती है।
2. **अन्वायोजन–उत्कृष्टता की जांच** : इस परीक्षण द्वारा प्रतिपादित तथा प्रयोगिक आवृत्ति के बीच के अन्तर का परीक्षण किया जाता है।
3. **समग्र–मापांक की जांच** : काई वर्ग परीक्षण का प्रयोग समग्र–मापांक की जांच करने में भी किया जाता है।
4. **सजातीयता की जांच** : काई वर्ग परीक्षण द्वारा इस तथ्य की जांच करने के लिए भी किया जाता है।

अभ्यास हेतु प्रश्न –

6. येट का संशोधन सामान्यतः प्रयोग किया जाता है जब स्वातंत्रय संख्या होती है –

(a) 1 (b) 2 (c) 3 (d) 4

7. उन्वायोजन उत्कृष्ट (The fit is good) होने के लिए χ^2 के गणना द्वारा प्राप्त मूल्य उसके सारणी मान से होना चाहिए –

(a) कम (b) अधिक (c) बराबर (d) शून्य

रिक्त स्थान की पूर्ति कीजिए –

8. χ^2 परीक्षण की मान्यता के अनुसार कोई भी .... आवृत्ति 5 से कम नहीं होनी चाहिए।

9. काई वर्ग का एक प्रचलित नाम है .... की जांच।

10. काई–वर्ग का प्रयोग नहीं करना चाहिए। यदि n............... से कम है।

निम्नलिखित में से कौन सा कथन सत्य अथवा असत्य है?

11. काई वर्ग का मान धनात्मक या ऋणात्मक दोनों हो सकता है।

12. काई वर्ग परीक्षण एक गैर प्राचलिक परीक्षण है।

13. काई वर्ग परीक्षण सामान्यतः द्विपुच्छ परीक्षण है।

14. यदि χ^2 का परिकलित मान, सारणी मान से अधिक है तो उन्वायोजन श्रेष्ठ नहीं है।

15. χ^2 वितरण का प्राचल इसकी स्वातंत्र्य संख्या ही है।

17.10 सारांश

इस इकाई में हमने काई वर्ग परीक्षण के बारे में अध्ययन किया। इस परीक्षण हेतु की जाने वाली प्रक्रिया में शून्य परिकल्पना, काई वर्ग के मान की गणना तथा परिकल्पना परीक्षण को समझा। परीक्षण में प्रयुक्त होने वाली स्वातंत्र्य संख्या तथा सार्थकता स्तर को परिभाषित किया। काई वर्ग परीक्षण के प्रयोग की शर्तो को का अध्ययन किया।

विभिन्न उदाहरणों द्वारा काई वर्ग की गणना की गयी तथा येट के संशोधन से भी काई वर्ग की गणना करने की विधि को समझा।

इसके अतिरिक्त अन्वायोजन की उत्कृष्टता की जांच का भी अध्ययन किया गया। जिसमें हम प्रतिपादन व प्रायोगिक मतों के अन्तर की सार्थकता का ज्ञान पा सकते हैं। साथ ही काई वर्ग परीक्षण की विशेषताओं, गुणों व उपयोग का अध्ययन भी किया।

17.11 परिभाषिक शब्दावली

हिन्दी		अंग्रेजी
काई वर्ग परीक्षण	–	chi square test
वास्तविक आवृत्ति	–	Observed frequency
प्रत्याशित आवृत्ति	–	Expected frequency
शून्य परिकल्पना	–	Null Hypothesis
सार्थकता स्तर	–	Level of Significance
स्वातंत्र्य संख्या	–	degree of freedom
पंक्तियां	–	Rows
स्तम्भ	–	Columns
प्रतिदर्श	–	Sample
दैव	–	Rendom
परस्पर अपवर्जी	–	Mutually Exclusive
आंसग सारणी	–	Contingency table
रेखीय	–	Linear
आवृत्ति प्रकोष्ठ	–	Frequency cell
आवृत्ति समूहन	–	Pooling of frequencies
अन्वायोजन की उत्कृष्टता	–	Goodness of fit
प्रतिपादन	–	Theory

प्रयोगिक	–	Practical
गैर प्राचल	–	Non Parametric
संख्यात्मक गुण	–	Additive Property
सममित	–	Symmetry
साहचर्य	–	Associative
सजातीयता	–	Homogenity

17.12 अभ्यास हेतु प्रश्नों के उत्तर

1. (c) 2 (b) 3. (d) 4. (a) 5. (b)
6. (a)

7. (a) 8. प्रत्याशित 9. उत्कृष्टता 10. 50

11. असत्य 12. सत्य 13. असत्य 14. सत्य 15. सत्य

17.13. सन्दर्भ ग्रन्थ

(i) ''सांख्यिकी सिद्धान्त एवं व्यवहार'' एस.पी. सिंह एस. चन्द (2009)

(ii) ''सांख्यिकी'' डा. बी.एन. गुप्ता, साहित्य भवन (2008)

(iii) ''सांख्यिकी के सिद्धान्त'' डा. एस.एम. शुक्ल, डा. एस.पी. सहाय साहित्य भवन पब्लिकेशन (2007)

(iv) ''प्रारम्भिक सांख्यिकी'' डा. के.एल. गुप्ता, नवयुग साहित्य सदन (2005)

(v) ''व्यावसायिक गणित एवं सांख्यिकी'' डा. नवीन भगत, भूमिका भगत रीडर्स चायस (2012)

(vi) ''सांख्यिकी के मूल तत्व'' डा. एच.के. कपिल, विनोद पुस्तक मन्दिर ।

17.14 निबंधात्मक प्रश्न

1. काई वर्ग परीक्षण क्या है? इस परीक्षण की शर्तो का उल्लेख कीजिए।

2. अन्वायोजन–उत्कृष्टता की जांच क्या है? काई वर्ग परीक्षण इसमें कैसे सहायक है?

3. काई वर्ग परीक्षण क्या है? इसकी विशेषता तथा उपयोगिता को लिखिये?

4. निम्नलिखित को समझाइये –

   (i). शून्य परिकल्पना

   (ii). सार्थकता स्तर

   (iii). स्वातंत्र्य संख्या

5. एक शहर के 200 छात्रों को यादृच्छया चुना गया तथा उनकी शैक्षणिक उपलब्धियों की जानकारी निम्न प्रकार प्राप्त हुई –

लिंग	माध्यमिक	हाईस्कूल	महाविद्यालय
पुरूष	10	15	25
स्त्री	25	10	15

क्या आप कह सकते है कि शिक्षा लिंग से प्रभावित है?

(उत्तर-χ^2 = 9.92 शिक्षा लिंग से प्रभावित है।)

6. गायों में हुए एक रोग की रोकथाम हेतु एक टीके का प्रयोग किया गया तथा निम्न परिणाम प्राप्त हुए।

	प्रभावित	अप्रभावित
टीका लगा	14	30
टीका नहीं लगा	28	8

(उत्तर-χ^2 = 16.76 टीका प्रभावशाली है।)

7. एक टीके का किसी रोग के उपचार के लिए परीक्षण किया गया जिसके परिणाम निम्नवत् है।

	रोग मुक्त हुआ	रोग मुक्त नहीं हुआ
टीका लगा	15	5
टीका नहीं लगा	8	12

5% सार्थकता स्तर जांच कीजिए कि टीके का लगभग जाना प्रभावी है या नहीं।

(उत्तर- $\chi^2 = 5$, टीका प्रभावशाली है।)

8. निम्नलिखित सारणी से परिकल्पना की जांच कीजिए कि फूलों का रंग पत्तियों की चौड़ाई से स्वतंत्र है।

	चौड़ी पत्तियां	वक्राकार पत्तियां	योग
सफेद फूल	99	36	135
लाल फूल	20	5	25
योग	119	41	160

दिया है : यदि d.f. = 1

सार्थकता स्तर :	.5	.1	.05
χ^2 :	.455	2.706	3.841

(उत्तर- χ^2= 0.487 शून्य परिकल्पना सत्य है अर्थात फूलों के रंग पत्तियों की चौड़ाई से स्वतंत्र है।)

9. एक अध्ययन में 100 व्यक्तियों ने एक कलाकृति के प्रति अपने मत को निम्न रूप में व्यक्त किया।

गति की अभिव्यक्ति :	बहुत सुन्दर	सुन्दर	साधारण	भद्दी	बहुत भद्दी	योग
वास्तविक आवृत्ति :	32	28	16	16	8	100

काई वर्ग परीक्षण द्वारा बताइये कि क्या प्रतिदर्श इकाइयों में कलाकृति के प्रति मूल्यांकन में सार्थक अन्तर है? (उत्तर-$\chi^2 = 9.49$, अन्तर सार्थक है)

10. निम्नलिखित सारणी से χ^2 के मान की गणना कीजिए –

वर्ग	A	B	C	D	E
f_o	8	29	44	15	4
f_e	7	24	38	24	7

(उत्तर- 6.77)

11. एक पौधें की बीमारी की रोकथाम के लिए दो दवाईयों A तथा B का प्रयोग किया गया जिससे निम्न परिणाम प्राप्त हुए

	दवाई दी गयी	दवाई नहीं दी गयी

दोनों में से कौन सी दवाई अधिक उपयोगी है? दिया है 5% सार्थकता स्तर पर स्वतंत्रता संख्या 1 पर χ^2 का मान 3.841 है।

A	40	160
B	10	190

(उत्तर- f_e = 25, 135, 25, 215)

12. निम्न आसंग सारणी वालों के रंग और आंखों के रंग के अनुसार 300 व्यक्तियों का विश्लेषण प्रस्तुत करती है। काई वर्ग द्वारा जांच कीजिए कि क्या बालों का रंग और आंखों के रंग में कोई गुण सम्बन्ध है?

आँखों का रंग	बलों का रंग			
	सफेद	भूरा	काला	योग
नीला	30	10	40	80
ग्रे	40	20	40	100
भूरा	50	30	40	120
योग	120	60	120	300

(उत्तर- χ^2 = 7.29, कोई सम्बन्ध नहीं है।)

13. एक महाविद्यालय के 20 छात्रों में निम्न प्रकार से धूम्रपान तथा चाय पीने की आदतें पायी गयी :

	धूम्रपान करने वाले	धूम्रपान नहीं करने वाले	योग
चाय पीने वाले	4	2	6

चाय न पीने वाले	3	11	14
योग	7	13	20

क्या धूम्रपान तथा चाय पीने की आदतों में सम्बन्ध है, काई वर्ग परीक्षण द्वारा ज्ञात कीजिए। (उत्तर- $\chi^2 = 4.24$, सम्बन्ध है।)

14. निम्न सारणी से इस तथ्य तथ्य की जांच कीजिए कि पुत्र की आंखों का रंग पिता की आंखों के रंग से सम्बन्धित है अथवा नहीं।

पिता की आंखों का रंग	पुत्र की आंखों का रंग		योग
	गहरा	हल्का	
गहरा हल्का	230 151	148 471	378 622

χ^2 का सारणी मूल्य स्वातंत्रय संख्या 1 के लिए 5% सार्थकता स्तर पर 3.84 है।

(उत्तर- $\chi^2 = 133.39$, हाँ, गुण सम्बन्ध है।)

15.निम्नलिखित आंकड़ों से यह ज्ञात कीजिए कि लिंग व रंग की पंसद के मध्य कोई सम्बन्ध है।

रंग	पुरूष	स्त्री	योग
लाल	10	40	50
सफेद	70	30	100
हरा	30	20	50

5% सार्थकता स्तर पर χ^2 के द्वारा परीक्षण कीजिए 5% सार्थकता स्तर पर स्वातंत्र संख्या 2 के लिए χ^2 का मान 5.991 है। (उत्तर- गुण सम्बन्ध सार्थक है।)

16. 450 छात्रों के परीक्षण परिणामों का प्रतिदर्श विश्लेषण किया गया। 220 फेल हुए, 120 तृतीय श्रेणी प्राप्त की, 90 ने द्वितीय श्रेणी और 20 ने प्रथम श्रेणी प्राप्त की। क्या यह आंकड़े सामान्य परीक्षा परिणाम जो कि विभिन्न श्रेणियों के लिए क्रमशः 4:3:2:1 के अनुपात में है, के अनुरूप है? 5% सार्थकता स्तर पर काई वर्ग का प्रयोग कीजिए।

(उत्तर- χ^2 = 24.45, अन्वायोजन उत्कृष्ट नहीं है।)

17. किसी कारखाने में एक विशिष्ट पुर्जे की मांग दिन प्रतिदिन परिवर्तनशील पाई गयी। एक प्रतिदर्श अध्ययन में निम्न सूची उपलब्ध हुई।

दिन	सोमवार	मंगलवार	बुधवार	गुरूवार	शुक्रवार	शनिवार
मांग	1124	1125	1110	1120	1126	1115

इस परिकल्पना का परीक्षण कीजिए कि मांगे गए पुर्जो की संख्या सप्ताह के दिन पर निर्भर नहीं करती है। (उत्तर- χ^2 = 0.179, शून्य परिकल्पना सत्य है)

18. एक औषधि जुकाम के उपचार के लिए गुणकारी कहीं जाती है। जुकाम ग्रस्त 160 व्यक्तियों पर किये गये प्रयोग में, आधे व्यक्तियों को वह औषधि दी गयी, आधों को चीनी की गोलियां। निम्न सारणी में चिकित्सा का रोगियों पर जो प्रभाव पड़ा उसका विवरण निम्नवत् है।

	फायदा हुआ	हानि हुयी	निष्प्रभाव
औषधि	52	10	18
चीनी की गोलियां।	44	10	26

χ^2 द्वारा इस परिकल्पना का परीक्षण कीजिए कि जुकाम को उपचार में औषधि, चीनी की गोली से थोड़ी सी भी अच्छी नहीं है। स्वातंत्रय संख्या 2 के लिए χ^2 का 5% का मान 5.991 है। (उत्तर- गुण सम्बन्ध सार्थक है।)

19.किसी पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठ पर अवलोकित तथा प्वायसन बंटन पर आधारित प्रत्याशित त्रुटियां निम्न प्रकार है।

प्रति पृष्ठ त्रुटियां	:0	1	2	3	योग
वास्तव त्रुटियां	:77	90	20	5	192
प्वायॅसन बंटन के अन्तर्गत त्रुटियां	:81	81	27	3	192

क्या प्वॅायसन आवृत्तियों और वास्तविक आवृत्तियों में कोई सार्थक अन्तर है?

(उत्तर- $\chi^2 = 4.346$ आवृत्तियों का अन्तर सार्थक नहीं है।)

इकाई – 18 शोध प्रतिवेदन के विभिन्न सोपान– प्रस्तावना, शोध कार्य का महत्व व आवश्यकता, शोध कार्य का शीर्षक, पदों प्रत्ययों की परिभाषा, शोध कार्य के उद्देश्य, सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन, परिकल्पनाएँ।

इकाई की संरचना

18.1 प्रस्तावना

18.2 उद्देश्य

18.3 शोध प्रतिवेदन का स्वरूप

18.4 शोध प्रतिवेदन के विभिन्न सोपान

18.5 शोध प्रतिवेदन में प्रस्तावना का स्वरूप एवं महत्व

18.6 शोध कार्य का महत्व व आवश्यकता

18.7 शोध कार्य का शीर्षक निर्धारण

18.8 शोध कार्य में प्रयुक्त पदों एवं प्रत्ययों की परिभाषा

18.9 शोध कार्य का उद्देश्य निर्धारण

18.10 शोध कार्य से संबंधित साहित्य का अध्ययन

18.11 शोध कार्य में परिकल्पनाओं का स्वरूप एवं महत्व

18.12सारांश

18.13शब्दावली

18.14 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

18.15 निबंधात्मक प्रश्न

18.1 प्रस्तावना

शोध प्रतिवेदन शोधकर्ता द्वारा सम्पन्न किए गए शोध का एक सुस्पष्ट, सुलिखित एवं विस्तृत लेख होता है। इसमें शोधकर्ता द्वारा किए गए शोध की आवश्यकता, महत्व, शोध विषय को समझने हेतु, शोध के उद्देश्य निर्धारित करने हेतु साहित्यिक सर्वेक्षण, शोध उद्देश्यों के अनुरूप कार्ययोजना के तहत निर्मित परिकल्पनाएँ, प्रयुक्त पदों एवं प्रत्ययों की परिभाषाएँ, एवं शोध में प्रयुक्त अनुसंधान विधि, प्राप्त परिणामों की ग्राफ, सांख्यिकीय सारणी आदि के माध्यम से अभिव्यक्ति व सुदीर्घ तार्किक विवेचन व व्याख्या स्पष्ट भाषा में लिखी हुई होती है। दूसरे शब्दों में शोध प्रतिवेदन शोध के प्रारम्भ से लेकर शोधकार्य की समाप्ति तक किए गए कार्यों एवं प्राप्त परिणामों का लिखित प्रतिवेदन होता है जिसका अध्ययन कर कोई भी अन्य व्यक्ति शोध को आद्योपान्त समझ सकता है। प्रस्तुत इकाई में आप शोध प्रतिवेदन के स्वरूप इसके विभिन्न सोपानों जिसके तहत – प्रस्तावना, शोध कार्य का महत्व व आवश्यकता, शोध कार्य का शीर्षक, पदों प्रत्ययों की परिभाषा, शोध कार्य के उद्देश्य, सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन, परिकल्पनाएँ आते हैं के बारे में विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

18.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

11. शोध प्रतिवेदन के स्वरूप को समझ सकेंगे।
12. शोध प्रतिवेदन के विभिन्न सोपानों के बारे में जान सकेंगे।
13. शोध कार्य का महत्व व आवश्सकता किस प्रकार प्रतिवेदित किया जाता है इसे समझ सकेंगे।
14. शोध कार्य में पदों एवं प्रत्ययों की परिभाषाओं का वर्णन कर सकेंगे।
15. शोध कार्य में उद्देश्यों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है इसे जान सकेंगे।
16. शोध कार्य में परिकल्पनाओं का महत्व समझ सकेंगे।

18.3 शोध प्रतिवेदन का स्वरूप एवं प्रस्तुतिकरण

शोध प्रतिवेदन को अंग्रेजी में रिसर्च रिपोर्ट कहा जाता है। इसका प्रस्तुतिकरण अनुसन्धान प्रक्रम का एक महत्वपूर्ण तथा अविभाज्य अंग होता है। इसके अन्तर्गत शोधकर्ता को अपने अनुसंधान प्रक्रम के प्रति विशेष गुणों को प्रदर्शित नहीं करना होता, बल्कि उसको अपने शोधकार्य के सम्बन्ध में विशेषतः तथा स्पष्ट रूप से यह बताना होता है कि– इस अनुसंधान की क्या समस्या रही है? इस अनुसंधान के सम्पन्न करने का तर्क संगत आधार क्या रहा है? इस अनुसंधान की शोध विधि क्या रही है? इस अनुसंधान से क्या परिणाम उपलब्ध हुए हैं? क्या निष्कर्ष प्राप्त हुए हैं?

अनुसंधानकर्ता को अपने अनुसंधान के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करना अनेक कारणों से आवश्यक होता है। इसका पहला तथा प्रमुख प्रयोजन यह रहता है कि ऐसे प्रतिवेदन के

प्रस्तुतीकरण में स्वयं अनुसंधानकर्ता की अपनी एक प्रबल जिज्ञासा का समाधान होता है। दूसरे जब तक अनुसंधान प्रतिवेदन प्रस्तुत व प्रकाशित नहीं होता, तब तक सम्बन्धित क्षेत्र के अन्य वैज्ञानिकों को शोधकर्ता द्वारा सम्पन्न किये गये अनुसंधान का पता नहीं लग पाता है और ऐसा अनुसन्धान चाहे जितने ही उन्नत कोटि का हो एक प्रकार से वैज्ञानिक समुदाय की दृष्टि से ओझल ही रहता है। तीसरे, अनुसंधान का एक सामान्य उद्देश्य प्रायः वैज्ञानिक ज्ञान भण्डार को निरन्तर विकसित करना तथा उसमें बढ़ोत्तरी करना रहता है। अब यदि एक अनुसंधान के परिणामों व निष्कर्षों को अनुसंधान प्रतिवेदन के माध्यम से शोध–पत्रिकाओं में प्रकाशन के लिए प्रस्तुत ही नहीं किया जाता है, तब प्रचलित वैज्ञानिक ज्ञान भण्डार में किस प्रकार ऐसी अपेक्षित वृद्धि सम्भव हो सकेगी। इसके अलावा अनुसंधान प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण का एक उद्देश्य यहॉ यह भी रहता है कि इस क्षेत्र के अन्य शोधकर्ता भी इस अनुसंधान प्रतिवेदन को देखें, जाने व इसके सम्बन्ध में अपनी टिप्पणी व आलोचना प्रस्तुत करें और यदि उनमें कोई एक शोधकर्ता आवश्यक समझे तो उसकी पुनरावृत्ति भी कर सके। इस प्रकार अनुसन्धान प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण से नवीन अनुसंधानों को प्रबल प्रेरणा मिलती है इससे सैद्धान्तिक ज्ञान रचना में भी सहायता मिलती है, और इससे कभी–कभी किसी एक व्यावहारिक समस्या के समाधान में सुविधा सुलभ होती है। इस प्रकार, अनुसंधान प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण से वैज्ञानिक जगत के प्रति सैद्धान्तिक व व्यावहारिक संप्रेक्षण तथा महत्वपूर्ण योगदान की विशिष्ट भूमिका सम्पन्न होती है, तथा साथ ही साथ, नवीन अनुसंधानों की रचनात्मक पृष्ठभूमि भी प्रशस्त होती रहती है।

18.4 शोध प्रतिवेदन के विभिन्न सोपान

किसी समस्या पर अनुसंधान करके उससे एक निश्चित निष्कर्ष निकाल लेने पर ही शोध के संबंध में अनुसंधानकर्ता का कार्य समाप्त नहीं हो जाता है बल्कि उसे एक वैज्ञानिक तरीके से प्रस्तुत करना भी एक प्रमुख किन्तु अनिवार्य उद्देश्य होता है। इस रिपोर्ट का मूल उद्देश्य अन्य लोगों को यह बतलाना होता है कि शोधकर्ता द्वारा विशेष समस्या का समाधान किस ढंग से किया गया है। इससे वैज्ञानिक ज्ञान का प्रसार होता है। एक अच्छी रिपोर्ट में अन्य बातों के अलावा स्पष्टता, यथार्थता तथा संक्षिप्तता तीन प्रमुख गुण होते हैं। शोध प्रतिवेदन के विभिन्न प्रारूप आजकल प्रचलित हैं जिनमें अमेरिकल साइकोलॉजिकल एसोशियेसन द्वारा रचित प्रारूप सर्वाधिक लोकप्रिय है। शोध प्रतिवेदन के महत्वपूर्ण सोपान अथवा चरण निम्न हैं–

(1) शीर्षक पृष्ठ (Title page)

(2) ऐब्सट्रैक्ट (Abstract)

(3) प्रस्तावना (Introduction)

(4) शोध विधि (Method)

- – प्रयोज्य (Subject)
- – उपकरण (Apparatus)
- – कार्य विधि (Procedure)

(5) परिणाम (Result)
(6) विवेचना एवं व्याख्या (Interpretation & discussion)
(7) सन्दर्भ (Reference)
(8) परिशिष्ट (Appendix)

18.5 शोध प्रतिवेदन में प्रस्तावना का स्वरूप एवं महत्व

प्रस्तावना अपने आप में रिसर्च रिपोर्ट का एक प्रकार से प्रवेश द्वार होता है इसीलिए इसे कई शोधकर्ता विषय प्रवेश के रूप में भी अपनी रिपोर्ट में उद्धृत करते हैं। अनुसंधान प्रतिवेदन में प्रस्तावना को विषय प्रवेश की संज्ञा देने के पीछे कई महत्वपूर्ण कारण हैं। किसी भी शोध कार्य को प्रारम्भ करने से पूर्व शोधकर्ता एक समस्या का चुनाव करता है। यह समस्या सैद्धान्तिक एवं प्रयोगात्मक अथवा किसी भी स्वरूप की हो सकती है। इसके साथ ही इस समस्या का कोई अनुमानित अथवा तार्किक समाधान भी हो सकता है। समस्या समाधान के पीछे निहित कारण ही अनुसंधान के उद्देश्य होते हैं। प्रस्तावना में शोधकर्ता अपने द्वारा किये गये अनुसंधान से वैज्ञानिक समुदाय एवं आम लोगों का परिचय करवाता है। इस प्रस्तावना में अनुसंधान क्यों किया जा रहा है? अनुसंधान में क्या किया जा रहा है? इस विशेष प्रश्न का परिचयात्मक उत्तर प्रस्तुत किया जाता है। इसके अलावा शोधकर्त मूलरूप से दो बातों पर प्रकाश डालता है– शोध समस्या क्या है तथा उसकी पृष्ठभूमि क्या है एवं उसके अध्ययन या अनुसंधान का उद्देश्य क्या है। शोध समस्या की पृष्ठभूमि तैयार करने के ख्याल से शोधकर्ता संबंधित अध्ययनों की समीक्षा करता है तथा ऐसे प्रमुख अध्ययनों का उल्लेख भी करता है।

शोध प्रतिवेदन में प्रस्तावना का महत्व इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योंकि इसके द्वारा कोई भी अन्य शोधकर्ता न केवल अध्ययन में क्या किया जा रहा है? क्यों किया जा रहा है? जैसे महत्वपूर्ण प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करता है बल्कि केवल इसे पढ़ने मात्र से उसे अध्ययन समस्या का महत्व व प्रासंगिकता समझ में आ जाती है।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता समाज में चिंता नामक मानसिक समस्या के बढ़ता जाना वर्तमान समय एवं आने वाले समय में एक बड़ी समस्या का स्वरूप ग्रहण करने का अनुमान लगाता है। तथा वर्तमान समय में चिंता निवृत्ति के प्रचलित उपायों को केवल आंशिक रूप से सफल जानकर उसके कोई पूर्ण एवं दीर्घ स्थाई समाधान खोजने को अपना शोध उद्देश्य निर्धारित करता है तथा इस हेतु वह चिंता को पूर्ण रूपेण जानने व समझने के लिए उपलब्ध साहित्य का सर्वेक्षण कर यह पाता है कि भारतीय प्राचीन साहित्य में योग की जो आसन, प्राणायाम एवं ध्यान की प्रविधियों का वर्णन मिलता है उनका अभ्यास यदि चिंताग्रस्त व्यक्ति को करवाया जाये तो उससे उसकी चिंता पूर्ण रूप से दूर हो सकती है। अब वह चिंता एवं योग प्रविधियों के बीच के इस अनुमानित संबंध की जॉच करने का निश्चय करता है, तथा इसे क्रियान्वित करने के लिए एक कार्य योजना बनाता है। कुछ चिंताग्रस्त व्यक्तियों को चुनकर उन्हें योग का अभ्यास करवाकर वह परिणाम प्राप्त करता है तथा परिणामों की विवेचना द्वारा एक निष्कर्ष पर पहुॅचता है कि योग की प्रविधियों के अभ्यास से चिंता कम होती है या नहीं। इस पूरे शोध कार्य को वैज्ञानिक समुदाय के

समक्ष प्रस्तुत करते समय शोधकर्ता को उसकी प्रस्तावना में शोध विषय अर्थात् शोध समस्या का स्पष्ट परिचय, परिकल्पनाओं के रूप में अनुमानित समाधान एवं शोध उद्देश्य लिखित रूप में देना होता है।

18.6 शोध कार्य का महत्व व आवश्यकता

शोध कार्य के महत्व व आवश्यकता का संबंध उसके औचित्य से होता है। शोध कार्य के इस औचित्य से ही शोधकार्य के उद्देश्य की सार्थकता का पता चलता है। अतएव प्रत्येक शोध कार्य में उसके शीर्षक के तुरन्त पश्चात् उसके महत्व व आवश्यकता पर प्रकाश डाला जाता है। शोध कार्य के महत्व पर प्रकाश डालने हेतु कई महत्वपूर्ण बिंदुओं पर ध्यान देना जरूरी है। इन बिन्दुओं में प्रथम है शोध समस्या – शोध कार्य की आवश्यकता एवं महत्व वाले अध्याय में शोध समस्या से उस रूप में पाठकों हेतु प्रस्तुत किया जाता है जिसे वह सरलतापूर्वक समझ सकें। शोध समस्या को सरल शब्दों, बोधगम्य उद्धरणों, ऑकड़ों के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। समस्या प्रस्तुतीकरण के साथ ही उसके वर्तमान में उपलब्ध समाधानों की समीक्षा की जाती है। इस समीक्षा के लिए विभिन्न शोध जनरल्स में प्रकाशित शोध पत्रों को प्रमाण रूप में प्रयोग किया जाता है। यदि इस समीक्षा में वर्तमान उपलब्ध समाधानों में कोई कमी होती है तो इसके उपरान्त नवीन समाधान सुझाया जाता है। इस नवीन समाधान के औचित्य को शोधकर्ता तर्क की कसौटी पर कसकर प्रस्तुत करता है। प्रस्तुत अध्ययन के संभावित परिणामों के महत्व एवं उपयोगिता को प्रस्तुत कर शोध का औचित्य सिद्ध करता है।

18.7 शोध कार्य का शीर्षक निर्धारण

शोध कार्य का शीर्षक शोध कार्य का आमुख होता है। शीर्षक से शोध कार्य की पहचान होती है। इसकी तुलना मनुष्य के चेहरे से की जा सकती है, चेहरे से ही मनुष्य की प्रथम पहचान होती है। अतएव शोध कार्य में शीर्षक निर्धारण का बड़ा महत्व है। शोध कार्य का शीर्षक न तो बहुत लम्बा और न ही बहुत संक्षिप्त होना चाहिए। शोध कार्य का शीर्षक अत्यंत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया जाना चाहिए। इसमें द्विअर्थी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। शोध कार्य के शीर्षक से उसका उद्देश्य स्पष्ट रूप में समझ में आना चाहिए।

उदाहरण– 'रूद्राष्टाध्यायी का दार्शनिक एवं मांत्रिक रहस्य – एक विवेचनात्मक अध्ययन' और 'प्राणाकर्षण प्राणायाम का चिंता पर प्रभाव – एक प्रायोगिक अध्ययन'। उपरोक्त दोनों ही उदाहरणों में शीर्षक के द्वारा शोध अध्ययन का उद्देश्य स्पष्ट रूप में नजर आ रहा है। प्रथम शोध शीर्षक एक सैद्धान्तिक शोध का उत्तम उदाहरण है तथा रूद्राष्टाध्यायी नामक ग्रंथ के श्लोकों में समाए दर्शन तथा मंत्र सम्बंधी रहस्य के अनावरण के विवेचनात्मक अध्ययन की ओर संकेत करता है। द्वितीय शीर्षक अपने आप में एक प्रयोग की ओर संकेत करता है जिसका उद्देश्य चिंता पर प्राणाकर्षण प्राणायाम के अभ्यास से पड़ने वाले प्रभावों

का पता लगाना है जिसका मूल उद्देश्य चिंता नामक समस्या का एक सफल उपचार ढूँढ़ना है।

18.8 शोध कार्य में प्रयुक्त पदों एवं प्रत्ययों की परिभाषा

शोध कार्य में शोध को भली भॉति पूरा करने के लिए विभिन्न प्रकार के पदों एवं प्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। शोध कार्य की पूरी कार्ययोजना, अभिकल्प का निर्धारण, मापन एवं सांख्यिकी की गणना आदि इन प्रत्ययों को परिभाषित करने के उपरान्त ही सुचारू रूप से की जा सकती है। प्रत्यय को संप्रत्यय भी कहा जाता है। शोध उद्देश्य से संबंधित किसी भी संप्रत्यय को परिभाषित करना बहुत ही आवश्यक होता है क्योंकि यदि शोध कार्य से संबंधित प्रत्ययों एवं पदों को परिभाषित नहीं किये जाने पर उन पर प्राप्त परिणाम भ्रम उत्पन्न करने वाले हो सकते हैं। प्रायः यह पाया जाता है कि सामाजिक विज्ञानों, मनोविज्ञान एवं दर्शन एवं योग से संबंधित विषयों में प्रयुक्त किये जाने वाले संप्रत्ययों के अर्थ का दायरा भिन्न भिन्न होता है। उदाहरण के लिए तनाव एक संप्रत्यय है परन्तु अलग अलग मनोवैज्ञानिक इसे अलग–अलग प्रकार से परिभाषित करने हैं। अतएव शोध के दौरान अनुसंधानकर्ता ने किस परिभाषा एवं अर्थ को ध्यान में रखते हुए अपने संप्रत्यय एवं अन्य पदों का प्रयोग किया है इसे पूर्व निर्धारित करना जरूरी हो जाता है। उदाहरण के लिए योग शब्द अपने आप में एक संप्रत्यय है परन्तु अलग अलग विद्वानों एवं ग्रंथों के अनुसार इसकी भिन्न भिन्न परिभाषाऍ प्राप्त होती हैं। सामान्य अर्थ में जहॉ योग से अभिप्राय जोड़ने से लिया जाता है। वहीं दर्शन में योग के तात्पर्य भिन्न भिन्न हैं, जैसे कि महर्षि पतंजलि के योग दर्शन में चित्त वृत्तियों के निरोध को योग कहा गया है यथा– 'योगश्च चित्तवृत्ति निरोधः' (पातंजल योग सूत्र– 1/2)। वहीं गीता के सुख दुख आदि सभी अवस्थाओं में व्यक्ति का समभाव से रहने को योग कहा गया है यथा – समत्वं योग उच्यते। गीता में ही योग शब्द को एक अन्य प्रकार से भी परिभाषित किया गया है यथा 'योगः कर्मसु कौशलम्' अर्थात् कर्म में कुशलता ही योग है। यहॉ कुशलता शब्द को भी बड़े ही गंभीर अर्थ में प्रयुक्त किया गया है। यहॉ कर्मो की कुशलता से तात्पर्य कर्मो को इस प्रकार किया जाना है कि उन किये गये कर्मो का कोई भी शुभ अथवा अशुभ फल न हो अर्थात् व्यक्ति कर्मो के फलों से परे एवं पार हो जाये । कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाये। वहीं सामान्य अर्थ में कुशलता का अभिप्राय विषय विशेष में प्रवीणता से लिया जाता है। इसी प्रकार योग विषय बहुत प्रकार के पद एवं प्रत्ययों से भरा पड़ा है जिनके विभिन्न कोणों से विभिन्न अभिप्राय निकलते हैं। जैसे कि ध्यान, प्राणायाम, समाधि, कुम्भक, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति आदि वृत्तियॉ एवं अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेष आदि पंचक्लेश। अतएवं इन पदों को अनुसंधान में किस रूप में प्रयुक्त किया गया है इनके प्रयुक्त अर्थ क्या है, इनके सीमायें कहॉ तक है इस बात का निर्धारण पहले से ही कर लेना अत्यंत आवश्यक होता है।

18.9 शोध कार्य का उद्देश्य निर्धारण

अनुसंधान में अध्ययन की आवश्यकता, महत्व एवं औचित्य स्पष्ट हो जाने के बाद सम्मुख समस्या की स्पष्ट व्याख्या एवं तदनुरूप शोध उद्देश्य का निर्धारित किये जाते हैं। इन शोध उद्देश्य का अनुसंधान में बड़ा महत्व होता है। कोई भी अन्य अनुसंधानकर्ता अथवा जिज्ञासु व्यक्ति शोध प्रतिवेदन में उल्लखित केवल इन शोध उद्देश्यों को पढ़कर ही यह अनुमान लगाने में समर्थ हो जाता है कि प्रस्तुत शोध में कितने प्रकार के कार्य किस स्तर पर किये गए हैं। शोध के उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन में पदों एवं संप्रत्ययों का चयन एवं परिभाषा की जाती है। इसी के आधार पर परिकल्पनायें भी विनिर्मित की जाती हैं। विस्तृत रूप में शोध दो प्रकार का होता है। सैद्धान्तिक शोध एवं प्रायोगिक शोध। सैद्धान्तिक शोध में शोध उद्देश्यों का निर्धारण हो जाने के उपरान्त शोध कार्य की रूपरेखा प्रस्तुत किये जाने की आवश्यकता होती है इस रूपरेखा में प्रस्तावना एवं उपसंहार सहित कई अध्यायों की रचना की जाती है। ये अध्याय सीधे तौर पर शोध उद्देश्यों को प्रदर्शित करते हैं। प्रायोगिक शोध में शोध का उद्देश्यों की झलक उसकी वैज्ञानिक परिकल्पनाओं में मिलती है।

उदाहरण–

मान लिया जाये कि कोई शोध कर्ता सैद्धान्तिक शोध के अन्तर्गत 'दुर्गासप्तशती का दार्शनिक एवं मांत्रिक रहस्य – एक विवेचनात्मक अध्ययन' शीर्षक के अन्तर्गत अनुसंधान करने का निश्चय करता है तो इसके अन्तर्गत वह निम्न प्रकार के शोध उद्देश्यों का निर्धारण कर सकता है–

(1) दुर्गासप्तशती के श्लोकों में अन्तर्निहित दर्शन पक्ष को वैज्ञानिक समुदाय के समक्ष विवेचनात्मक रूप में प्रस्तुत करना।

(2) दुर्गासप्तशती में अन्तर्निहित विभिन्न मंत्रों के वैज्ञानिक रूप में प्रयोग किये जाने के रहस्य को उद्घाटित करना।

(3) किसी एक मंत्र पर वैज्ञानिक अनुसंधान करना।

(4) दुर्गासप्तशती के विभिन्न अनुष्ठान विधियों से लोगों को परिचित करवाना। आदि।

इसी प्रकार प्रायोगिक शोध में भी उद्देश्यों का निर्धारण किया जाता है। मान लिया जाये कि कोई शोधकर्ता 'प्राणाकर्षण प्राणायाम का चिंता पर प्रभाव – एक प्रायोगिक अध्ययन' शीर्षक के अन्तर्गत अनुसंधान करने का निश्चय करता है तो इसके अन्तर्गत उसके शोध उद्देश्यों का स्वरूप कुछ इस प्रकार का होगा।

(1) प्राणाकर्षण प्राणायाम का चिंता स्तर पर पड़ने वाले मनोवैज्ञानिक प्रभावों का अध्ययन करना।

(2) विभिन्न उम्र समूहों के लोगों की चिंता पर प्राणाकर्षण प्राणायाम के प्रभावों की तुलना करना।

(3) विभिन्न समय अन्तराल में प्राणाकर्षण प्राणायाम के चिंता स्तर पर पड़ने वाले प्रभावों की तुलनात्मक व्याख्या करना।

(4) प्राणाकर्षण प्राणायाम को चिंता स्तर को कम करने वाली चिकित्सा विधि के रूप में जॉचना।

18.10 शोध कार्य से संबंधित साहित्य का अध्ययन।

शोध के संबंधित साहित्य का अध्ययन अथवा सर्वेक्षण शोध कार्य की रीढ़ है। इसके अभाव में न तो अनुसंधान की समस्या स्पष्ट रूप से समझ में आती है और न ही शोध कार्य का औचित्य ही बताया जा सकता है। शोध से संबधित साहित्य के अध्ययन के पीछे निहित कई लाभ हैं। इनका वर्णन निम्न है–

(1) शोध से संबंधित साहित्य के अध्ययन से अनुसंधान की समस्या स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है।

(2) नये शोध की दिशा एवं कार्ययोजना का निर्धारण पूर्व में हो चुके शोध कार्यों के प्रकाश में तुलना कर आसानी के किया जा सकता है।

(3) यदि पूर्व में ही संबंधित समस्या पर अनुसंधान कर निष्कर्ष प्राप्त किये जा चुके होते हैं तो पुनः इस कार्य में समय, धन एवं श्रम व्यर्थ करने से बचा जा सकता है।

(4) पूर्व में किये जा चुके समान शोध कार्यो की कमियां प्रस्तुत हो जाती हैं जिससे वर्तमान शोध को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

(5) साहित्य के सर्वेक्षण से प्रस्तुत समस्या के कई विकल्प रूपी समाधान प्राप्त किये जा सकते हैं। इससे नये वैज्ञानिक, प्रयोगात्मक एवं सैद्धान्तिक शोध किये जाने की संभावनायें प्रकट होती हैं।

अब प्रश्न उठता है कि यह साहित्य अध्ययन किस प्रकार किया जाता है?

सर्वप्रथम शोध से संबंधित विभिन्न साहित्यिक ग्रंथों, पुस्तकों, शोध सार, शोध पत्र, शोध प्रतिवेदन आदि का संकलन किया जाता है। आधुनिक युग में संचार क्रांति हो जाने से यह साहित्य अध्ययन भी अत्यंत सरल हो गया है। इसके अन्तर्गत न केवल इन्टरनेट के माध्यम से विभिन्न प्रकार के ग्रंथों के प्रकाशकों उनके मूल्य एवं विषय विषयक जानकारी प्राप्त की जा सकती है वरन शोध से संबंधित विषय सामग्री सीधे रूप में भी उपलब्ध की जा सकती है।

शोध से संबंधित विषय सामग्री प्राप्त करने के कतिपय स्रोत निम्न हैं।

(1) पाठ्य पुस्तकें।

(2) मैगजीन।

(3) पत्रावलियॉ।

(4) शोध जर्नल्स में प्रकाशित विभिन्न शोध पत्र।

(5) इन्टरनेट की विभिन्न वेबसाइट।

(6) पुस्तकालय, आदि।

शोध विषय से संबंधित साहित्य का संकलन विभिन्न स्रोतों से कर लेने के उपरान्त इस साहित्य में से शोध विषयक महत्वपूर्ण सामग्री एवं जानकारी को खोजने के आवशकता होती है। इस हेतु अन्य शोध विद्वानों का भी परामर्श लिया जा सकता है।

18.11 शोध कार्य में परिकल्पनाओं का स्वरूप एवं महत्व

शोध कार्य में परिकल्पनाओं का विशेष महत्व है। परिकल्पना के बिना शोध में एक भी कदम आगे बढ़ाया नहीं जा सकता है। परिकल्पना शोध कार्य की धुरी होती है इसी पर शोध कार्य की सारी योजनायें आधारित होती हैं। परिकल्पना के बिना शोध कार्य ऐसा ही होता है जैसे कि दिशा विहीन गाड़ी का चलना। अर्थात् परिकल्पना शोध कार्य की दिशा का स्पष्ट निर्धारण करती है। परिकल्पना निर्धारण हो जाने पर शोध की कार्ययोजनायें शोध अभिकल्प के माध्यम से पूर्ण की जाती हैं। शोध अभिकल्प में शोध के संबधित स्वतंत्र, परतंत्र एवं बाह्य चरों का निर्धारण के साथ साथ ऑकड़ा संग्रहण प्रक्रिया, विभिन्न शोध विधियों में उपयुक्त शोध विधि का चुनाव आदि सम्मिलित होते हैं।

शैक्षिक शोध, मनोवैज्ञानिक शोध तथा योग में शोध का स्वरूप चाहे प्रयोगात्मक हो या अप्रयोगात्मक हो, शोध समस्या का वैज्ञानिक चयन हो जाने के बाद शोधकर्ता परिकल्पना का प्रतिपादन करता है। सवाल यह उठता है कि परिकल्पना से शोधकर्ता का क्या तात्पर्य होता है तथा इसका प्रतिपादन क्यों किया जाता है।

जब शोधकर्ता किसी अनुसंधान समस्या का चयन कर लेता है तो वह उसका एक अस्थायी समाधान एक जॉचनीय प्रस्ताव के रूप में करता है। इसी जॉचनीय प्रस्ताव को तकनीकी भाषा में परिकल्पना कहा जाता है। संक्षेप में तब यह कहा जा सकता है कि किसी शोध समस्या का एक प्रस्तावित जॉचनीय उत्तर ही परिकल्पना कहलाता है। एक उदाहरण के लिए मान लिया जाए कि किसी शोधकर्ता की शोध समस्या यह है – क्या सीखने पर पुनर्बलन का प्रभाव पड़ता है? थोड़ी देर के लिए मान लिया जाये कि इस शोध समस्या का एक प्रस्तावित जॉचनीय उत्तर इस प्रकार तैयार किया जाता है – 'पुरस्कार से सीखने की क्रिया तेजी से होगी तथा दण्ड देने से सीखने की क्रिया मन्द पड़ जायेगी'। यह जॉचनीय परिकल्पना कहलायेगी। अगर प्रयोग या शोध के निष्कर्ष से परिकल्पना की पुष्टि हो जाती है, तो परिकल्पना को सही मान लिया जायेगा। परन्तु यदि पुष्टि नहीं हो पाती है तो परिकल्पना में या तो परिमार्जन कर दिया जाता है या उसकी जगह पर कोई दूसरी परिकल्पना विकसित कर ली जाती है।

परिकल्पना की कतिपय परिभाषाऍ निम्न हैं–

करलिंगर के अनुसार 'दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों के आनुमानिक कथन को परिकल्पना कहा जाता है। परिकल्पनाओं को हमेशा घोषणात्मक वाक्य के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है और वे चरों से चरों के बीच में सामान्य या विशिष्ट संबंध बतलाते हैं।'

(Kerlinger 1986 - ' A hypothesis is a conjectural statement of the relation between two or more variables. hypothesis are always in

declarative sentence form and they relate either generally or specifically variables to variables.')

मैक्ग्यूगन के अनुसार 'दो या दो से अधिक चरों के बीच संभावित संबंधों के बारे में बनाये गये जॉचनीय कथन को परिकल्पना कहा जाता है।'

(McGuigan 1990 - 'A testable statement of a potential relationship between two or more variables is called hypothesis')

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से हमें कुछ ऐसे तथ्य प्राप्त होते हैं जिनसे परिकल्पना का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है। कुछ ऐसे तथ्य निम्नांकित हैं–

(1) परिकल्पना में दो या दो से अधिक चरों के बीच एक संबंध बतलाया जाता है। जैसे, ध्यान के अभ्यास से एकाग्रता में तेजी वृद्धि होती है' एक ऐसी ही परिकल्पना का उदाहरण है जिसमें ध्यान तथा एकाग्रता दोनों ही दो चर हैं जिनके बीच एक तरह का संबंध बतलाया जा रहा है।

(2) परिकल्पना चरों के बीच जॉचनीय कथन के रूप में अभिव्यक्त की जाती है। इसका मतलब यह हुआ कि परिकल्पना में दो या दो से अधिक ऐसे चर होते हैं जिन्हें मापा जाना संभव है। उदाहरण के लिए 'पुरस्कार देने से सीखने की प्रकिया तेजी से होगी' इस परिकल्पना में पुरस्कार तथा सीखना दोनों ही ऐसे चर है जिनका मापन आसानी से किया जा सकता है।

एक उत्तम परिकल्पना की कुछ प्रमुख विशेषताऍ एवं कसौटियॉ होती हैं जिन्हे जानना आवश्यक है इनका वर्णन निम्न है।

(1) परिकल्पना को जॉचनीय होना चाहिए। – एक अच्छी अनुसंधान परिकल्पना की पहचान यह है कि उसका प्रतिपादन स ढंग से किया जाना संभव हो कि उसकी जॉच करने के बाद यह निश्चित रूप से कहा जा सके कि वह संभवतः सही है या संभवतः गलत है। इसके लिए यह आवश्यक है कि परिकल्पना की अभिव्यक्ति विस्तृत ढंग से नहीं बल्कि विशिष्ट ढंग से की जानी चाहिए। विस्तृत परिकल्पना प्रभावशाली तथा आकर्षक भले ही लगे, परन्तु उसकी जॉच चूँकि ठीक ढंग से नहीं की जा सकती है, अतः वह एक अच्छी परिकल्पना नहीं कही जा सकती है। जॉचनीय परिकल्पना से तात्पर्य ऐसी परिकल्पना से होता है जिसे यह विश्वास के साथ कहा जा सके कि वह सही है या गलत है।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता यह परिकल्पना बनाता है कि 'व्यापार में घाटा होना मनुष्य के पापों का परिणाम है' अथवा 'एक पिन के नुकीले सिरे पर कितनी परियॉ नाच सकती हैं?' एक अजॉचनीय परिकल्पना का उत्तम उदाहरण होगा। क्योंकि व्यवहारिक तौर पर इसकी जॉच संभव नहीं है।

(2) परिकल्पना को संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट होना चाहिए।

संप्रत्यात्मक रूप से स्पष्ट होने का मतलब है कि परिकल्पना में व्यवहृत संप्रत्यय वस्तुनिष्ठ ढंग से परिभाषित हों तथा परिभाषा ऐसी हो जिससे कुछ स्पष्ट अर्थ निकलता हो तथा वह

अधिकतर लोगों को मान्य हो। परिभाषा तथा व्याख्या ऐसी नहीं हो जिसे शोधकर्ता की व्यक्तिगत दुनिया की उपज कहा जा सके तथा जिसका अर्थ सिर्फ वही समझता हो।

(3) परिकल्पना से अधिक से अधिक अनुमिति किया जाना संभव होना चाहिए तथा उसका स्वरूप सामान्य होना चाहिए। –

एक अच्छी परिकल्पना की यह भी एक विशेषता है कि उसका स्वरूप बिल्कुल विशिष्ट न होकर कुछ सामान्य होना चाहिए, हालॉकि बहुत अधिक सामान्य तथा बहुत अधिक विशिष्ट दोनों ही तरह की परिकल्पनाऍ उत्तम नहीं मानी जाती हैं। यदि परिकल्पना बीचों बीच की है तो इसे उत्तम माना जाता है क्योंकि इससे अधिकतम यथार्थ अनुमिति प्राप्त हो जाती है जिससे एक ही साथ और एक ही

बार में कई तथ्यों की व्याख्या संभव हो पाती है। इस तरह की परिकल्पनाओं को बहुत अधिक सामान्य तथा बहुत अधिक विशिष्ट परिकल्पनाओं की तुलना में उत्तम माना गया है। मैकग्यूगन के अनुसार 'सामान्य रूप से वैसी परिकल्पनायें जिनसें बहुत सी महत्वपूर्ण अनुमितियॉ निर्मित की जा सकती हैं, अधिक लाभदायक परिकल्पना मानी जाती हैं। (McGuigan 1990 - 'In general, the hypothesis that leads to the larger number of important deductions will be more fruitful hypothesis'.)

परिकल्पना के महत्व को प्रदर्शित करने वाले महत्वपूर्ण कार्य

(क) नये सिद्धान्तों का प्रतिपादन करना

प्रायः एवं सामान्यतः अनुसंधानकर्ता सिद्धान्तों के आधार पर परिकल्पना बनाते हैं। परन्तु कभी–कभी प्रक्रिया इसके विपरीत हो जाती है जिसमें हम विभिन्न परिकल्पनाओं को एक साथ मिलाकर एक सिद्धान्त को जन्म देते हैं। अतः परिकल्पना का एक कार्य यह भी है कि हम इसके आधार पर एक नये सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। कभी–कभी शोध वैज्ञानिकों को यह विश्वास के साथ पता होता है कि अमुक घटना का क्या कारण हो सकता है। अतः ऐसी परिस्थिति में वह किसी सिद्धान्त की पृष्ठभूमि के लिए इंतजार नहीं करता है और परिकल्पना निर्मित कर लेता है। परिकल्पना सत्य साबित होने पर अपनी पूर्वकल्पनाओं , परिभाषाओं तथा संप्रत्ययों को वह एक तार्किक व्यवस्था में संयोजित कर देता है जिसे हम सिद्धान्त के नाम से पुकारते हैं। मनोविज्ञान एवं समाजशास्त्र आदि विषयों में कई सिद्धान्तों का वर्णन मिलता है जिनसे कई परिकल्पनाओं को निर्गत किया जा सकता है। इस सिद्धान्तों में स्कीनकर का सीखना सिद्धान्त सिगमण्ड फ्रायड का मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त, कार्लरोजर का संवृत्तिशास्त्र का सिद्धान्त काफी लोकप्रिय हैं। इस सिद्धान्तों में मनुष्य के व्यक्तित्व की संरचना उसकी गत्यात्मकता एवं विकास की तार्किक व्यवस्था के अन्तर्गत व्याख्या की गई है।

(ख) पूर्व सिद्धान्तों की जॉच करना

अनुसंधान विशेषज्ञों के मुताबिक परिकल्पनाओं के द्वारा भिन्न–भिन्न सिद्धान्तों की जॉच आसानी से होती है। वैज्ञानिक तथा समाजशास्त्री अगर किसी घटना की व्याख्या करने के लिए सिद्धान्त का विकास करते हैं और उसके बाद वे कुछ तरीकों द्वारा उसकी सत्यता की जॉच करते हैं तो उनके सम्मुख सबसे उत्तम तथा सीधा तरीका उस सिद्धान्त से एक या

एक से अधिक परिकल्पनायें निर्मित करना होता है और बाद में उस परिकल्पना की सत्यता की जॉच की जाती है। यदि परिकल्पना यथार्थ साबित हुई तो इस निष्कर्ष पर पहुॅचा जाता है कि वह सिद्धान्त जिससे परिकल्पना निर्गत की गई थी वह सत्य है। यदि परिकल्पना सही साबित नहीं हुई तो सिद्धान्त का खण्डन कर दिया जाता है और उसे एक अवैज्ञानिक सिद्धान्त घोषित कर दिया जाता है। इस तरह से स्पष्ट है कि परिकल्पना का एक महत्वपूर्ण कार्य सिद्धान्तों की सत्यता की जॉच करना है। इस अर्थ में परिकल्पना की एक वैकल्पिक परिभाषा देते हुए कहा जाता है कि परिकल्पना जॉचनीय रूप में सिद्धांत का एक कथन होता है।

(ग) घटना की स्पष्ट एवं तार्किक व्याख्या करना

परिकल्पना द्वारा वर्णनात्मक कार्य भी संपादित होते हैं। जब किसी परिकल्पना द्वारा जॉच किी जाती है, तो यह निश्चित रूप से उन घटनाओं के बारे में एक निश्चित सूचना देती है जिससे वह संबंधित होती है। इस सूचना के आधार पर संबंधित घटना के बारे में एक दूसरे ढंग की सूचना मिल जाती है जिससे कि वह कुछ सीखता है और घटना के वर्णन को एक नया रूप देता है।

इन प्रमुख कार्यों के अलावा परिकल्पना द्वारा कुछ सहायक कार्य भी किये जाते हैं। जैसे परिकल्पनाओं की जॉच कर विभिन्न प्रकार की शैक्षिक, सामाजिक, स्वास्थ्य आदि समस्याओं के समाधान को ढूॅढा जा सकता है। अपराधियों के व्यवहारें में सुधार के उपायों की सामर्थ्य एवं उपयोगिता की जॉच की जा सकती है। योग विषय के अन्तर्गत व्यक्ति के व्यक्तित्व की संरचना उसके विकास से संबंधित सूत्रों के सिद्धान्त का रूप देने के लिए परिकल्पनायें निर्गत कर उनकी जॉच की जा सकती है।

18.12 सारांश

अनुसंधानकर्ता को अपने अनुसंधान के प्रतिवेदन को प्रस्तुत करना अनेक कारणों से आवश्यक होता है। इसका पहला तथा प्रमुख प्रयोजन यह रहता है कि ऐसे प्रतिवेदन के प्रस्तुतीकरण में स्वयं अनुसंधानकर्ता की अपनी एक प्रबल जिज्ञासा का समाधान होता है। दूसरे जब तक अनुसंधान प्रतिवेदन प्रस्तुत व प्रकाशित नहीं होता, तब तक सम्बन्धित क्षेत्र के अन्य वैज्ञानिकों को शोधकर्ता द्वारा सम्पन्न किये गये अनुसंधान का पता नहीं लग पाता है और ऐसा अनुसन्धान चाहे जितने ही उन्नत कोटि का हो एक प्रकार से वैज्ञानिक समुदाय की दृष्टि से ओझल ही रहता है। तीसरे, अनुसंधान का एक सामान्य उद्देश्य प्रायः वैज्ञानिक ज्ञान भण्डार को निरन्तर विकसित करना तथा उसमें बढ़ोत्तरी करना रहता है।

शोध प्रतिवेदन के महत्वपूर्ण सोपान अथवा चरण निम्न हैं– (1) शीर्षक पृष्ठ (Title page), (2) ऐब्सट्रैक्ट (Abstract), (3) प्रस्तावना (Introduction), (4) शोध विधि (Method)– प्रयोज्य (Subject), उपकरण (Apparatus), कार्य विधि (Procedure), (5) परिणाम (Result), (6) विवेचना एवं व्याख्या (Interpretation & discussion), (7) सन्दर्भ (Reference), (8) परिशिष्ट (Appendix)

प्रस्तावना में शोधकर्ता अपने द्वारा किये गये अनुसंधान से वैज्ञानिक समुदाय एवं आम लोगों का परिचय करवाता है। इस प्रस्तावना में अनुसंधान क्यों किया जा रहा है? अनुसंधान में क्या किया जा रहा है? इस विशेष प्रश्न का परिचयात्मक उत्तर प्रस्तुत किया जाता है। इसके अलावा शोधकर्त मूलरूप से दो बातों पर प्रकाश डालता है– शोध समस्या क्या है तथा उसकी पृष्ठभूमि क्या है एवं उसके अध्ययन या अनुसंधान का उद्देश्य क्या है। शोध समस्या की पृष्ठभूमि तैयार करने के ख्याल से शोधकर्ता संबंधित अध्ययनों की समीक्षा करता है तथा ऐसे प्रमुख अध्ययनों का उल्लेख भी करता है।

शोध कार्य में शीर्षक निर्धारण का बड़ा महत्व है। शोध कार्य का शीर्षक न तो बहुत लम्बा और न ही बहुत संक्षिप्त होना चाहिए। शोध कार्य का शीर्षक अत्यंत स्पष्ट शब्दों में व्यक्त किया जाना चाहिए। इसमें द्विअर्थी शब्दों का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। शोध कार्य के शीर्षक से उसका उद्देश्य स्पष्ट रूप में समझ में आना चाहिए।

शोध उद्देश्य का अनुसंधान में बड़ा महत्व होता है। कोई भी अन्य अनुसंधानकर्ता अथवा जिज्ञासु व्यक्ति शोध प्रतिवेदन में उल्लखित केवल इन शोध उद्देश्यों को पढ़कर ही यह अनुमान लगाने में समर्थ हो जाता है कि प्रस्तुत शोध में कितने प्रकार के कार्य किस स्तर पर किये गए हैं। शोध के उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन में पदों एवं संप्रत्ययों का चयन एवं परिभाषा की जाती है। इसी के आधार पर परिकल्पनायें भी विनिर्मित की जाती हैं।

शोध के संबंधित साहित्य का अध्ययन अथवा सर्वेक्षण शोध कार्य की रीढ़ है। इसके अभाव में न तो अनुसंधान की समस्या स्पष्ट रूप से समझ में आती है और न ही शोध कार्य का औचित्य ही बताया जा सकता है। शोध से संबधित साहित्य के अध्ययन के पीछे निहित कई लाभ हैं। इनका वर्णन निम्न है–

(1) शोध से संबंधित साहित्य के अध्ययन से अनुसंधान की समस्या स्पष्ट रूप से समझ में आ जाती है।

(2) नये शोध की दिशा एवं कार्ययोजना का निर्धारण पूर्व में हो चुके शोध कार्यों के प्रकाश में तुलना कर आसानी के किया जा सकता है।

(3) यदि पूर्व में ही संबंधित समस्या पर अनुसंधान कर निष्कर्ष प्राप्त किये जा चुके होते हैं तो पुनः इस कार्य में समय, धन एवं श्रम व्यर्थ करने से बचा जा सकता है।

(4) पूर्व में किये जा चुके समान शोध कार्यो की कमियां प्रस्तुत हो जाती हैं जिससे वर्तमान शोध को अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है।

(5) साहित्य के सर्वेक्षण से प्रस्तुत समस्या के कई विकल्प रूपी समाधान प्राप्त किये जा सकते हैं। इससे नये वैज्ञानिक, प्रयोगात्मक एवं सैद्धान्तिक शोध किये जाने की संभावनायें प्रकट होती हैं।

परिकल्पना शोध कार्य की धुरी होती है इसी पर शोध कार्य की सारी योजनायें आधारित होती हैं। परिकल्पना के बिना शोध कार्य ऐसा ही होता है जैसे कि दिशा विहीन गाड़ी का चलना। अर्थात् परिकल्पना शोध कार्य की दिशा का स्पष्ट निर्धारण करती है। परिकल्पना निर्धारण हो जाने पर शोध की कार्ययोजनायें शोध अभिकल्प के माध्यम से पूर्ण की जाती हैं। शोध अभिकल्प में शोध के संबधित स्वतंत्र, परतंत्र एवं बाह्य चरों का निर्धारण के साथ

साथ ऑकड़ा संग्रहण प्रक्रिया, विभिन्न शोध विधियों में उपयुक्त शोध विधि का चुनाव आदि सम्मिलित होते हैं। करलिंगर के अनुसार 'दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों के आनुमानिक कथन को परिकल्पना कहा जाता है। परिकल्पनाओं को हमेंशा घोषणात्मक वाक्य के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है और वे चरों से चरों के बीच में सामान्य या विशिष्ट संबंध बतलाते हैं।'

18.13 शब्दावली

शोध प्रतिवेदन –शोध प्रतिवेदन शोधकर्ता द्वारा सम्पन्न किए गए शोध का एक सुस्पष्ट, सुलिखित एवं विस्तृत लेख होता है।

शोध प्रस्तावना – प्रस्तावना में शोधकर्ता अपने द्वारा किये गये अनुसंधान से वैज्ञानिक समुदाय एवं आम लोगों का परिचय करवाता है। इस प्रस्तावना में अनुसंधान क्यों किया जा रहा है? अनुसंधान में क्या किया जा रहा है? इस विशेष प्रश्न का परिचयात्मक उत्तर प्रस्तुत किया जाता है।

परिकल्पना –'दो या दो से अधिक चरों के बीच संबंधों के आनुमानिक कथन को परिकल्पना कहा जाता है। परिकल्पनाओं को हमेंशा घोषणात्मक वाक्य के रूप मे अभिव्यक्त किया जाता है।

18.14 सन्दर्भ ग्रन्थ

1.अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

2.मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

3.हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

18.15 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1 शोध प्रतिवेदन से आप क्या समझते हैं। एक उत्तम शोध प्रतिवेदन की रूपरेखा प्रस्तुत करें।

प्रश्न 2 शोध प्रतिवेदन में प्रस्तावना व शीर्षक के स्वरूप एवं महत्व पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 3 शोध प्रतिवेदन में शोध के उद्देश्यों का निर्धारण किस प्रकार किया जाता है। एक सैद्धान्तिक एवं प्रायोगिक शोध में उद्देश्य का उदाहरण प्रस्तुत करें।

प्रश्न 4 शोध प्रतिवेदन में परिकल्पना के स्वरूप एवं महत्व को बताऍ।

प्रश्न 5 एक उत्तम शोध परिकल्पना की विशेषताऍ एवं कार्यों पर प्रकाश डालें।

इकाई—19 आंकड़ों का संग्रह, सारणीकरण, सांख्यिकीय विश्लेषण, परिणामों की प्राप्ति

19.1प्रस्तावना

19.2उद्‌देश्य

19.3 आंकड़ों का संग्रह

19.4 आंकड़ा संग्रह विधियॉ

19.4 सारणीकरण

19.5 सांख्यिकीय विश्लेषण

19.6 परिणामों की प्राप्ति

19.7 सारांश

19.8 शब्दावली

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

19.1 प्रस्तावना

अनुसंधान की प्रक्रिया में समस्या के चयन, परिकल्पना निर्माण, शोध विधि आदि के निर्धारण के उपरान्त आंकड़ों का व्यावहारिक तरीके से संग्रहण किया जाता है। संग्रह के उपरान्त उन आंकड़ों को इस प्रकार व्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करने की आवश्यकता होती है जिससे उन आंकड़ों का व्यावहारिक अर्थ अनुसंधानकर्ता को समझ में आ सके एवं उन ऑकड़ों से वास्तविक परिणाम तक पहुॅंचा जा सके। प्रस्तुत इकाई में इन्हीं प्रश्नों का उत्तर दिया जा रहा है। इस इकाई में आप आंकड़ा संग्रह की विभिन्न विधियों, आंकड़ों के सारणीकरण, सांख्यिकीय विश्लेषण तथा परिणामों की प्राप्ति की विस्तृत जानकारी प्राप्त करेंगे।

19.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- आंकड़ों के स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- आंकड़ा संग्रह की विभिन्न तकनीकों की उपयोगिता के बारे में जान सकेंगे।
- ऑकड़ों का सारणीकरण कर सकेंगे।
- आंकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण करने की विधि सीख सकेंगे।
- परिणामों की प्राप्ति के तात्पर्य का समझ सकेंगे।

19.3 आंकड़ों का संग्रह

अनुसंधान में आंकड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका एक पर्यायवाची प्रदत्त कहा जाता है। ये प्रदत्त परिकल्पनाओं को जॉचनीय बनाते हैं। प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण से सही परिणामों तक पहॅुचा जाता है। इन प्रदत्तों का संबंध चरों के मापन से होता है। मापन के कई स्तर होते हैं जो कि प्रदत्त के स्वरूप को दर्शाते हैं। कैम्पबेल (1951) के अनुसार 'गुणों या विशेषताओं को संख्याओं के वितरण के रूप में प्रस्तुत करने की क्रिया को मापन कहते हैं।' स्टीवेंस (1951) के अनुसार 'नियमों के अनुसार वस्तुओं या घटनाओं को संख्या प्रदान करना ही मापन है।' आंकड़ों के संग्रहण को भली प्रकार समझने के लिए मापन के स्तरों को जानना अत्यावश्यक है।

मापन के स्तर –

स्टीवेंस के अनुसार मापन के चार प्रमुख स्तर माने गये हैं।

(1) नामित स्केल (nominal scale) – यह मापन का सबसे सरलतम प्रकार है इसे वर्गीकृत मापनी भी कहा जाता है। इसमें संख्या या प्रतीक के रूप में वस्तु, व्यक्ति या गुण की मात्रात्मक वर्गीकरण किया जाता है। जैसे, व्यक्तियों को पुरूष एवं महिला दो वर्गो में वर्गीकृत करना, भारत के लोगों को धर्मों के अनुसार वर्गीकृत करना। खिलाड़ियों की वर्दी पर जो संख्याएॅ अंकित होती हैं वे एक खिलाड़ी को दूसरे खिलाड़ी से अलग करने में प्रतीक का कार्य करती हैं। इस मापन की विशेषता होती है कि इसमें दो समूह के सदस्य आपस में तो कभी भी तुलना योग्य नहीं होते हैं परन्तु किसी एक समूह के सभी सदस्य आपस में तुल्य होते हैं। नामित मापन में पदत्तों का स्वरूप बारंबारता (frequency), प्रतिशत (percentage), अनुपात (proportion), बहुलक (mode) आदि के रूप में होता है।

(2) क्रमिक स्केल (ordinal scale) – यह मापन का दूसरा स्तर है। इस तरह के मापन में व्यक्तियों या वस्तुओं को कोटिक्रम में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे– बौद्धिक योग्यता के आधार पर लोगों को औसत, औसत से नीचे तथा औसत से ऊपर तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है। सामाजिक–आर्थिक स्तर का मापन क्रमिक मापन का उत्तम उदाहरण है। इसमें व्यक्तियों का मापन मूल रूप से सामाजिक–आर्थिक स्तर की तीन श्रेणियों में किया जाता है– उच्च वर्ग, मध्यम वर्ग एवं निम्न वर्ग। यह मापन नामित मापन से बेहतर है, क्योंकि इस मापन में किसी व्यक्ति या वस्तु के पारस्परिक गुणों का मापन संभव होता है जो नामित मापन से संभव नहीं है।

(3) अन्तराल मापन (interval scale)

यह मापन का तीसरा स्तर हैं इस मापन में मापनी के विभिन्न बिन्दुओं का अन्तर आपस में बराबर होता है। यह क्रमिक स्केल से इस रूप में भिन्न है कि क्रमिक स्केल में केवल श्रेणी क्रम महत्वपूर्ण होता है जबकि अन्तराल मापन में श्रेणीक्रम के साथ–साथ गणितीय अन्तर भी महत्वपूर्ण होता है। इस मापन की सबसे प्रमुख विशेषता होती है कि इसमें मापन की इकाई समान एवं स्थिर होती है। इसलिए इसे समान अन्तराल मापन भी कहा जाता है। अन्तराल मापन की एक विशेषता यह भी है कि इसमें वास्तविक शून्य (true zero) बिन्दु नहीं होता है बल्कि एक नामित शून्य (arbitrary zero) बिन्दु होता है।

(4) अनुपात मापन (ratio scale) – यह मापन का उच्चतम मापन है। इस मापन में नामिक, क्रमिक एवं अन्तराल मापन के सभी गुण मौजूद होते हैं तथा साथ ही साथ उसमें एक वास्तविक शून्य बिन्दु भी होता है। इसके कारण किन्हीं दो संख्याओं का अनुपात मापन की इकाई से स्वतंत्र होता है और इसलिए इसे सही ढंग से बराबर कर तुलना की जा सकती है। जैसे, 20 एवं 120 का अनुपात (20/120) 1 और 6 के अनुपात (1/6) के बराबर है।

19.4 आंकड़ो संग्रह विधियॉ

आंकड़ा संग्रह करने की बहुत सी विधियॉ प्रचलित हैं। अध्ययन के उद्देश्य एवं स्वरूप के अनुसार ही आंकड़ा संग्रहण की विधि की चुनाव किया जाता है। प्रचलित विधियॉ जिनका आंकड़ा संग्रह हेतु प्रयोग किया जाता है निम्न हैं–

–प्रेक्षण विधि (observation method)

–साक्षात्कार विधि (interview method)

–केस स्टडी विधि (case study method)

–विषयवस्तु विश्लेषण (content analysis)

–समाजमितिक विधि (Sociometric method)

–क्यू विधान (Q methodology)

इन विधियों का वर्णन निम्नांकित है।

प्रेक्षण विधि (Observation method)–

जिस प्रक्रिया द्वारा घटनाओं या तथ्यों का निरीक्षण या प्रेक्षण किया जाता है उसे निरीक्षण (प्रेक्षण) विधि कहा जाता है। इस विधि का व्यवहार सामाजिक विज्ञानों में आंकड़ा संग्रह हेतु एक शोध–उपकरण के रूप में किया जाता है। इसमें प्रेक्षक अपने शोध उद्देश्य के अनुसार संगत तथ्यों तथा घटनाओं का निरीक्षण करता है और प्राप्त परिणामों के आधार पर संप्रत्ययों के संबंध में अनुमान लगाता है। प्रेक्षण

चार प्रकार की प्रक्रियायें सम्मिलित होती हैं– (1) अवलोकन की प्रक्रिया, (2) अभिलेखन की प्रक्रिया, (3) विश्लेषण की प्रक्रिया, (4) अनुमान प्रक्रिया,।

निरीक्षण विधि द्वारा प्राप्त ऑकड़े तथ्यों, श्रेणियों, कथनों, बारंबारता तथा वर्गों के रूप में होते हैं।

निरीक्षण विधियों के प्रकार–

नियंत्रण के आधार पर निरीक्षण विधियॉ दो प्रकार की होती हैं।

(1) नियंत्रित निरीक्षण (controlled observation)

(2) अनियंत्रित निरीक्षण (uncontrolled observation)

निरीक्षक की भूमिका के आधार पर प्रेक्षण विधि दो प्रकार की होती है।

(1) सहभागी प्रेक्षण (participant observation)

(2) असहभागी प्रेक्षण (non participant observation)

निरीक्षण की व्यवस्था के आधार पर भी यह दो प्रकार की होती है।

(1) वर्ग व्यवस्था विधि (category system method)

(2) कोटि व्यवस्था विधि (rating system method)

साक्षात्कार विधि (Interview method) –

साक्षात्कार एक अनुसंधान–प्रविधि या अनुसंधान उपकरण है। इसके द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में आवश्यक सूचनायें या ऑकड़े प्राप्त किये जाते हैं। अनुसंधान कर्ता अध्ययन में सम्मिलित प्रतिभागियों से कुछ प्रश्न पूछता है और उनके द्वारा दिये गये उत्तरों के आधार पर संगत सूचनायें या ऑकड़े प्राप्त करता है। प्रश्न पूछने वाले को साक्षात्कारकर्ता तथा उत्तर देने वाले को साक्षात्कार देने वाला कहते हैं। समाजशास्त्र, मनोविज्ञान, मानवशास्त्र, शिक्षा आदि में कुछ ऐसे प्रदत्तों या आंकड़ों की आवश्यकता होती है जो व्यक्ति के अपने अनुभव पर आधारित होते हैं तथा जिसे व्यक्ति स्वयं ही वर्णित करता है। ऐसे आंकड़ों के संग्रह के लिए साक्षात्कार विधि का प्रयोग किया जाता है।

साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए करलिंगर (2002) ने कहा है कि 'साक्षात्कार आमने–सामने की वह अन्तर्वैयक्तिक भूमिका परिस्थिति है, जिसमें एक व्यक्ति, साक्षात्कार लेने वाला, साक्षात्कार देने वाले व्यक्ति, उत्तरदाता से शोध–समस्या से संगत उत्तर प्राप्त करने के उ्देश्य से नियोजित प्रश्न पूछता है।'

इस परिभाषा से साक्षात्कार की विधि के संबंध में कई बाते स्पष्ट हो जाती हैं – साक्षात्कार एक अनुसंधान विधि है जिसका उपयोग अनुसंधानकर्ता आंकड़ा संग्रह हेतु एक उपकरण के रूप में करता है। इसका उद्देश्य तथ्यपूर्ण सूचनाऍ प्राप्त करना है। इसमें साक्षात्कार लेने वाले एवं देने वाले के बीच उद्देश्यपूर्ण वार्तालाप होता है।

साक्षात्कार विधि द्वारा प्राप्त ऑकड़ों का स्वरूप, तथ्य, घटना, अनुभव, बारंबारता, स्तर आदि होता है।

केस अध्ययन विधि (case study method) –

केस अध्ययन विधि एक ऐसी विधि है जिसमें किसी सामाजिक इकाई के जीवन की घटनाओं का अन्वेषण एवं विश्लेषण किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में किसी एक व्यक्ति, एक परिवार, एक संस्था, एक समुदाय, घटना, नीति संगठन आदि को लिया जा सकता है।

मौलिक रूप में इस विधि का व्यवहार समाजविज्ञान तथा अर्थविज्ञान के क्षेत्रों में किया गया। लेकिन वर्तमान समय में इसका व्यवहार प्रायः सभी सामाजिक विज्ञानों या व्यवहारपरक विज्ञानों में अनुसंधान प्रविधि एवं आंकड़ा संग्रहण की विधि के रूप में किया जाता है। पी वी यंग (2001) ने केस अध्ययन में इकाई की महत्ता को दृष्टिगत रखते हुए इसे वैयक्तिक अध्ययन माना है। उनके अनुसार 'वैयक्तिक अध्ययन का अर्थ किसी सामाजिक इकाई का विस्तृत अध्ययन है–चाहे वह इकाई एक व्यक्ति हो, एक समूह हो, एक सामाजिक संस्था हो, एक जिला हो अथवा एक समुदाय हो ('A comprehensive study of a social unit-be that unit a person, a group, a social institution, a district, or community-is called a study' - P.V. Young, 2001)। थियोडोरसन एवं थियोडोरसन (1969) के अनुसार 'केस अध्ययन किसी वैयक्तिक केस के गहन विश्लेषण के माध्यम से सामाजिक घटना के अध्ययन की विधि है। केस कोई एक व्यक्ति, एक समूह, एक घटना, एक प्रक्रिया, एक समुदाय, एक समाज या सामाजिक जिंदगी की कोई अन्य इकाई हो सकता है। यह बहुत सारे विशिष्ट विवरण के गहन विश्लेषण करने का अवसर प्रदान करता है। जिसकी अन्य विधियों में उपेक्षा की जाती है।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने पर आंकड़ा संग्रहण विधि के रूप में केस अध्ययन विधि की निम्न विशेषताएँ प्राप्त होती हैं।

(1) वैयक्तिक अध्ययन अनुसंधान की एक प्राचीन विधि या प्रविधि है। इसका उपयोग सबसे पहले समाजविज्ञान तथा अर्थविज्ञान के क्षेत्र में किया गया। आगे चलकर इसका दूसरे सभी सामाजिक विज्ञानों आदि में होने लगा।

(2) इस विधि में सामाजिक इकाई का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक इकाई के रूप में एक व्यक्ति, एक समूह, एक संस्था या एक समुदाय का अध्ययन किया जाता है।

(3) केस अध्ययन विधि की एक महत्वपूर्ण पहलू यह है कि इसमें सामाजिक इकाई के एकात्मक स्वरूप को टूटने नहीं दिया जाता है। इसका मतलब यह हुआ कि अध्ययन किया जाने वाला सामाजिक इकाई को सम्पूर्ण रूप से अध्ययन करने की कोशिश की जाती है।

(4) इस विधि या प्रविधि में सामाजिक इकाई का अध्ययन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में किया जाता है। दूसरे शब्दों में सामाजिक इकाई का अध्ययन विकासात्मक दृष्टिकोण से किया जाता है। इसीलिए इस विधि को केस इतिहास भी कहते हैं।

(5) इस अध्ययन विधि की एक विशेषता यह भी है कि इसमें मनोवैज्ञानिक परीक्षणों, साक्षात्कारों, कोटियों, आदि का व्यवहार करके आवश्यक ऑकड़े प्राप्त किये जाते हैं।

ऑकड़ा प्राप्ति के स्रोत

इस अध्ययन विधि के द्वारा सूचनाओं या ऑकड़े प्राप्त करने के कई स्रोत हैं।

लॉट्टी, 1947 के अनुसार इन स्रोतों को मुख्य रूप से दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

(अ) वैयक्तिक इकाई का इतिहास (history of individual unit)

किसी वैयक्तिक इकाई अथवा सामाजिक इकाई के सम्बंध में सूचना प्राप्त करने का एक स्रोत स्वयं वह इकाई है चाहे वह इकाई व्यक्ति हो, परिवार हो, संस्था हो या और कुछ हो। उदाहरण के लिए मान लिया जाये कि वह इकाई एक व्यक्ति है। ऐसी दशा में इस वर्ग के अन्तर्गत निम्नलिखित सूचनाओं को प्राप्त करने का प्रयास किया जाता है–

1. वर्तमान– उस व्यक्ति के वर्तमान जीवन से संबंधित कई सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं जैसे– शारीरिक स्वास्थ्य, व्यवहार का पैटर्न एवं क्रियात्मक तथा ज्ञानात्मक क्षमताएँ।
2. भूतकाल– उस व्यक्ति के अतीत के जीवन के सम्बन्ध में कई तरह की सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं– जन्म एंव शैशवावस्था, शारीरिक स्वास्थ्य, शिक्षा, अन्य अनुभूतियॉ एवं क्रियाएँ।

(ब) पारिवारिक इतिहास (history of Family)

जिस व्यक्ति का अध्ययन करना होता है, उसके परिवार से संबंधित सूचनाएँ भी प्राप्त की जाती हैं। जैसे–

1. माता–पिता, भाई–बहन, तथा अन्य सदस्य जो घर में निवास करने हैं।
2. दादा–दादी, नाना–नानी तथा एक ही पूर्वज के अन्य सदस्य जो घर में निवास नहीं करते हों।

(स) व्यक्ति संबंध वातावरण (Environment of the individual)–व्यक्ति के जीवन से संबंधित वातावरण के आधार पर भी उसके संबंध में आवश्यक सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं। जैसे– मित्र–मंडली, पड़ोसी, रिश्तदार आदि।

(द) अभिलेख अवलोकन (Review of record)–स्कूल, अस्पताल, जेल, कचहरी, थाना आदि में यदि व्यक्ति के जीवन से संबंधित अभिलेख उपलब्ध होते हैं तो उनके आधार पर भी उसके सम्बंध में आवश्यक सूचनायें प्राप्त की जाती हैं।

इसी तरह समूह, संस्कृति, संस्था या संगठन के अध्ययन से संबंधित विविध स्रोतों का व्यवहार आवश्यकता के अनुसार किया जाता है।

उपरोक्त विधि से प्राप्त ऑकड़ों एवं सूचनाओं की विश्वसनीयता एवं वैधता काफी उच्च होती है। इस विधि का लाभ यह है कि मानव, संस्था अथवा इकाई के प्रत्येक क्रिया व्यवहार एवं नीति के संबंध में सूक्ष्म जानकारी संबंधी ऑकड़े स्वतः ही उपलब्ध होते हैं।

विषय वस्तु विश्लेषण (Content Analysis) – विषय वस्तु विश्लेषण एक शोध प्रविधि है जिसके द्वारा संचार (कम्यूनिकेशन) के घटकों या विषय–वस्तुओं का विश्लेषण करके संचारक (कम्यूनिकेटर) के संबंध में आवश्यक सूचनायें प्राप्त की जा सकती हैं। संचार वाचिक तथा लिखित दोनों हो सकता है। व्यक्ति वाचिक संचार के माध्यम से जिन विचारों को व्यक्त करता है उन्हें अभिलेखित करके उनका विश्लेषण किया जाता है। इसी प्रकार लिखित संचार जैसे–लेख, कहानी, पत्र, ड्रामा, कविता आदि की विषय–वस्तुओं का विश्लेषण किया जाता है। अतः

वाचिक संचार तथा लिखित संचार की विषय–वस्तुओं का विश्लेषण करने से उस व्यक्ति या संचारक के सम्बन्ध में कई तरह की सूचनायें प्राप्त हो जाती हैं। अतएव सूचनाओं को वस्तुगत रूप से प्राप्त करने की यही विधि विषय–वस्तु विश्लेषण कहलाता है।

बेरिलसन (1959) के अनुसार– 'विषय–वस्तु विश्लेषण एक शोध प्रविधि है, जिसके द्वारा संचार की विषय–वस्तु का वस्तुनिष्ठ, व्यवस्थित तथा मात्रात्मक विवरण प्रस्तुत किया जाता है। चैपलिन (1975) ने इसे और भी स्पष्ट रूप में व्यक्त किया है उनके अनुसार–' विषय–वस्तु विश्लेषण वह विधि है जिसके द्वारा निश्चित शब्दों, विचारों या संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति की बारम्बारता के आधार पर प्रलेख या संचार का अध्ययन किया जाता है।

विषय–वस्तु विश्लेषण में ऑकड़ों का स्वरूप एकांशों की बारंबारता के रूप में होता है। संचार या प्रलेख जैसे कहानी, उपन्यास, लेख या नाटक में व्यवहार किये गये विचारों, विश्वासों तथा संवेगों की संख्या को निर्धारित करके उनका परिमाणन किया जाता है।

समाजमितिक विधि (Sociometric method)

शोध हेतु आंकड़े संग्रहित करने हेतु समाजमिति विधि का प्रतिपादन मोरेनो (1934) ने किया। उन्होंने इस विधि किसी समूह में अलग–अलग सदस्यों के पारस्परिक सम्बंधों के अध्ययन के लिए किया। यह एक ऐसी विधि है जिसका व्यवहार मनोविज्ञान, शिक्षा, समाजशास्त्र, समाज मनोविज्ञान से संबंधित विषयों के अनुसंधान में होता है। इस विधि के अन्तर्गत समूह में सदस्यों का एक दूसरे के प्रति स्वीकरण तथा अस्वीकरण के सहारे समूह की संरचना, सामाजिक स्तर, तथा व्यक्तित्व शीलगुणों का अध्ययन किया जाता है। करलिंगर (1986) ने समाजमिति को परिभाषित करते हुए कहा है– 'समाजमिति एक विस्तृत पद है जिसमें समूह में व्यक्तियों की पसंद, संचार एवं अंतःक्रिया पैटर्न से संबंधित ऑकड़ों को इकट्ठा करने एवं विश्लेषण करने की कई विधियॉ सम्मिलित होती हैं (Sociometry is a broad term indicating a number of methods of gathering and analyzing data on the choice, communication and interaction patterns of individuals in groups. -Kerlinger, 1986)। चैपलिन (1975) ने भी समाजमिति को इसी तरह परिभाषित किया है। उनके अनुसार 'समाजमिति वह प्रविधि है, जिसके द्वारा समूह के सदस्यों के बीच आकर्षण तथा अस्वीकार के सम्बन्धों का मानचित्रण किया जाता है (Sociometry or sociometric method is a technique for mapping the relationships of attraction and rejection among members of a group.-Chaplin, 1975)।

समाजमितिक ऑकड़ें विश्लेषण

ऑकड़े या प्रदत्त के विश्लेषण के निम्नलिखित तरीके हैं–

(क) समाजमितिक रेखा चित्र (Sociogram)– समाजमितिक ऑकड़ों के विश्लेषण की एक महत्वपूर्ण एवं लोकप्रिय विधि है। समाजमिति–विधि के द्वारा जो ऑकड़े प्राप्त होते हैं, उन्हें जब रेखा चित्र के रूप में व्यक्त किया जाता है तो इसे

समाजमितिक चित्र कहते हैं। इस चित्र में किसी समूह के सदस्यों के बीच पारस्परिक प्रतिक्रियायें प्रदर्शित होती हैं।

(ख) समाजमितक मैट्रिक्स (Sociometric Matrix) –समाजमितिक मैट्रिक्स में कतारें से संख्या द्वारा अंकित प्रत्येक व्यक्ति की निर्गामी पसन्दों को तथा स्तम्भों से प्रत्येक व्यक्ति की ग्राही पसन्दों को प्रदर्शित किया जाता है।

(ग) समाजमितिक सूचकांक (Sociometric Index)– समाजमितिक ऑकड़ों के विश्लेषण के लिए इस विधि का उपयोग उस अवस्था में किया जाता है, जबकि दो से अधिक संख्याओं के आधार पर ऐसे मान को निकालने की आवश्यकता होती है जो व्यक्तियों या समुदायों की समाजमितिक विशेषताओं को प्रदर्शित करता है।

–क्यू विधान (Q methodology)

क्यू विधान या प्रणाली एक शोध अध्ययन विधि है जिसका व्यवहार सबसे पहले विलियम स्टीफेन्सन (1934) ने मनोवृत्ति, पसन्द आदि के बारे में दिए गए कथनों या अन्य कथनों का विश्लेषण करते हुए अध्ययन करने क लिए किया था। वर्तमान समय में व्यवहारपरक विज्ञानों में इस प्रविधि का व्यवहार व्यापक रूप में होने लगा है। क्यू–प्रणाली को क्यू प्रविधि भी कहा जाता है। चैपलिन (1975) के अनुसार इस प्रविधि में एक व्यक्तित्व प्रश्नावली निर्मित की जाती है जिसमें प्रयोज्य बहुत से कथनों को ऐसे ढेरों में से छॉटता है, जो इंगित करते हैं कि कौन सा ढेर किस मात्रा में उस पर लागू होता है (Q-sort is a personality questionnaire in which the subject sorts a large number of statements into piles which represent the degrees to which he believes the statements apply to him. -Chaplin, 1975)। यह प्रविधि वास्तव में एक व्यक्तित्व प्रश्नावली है। इसमें व्यक्तित्व–शीलगुणों पर आधारित अनेक कथनों को विभिन्न ढेरों में कोटिक्रम करने के लिए प्रयोज्य से कहा जाता है। उसे निर्देश दिया जाता है कि जिस कथन को वह अपने लिए सबसे अधिक अपेक्षित समझता हो उस प्रथम ढेर में तथा जिस कथन को वह सबसे कम अपेक्षित समझता हो उसे अंतिम ढेर में और इसी तरह सभी कथनों को विभिन्न श्रेणियों में रखे। इसी निर्देश के अनुसार वह सभी कथनों का कोटिकरण करके उन्हें विभिन्न श्रेणियों में छॉट देता है।

19.4 सारणीकरण

परिकल्पना की जॉच हेतु ऑकड़ों के संग्रहण के उपरान्त प्राप्त ऑकड़ों का सारणीकरण शोध की महती आवश्यकता होती है। प्राप्त ऑकड़ों को व्यवस्थित कर इस रूप में प्रदर्शित करना कि उनका अर्थ एवं उद्देश्य की अभिव्यक्ति बोधगम्य एवं समझने योग्य हो यही सारणीकरण कहलाता है। ऑकड़ों का सारणीकरण उनके स्वरूप पर निर्भर करता है।

योग विषय में स्वयं में अत्यंत ही गंभीर एवं जटिल है इसमें कई प्रकार के शोध किये जाने की संभावना है। इसका संबंध शरीर एवं मन दोनों से है एवं इसके अलावा मन से परे एवं पार समझी जाने वाली अनुभूतियों से भी है। इस कारण

जहॉ एक ओर शरीर से संबंधित होने पर यह मेडिकल फिजियोलॉजी से जुड़कर विज्ञान का विषय बन जाता है वहीं यह मनोविज्ञान, शिक्षा एवं दर्शन से भी संबंधित होने के कारण इसमें सैद्धान्तिक शोध एवं अनुसंधान किये जाने का मार्ग भी दिखलाई पड़ता है। इस आधार पर कई प्रकार के चरों के सम्मिलित होने के कारण इसमें ऑकड़ों का स्वरूप भी कई प्रकार का मिलता है।

ऑकड़ों का स्वरूप उनके मापन के तरीकों पर निर्भर करता है इस संदर्भ में प्रस्तुत इकाई के प्रारम्भ में मापन के कई स्तरों जैसे कि नामात्मक स्केल, क्रमात्मक स्केल, अन्तरालात्मक स्केल एवं अनुपातात्मक स्केल का वर्णन किया गया है। मापन के स्तर के आधार पर ऑकड़ों का अर्थ समझा जाता है एवं उनका व्यवस्थापन किया जाता है।

ऑकड़ों के व्यवस्थापन का अर्थ – व्यवस्थापन वह पद्धति है जिसके अनुसार प्राप्त ऑकड़ों को सजातीय गुणों के आधार पर विभिन्न वर्गों में सारणीबद्ध इस विधि से किया जाता है, जिससे उनका रूप अधिक सरल, बोधगम्य, तुलनात्मक, सम्बन्धात्मक व विवेचनात्मक बन सके।

व्यवस्थापन के प्रायः निम्नलिखित उद्देश्य होते हैं–

(1) विशाल ऑकड़ों की विभिन्नताओं (Variations) के जटिल रूप को सरल व बोधगम्य बनाना।

(2) ऑकड़ों में व्याप्त सजातीय (Homogeneous) गुणों को स्पष्ट करना।

(3) ऑकड़ों का क्रमबद्ध व्यवस्था प्रदान करना।

(4) दो चरों के तथ्यों में तुलनात्मक अध्ययन की सुविधा प्रदान करना।

(5) यदि दो चरों के सम्बंध में ऑकड़ों का संकलन सह–संबंध हेतु किया गया है, तब उनका प्रस्तुतीकरण उसी सम्बन्ध को ध्यान में रखकर करना।

(6) पारस्परिक रूप से अलग–अलग श्रेणियों में विभाजन।

(7) ऑकड़ों के विस्तार को न्यूनतम स्थान में स्पष्ट करना।

व्यवस्थापन के लिए संकलित ऑकड़ों को निम्नलिखित स्वरूप देना पड़ता है–

(क) वर्गीकरण (Classification) (ख) सारणीयन (Tabulation)

(ग) आलेखी निरूपण (Graphical Representation)

सारणीयन में ऑकड़ों को स्तम्भों (Columns) तथा पंक्तियों (Rows) में इस आधार पर व्यवस्थित किया जाता है कि ऑकड़ों के स्वरूप को समझने, तुलना करने तथा विवेचना आदि में पर्याप्त सुविधा मिल सके। आवश्यकता पड़ने पर विस्तृत ऑकड़ों को प्रतिशत में भी व्यक्त करना पड़ता है, संक्षेप में सारणीयन में निम्नलिखित विशेषताएँ होती हैं–

1. शीर्षक द्वारा प्रस्तुत किये गये ऑकड़ों के उद्देश्य को स्पष्ट करना।
2. न्यून स्थान में समस्त ऑकड़ों को प्रस्तुत करना।
3. ऑकड़ों को सरलतापूर्वक समझने योग्य बनाना।
4. ऑकड़ों के विभिन्न अंगों में सम्बन्ध स्पष्ट करना।

5. ऑकड़ों को तुलनात्मक रूप प्रदान करना।
6. ऑकड़ों को आवश्यकता पड़ने पर प्रतिशत आदि में सुविधा के लिए व्यक्त करना।
7. ऑकड़ों को विश्लेषण योग्य स्थिति में प्रस्तुत करना।
8. ऑकड़ों का प्रदर्शन सुन्दर व आकर्षण ढंग से करना।

सारणीयन के विभिन्न चरण

(1) अध्ययन तथा शोध सम्बन्धी सभी सारणियों को क्रमबद्ध रूप से लिखना होता है।

(2) क्रमबद्ध संख्या के ठीक नीचे सारणी के उद्देश्य को स्पष्ट, सरल, सक्षिप्त व सुन्दर भाषा में व्यक्त करना होता है। आवश्यकता के अनुसार स्तम्भों, व पंक्तियों के भी उप–शीर्षक दिये जाते हैं।

(3) प्रायः ऑकड़ों को सम्बन्धित स्तम्भों व पंक्तियों में प्रदर्शित किया जाता है।

(4) ऑकडों के स्वरूप की ठीक–ठीक व्याख्या करने के लिए सारणी के नीचे कुछ टिप्पणियॉ भी देना आवश्यक होता है जिनसे ऑकड़ों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी मिलती हो।

नीचे सारणी का एक सरल उदाहरण दिया गया है जिसमें हाइस्कूल के छात्रों (लड़के व लड़कियों) के योग विषय में अंक तुलनात्मक नजरिये से दिये गये हैं।

तालिका 5

हाईस्कूल के छात्रों के लिंग–भेद के आधार पर योग विषय में अंक वितरण

अंक वितरण वर्गान्तर में	लड़कों की संख्या	लड़कियों की संख्या
80–89	17	14
70–79	22	27
60–69	31	38
50–59	29	40
40–49	72	82
30–39	69	59
20–29	37	26
10–19	23	14
योग	300	300

उपरोक्त सारणी के अवलोकन से हाईस्कूल के छात्रों का लिंग–भेद के आधार पर सरलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। अधिक स्पष्टता के लिए तथा विश्लेषण के दृष्टिकोण से मूल ऑकड़ों को प्रतिशत में भी परिवर्तित किया जा सकता है।

19.5 सांख्यिकीय विश्लेषण

परिकल्पना की जॉच हेतु सम्बन्धित ऑकड़ों के संग्रहण एवं उन ऑकड़ों के व्यवस्थापन तथा सारणीयन के उपरान्त उन ऑकड़ों के सांख्यिकीय विश्लेषण की आवश्यकता होती है। ऑकड़ों के संग्रह एवं सारणीयन से शोध समस्या के प्रश्नों के सभी समीचीन उत्तर प्राप्त नहीं हो पाते हैं अतः उन ऑकड़ों पर सांख्यिकीय विधियों का प्रयोग किया जाता है, जिनसे ऑकड़ों का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि कोई शोधकर्ता ध्यान अभ्यास का एकाग्रता पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है एवं वह उसके लिए शून्य परिकल्पना (ध्यान अभ्यास से प्रयोज्यों के एकाग्रता स्तर में कोई सार्थक अन्तर नहीं आता है।) विनिर्मित करता है तो इस परिकल्पना की जॉच हेतु उसे एकाग्रता के स्तर का दो बार मापन करना होगा। एक बार ध्यान अभ्यास से पूर्व एवं एक बार उसके पश्चात्। एकाग्रता के दो बार मापन से प्राप्त ऑकड़ों का वह व्यवस्थापन एवं सारणीकरण करेगा। परन्तु दोनों बार के ऑकड़ों के बीच जो अन्तर है उसका सामूहिक रूप से क्या अर्थ है एवं प्रयोज्यों के पूरे समूह की क्या प्रवृत्ति है इसे जानने के लिए विशेष विधि की आवश्यकता पड़ेगी। क्योंकि समूह में प्रयोज्यों की एकाग्रता पर ध्यान का प्रभाव उनकी शारीरिक एवं मानसिक अवस्था के अनुसार अलग–अलग पड़ेगा। समूह में कुछ प्रयोज्य ऐसे हो सकते हैं जिनकी काफी अधिक बढ़ गई हो, वहीं कुछ प्रयोज्य ऐसे हो सकते हैं जिनकी एकाग्रता बहुत थोड़ी ही बढ़ी हो, कुछ ऐसे हो सकते हैं जिनकी एकाग्रता में कोई परिवर्तन नहीं आया हो। एवं कुछ प्रयोज्य ऐसे हो सकते हैं जिनके एकाग्रता के स्तर में कतिपय अन्य कारणों से कमी आ गयी है। ऐसी स्थिति में ध्यान का प्रभाव बिल्कुल नहीं पड़ा ऐसा कहना वैज्ञानिक दृष्टि से गलत होगा। इस स्थिति में समूह की एकाग्रता की प्रवृत्ति के केन्द्रीय प्रवृत्ति को देखना होगा दूसरे शब्दों में कहें तो मापन करना होगा। इस हेतु मध्यमान (Mean), मध्यांक (Median) एवं बहुलक (Mode) का मापन करना होगा। मध्यमान, मध्यांक एवं बहुलक किसी भी समूह की केन्द्रीय प्रवृत्ति को बतलाते हैं। उसी प्रकार पूरे समूह में प्राप्तांको का मानक विचलन भी ज्ञात करना आवश्यक होगा। क्योंकि इससे प्राप्तांकों के मध्यमान विचलतन की मानक स्थिति का ज्ञान हो जाता है एवं प्रयुक्त किये गये अंतःक्षेप (जैसे–ध्यान) के प्रभाव के संबंध में एक अनुमानात्मक कल्पना की जा सकती है। इसे ही सांख्यिकी कहते हैं। केन्द्रीय प्रवृत्ति एवं विचलन के मापन के उपरान्त प्राप्त अन्तर की सार्थकता की जॉच हेतु उपयुक्त सांख्यिकी विधियों जैसे कि टी–परीक्षण अथवा काई–स्क्वायर टेस्ट आदि के प्रयोग की जरूरत पड़ती है। इन परीक्षणों के प्रयोग से प्राप्त ऑकड़ो की सांख्यिकीय विवेचना एवं विश्लेषण आसानी से हो जाता है। उदाहरण के लिए उपरोक्त उदाहरण में प्रयुक्त शून्य परिकल्पना के स्वीकरण

अथवा निरस्तीकरण का रास्ता साफ हो जाता है। यदि शून्य परिकल्पना निरस्त होती है तो इससे यह सिद्ध हो जाता है कि दो दशाओं में मापन द्वारा प्राप्त एकाग्रता के स्तरों के बीच प्राप्त अंतर सार्थक है एवं महत्वपूर्ण है एवं यह अन्तर किसी क्षमतावान अंतःक्षेप का परिणाम है चूँकि उपरोक्त उदाहरण में अंतःक्षेप के रूप में ध्यान का प्रयोग किया गया है अतएव ध्यान की प्रभावशीलता सिद्ध होती है। वहीं यदि शून्य परिकल्पना स्वीकार की जाती है तो इससे यह अर्थ निकलता है कि प्राप्त अंतर सार्थक नहीं हैं ये अन्तर संयोग का परिणाम हैं अतएवं महत्वपूर्ण नहीं माने जा सकते हैं। इससे ध्यान की प्रभावशीलता पर प्रश्नचिह्न खड़ा होता है।

संक्षेप में कहें तो सांख्यिकीय विश्लेषण के माध्यम से प्राप्त ऑकड़ों के स्वरूप को व्यवस्थित एवं तार्किक प्रक्रिया द्वारा समझा जाता है एवं परिणामों की दिशा एवं दशा के संबंध में अनुमान लगाया जाता है ताकि उनकी व्याख्या एवं विवेचना सुचारू रूप से एवं सम्यक प्रकार से की जा सके।

19.6 परिणामों की प्राप्ति

सांख्यिकीय विश्लेषण के उपरान्त ऑकड़े प्राप्त परिणामों की दिशा एवं दशा का बयान कर देते हैं। इन परिणामों की प्राप्ति प्रयुक्त परिकल्पना के स्वीकरण एवं निरस्तीकरण के रूप में होती है। उपरोक्त उदाहरण में इसकी चर्चा की गयी है। उपरोक्त उदाहरण में वर्णित परिणामों को ही लें जिसमें माना कि शून्य परिकल्पना निरस्त हो जाती है जिससे प्राप्त अंतर की सार्थकता सिद्ध हो जाती है। परन्तु इससे भी ध्यान के अभ्यास से एकाग्रता पर कैसे प्रभाव पड़ा इस संबंध मे कोई बात पता नहीं चलती। अतएव ध्यान एवं एकाग्रता के बीच की कड़ी जिसे कि वैज्ञानिक भाषा में मेकेनिज्म कहा जाता है कि व्याख्या की आवश्यकता पड़ती है। यह व्याख्या चरों के स्वरूप के आधार पर कई तरीकों से की जा सकती है। जैसे कि उपरोक्त उदाहरण को ही लें।

उपरोक्त उदाहरण में दो चरों का प्रयोग किया गया है। ध्यान एवं एकाग्रता का जिस प्रयोज्य ने ध्यान किया है एवं जिसमें ध्यान एवं एकाग्रता की घटना घटी है वह एक मनुष्य है मनुष्य शरीर मात्र नहीं है उसमें मन योग की भाषा में कहें तो चित्त विद्यमान है। अतएव यहॉ पर ध्यान एवं एकाग्रता एवं व्यक्ति को दृष्टिगत रखते हुए प्राप्त परिणाम की व्याख्या कई तरीकों से की जा सकती है।

1. फिजियोलॉजिकल दृष्टि से विवेचन– फिजियोलॉजी के अन्तर्गत शरीर के अंगों के आन्तरिक कियाकलाप आ जाते हैं। ध्यान की अवस्था में अथवा ध्यान करने के दौरान मनुष्य शरीर में कई प्रकार की हलचलें एवं कियाकलाप घटते हैं मस्तिष्क में मस्तिष्कीय तरंगें प्रवाहित होती हैं । जैसे कि अल्फा, बीटा, थीटा, डेल्टा आदि। ध्यान की अवस्था में कौन सी तरंग प्रवाहित होती है यदि शोधकर्ता को इसका ज्ञान हो अथवा वह यह पता लगा ले तो इस दृष्टि से वह प्राप्त परिणामों का विवेचन कर सकता है। ध्यान की अवस्था में अल्फा तरंगें प्रवाहित होती हैं। जब ध्यान टूटता है तो बीटा तरंगें प्रवाहित होने लगती

हैं। इन तरंगों की कम ज्यादा होने की अवस्था द्वारा एकाग्रता की व्याख्या संभव है।

2. मनोवैज्ञानिक दृष्टि से व्याख्या– व्यक्ति विचार करता है उसमें मन है, वह व्यवहार करता है इससे उसके मनुष्य होने की पुष्टि होती है। एकाग्रता को एक मनोवैज्ञानिक संप्रत्यय माना जा सकता है। एकाग्रता बढ़ने अथवा घटने की मानवीय व्यवहार पर अलग–अलग प्रभाव होते हैं। एकाग्रता बढ़ने पर समस्या को समझने एवं समाधान सुझाने की कुशलता बढ़ जाती है वहीं घटने पर विपरीत परिणाम प्राप्त होते हैं। एकाग्र वही हो सकता है जो शरीर से स्थिर एवं मन से शांत हो। इसके माध्यम से भी ध्यान एवं एकाग्रता के बीच की कड़ी का जोड़ा जा सकता है।
3. योगदर्शन की दृष्टि से व्याख्या– ध्यान योग का विषय है एवं उसकी एक क्रिया विधि है अतएव योगदर्शन की दृष्टि से भी इस पर विचार किया जा सकता है। ध्यान चित्त का विषय है। जब ध्याता, ध्यान एवं ध्येय तीनों की एक ही वृत्ति धारणा विषय पर निरंतर प्रवाहित होती है तो उसे ध्यान कहते हैं। योग में चित्त वृत्तियों एवं पंचक्लेशों की दृष्टि से विचार कर एकाग्रता एवं ध्यान के बीच संबंध की व्याख्या की जा सकती है।

उपरोक्त उदाहरण के वर्णन से स्पष्ट है कि परिणामों का विवेचन कई प्रकार से किया जा सकता है बस आवश्यकता है समुचित ज्ञान की एवं सूचनाओं के एकत्रीकरण कर उनके संसाधन करने की।

19.7 सार संक्षेप

अनुसंधान में आंकड़े महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। इनका एक पर्यायवाची प्रदत्त कहा जाता है। ये प्रदत्त परिकल्पनाओं को जॉचनीय बनाते हैं। प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण से सही परिणामों तक पहुॅचा जाता है। आंकड़ा संग्रह करने की बहुत सी विधियॉ प्रचलित हैं। अध्ययन के उद्देश्य एवं स्वरूप के अनुसार ही आंकड़ा संग्रहण की विधि की चुनाव किया जाता है। प्रचलित विधियॉ जिनका आंकड़ा संग्रह हेतु प्रयोग किया जाता है निम्न हैं– प्रेक्षण विधि (observation method), साक्षात्कार विधि (interview method), केस स्टडी विधि (case study method), विषयवस्तु विश्लेषण (content analysis), समाजमितिक विधि (Sociometric method), क्यू विधान (Q methodology)।

परिकल्पना की जॉच हेतु ऑकड़ों के संग्रहण के उपरान्त प्राप्त ऑकड़ों का सारणीकरण शोध की महती आवश्यकता होती है। प्राप्त ऑकड़ों को व्यवस्थित कर इस रूप में प्रदर्शित करना कि उनका अर्थ एवं उद्देश्य की अभिव्यक्ति बोधगम्य एवं समझने योग्य हो यही सारणीकरण कहलाता है। ऑकड़ों का सारणीकरण उनके स्वरूप पर निर्भर करता है। सांख्यिकीय विश्लेषण के उपरान्त ऑकड़े प्राप्त परिणामों की दिशा एवं दशा का बयान कर देते हैं। इन परिणामों की प्राप्ति प्रयुक्त परिकल्पना के स्वीकरण एवं निरस्तीकरण के रूप में होती है।

19.8 शब्दावली

पारिभाषिक ऑकड़ा – इनका एक पर्यायवाची प्रदत्त कहा जाता है। ये प्रदत्त परिकल्पनाओं को जॉचनीय बनाते हैं। प्राप्त प्रदत्तों के विश्लेषण से सही परिणामों तक पहुॅचा जाता है। इन प्रदत्तों का संबंध चरों के मापन से होता है।

मापन – गुणों या विशेषताओं को संख्याओं के वितरण के रूप में प्रस्तुत करने की क्रिया को मापन कहते हैं।

सारणीकरण – सारणीयन में ऑकड़ों को स्तम्भों (Columns) तथा पंक्तियों (Rows) में इस आधार पर व्यवस्थित किया जाता है कि ऑकड़ों के स्वरूप को समझने, तुलना करने तथा विवेचना आदि में पर्याप्त सुविधा मिल सके।

सांख्यिकीय विश्लेषण – प्राप्त परिणामों का सांख्यिकीय परिकलन के माध्यम से व्याख्या करना सांख्यिकीय विश्लेषण कहलाता है।

19.9 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
2. मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।
3. हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

19.10 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1. प्रदत्त का अर्थ स्पष्ट कीजिए। प्रदत्त के मापन के विभिन्न स्तरों की सोदाहरण व्याख्या कीजिए।

प्रश्न 2. प्रदत्त संग्रहण की विभिन्न विधियों का विस्तृत वर्णन कीजिए।

प्रश्न 3. सारणीकरण किसे कहते हैं? सारणीकरण की विशेषताओं का वर्णन करते हुए उपयुक्त उदाहरण के द्वारा इसे स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4. सांख्यिकीय विश्लेषण से आप क्या समझते हैं? उपयुक्त उदाहरण द्वारा इसे स्पष्ट करें।

प्रश्न 5. परिणामों की विवेचना से क्या तात्पर्य है? किसी शोध परिणाम की विवेचना का उदारण दें।

इकाई–20 शोध कार्य के निष्कर्ष, शैक्षिक निहितार्थ, सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची, परिशिष्ट

20.1 प्रस्तावना

20.2 उद्देश्य

20.3 शोध कार्य के निष्कर्ष का स्वरूप

20.4 शोध कार्य के निष्कर्ष में सम्मिलित किए जाने वाले प्रमुख बिन्दु

20.5 अनुसंधान कार्य के शैक्षिक निहितार्थ

20.6 सन्दर्भ एवं संदर्भ ग्रन्थ का सूची निर्माण

20.7 परिशिष्ट – आवश्यकता एवं महत्व

20.8सारांश

20.9 शब्दावली

20.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

20.11 निबंधात्मक प्रश्न

20.1 प्रस्तावना

अनुसंधान किसी समस्या के समाधान का सुव्यवस्थित एवं वैज्ञानिक ढंग से की जाने वाली प्रक्रिया को का नाम है। जिसमें समस्या का स्पष्टीकरण, शोध का उ्देश्य, चरों का निर्धारण, परिकल्पना निर्माण, साहित्यिक सर्वेक्षण के उपरान्त शोध विधि के अन्तर्गत शोध अभिकल्प की रूप रेखा, ऑकड़ों का संग्रहण एवं उनका सांख्यिकीय अथवा अन्य विश्लेषण किया जाता है। इसके उपरान्त प्राप्त परिणामों का विवेचन एवं व्याख्या की जाती है। इस पूरी श्रमसाध्य प्रक्रिया से गुजरने के उपरान्त किये गये अनुसंधान का फल प्राप्त होता है। वैज्ञानिकों ने इस फल को ही निष्कर्ष की संज्ञा दी है। निष्कर्ष के साथ ही किये गए अनुसंधान के कुछ व्यावहारिक एवं शैक्षिक योगदान होते हैं जिन्हें निहितार्थ कहा जाता है। इसके उपरान्त संदर्भ ग्रंथ सूची, संदर्भ प्रस्तुतीकरण एवं परिशिष्ट संयोजन आते हैं जिनसे शोध रिपोर्ट अपनी पूर्णता को प्राप्त करती है। प्रस्तुत इकाई में आप अनुसंधान के इसी निष्कर्ष, शैक्षिक निहितार्थ, संदर्भ सूची निर्माण एवं परिशिष्ट की आवश्यकता एवं महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।

20.2 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- निष्कर्ष के अर्थ, एवं स्वरूप से परिचित हो सकेंगे।
- निष्कर्ष लेखन के तरीकों के बारे में जान सकेंगे।
- अनुसंधान कार्य के शैक्षिक निहितार्थ एवं विशेषताओं को समझ सकेंगे।
- संदर्भ ग्रंथ सूची निर्माण करना सीख सकेंगे।
- परिशिष्ट क्या है? इसकी आवश्यकता एवं महत्व को जानेंगे।

20.3 शोध कार्य के निष्कर्ष का स्वरूप

शोध कार्य का निष्कर्ष लेखन अति महत्वपूर्ण पड़ाव है। यह वह सोपान है जहॉ पहुॅचने पर अनुसंधान की समस्या संबंधित जिज्ञासाओं का उत्तर प्राप्त हो गया होता है। इस पड़ाव पर पहुॅचने से पूर्व अनुसंधान कर्ता को प्राप्त परिणामों की व्याख्या एवं विवेचना के महत्वूपर्ण पड़ाव को पार करना होता है। शोध निष्कर्ष इसी पर आधारित होता है। परिणामों की जैसी व्याख्या एवं विवेचन शोधकर्ता द्वारा किया गया होता है निष्कर्ष उसी के आलोक में तैयार किया जाता है। यह दूध बिलो कर निकाले गये मक्खन के समान है। यहॉ दूध बिलोना शब्द का प्रयोग अनुसंधान में निष्कर्ष के पड़ाव से पूर्व प्रयोग की गयी प्रक्रियाओं के संदर्भ में किया गया है, तथा मक्खन निष्कर्ष का प्रतीक है।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोध कर्ता आठवीं कक्षा के विद्य़ार्थियों की स्मृति क्षमता पर ध्यानाभ्यास के प्रभाव का अध्ययन करना चाहता है। अनुसंधानकर्ता की जिज्ञासा है कि क्या एक माह तक प्रातः काल निरंतर आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा किये जाने वाले ध्यानाभ्यास से उनकी स्मृति क्षमता में कोई अन्तर आता है? इस समस्या के निवारण हेतु कोई परिकल्पना निर्मित कर उसकी जॉच कर सकता है। मान लीजिए वह शून्य परिकल्पना विनिर्मित करता है कि – 'आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों द्वारा एक माह तक प्रातः काल किये जाने वाले ध्यानाभ्यास से स्मृति क्षमता में कोई सार्थक अन्तर नहीं आता है।' इस परिकल्पना की जॉच हेतु उसे एक निश्चित शोध विधि को अपनाना होगा। मान लीजिए वह शोध अभिकल्प के रूप में 'एकल समूह प्री–पोस्ट डिजाइन' का प्रयोग करता है। तथा कुल 30 विद्यार्थियों को अपने शोध में प्रतिदर्श के रूप में सम्मिलित करता है। तो अब उसे उन 30 विद्यार्थियों की स्मृति क्षमता का पूर्व परीक्षण कर मापन करना होगा एवं उसके पश्चात विद्यार्थियों को ध्यानाभ्यास करवाना होगा। एक माह तक प्रातः काल ध्यानाभ्यास करवाने के पश्चात् उसे पुनः उन विद्यार्थियों की स्मृति क्षमता का मापन करना होगा। इस प्रकार शोध कर्ता के पास उन विद्यार्थियों की स्मृति क्षमता से संबंधित ऑकड़ों के दो सेट उपलब्ध होंगे। इन दो सेट ऑकड़ों में कितनी भिन्नता है? क्या यह अन्तर सार्थक है? इन सभी प्रश्नों का उत्तर जानने के लिए उसे उपयुक्त सांख्यिकी का प्रयोग करना होगा। मान लिया जाये कि अनुसंधानकर्ता सांख्यिकी की टी–परीक्षण विधि का प्रयोग कर यह परिणाम प्राप्त करता है कि प्रयुक्त परिकल्पना सार्थकता के 0.5 प्रतिशत स्तर पर निरस्त हो गयी है। जिसका तात्पर्य यह है स्मृति क्षमता के दोनों सेट प्राप्तांकों में सार्थक अन्तर है और यह अन्तर ध्यानाभ्यास के परिणाम स्वरूप है, एवं यह अन्तर यह दर्शाता है कि ध्यानाभ्यास के परिणाम स्वरूप विद्यार्थियों की स्मृति क्षमता में सार्थक रूप से बढ़ोत्तरी होती है।

इस प्रकार का परिणाम प्राप्त करने के उपरान्त शोधकर्ता को इन परिणामों की व्याख्या कर एक निष्कर्ष पर पहुॅंचना होता है। यह निष्कर्ष कुछ इस प्रकार का होगा–

''प्रस्तुत शोध अध्ययन के आधार पर यह कहा जा सकता है कि एक माह तक प्रातः काल निरंतर 20 मिनट तक ध्यान का अभ्यास करने से आठवीं कक्षा के विद्यार्थियों की स्मृति क्षमता में सार्थक रूप से बढ़ोत्तरी होती है। यह परिणाम आठवीं कक्षा के उन विद्यार्थियों पर लागू होते हैं जो 12 से 14 वर्ष के उम्र प्रसार में आते हैं। इसके अलावा यह परिणाम वयस्कों एवं बूढ़ों पर लागू होने के संदर्भ में यह शोध कुछ नहीं कहता है।''

उपरोक्त निष्कर्ष में निष्कर्ष लेखन की कई विशेषताएँ समाहित हैं ये निम्न हैं–

1.निष्कर्ष में अप्रासंगिक शब्दों एवं तथ्यों का प्रयोग नहीं किया गया है। जैसे कभी–कभी जब शोधकर्ता को अनुसंधान अथवा अनुसंधान के रिपोर्ट लेखन का ज्यादा अनुभव नहीं होता है तो उसके द्वारा कुछ अतिरिक्त अवॉछित शब्दों अथवा तथ्यों का समावेश निष्कर्ष में हो जाता है। उदाहरण के लिए यदि शोध कर्ता निष्कर्ष में किसी अन्य शोधकर्ता के द्वारा पूर्व में किये गये शोध के परिणाम की विवेचना करने लगे एवं उसके शोध सम्बंधित तथ्यों को समावेशित करने लगे तो यह अप्रासंगिक विवरण एवं तथ्य प्रयोग का उदाहरण होगा।

2. प्रस्तुत निष्कर्ष में अनुसंधान परिणामों के सामान्यीकरण के दायरे का सम्मान किया गया है।– सामान्यीकरण से तात्पर्य शोध परिणामों के विस्तृत जनसंख्या पर लागू किये जाने से होता है। शोधकर्ता अनुसंधान इस उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए करता है कि शोध से प्राप्त परिणाम अधिक से अधिक परिभाषित जनसंख्या के लिए सत्य हों। क्योंकि प्राप्त परिणाम जितनी विस्तृत सीमा तक परिभाषित जनसंख्या पर लागू होंगे उतना ही उस शोध की उपयोगिता बढ़ी–चढ़ी होती है। उपरोक्त निष्कर्ष में शोध के परिणाम केवल आठवीं कक्षा के उन विद्यार्थियों पर ही लागू होते हैं जो कि 12 से 14 वर्ष के उम्र प्रसार के अन्तर्गत आते हैं एवं जिन्होंने एक माह तक नियमित प्रतिदिन प्रातःकाल 20 मिनट तक ध्यान का अभ्यास किया है। यह परिणाम उन विद्यार्थियों पर लागू नहीं होंगे जिनका उम्र प्रसार 12 से 14 वर्ष के दायरे में नहीं होगा, अथवा जो 20 मिनट से कम समय तक ध्यान का अभ्यास करेंगे अथवा एक माह से कम समय तक अभ्यास करेंगे जैसे कि 15 दिन या 25 दिन तक।

3.प्रस्तुत शोध में किस जनसंख्या पर यह परिणाम लागू नहीं होंगे अथवा किस जनसंख्या के बारें में शोधकर्ता कुछ भी कहने में स्पष्ट नहीं है उनका भी उल्लेख किया गया है जैसे कि निष्कर्ष में स्पष्ट उल्लेख है कि 'प्राप्त परिणाम के वयस्कों एवं बूढ़ों पर लागू होने के संदर्भ में यह शोध कुछ नहीं कहता है'।

निष्कर्ष का स्वरूप शोध अध्ययन के प्रकार एवं उसमें प्रयुक्त की गयी परिकल्पनाओं के आधार पर भिन्न–भिन्न होता है। यदि शोध का स्वरूप प्रायोगिक है तो निष्कर्ष का स्वरूप उपरोक्त उदाहरण में लिखित निष्कर्ष के सदृश होगा। यदि शोध का स्वरूप सैद्धान्तिक होगा तो उसमें विभिन्न संप्रत्ययों एवं चरों के बीच प्राप्त संबंध की व्याख्या से प्राप्त सार का वर्णन होगा।

20.4 शोध कार्य के निष्कर्ष में सम्मिलित किए जाने वाले प्रमुख बिन्दु

1. निष्कर्ष में शोध या अनुसंधान के दौरान प्रयुक्त दशाओं का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
2. शोध में प्रयुक्त जनसंख्या के परिभाषित स्वरूप का वर्णन उसमें होना चाहिए।
3. शोध परिणामों के सामान्यीकरण का विवरण होना चाहिए।
4. शोध परिणाम का स्पष्ट शब्दों एवं वाक्यों में उल्लेख होना चाहिए।
5. अप्रासंगिक शब्दों एवं तथ्यों का प्रयोग निष्कर्ष में नहीं किया जाना चाहिए।
6. निष्कर्ष कम से कम शब्दों में एवं व्यवस्थित तथा कसा हुआ होना चाहिए।
7. निष्कर्ष में शोध से संबंधित सभी परिकल्पनाओं के परिणामों के संबंध में होना चाहिए।
8. निष्कर्ष शोध उद्देश्य के अनुरूप होना चाहिए।
9. निष्कर्ष में सुझावों का उल्लेख करने से बचना चाहिए। इसके लिए शोधकर्ता को अन्य अध्याय का प्रयोग करना चाहिए।
10. निष्कर्ष की भाषा स्पष्ट एवं संक्षिप्त होनी चाहिए।

    उपरोक्त बिन्दुओं का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि निष्कर्ष लेखन एक गंभीर एवं महत्वपूर्ण कार्य है। शोध प्रतिवेदन में केवल इसके अध्ययन से ही शोध के महत्व एवं योगदान के संदर्भ में उचित जानकारी प्राप्त हो जाती है।

20.5 अनुसंधान कार्य के शैक्षिक निहितार्थ

अनुसंधान कार्य का निष्कर्ष प्रस्तुत कर देने के पश्चात् भी अनुसंधान कर्ता के सम्मुख एक महत्वपूर्ण कार्य शेष रह जाता है वह है अनुसंधान से प्राप्त परिणामों के शैक्षिक निहितार्थ प्रस्तुत करना। शैक्षिक निहितार्थ से तात्पर्य अनुसंधानकर्ता द्वारा किए गए कार्य एवं उसके परिणामों के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान से है। अनुसंधान किसी भी प्रकार का किया गया हो मानव की उन्नति एवं विकास में उसके योगदान एवं औचित्य का स्पष्टीकरण आवश्यक है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है एवं वह सोचने की क्षमता रखता है। अर्थात् मनुष्य ही वह प्राणी है जिसके मन में जिज्ञासायें जन्म लेती हैं एवं वह उन जिज्ञासाओं का समाधान पाने हेतु क्रियाशील रहता है, मनुष्य का विकास उसका मानसिक एवं भावनात्मक विकास समाहित है। यह विकास उसके द्वारा खोजे जा रहे सिद्धान्तों एवं प्रकृति के रहस्य के उद्घाटन मे समाहित है।

प्रकृति के रहस्य से तात्पर्य प्रकृति मे विकास एवं संहार से संबंधित नियमों की जानकारी से है। अनुसंधान के माध्यम से मानव व्यक्तित्व एवं प्रकृति के मध्य संचालित हो रहे नियमों का पता लगाया जाता है। इनका संबंध मनुष्य के मानसिक एवं शारीरिक उत्कर्ष से रहता है। मानसिक विकास का अंदाजा इसी बात से लगाया जाता है कि अनुसंधानकर्ता प्रकृति एवं मनुष्य के व्यक्तित्व में घट रही प्रत्येक घटना के पीछे छिपे कारणों एवं प्रक्रियाओं की व्याख्या हेतु नित नये संप्रत्ययों की रचना करता है सिद्धान्तों का प्रतिपादन करता। नियमों को सिद्ध करता है। ये संप्रत्यय रचना, सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं नियमों की खोज किसी न किसी रूप में शिक्षा जगत से संबंधित हैं क्योंकि शिक्षा ही उस व्यवस्था

का नाम है जिसके माध्यम से आधुनिक समाज पुराने ज्ञान का उपयोग एवं नये ज्ञान की खोज करना सीखता है।

शैक्षिक निहितार्थ लेखन के प्रमुख बिन्दु–

1. शैक्षिक निहितार्थ में परिणामों के महत्व एवं मानव सभ्यता, समाज एवं संस्कृति में उसके स्पष्ट योगदान का उल्लेख होना चाहिए।
2. शैक्षिक निहितार्थ में अनुसंधान से प्राप्त निष्कर्ष का संबंध किस विषय क्षेत्र से है एवं उस विषय क्षेत्र में इसके समावेश से क्या हानि एवं लाभ हो सकता है इसका स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए।
3. शैक्षिक निहितार्थ का वर्णन सरल एवं बोधगम्य एवं स्पष्ट भाषा में होना चाहिए।
4. शैक्षिक निहितार्थ के माध्यम से अध्ययन का औचित्य भी स्पष्ट होना चाहिए।
5. शैक्षिक निहितार्थ मे समाज के लाभान्वित एवं अलाभान्वित समूह का भी जिक्र होना चाहिए।

20.6 सन्दर्भ एवं संदर्भ ग्रन्थ का सूची निर्माण

सन्दर्भ एवं संदर्भ ग्रन्थ सूची दोनों का ही अलग–अलग स्वरूप है। अनुसंधान में दोनों का ही उपयोग होता है। दोनों का ही अपना अलग– अलग महत्व है। अतएव दोनों का वर्णन निम्न है–

सन्दर्भ (Reference)

शोध एवं अनुसंधान में तर्क, तथ्य एवं प्रमाण का समावेश होता है। इनके बिना किसी भी अनुसंधान की कल्पना नहीं की जा सकती है। तर्क, तथ्य एवं प्रमाण प्रस्तुत करते समय उनके स्रोत का उल्लेख करना आवश्यक होता है। बिना वैध स्रोत के तथ्य एवं प्रमाण स्वीकारणीय नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में अनुसंधान के परिणामों की विश्वसनीयता एवं वैधता संदिग्ध होती है। यह विश्वसनीयता एवं वैधता संदर्भ सूची के निर्माण से शोध में आती है। इसका अभिप्राय निम्न पंक्तियों में स्पष्ट किया गया है।

संदर्भ का अभिप्राय

संदर्भ उस स्रोत को कहा जाता है जिससे किसी तथ्य, सिद्धान्त अथवा घटना का विवरण प्राप्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में संदर्भ अनुसंधान रिपोर्ट में उल्लिखित किसी तथ्य, सिद्धान्त, वक्तव्य अथवा घटना के स्रोत का पता होता है।

उदाहरण के लिए यदि कोई शोध कर्ता प्राणायाम के अभ्यास द्वारा चिन्ता स्तर पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करता है एवं प्राणायाम को महर्षि पतंजलि के अनुसार परिभाषित करता है। तो ऐसी स्थिति में उसे महर्षि पतंजलि द्वारा रचित साहित्य, उसका प्रकाशन वर्ष, प्रकाशक संस्था का नाम एवं स्थल तथा पृष्ठ संख्या आदि का उल्लेख संदर्भ सूची में करना होगा ताकि अन्य अनुसंधानकर्ता भी यदि चाहें तो उस स्रोत के अवलोकन से प्राणायाम की उल्लिखित परिभाषा के सम्बन्ध में अपनी जिज्ञासा शान्त कर सकें।

इसी प्रकार यदि शोध कर्ता यदि अपने शोध अध्ययन में चिंता को परिभाषित करता है, अथवा उसका मापन करने हेतु किसी मापनी, परीक्षण, स्केल अथवा प्रश्नावली का प्रयोग

करता है या वह चिंता के प्रसार संबंधी ऑकड़े प्रस्तुत करता है तो उसे इसके संदर्भ का भी उल्लेख करना होगा तभी उसके इस अनुसंधान को विश्वसनीय एवं वैध माना जायेगा।

सन्दर्भ लेखन की विधि एवं नियम

शोध प्रतिवेदन में संदर्भ का संक्षिप्त उल्लेख प्रतिवेदन (रिपोर्ट) के मूल (text) में होता है तथा उसका विस्तृत उल्लेख रिपोर्ट के अन्त में तैयार किये गये स्वतंत्र अनुच्छेद में होता है। किसी शोध प्रतिवेदन में संदर्भ प्रस्तुत करने की विधि के अन्तर्गत कुछ महत्वपूर्ण बातें ध्यान में रखने योग्य हैं जो निम्नांकित हैं–

शोध प्रतिवेदन के मूल (text) में प्रस्तुत किये जाने वाले संदर्भ के प्रस्तुतीकरण का तरीका

1. शोध प्रतिवेदन के मूल (text) में अध्ययन का संदर्भ लिखने में अध्ययन के लेखक का उपनाम (surname) तथा कोष्ठक (bracket) में उस अध्ययन के प्रकाशित होने का वर्ष दिया जाता है।
   उदाहरण के लिए यदि मान लिया जाये कि एक शोध पत्र जिसका शीर्षक ' The relative importance of dispositional optimism and control appraisals in the quality of life after coronary artery bypass surgery.'है एस. के विश्वकर्मा द्वारा 'Journal of Behavioural Medicine' में 2000 में प्रकाशित हुआ और जिसे किसी शोधकर्ता ने अपने अध्ययन में सम्मिलित किया है। इसका सन्दर्भ (Reference) शोध पत्र के मूल (text) में लेखक के उपनाम तथा प्रकाशन के वर्ष के साथ इस प्रकार किया जायेगा।
   Vishvakarma (2000)
2. कभी कभी शोधकर्ता शोध प्रतिवेदन के मूल (text) में लेखक के दो या तीन अध्ययनों को जो अलग–अलग वर्षों में प्रकाशित हुए हैं, उनका का संदर्भ देना चाहता है। एसी परिस्थिति में प्रकाशन वर्ष को उपनाम के उपरान्त कोष्ठक में एक कम में रखकर प्रस्तुत किया जाता है। जैसे – Vishvakarma (2000, 2001, 2004, 2011)।
3. कभी–कभी शोधकर्ता किसी ऐसे अध्ययन का संदर्भ अपने शोध प्रतिवेदन के मूल में प्रस्तुत करता है जिसे कि दो व्यक्तियों द्वारा मिलकर किया गया हो। ऐसी परिस्थिति में दोनों व्यक्तियों के उपनाम के बीच में एवं (and, &) शब्द लिखकर तथा उसके बाद कोष्ठक में प्रकाशन वर्ष लिखकर संदर्भ प्रस्तुत किया जाता है। and एवं उसके चिह्न & का प्रयोग अलग अलग प्रकार से किया जाता है। उदाहरण के लिए जब शोधकर्ता ऐसे संदर्भ का प्रयोग पैराग्राफ को प्रारम्भ करते हुए करता है तब वह दोनों व्यक्तियों के उपनाम के बीच में and शब्द का प्रयोग करता है। उदाहरण के लिए यदि कोई पैराग्राफ विश्वकर्मा एवं त्रिवेदी के अध्ययन के उल्लेख से प्रारम्भ होता है तथा उसका प्रकाशन वर्ष 2011 है तो वह इस प्रकार लिखा जायेगा – Vishvakarma and Trivedi (2011) ने अपनी पुस्तक साइन्स एण्ड हैप्पीनेस में एक लेख के अन्तर्गत

हैप्पीनेस के संप्रत्यय को वेलबींग के संप्रत्यय के समान माना है। यदि यही संदर्भ पैराग्राफ के अन्त में प्रस्तुत किया जाता है तो वह इस प्रकार लिखा जायेगा – (Vishvakarma & Trivedi, 2011)।

4. कभी–कभी शोधकर्ता किसी ऐसे अध्ययन को अपने शोध के मूल (text) में सम्मिलित कर लेता है जिसे दो से अधिक प्रयोगकर्ता मिलकर पूरा किए हुए होते हैं। ऐसी परिस्थिति में वरिष्ठ प्रयोगकर्ता अथवा अनुसंधानकर्ता के उपनाम के बाद et al., का प्रयोग किया जाता है। उदाहरण के लिए मान लिया जाये कि कोई अध्ययन हेमाद्री कुमार साव (Hemadri kumar Sao, can be written as H. K. Sao), लक्ष्मीधर मलिक (Laxmi Dhar Malik, can be written as L. D. Malik) एवं संतोष कुमार विश्वकर्मा (S. K. Vishvakarma) द्वारा अर्थात् तीन व्यक्तियों द्वारा मिलकर किया गया है। जिनमें हेमाद्री साव वरिष्ठ लेखक हैं एवं जिसका प्रकाशन 2012 में Indian Journal of Clinical Psychology में हुआ है। ऐसे अध्ययन के संदर्भ मे अपने शोध प्रतिवेदन के मूल (text) में शोध कर्ता इस प्रकार प्रस्तुत करेगा – Sao et al. (2012)।

शोध प्रतिवेदन के अन्त में अलग अनुच्छेद में प्रस्तुत किये जाने वाले विस्तृत संदर्भ का तरीका

शोध प्रतिवेदन में विभिन्न अध्ययनों के स्रोत के रूप में संदर्भ प्रस्तुत किये जाते हैं। इन स्रोतों के प्रकार भिन्न भिन्न होते हैं। इन स्रोतों में प्रमुख रूप से शोध पत्र, पाठ्य पुस्तकें, मैगजीन, इण्टरनेट, प्रकाशित एवं अप्रकाशित पी.एच–डी थीसिस, आदि आते हैं। इन स्रोतों के प्रकार एवं प्रकाशन की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए इनके प्रस्तुतीकरण का तरीका निम्नलिखित है।

(क) जर्नल में प्रकाशित शोध पत्र के संदर्भ लेखन का तरीका

(1) यदि कोई शोध कर्ता एस. के. विश्वकर्मा द्वारा सन् 2000 में जर्नल ऑफ विहेवियरल मेडिसिन के वॉल्यूम 16 एवं पृष्ठ संख्या 25 से 46 में प्रकाशित किसी शोध पत्र का संदर्भ प्रस्तुत करना चाहता है तो वह इस प्रकार होगा।

Vishvakarma, S. K. (2000). The relative importance of dispositional optimism and control appraisals in the quality of life after coronary artery bypass surgery. *Jouranl of Behavioural Medicine, 16,* 25-46.

उपरोक्त उदाहरण में ध्यान देने योग्य बिन्दु–

1. उपनाम के साथ मुख्य एवं मध्य नाम का संक्षिप्त स्वरूप प्रकाशन वर्ष एवं उपनाम के मध्य लिखा जाता है। जैसे एस. के. विश्वकर्मा, संतोष कुमार विश्वकर्मा का संक्षिप्त रूप है। संदर्भ सूची में यह विश्वकर्मा, एस. के. (2011) के रूप में लिखा जायेगा।
2. अध्ययनकर्ता के उपनाम एवं प्रकाशन वर्ष के उपरान्त शोध पत्र के शीर्षक का नाम लिखा जायेगा। उपरोक्त उदाहरण में शोध पत्र का शीर्षक The relative importanc of dispositional optimism and control

appraisals in the quality of life after coronary artery bypass surgery. है।

3. संदर्भ में जर्नल एवं उसके वॉल्यूम को तिरछे (itallic) स्वरूप में प्रस्तुत किया जाता है। जैसे– *Journal of Behavioural Medicine, 16*
4. पृष्ठ संख्या तिरछे स्वरूप में न लिखकर सीधे अक्षरों में लिखी जाती है।
5. शोध पत्रों के संदर्भ लेखन में प्रकाशक संस्था एवं प्रकाशन स्थल के नाम का उल्लेख नहीं किया जाता है।

(2) यदि शोध पत्र दो अनुसंधानकर्ताओं द्वारा लिखा गया है तो ऐसी परिस्थिति में उसके विस्तृत संदर्भ में दोनों अनुसंधानकर्ताओं के उपनाम के मध्य एण्ड चिह्न लगाकर तत्पश्चात् प्रकाशन वर्ष का उल्लेख किया जाता है। उदाहरण के लिए–

1. Vishvakarma, S.K. & Sao, H.K. (2011). Impact of pranakarshan pranayam on anxiety: A matched control design. *Journal of Indian and Applied Psychology, 2,* 25-31.

2. यदि उपरोक्त शोधपत्र दो से अधिक अनुसंधानकर्ताओं द्वारा लिखा गया है एवं अन्य अनुसंधानकर्ता एस. के. सिया हैं तो ऐसी अवस्था में संदर्भ लेखन में उनके नाम का भी उल्लेख संदर्भ के विस्तृत स्वरूप में प्रस्तुत किया जायेगा, जिसमें अनुसंधानकर्ताओं के वरिष्ठता क्रम का ख्याल रखा जायेगा, यदि हेमाद्री साव प्रथम वरिष्ठ हैं एवं एस. के. सिया द्वितीय वरिष्ठ तो संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार का होगा। जैसे – Sao, H. K., Sia, S. K. & Vishvakarma, S. K. (2011). Impact of pranakarshan pranayam on anxiety: A matched control design. *Journal of Indian and Applied Psychology, 2,* 25-31.

(ख) पाठ्य पुस्तक का संदर्भ प्रस्तुत करने का तरीका

(1) यदि कोई शोधकर्ता संतोष कुमार विश्वकर्मा द्वारा रचित पुस्तक (Positive Psychology: Science of wellbeing and strength) का कोई उद्धरण अपने शोध प्रतिवेदन के मूल (Text) में करता है जिसका प्रकाशन सन 2011 में बेंटन पब्लिकेशन द्वारा किया गया है एवं प्रकाशन स्थल दिल्ली है। उसका विस्तृत संदर्भ प्रतिवेदन के अन्त में संदर्भ सूची में करना चाहता है तो उसका स्वरूप इस प्रकार का होगा।

Vishvakama, S. K. (2011). *Positive psychology: The science of wellbeing and strength*. Delhi: Benton Publications.

(2) यदि पुस्तक की रचना दो लेखकों आर. ए. एम्मसन एवं जे. हिल के द्वारा की गयी है एवं पुस्तक का नाम वर्ड्स ऑफ ग्रैटीट्यूड फॉर बॉडी, माइन्ड एण्ड सोल है

तथा प्रकाशक संस्था बेंटन पब्लिकेशन एवं प्रकाशन स्थल दिल्ली है एवं प्रकाशन वर्ष 2001 है तो उसका प्रस्तुतीकरण इस प्रकार होगा। –

Emmons, R.A., & Hill. J. (2001). *Words of gratitude for body, mind, and soul.* Delhi: Benton Publications.

(3) यदि पुस्तक की रचना दो से अधिक लेखकों द्वारा की गयी है तो तीसरे अथवा अन्य लेखकों का नाम भी संदर्भ में वरिष्ठता क्रम में शामिल किया जायेगा। मान लिया जाये कि उपरोक्त उदाहरण में एम्मसन एवं हिल के अलावा एच. के. हिलगार्ड भी एक लेखक हैं पुस्तक का प्रकाशन वर्ष 2012 एवं अन्य चीजें समान हैं तो संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार का होगा।

Emmons, R.A., Hillguard, H. K., & Hill. J. (2012). *Words of gratitude for body, mind, and soul.* Delhi: Benton Publications.

(4) यदि शोधकर्ता द्वारा शोध प्रतिवेदन के मूल में संदर्भित किया गया है उद्धरण किसी सम्पादित पुस्तक (Edited book) के किसी अध्याय से लिया गया है जिसमें अध्याय के लेखक एवं पुस्तक के सम्पादक भिन्न–भिन्न हैं अथवा पुस्तक किसी अन्य लेखक की है तो संदर्भ प्रस्तुतीकरण भिन्न रूप में होगा। मान लिया जाये कि डिक्लेमेंटो, फेयरहर्स्ट एवं पिट्रोवस्की द्वारा रचित आर्टिकल एक अध्याय के रूप में जे. ई. मैड्डॉक्स की संपादित पुस्तक 'सेल्फ–इफिकेसी, एडेप्टेशन, एण्ड एडजस्टमेंट : थ्योरी, रिसर्च, एण्ड एप्लीकेशन' में 'सेल्फ–इफीकेसी एण्ड एडीटिव विहेवियर' नामक आर्टिकल के रूप में प्रकाशित है। तथा प्रकाशन वर्ष 1995 एवं प्रकाशक संस्था प्लेनम है तथा प्रकाशन स्थल न्यूयार्क है तो संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार का होगा।

DiClemente, C. C., Fairhurst, S. K., & Piotrowski, N. A. (1995). Self-efficacy and addictive behaviours. In J. E. Maddux (Ed.), *Self-efficacy, adaptation, and adjustment: Theory, research, and application* (pp. 109-142). New York: Plenum.

(ग) इण्टरनेट से उद्धृत की गयी सामग्री के संदर्भ लेखन का तरीका।

(1) सूचना क्रांति के इस युग में इण्टरनेट सूचना प्राप्ति का एक प्रमुख स्रोत बन गया है। इस स्रोत में संसार के सभी विषयों से संबंधित ज्ञान भरा पड़ा है। परन्तु यह ज्ञान इलेक्ट्रानिक ऑकड़ों के रूप में है एवं इसमें नित्य परिवर्तन होता रहता है। यह ज्ञान इण्टरनेट पर कई वेबसाइट्स पर उपलब्ध होता है। अतएव इन वेबसाइट्स से उद्धृत सूचनाओं, ऑकड़ों एवं पठनीय सामग्री की विश्वसनीयता एवं वैधता पर प्रश्नचिह्न लगा रहता है। ऐसी स्थिति में इण्टरनेट से उद्धृत की गयी सामग्री के संदर्भ लेखन विशेष प्रकार से किया जाता है।

मान लिया जाये कि आर. ए. एम्मसन द्वारा लिखित एक साक्षात्कार संबंधी आर्टिकल इण्टरनेट की एक वेबसाइट पर उपलब्ध है एवं यह दिनांक 6 जून 2011 को इण्टरनेट से डाउनलोड किया गया है परन्तु मूल रूप से यह इण्टरनेट पर सन् 2004 से उपलब्ध है प्रकाशित है तो ऐसी परिस्थिति में इस संदर्भ का स्वरूप संदर्भ सूची में इस प्रकार का होगा।

Emmons, R. A. (2004). *Cultivating gratitude: An interview with Robert Emmons,* Retrived June 6, 2011, from http:www.todoinstitute.com/library/public/cultivating_gratitude_an_interview_with_robert-emmons_phd.php)

(2) एक अन्य उदाहरण– यदि इण्टरनेट पर प्रकाशित किसी सामग्री का प्रकाशक अथवा वेबसाइट किसी संस्था की हो एवं प्रकाशित सामग्री किसी व्यक्ति विशेष की संपदा नहीं हो तो संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार का होगा।

Americal Psychological Association (1993). *Guidelines for providers of psychological services to ethnic, linguistic, and culturally diverse populations.* Retrievedfrom hppp://www.apa.org/pi/oema/resources/policy/provider-guidelines.aspx

(घ) पी.एच.–डी. थीसिस एवं मास्टर्स डिजरटेशन से उद्धृत सामग्री के सम्बन्ध में सदर्भ के प्रस्तुतीकरण का तरीका।

(1) मान लिया जाये कि कोई शोधकर्ता अदलाई–गेल की पी.एच.–डी थीसिस के उद्धरण के संबंध में संदर्भ प्रस्तुत करना चाहता है। परन्तु यह थीसिस अप्रकाशित है एवं थीसिस के लेखन का वर्ष 1994 है एवं यह शिकागो यूनीवर्सिटी की सम्पदा है तो इसके संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार का होगा।

Adlai-Gail, W. (1994). *Exploring the autotelic personality*. Unpublished doctoral dissertations, University of Chicago.

(2) यदि कोई शोधकर्ता किसी अहुविया के मास्टर डिजर्टेशन के उद्धरण के संबंध में संदर्भ प्रस्तुत करना चाहता है। परन्तु यह डिजर्टेशन अप्रकाशित है एवं डिजर्टेशन विश्वविद्यालय में जमा करने का वर्ष 2000 है एवं यह ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी की सम्पदा है तो इसके संदर्भ का स्वरूप इस प्रकार का होगा।

Ahuvia, A. (2000). *Well-being in cultures of choice: A cross cultural perspective*. Unpublished master's dissertations, Oxford University.

(3) यदि डॉक्टरल एवं मास्टर्स डिजर्टेशन प्रकाशित हैं तो उनके स्वरूप में अप्रकाशित की जगह पर प्रकाशन स्थल एवं प्रकाशन संस्थान का नाम आ जायेगा।

Trivedi, A. (2011). Impact of pranayam on anxiety: A control trial. Doctoral dissertations, Ohio: Ohio University Press.

(च) मैनुअल एवं मैगजीन के संदर्भ प्रस्तुतीकरण का तरीका

(1) यदि शोधकर्ता किसी परीक्षण, प्रश्नावली, सूचकांक आदि से उद्धृत सामग्री के सम्बन्ध में संदर्भ का प्रस्तुतीकरण करना चाहता है तो उसका स्वरूप इस प्रकार होगा।

Bandura, A. (1995). *Manual for the construction of self-efficacy scales.* Available from Albert Bandura, Department of Psychology, Stanford University, Stanford, CA 94305-2130.

(2) यदि कोई मैनुअल ऐसा हो जो मैनुअल प्रकाशित करने वाली संस्था का ही निजी सम्पत्ति हो तो संदर्भ का निम्न स्वरूप होगा।

American Psychiatric Association. (1994). *Diagnostic and statistical manual of mental disorders (4th ed.).* Washington, DC: Author.

(3) किसी मैगजीन के संदर्भ प्रस्तुतीकरण का तरीका

यदि किसी मैगजीन के किसी लेखक के आर्टिकल का प्रकाशन हुआ है एवं शोधकर्ता उसका संदर्भ देना चाहता है तो उसके स्वरूप में लेखक के आर्टिकल का शीर्षक एवं मैगजीन का नाम संदर्भ में उद्धृत करना आवश्यक होगा।

Mishra, R. (June, 2012). Psychological problems in India. *Psychology Today*. Delhi: Benton Publications.

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Bibliography)

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची संदर्भ सूची से भिन्न होती है। संदर्भ ग्रंथ सूची शोध प्रतिवेदन में परिशिष्ट के पूर्व लगायी जाती है। इस सूची में उन पुस्तकों, साहित्य, पाण्डुलिपियों, ग्रंथों आदि को अक्षर क्रमानुसार प्रस्तुत किया जाता है। जिनका अपने शोधकार्य को सम्पन्न करने, समझने आदि में शोधकर्ता ने अध्ययन किया हो अथवा सहायता ली हो अथवा जिनके अध्ययन से अन्य पाठकों को शोध प्रतिवेदन से संबंधित अन्य जिज्ञासाओं के समाधान में मदद मिलती हो।

संदर्भ ग्रंथ सूची में उल्लिखित प्रत्येक ग्रंथ में से उद्धरणों को शोध प्रतिवेदन के टेक्स्ट में प्रयोग किया जाना आवश्यक नहीं होता है।

1.7 परिशिष्ट – आवश्यकता एवं महत्व

परिशिष्ट शोध प्रतिवेदन में सबसे अन्त में लगाया जाने वाली सामग्री होती है। परिशिष्ट में शोधकर्ता उन सूचनाओं को रखता है जिसे शोध के मुख्य अंश में रखना अनुपयुक्त साबित होता है। प्रत्येक परिशिष्ट की शुरूआत एक नये पृष्ठ पर की जाती है तथा इसमें शोध में प्रयक्त परीक्षणों, विस्तृत सांख्यिकीय परिकलन (Statistical calculation) तथा कम्प्यूटर कार्यक्रम आदि को रखा जाता है।

परिशिष्ट के उपरोक्त वर्णन से परिशिष्ट की आवश्यकता एवं महत्व स्वतः ही स्पष्ट हो जाता है। उपरोक्त पैराग्राफ में वर्णित परिशिष्ट की सामग्री से शोध प्रतिवेदन को समझना और भी सरल हो जाता है।

20.8 सार–संक्षेप

शोध प्रतिवेदन का फल निष्कर्ष के रूप में पाठकों, अन्य वैज्ञानिकों, शोधकर्ताओं एवं स्वयं अनुसंधानकर्ता को प्राप्त होता है। इन सभी को निष्कर्ष के अध्ययन से शोध के उद्देश्य एवं शोध परिणामों की दशा एवं दिशा का ज्ञान हो जाता है। शोध के परिणाम किस जनसंख्या पर लागू होते हैं इसका भी ज्ञान निष्कर्ष से हो जाता है। संक्षेप में कहें तो निष्कर्ष शोध द्वारा प्राप्त परिणामों के विवेचन एवं व्याख्या का सार रूप है, जो कि सरल किन्तु स्पष्ट शब्दों एवं भाषा का प्रयोग करते हुए बोधगम्य स्वरूप में अवांछित अप्रासंगिक शब्दों का प्रयोग न करते हुए प्रस्तुत किया जाता है। निष्कर्ष के उपरान्त शोध परिणाम एवं निष्कर्ष समाज एवं संस्कृति को किस रूप में ज्ञान बढ़ाने की सामग्री उपलब्ध कराते हैं के संबंध में शैक्षिक निहितार्थ तार्किक एवं व्यावहारिक रूप में प्रस्तुत किये जाते हैं। शोध की वैधता एवं विश्वसनीयता को बनाये रखने के लिए शोध में अन्य स्रोतों से प्राप्त सामग्री के लिए उन स्रोतों से संबंधित संदर्भ सूची एवं संदर्भ ग्रंथ सूची प्रस्तुत की जाती है। शोध प्रतिवेदन को समझने में सहायता एवं सरलता हेतु परिशिष्ट को संयोजित किया जाता है।

20.9 पारिभाषिक शब्दावली

निष्कर्ष – निष्कर्ष शोध द्वारा प्राप्त परिणामों के विवेचन एवं व्याख्या का सार रूप है, जो कि सरल किन्तु स्पष्ट शब्दों एवं भाषा का प्रयोग करते हुए बोधगम्य स्वरूप में अवांछित अप्रासंगिक शब्दों का प्रयोग न करते हुए प्रस्तुत किया जाता है।

शैक्षिक निहितार्थ – शैक्षिक निहितार्थ से तात्पर्य अनुसंधानकर्ता द्वारा किए गए कार्य एवं उसके परिणामों के शिक्षा के क्षेत्र में योगदान से है।

संदर्भ – संदर्भ उस स्रोत को कहा जाता है जिससे किसी तथ्य, सिद्धान्त अथवा घटना का विवरण प्राप्त किया जाता है। दूसरे शब्दों में संदर्भ अनुसंधान रिपोर्ट में उल्लिखित किसी तथ्य, सिद्धान्त, वक्तव्य अथवा घटना के स्रोत का पता होता है।

संदर्भ सूची – संदर्भ ग्रंथ सूची शोध प्रतिवेदन में परिशिष्ट के पूर्व लगायी जाती है। इस सूची में उन पुस्तकों, साहित्य, पाण्डुलिपियों, ग्रंथों आदि को अक्षर क्रमानुसार प्रस्तुत किया जाता है। जिनका अपने शोधकार्य को सम्पन्न करने, समझने आदि में शोधकर्ता ने अध्ययन किया हो अथवा सहायता ली हो अथवा जिनके अध्ययन से अन्य पाठकों को शोध प्रतिवेदन से संबंधित अन्य जिज्ञासाओं के समाधान में मदद मिलती हो।

परिशिष्ट – परिशिष्ट में शोधकर्ता उन सूचनाओं को रखता है जिसे शोध के मुख्य अंश में रखना अनुपयुक्त साबित होता है। प्रत्येक परिशिष्ट की शुरूआत एक नये पृष्ठ पर की जाती है तथा इसमें शोध में प्रयक्त परीक्षणों, विस्तृत सांख्यिकीय परिकलन (Statistical calculation) तथा कम्प्यूटर कार्यक्रम आदि को रखा जाता है।

20.10 सन्दर्भ ग्रन्थ

अरूण कुमार सिंह (2006), 'मनोविज्ञान, समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियॉ', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

मोहम्मद सुलेमान (2005),'मनोविज्ञान, शिक्षा एवं अन्य सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी', दिल्ली, मोतीलाल बनारसीदास।

हेनरी ई. गैरेट (2007), 'शिक्षा एवं मनोविज्ञान में सांख्यिकी', दिल्ली, कल्याणी पब्लिशर्स।

20.11 निबंधात्मक प्रश्न

प्रश्न 1– निष्कर्ष से आप क्या समझते हैं? उदाहरण के साथ निष्कर्ष के स्वरूप एवं के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 2– शैक्षिक निहितार्थ से आप क्या समझते हैं ? शैक्षिक निहितार्थ के प्रस्तुतीकरण एवं विशेषताओं का उदाहरण सहित वर्णन करें।

प्रश्न 3– संदर्भ किसे कहते हैं? शोध प्रतिवेदन के मूल (Text) में संदर्भ प्रस्तुतीकरण के तरीकों एवं नियमों का वर्णन करें।

प्रश्न 4– संदर्भ किसे कहते हैं? शोध प्रतिवेदन के अन्त में प्रस्तुत की जाने वाली संदर्भ सूची में विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री का विस्तृत संदर्भ दिया जाता है इन स्रोतों के प्रकारों का एवं संदर्भ लेखन के तरीकों का सोदाहरण वर्णन करें।

प्रश्न 5– संदर्भ एवं संदर्भ ग्रंथ सूची में अन्तर स्पष्ट करें एवं परिशिष्ट का महत्व समझाएँ।